SATRACHEE

An International Registered Peer Reviewed Bilingual Research Journal

ISSN 2348-8425

सत्राची

A UGC-CARE Enlisted
Peer Reviewed Research Journal

शोधांक-4

भाग 1

Year 11, Issue 28,
Vol 40,
July-September, 2023

Editor
Anand Bihari

Chief Editor
Kamlesh Verma

SATRACHEE

ISSN : 2348-8425

सत्राची

मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान की पूर्व समीक्षित त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष 11, शोधांक 4, भाग-1, जुलाई-सितम्बर, 2023

प्रधान संपादक
कमलेश वर्मा

संपादक
आनन्द बिहारी

समीक्षा संपादक
आशुतोष पार्थेश्वर, सुचिता वर्मा,
प्रवीन कुमार यादव

सह-संपादक
अर्चना गुप्ता, जयप्रकाश सिंह,
हुस्न आरा

सहायक संपादक
सुशांत कुमार

सलाहकार समिति व समीक्षा मंडल
अनीता राकेश, प्राध्यापक, हिंदी विभाग, जे.पी.विश्वविद्यालय, छपरा।
मुक्तेश्वर नाथ तिवारी, प्राध्यापक, शांति निकेतन, प.बंगाल।
ब्रज बिहारी पांडेय, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी, ओरिएंटल कॉलेज, पटना सिटी।
पुष्पलता कुमारी, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, म.म.कॉ., पटना।
राजू रंजन प्रसाद, असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास, मुजफ्फरपुर।
नीरा चौधुरी, प्राध्यापक, संगीत, पटना विश्वविद्यालय, पटना।
अरविन्द कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत, पटना विश्वविद्यालय, पटना।
नीतु चौहान, सहायक प्राध्यापक, शिक्षा विभाग, पटना वीमेन्स कॉलेज, पटना

❑❑❑

SATRAACHEE

Peer Reviewed and Refereed Research Journal

A UGC-CARE Enlisted Journal

मूल्य : ₹ 450/-

सदस्यता शुल्क :

पंचवार्षिक : 5,000 रुपए (व्यक्तिगत)
: 15,000 रुपए (संस्थागत)

आजीवन : 12,000 रुपए (व्यक्तिगत)
: 20,000 रुपए (संस्थागत)

बैंक खाते का विवरण :

SATRAACHEE FOUNDATION,
A/c No. 40034072172, IFSC : SBIN0006551,
State Bank of India, Boring Canal Rd.-Rajapool,
East Boring Canal Road, Patna, Bihar, Pin: 800001

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित रचनाओं से संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

संपादन/प्रकाशन : अवैतनिक/अव्यावसायिक

प्रकाशक : सत्राची फाउंडेशन, पटना

संपादकीय संपर्क :

आनन्द बिहारी
कला कुंज, दूसरा तल्ला
बाजार समिति रोड, बहादुरपुर, पटना, पिन : 800016

Website : http://satraachee.org.in
E-mail : satraachee@gmail.com
Mob. : 9661792414 (Anand Bihari.)
: 9415256226 (Kamlesh Verma.)

❖❖❖

SATRAACHEE

अनुक्रम

संपादकीय

05 :: स्त्री सशक्तीकरण की दिशा... – *आनन्द बिहारी*

शोधालेख

07 :: भूमंडलीकरण के संदर्भ में बदलते सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य – *डॉ. गीतिका एस. तंवर*

11 :: दलित आत्मकथा 'नागफनी' में प्रायोगिक द्विभाषिकता का अनुशीलन – *प्रा. राजेन्द्र ज्ञानदेव ननावरे*

16 :: वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी साहित्य – *डॉ. अजित चुनिलाल चव्हान*

20 :: साहित्य और समाज – *डॉ. अमित एल. टंडेल*

25 :: भगवानदास मोरवाल के साहित्य में वैचारिक प्रतिबद्धता – *डॉ. अशोक शामराव मराठे*

28 :: स्त्री शोषण और उत्पीड़न की कहानी ('बाबल तेरा देश में' उपन्यास के विशेष संदर्भ में) – *डॉ. चंद्रभान लक्ष्मण सुरवाड़े*

33 :: आदिवासी रामकथा में लव-कुश का प्रसंग – *डॉ. कल्पना बी.गण्वित*

36 :: साहित्य और समाज की अन्योन्याश्रितता और दुष्यंत कुमार की कविता – *डॉ. अविनाश कासांडे*

40 :: आदिवासी दर्शन और हिंदी साहित्य – *वसावे मुरलीधर बी.*

44 :: सुशीला टाकभौरे के साहित्य में दलित जीवन की समस्याएँ – *डॉ. प्रा. भरत सु. जवंजाल*

48 :: साहित्य और समाज का अंत:संबंध – *रत्ना सदाशिव गौडा*

51 :: हिंदी साहित्य के 'उपन्यास सम्राट' मुंशी प्रेमचंद – *डॉ. शेखर नामदेव*

54 :: निर्मला पुतुल के काव्य में नारी अस्मिता – *डॉ. भारती सी.रावत*

60 :: 'उर्वशी' में कामाध्यात्म चिंतन – *प्रा. सुनील पानपाटील*

65 :: असाध्य वीणा : पाठ का पुनर्पाठ – *डॉ. आकाश वर्मा*

74 :: रघुवीर सहाय एवं सर्वेश्वर की कविताओं में प्रतिरोध का स्वर – *कुणाल भारती*

80 :: कलि का माणस कौन विचारूँ – *डॉ. रूपा चारी*

86 :: काशी की महान विभूति देवतीर्थ स्वामी और उनका रचना संसार – *डॉ. सुमन तिवारी*

95 :: हिंदी उपन्यासों में वृद्ध स्त्रियों की संवेदना – *मंजुला अशोक बिसनाल*
डॉ. अमरनाथ प्रजापति

100 :: काशी का अस्सी : उपन्यास में लोकधर्म और सामाजिक सरोकार – *प्रतिमा द्विवेदी*
डॉ. अमृता

105 :: समकालीन कविता में बालश्रम – *प्रीति खजूरिया*

112 :: 'महाप्रस्थान' खंडकाव्य में अभिव्यक्त हिमालय का सांस्कृतिक संदर्भ – *डॉ. प्रणीता. पी*

117 :: इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविताओं में पारिस्थितिकी संकट – *श्री कृष्ण यादव*
प्रो. डॉ. सुधारानी सिंह

123 :: वीर सावरकर एवं राष्ट्रभाषा हिंदी – *अभिनय शुक्ल*

131 :: भारत में मुद्रा योजना के अंतर्गत कुल लोन खातों व स्वीकृत धनराशि का विश्लेषण – *डॉ. महेन्द्र त्रिपाठी*

144 :: G20 में महिला सशक्तीकरण : नीतियाँ, प्रगति और चुनौतियों का प्रारंभिक अध्ययन – *डॉ. जी.एम. मोरे*

151 :: भारत की G20 अध्यक्षता : चुनौतियाँ और अवसर – *प्रो. (डॉ.) संतोष शिवकुमार खत्री*

157 :: वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ग्रुप ट्वेंटी (जी 20) शिखर परिषद् एवं महात्मा गाँधी – *छोटू एन. मावची*
प्रो. डॉ. विजय तुंटे

166 :: महिला सशक्तीकरण में स्वयं सहायता समूह की भूमिका – प्रा. सुनीता संतोष पवार

172 :: नंदुरबार के आदिवासी समुदाय की सामाजिक स्थिति का अध्ययन – गौरी सुखदेव सालुंके, प्रो. के.पी. देशमुख

177 :: आदिवासी पहचान और संस्कृति – प्रा. सुनील एम. भोईर

181 :: डॉ. भीमराव आम्बेडकर के सामाजिक न्याय दर्शन का विश्लेषणात्मक अध्ययन – डॉ. अनुभा श्रीवास्तव

186 :: राहुल सांकृत्यायन की तिब्बत यात्रा और बौद्ध संस्कृति का अन्वेषण – कमलदीप सिंह, डॉ. रत्नेश कुमार यादव

191 :: 1857, वीर कुँवर सिंह : इतिहास बनाम लोकसंस्कृति – अरविन्द

200 :: श्यामा प्रसाद मुखर्जी रूर्बन मिशन एवं जनजाति विकास : एक समाजशास्त्रीय अधययन – डॉ. पियुष कुमार सिंह

206 :: भारतीय संस्कृति में रामकथा : मलयालम के संदर्भ में – प्रो. प्रमोद कोवप्रत

210 :: अल्पसंख्यक समुदायों की व्यावहारिक स्थिति : एक अध्ययन – सबीना अख़्तर, डॉ. एम.एम.एस. नेगी

222 :: हिंदी भाषा में वर्तनी संबंधी त्रुटियों का भौगोलिक वातावरण के संदर्भ में विश्लेषणात्मक अधययन – विनय कुमार सिंह, डॉ. अनोज राज

231 :: नई उच्च शिक्षा नीति की चुनौतियाँ : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण – संजय भारती

238 :: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 तथा महिला शिक्षा की दिशा – डॉ. हुस्न आरा

244 :: वेदों का राजधर्म : वर्तमान में भी प्रासंगिक – डॉ. चारू मिश्रा

250 :: मिथिला पुनर्जागरण के एकांत साधक : पंडित रामनंदन मिश्र – सत्यनारायण प्रसाद यादव, प्रो. अशोक कुमार मेहता

258 :: आदिवासी विस्थापन : विकास से पैदा हुई चुनौती – शुभम यादव

266 :: भारत सरकार की सार्वजनिक नीति एवं नीतिगत फैसले : 2014 के बाद – चन्द्रभान, डॉ. जितेन्द्र बहादुर सिंह

274 :: एकल परिवार में रहने वाली शिक्षित कार्यरत महिलाओं के आय-व्यय की स्वतंत्रता पर शिक्षा का प्रभाव : एक अध्ययन – अंकिता चतुर्वेदी, प्रो. (डॉ.) रैनु गुप्ता

280 :: उत्तराखंड के लोक संगीतज्ञ समाज की बदलती व्यावसायिक परंपराएँ – रविन्द्र कुमार स्नेही, प्रो. गीताली पडियार

291 :: परिरवार में जेंडर संबंध एवं उपभोग के पैटर्न : एक समाज वैज्ञानिक अध्ययन – आशीष कुमार चौरसिया

298 :: ज्ञानप्रकाश विवेक की गजलों में निहित महानगरीय परिवेश – डॉ. महेश वसंतराव गांगुर्डे

303 :: हिंदी उपन्यासों में चित्रित किन्नर विमर्श – डॉ. अनंत भालचंद्र पाटील

❖❖❖

संपादकीय

स्त्री सशक्तीकरण की दिशा...

बीसवीं सदी के अंतिम दशक से लेकर अब तक स्त्री सशक्तीकरण का मुद्दा विमर्श के केन्द्र में है। स्त्री बदल रही है, उसका परिवेश बदल रहा है, स्त्री के लिए निर्धारित मानदंडों में भी बदलाव आ रहा है। खास बात यह है कि इस बदलाव में ठहराव नहीं है, एक निरंतरता है। परिणामतः सामाजिक संक्रांति की दिशा अनिर्णित है। संक्रांति काल के दौर में ध्वंस ज्यादा है, निर्माण कम; शांति व शकुन और भी कम। एक हद तक यह आतंक का दौर है जिसे स्त्री अपने भीतर और बाहर दोनों जगह महसूस करती है। देखते ही देखते उसने एक बड़ी दुनिया रच डाली है। उस दुनिया में उसकी बहुआयामी छवियाँ हैं, उन छवियों में प्रबल शोषण, दया और सहानुभूति की अनगिनत गाथाएँ हैं। संक्रांत समाज स्त्री की इस बहुआयामिता से आक्रांत है।

स्त्री सशक्तीकरण की दिशा निर्धारित करने वाली ताकतें परेशान हैं। उन्होंने जो दिशा निर्धारित की थी, स्त्रियों ने उसका अतिक्रमण कर लिया है। अब वे व्यक्तित्व विकास के उस मॉडल से बाहर आ चुकी हैं जिसमें उनसे उम्मीद की जाती थी कि वे शिक्षित होकर अध्यापिका बनें और आत्मनिर्भर हों। ये उनके विकास का सांचा था। समझदार (?) बौद्धिक वर्ग आज भी इसी सांचे को सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित करने पर तुला हुआ है और अपनी बेटियों व पत्नियों के लिए टीचर व प्रोफेसर के पद की प्राथमिक आकांक्षा रखता है। परंतु स्त्री इस षड्यंत्र को खूब समझती है। वह अच्छी तरह जानती है कि एक अध्यापिका के रूप में उसे क्या करना होगा। मान-मर्यादा और सामाजिक-पारिवारिक उत्तरदायित्व के बहाने अंततः उसे पितृसत्ता का ही संरक्षक बना दिया जाएगा। उसके व्यक्तित्व को दो हिस्सों में बांटकर कमजोर कर दिया जाएगा, जिसकी परिणति अंततः एक पारंपरिक सांचे में ढली हुई मर्यादित, अनुशासित, परिश्रमी और शालीन स्त्री के रूप में होगी। हमारे देश की अध्यापिकाएँ माँ के व्यक्तित्व में ही सिमट कर ही रह जाती हैं और उन्हीं मूल्यों को सामाजिक स्तर पर जीने लग जाती हैं जिसे एक साधारण माँ परिवार के स्तर पर जीती आ रही है। पितृसत्ता का यह व्यापक दायरा स्त्री को मंजूर नहीं है। वह अपने लिए एक बड़ा आकाश रचना चाहती है, जहाँ वह तस्लीमा नसीरन बनने की आजादी पा सके; कल्पना चावला, शाहबानो, सुधा गोयल, शिवानी भटनागर, मधुमिता, मथुरा और नैना साहनी जैसा

व्यक्तित्व पा सके।

पिततृसत्ता का दांव–पेंच अत्यंत गहरा है। वह बदलते परिवेश के मुताबिक नई शक्तियों की रचना कर लेता है। सामंतवाद, जातिवाद, संप्रदायवाद, राष्ट्रवाद, संस्कृतिवाद, बाजारवाद और पूँजीवाद इसकी सबसे मजबूत भुजाएँ हैं। पितृसत्ता की ये भुजाएँ प्रकारांतर से स्त्री सशक्तीकरण की दिशा को अपने हित में प्रभावित करती आयी हैं। स्त्री का विकास उतना ही हुआ जितना इन भुजाओं के आगोश में रहते हुए स्पेस मिला। वर्तमान दौर में पितृसत्ता की ये समस्त भुजाएँ पूँजीवाद के नेतृत्व में अत्यंत ताकतवर हो चुकी हैं। स्त्री सशक्तीकरण की समस्त उपलब्धियाँ अंततः पूँजीवाद को प्राप्त हो रही हैं। स्त्री प्राणपन से अपने देश और समाज के लिए खुद को बेहतर बनाने का प्रयास कर रही है, किंतु विडंबना यह है कि उसके प्रत्येक प्रयास का लाभ केवल पूँजीवादी शक्तियों को हो रहा है। स्त्री भ्रमित है और चकित भी कि उसकी विकास यात्रा के दो सौ वर्षों का संघर्ष का क्या फल हुआ? उसकी समस्त उपलब्धियाँ कहाँ गईं, उसकी उपलब्धियों ने उसकी आत्मा को तृप्त क्यों नहीं किया? उसके रिश्तों में बिखराव कैसे और कहाँ से आ गया? आर्थिक स्तर पर मजबूत होकर वह किस स्तर पर कमजोर हो गई? इक्कीसवीं सदी के इस दौर में आखिर वह क्या करे कि सम्मान और प्यार का जीवन हासिल हो? ये तमाम प्रश्न स्त्री सशक्तीकरण की चुनौतियाँ हैं। इनसे गुजरे बगैर स्त्री सशक्तीकरण की दिशा तय नहीं की जा सकती। स्त्री जीवन के लिए समाज में सम्मानजनक और सुरक्षित स्थिति की इच्छा रखने वाले शोधार्थियों को इन प्रश्नों के आलोक में चिंतन व शोध करना चाहिए। 'सत्राची' के अंकों में ऐसे शोध को प्राथमिकता देने की योजना है। उम्मीद है, सत्राची के आगामी अंकों में पूँजीवाद और पितृसत्ता के परस्पर संबंध को समझाने वाले लेखों की उपस्थिति रहेगी।

– आनन्द बिहारी

भूमंडलीकरण के संदर्भ में बदलते सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य

❍ डॉ. गीतिका एस. तंवर[1]

संक्षिप्ति :

पिछले कुछ दशकों में बाजार भूमंडलीकरण की समूची प्रक्रिया की चालक शक्ति बनकर उभरा है। जहां सपने दिखाए ही नहीं बल्कि बेचे भी जाते हैं। यूं तो ऊपर से यह प्रतीत होता है कि भूमंडलीकरण का जन्म मानव कल्याण के लिए हुआ है किंतु यथार्थ यह है कि पूंजीपति प्रतिष्ठानों, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के मुनाफे के असंख्य जाल बिछे हुए हैं। विकसित एवं विकासशील देशों का बड़ा वर्ग उपभोक्तावाद के आकर्षण में फंसा हुआ है। इस समूची प्रक्रिया में उलझ कर व्यक्ति का जीवन मशीनी हो गया है। भूमंडलीकरण ने हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक- आत्मीय संबंधों पर सर्वाधिक चोट पहुंचाई है। सांस्कृतिक असहिष्णुता और वैचारिक कट्टरता भूमंडलीकरण की ही देन है। भूमंडलीकरण के दुष्प्रभावों को लेकर समस्त देशों का साहित्य चिंतित है। हिंदी साहित्यकारों ने भी भूमंडलीकरण के प्रभाव में लगातार बदलते मानवीय एवं सांस्कृतिक मूल्यों को अपनी रचनाओं में संवेदनशीलता एवं सच्चाई के साथ चित्रित किया है।

भूमंडलीकरण व्यापार विषयक नियमों की वैश्विक एकता के लिए लाई गई प्रक्रिया है, जो विश्व के व्यक्तियों, कंपनियों तथा विविध राष्ट्रों की सरकारों को एक ही व्यापार विषयक नियमावली में बांधने का कार्य करती है। यह आर्थिक परिवेश का अंतरराष्ट्रीय संजाल है, जिसके द्वारा विविध कंपनियों तथा राष्ट्रों का एकत्रीकरण होता है।

आधुनिक युग में भूमंडलीकरण और आर्थिक उदारीकरण ने भारतीय समाज को शक्तिशाली बनाया। इसने व्यापार प्रबंधन के नए द्वार खोल युवा पीढ़ी को व्यापार प्रबंधन में विशेषता हासिल करने के अवसर प्रदान किये, साथ ही बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने रोजगार के नए अवसर भी दिए। परिणाम यह हुआ कि वर्तमान सदी में एक नवीन वाद का जन्म हुआ, जिसे बाजार बाद और उपभोक्तावाद कहा गया। मूलतः भूमंडलीकरण एक ऐसी अवधारणा है, जो पूरे विश्व में एक ऐसी संस्कृति विकसित करे, जो पूरे भूमंडल को एक विश्व ग्राम में परिवर्तित कर समस्त मानव जाति का कल्याण करने के लिए तत्पर हो, परंतु वर्तमान में भूमंडलीकरण का आधार केवल बाजारवाद और उपभोक्तावाद है।

यूं तो ऊपर से यह प्रतीत होता है कि भूमंडलीकरण का जन्म मानव कल्याण एवं मानव हित के लिए हुआ

1. *डॉ. गीतिका एस. तंवर, हिंदी विभाग, चांगू काना ठाकुर, आर्ट्स, कॉमर्स एंड साइंस, कॉलेज (स्वायत्त), नवीन पनवेल*

है किंतु भीतरी तह में पूंजीवादी प्रतिष्ठानों, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के मुनाफे के असंख्य अदृश्य जाल बिछे हुए हैं।

पिछले तीन दशकों में बाजार भूमंडलीकरण की समूची प्रक्रिया की चालक शक्ति बनकर उभरा है। जहां सपने दिखाई ही नहीं जाते बल्कि बेच भी जाते हैं। इस समूची प्रक्रिया में उलझ कर व्यक्ति का जीवन यांत्रिक हो गया है तनाव, एकाकीपन, वृद्धावस्था का अकेलापन भूमंडलीकरण की ही देन है। भूमंडलीकरण ने हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक एवं आत्मीय संबंधों पर सर्वाधिक चोट पहुंचाई है। डॉ पुष्प पाल सिंह लिखते हैं– "भूमंडलीकरण के दुष्प्रभावों को लेकर समस्त देशों का साहित्य चिंतित है विशेषतः तीसरी दुनिया के विकसित राष्ट्रों के साहित्य में अमीरी गरीबी के बीच की बढ़ती खाई और मनुष्यता को छीजने की पीड़ा गहराई से अभिव्यक्त हुई है।"[1]

प्रस्तुत लेख में आधुनिक हिंदी साहित्य में चित्रित भूमंडलीकरण के दुष्परिणाम का चित्रण किया गया है।

बाजारवाद का असर हमारे जीवन के हर क्षेत्र में पड़ा है, पर सबसे ज्यादा हताहत हमारी संवेदनाएं ही हुई है। भूमंडलीकरण से उपजे बाजारवाद और मॉल संस्कृति का आकर्षण इतना अधिक लुभावना और मोहन है, कि हम भूल जाते हैं कि बाजार का एक ही लक्ष्य होता है– मुनाफा कमाना। बाजार केवल सिक्के की भाषा बोलता और सुनता है।

> "कुछ आवाजों में,
> सिर्फ सिक्के सुनाई देते हैं ।
> मैं उन पर यकीन नहीं करता,
> चाहे सचिन बोल रहे हों या अमिताभ या मनमोहन।"[2]

ब्रांड संस्कृति के आक्रमण ने हमारी प्राकृतिक वस्तुओं पर भी कब्जा कर लिया है और हम लालसाओं के बाजार में इनकी कीमत लगा रहे हैं।

> "आजकल बेखौफ हमारी सरहदें पार कर रहे हैं,
> दवा, दारू, दंत मंजन, लिपस्टिक, कोक, पेप्सी, बर्गर।
> पूरे बाजार में मची है अफरा तफरी।"[3]

उपभोक्ता संस्कृति ने इतने लुभावने बाजार लगा दिए हैं कि हर वर्ग उसकी ओर खिंचता चला जाता है। बाजार में व्यक्ति भीड़ में भी अकेला है। चकाचौंध भरे इस मायावी संसार में अजनबी। इसे कुंवर नारायण अपनी कविता 'बाजारों की तरफ भी' में व्यक्त करते हैं:

> "वैसे सच तो यह था मेरे लिए
> बाजार एक ऐसी जगह
> जहां मैंने हमेशा पाया है
> एक ऐसा अकेलापन वैसा मुझे
> बड़े-बड़े जंगलों में भी नहीं मिला।"[4]

आज के युग में वैश्वीकरण की आंधी इतनी तेजी से भारत में आई कि उसने हमारी संस्कृति के पैर ही उखाड़ दिए। भूमंडलीकरण ने हमारे सांस्कृतिक परिवेश को पूरी तरह से बदल डाला, जिससे हमारे जीवन मूल्यों में भी भारी बदलाव आया है। हम वैश्वीकरण के बहाव में बहते ही जा रहे हैं।

नई पीढ़ी पुरातन जीवन संदर्भों को नकार कर अपने लिए नए आदर्श स्थापित कर रही है। ऐश्वर्यपूर्ण जीवन की लालसा ने मानवीयता, आत्मीयता और नैतिकता को लुप्त कर मानव को आत्म केंद्रित बना दिया है।

ममता कालिया का उपन्यास 'दौड़' उपभोक्तावाद और भूमंडलीकरण की दर्दनाक कथा है। इस उपन्यास

के पात्र पवन, स्टेला और सघन हमारे आसपास के ही चरित्र है, जो आज के महानगरीय जीवन की भाग दौड़ का जीवन जीते उच्च मध्यवर्गीय परिवारों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

बच्चों के बेहतर भविष्य के लिए मां-बाप सारी सुविधाएं जुटाते हैं। उन्हें महंगी और ऊंची शिक्षा देकर सतरंगी दुनिया के सपने दिखाते हैं। पवन और सघन का पालन-पोषण भी इलाहाबाद शहर में भारतीय संस्कारों के बीच हुआ है।

पवन के एम.बी.ए.के अंतिम वर्ष में कैंपस द्वारा पहले इंटरव्यू में अहमदाबाद एल. पी.जी. यूनिट में प्रशिक्षु सहायक मैनेजर के लिए चुना जाता है। वह अहमदाबाद जाने की बात जब घर में बताता है, तो मां-बाप को यह पसंद नहीं आता। वे चाहते हैं कि पवन वही उनके पास रहकर नौकरी करे, परंतु पवन उनसे कहता है, यहां मेरे लायक सर्विस कहां? यह तो बेरोजगारों का शहर है। ज्यादा से ज्यादा नूरानी तेल की मार्केटिंग मिल जाएगी।"[5]

मां पिताजी समझ गए बेटा बड़े शहर में बसना चाहता है। पिताजी पवन से कहते हैं कि तुम दिल्ली आ जाओ दिल्ली यहां से ज्यादा दूर नहीं। कम से कम हम तुम्हें देख तो लेंगे। यहां या फिर कोलकाता आ जाओ वह भी तो महानगर है। लेकिन पवन को जल्दी तरक्की, पैसे का भूत सवार है। वह कहता है, "पापा मेरे लिए शहर महत्वपूर्ण नहीं है, करियर है। अब कोलकाता को ही लीजिए, कहने को महानगर है पर मार्केटिंग की दृष्टि से एकदम लद्धड़। कोलकाता में प्रोड्यूसर्स का मार्केट है, कंज्यूमर्स का नहीं। मैं ऐसे शहर में रहना चाहता हूं, जहां कल्चर हो ना हो, कंज्यूमर कल्चर जरूर हो। मुझे संस्कृति नहीं उपभोक्ता संस्कृति चाहिए। तभी मैं कामयाब रहूंगा।"[6]

पवन के विचार आज की युवा पीढ़ी के विचार हैं। आज सभी कामयाबी के पीछे पड़े हैं। इस 'दौड़' के पीछे सुख सुविधाओं को पाने की ललक रहती है। परिवार, मनोरंजन, नाते-रिश्तों के लिए कोई समय नहीं। बच्चों के सुरक्षित भविष्य के लिए तैयार कर हर घर परिवार के मन-आप स्वयं एकदम असुरक्षित जीवन जीने पर मजबूर हो जाते हैं। पवन परिवार वालों की मर्जी के बिना स्टेला नमक युवती से अपनी शादी तय करता है। वह अपनी मां को समझता है कि गुजरात में शादी तय होने के बाद लड़का लड़की एक साथ रहते हैं यानी की लड़की महीने भर बिना विवाह किये ससुराल में रहती है। जिससे लड़का लड़की एक दूसरे के तौर तरीके समझ जाते हैं और उसके बाद ही शादी करते हैं। यहां हमें सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन होता दिखाई दे रहा है। शादी के बाद भी दोनों को गृहस्थी में रमने का समय नहीं है। पवन चेन्नई अपनी नौकरी के लिए चला जाता है, तो पत्नी अपनी तरक्की के लिए अहमदाबाद में रहने का निर्णय लेती है। भूमंडलीकरण से प्रभावित इस दुनिया में मैं, मेरा जीवन, मेरी तरक्की इससे परे जाकर रिश्तो की अहमियत को पहचान पाने का अभाव इस पीढ़ी में स्पष्टता से दिखाई देता है। ममता कालिया का 'दौड़' उपन्यास आज के मनुष्य की कहानी है, जो बाजार के दबाव तनाव तथा अंधी दौड़ में नष्ट होते मनुष्य और मनुष्यता को उजागर करती है।

स्वयं प्रकाश जी ने अपने उपन्यास 'ईंधन' के द्वारा बाजारवाद और उपभोक्तावाद के अंतहीन प्रसार से होने वाली विसंगतियों को रचनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है।

यह उपन्यास रोहित और स्निग्धा के दांपत्य जीवन के बिखराव तनाव और द्वंद्व की कथा है, जो भूमंडलीकरण के कारण है। आर्थिक स्थिति को मजबूत करने की तमन्ना और परिवर्तित होती स्थितियों में रोहित बहता ही चला जाता है। परिणामस्वरूप पत्नी और बेटे निखिल को वक्त नहीं दे पाता और संबंधों में दरार आने लगती है। बेटे निखिल की अनपेक्षित मौत के बाद तो दोनों पति-पत्नी अलग ही रहने लगते हैं। जीवन में क्या खोया पाया का गुणा भाग जब रोहित करता है, तो अंततः उसकी निरर्थकता का अनुभव करता है। "मेरा ध्यान पैसा कमाने और वस्तुएं जुटाने में लगा रहा। मैं उपलब्धियों की मीनार पर खड़ा संभावनाओं के उस पहाड़ पर निगाहें जमाए रहा, जो था तो न जाने कितनी दूर, लेकिन सामने नजर आ रहा था और जिस पर मुझे फतह हासिल

करनी थी। उस दलदल को मैंने गंभीरता पूर्वक नहीं लिया जो मेरे कदमों के नीचे बनती जा रही थी।"[7]

लेखक स्वयं प्रकाश ने उपन्यास के अंत में दोनों को इस उपभोक्तावादी संस्कृति और अंधी दौड़ से निकलकर नई शुरुआत करते दर्शाया है। भौतिक सुख और स्टेट्स की लालसा में हम इस मायावी दुनिया में धंसते ही जा रहे हैं। इस उपन्यास में रोहित के माध्यम से इसकी अभिव्यक्ति की गई है।

"मुझे यह बात किसी भी तरह नहीं जंचती थी कि अगर मैंने वुडलैंड के जूते नहीं पहने, पीटर इंग्लैंड की कमीज नहीं पहनी और टाइटन की घड़ी नहीं बांधी, तो मैं कुछ कम आदमी हूं, या हो जाऊंगा। मैं समझ नहीं पता था कि क्यों मुफ्त में अपने चश्मे पर रेबन, शर्ट पर नाइके या एडीडास बरमूडास पर रेंगलर या मार्क एंड स्पेंसर के नाम का बिल्ला चिपकाए घूमूं। इंसान की कदर उसके गुणों के कारण होती है या उन वस्तुओं के कारण जिनका वह इस्तेमाल करता है।[8]

निष्कर्ष :

हिंदी साहित्य में भूमंडलीकरण के प्रभाव में लगातार बदलते मानवीय एवं सांस्कृतिक मूल्यों को चित्रित किया गया है। आज सभी विकसित एवं विकासशील देशों का बड़ा वर्ग उपभोक्तावाद के आकर्षण में भ्रमित है। व्यक्ति प्रतिष्ठा, लालसा, भौतिक चकाचौंध के पीछे दौड़ते हुए संवेदनहीन और एकाकी होता जा रहा है। भूमंडलीकरण से उत्पन्न विभिन्न स्थितियों एवं संकटों का सामना हर इंसान कर रहा है। यही चिंतन साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में संवेदनशीलता एवं सच्चाई से व्यक्त किया है।

संदर्भ :

1. डॉ. पुष्प पाल सिंह, भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास, पृ. 73
2. दास विनोद, कविता का वैभव, पृ. 31
3. दास विनोद, कविता का वैभव, पृ. 33
4. कुंवर नारायण प्रतिनिधि कविताएं, पुरुषोत्तम दास अग्रवाल (संपादक) पृ. 185
5. ममता कालिया, दौड़, पृ. 11
6. ममता कालिया, दौड़, पृ. 40-41
7. स्वयं प्रकाश, ईंधन, पृ. 210-211
8. स्वयं प्रकाश, ईंधन, पृ. 46

❑❑❑

दलित आत्मकथा 'नागफनी' में प्रायोगिक द्विभाषिकता का अनुशीलन

○ प्रा.राजेन्द्र ज्ञानदेव ननावरे[1]

प्रस्तावना :

भारत में वर्ण तथा जाति व्यवस्था प्रस्थापित है। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि इन चार वर्णों के अनुरूप सामाजिक व्यवस्था का संचरण हुआ है। शूद्रों को चौथे चरण में सबसे निम्न पायदान में स्थान दिया गया है। सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों की दृष्टि से शूद्र पिछड़ा है। अपितु जिन्हें पिछड़ने के लिए मजबूर एवं असहाय किया गया है, वह समग्र पिछड़ी जातियाँ दलित हैं। आरंभ में दार्शनिक श्रीमती एनी बेसेंट जीने हाशिए का समाज, शोषित, पीड़ितों के लिए 'डिप्रेस्ड' शब्द का प्रयोग किया गया था। दलित चिंतक माता प्रसाद लिखित ग्रंथ 'दलित जातियों का दस्तावेज' में दलित शब्द के विभिन्न अर्थ उद्धृत है– "दलित = दल+त–टूटा हुआ, कटा हुआ, फैला हुआ। दल् =चूर-चूर करना, फाड़ देना। दलित = डाला गया, मर्दित, पीसा गया, विनष्ट किया गया। मानक अंग्रेजी शब्दकोश में दलित शब्द के लिए 'डिप्रेस्ड' शब्द दिया गया है जिसका अर्थ दबाना, नीचे करना, झुकाना, विनत करना, नीचे करना, धीमा करना, मलामत करना, दिल तोड़ना है।"[1] विद्वान माता प्रसाद सामाजिक व्यवस्था की दृष्टि से दलित वर्ग का अर्थ प्रतिपादित करते है– "दलित वर्ग का अर्थ प्राय: नीची जातियों के अछूत वर्ग से लगाया जाता है। किंतु दलित वर्ग का अर्थ अस्पृश्य वर्ग ही नहीं अपितु सामाजिक रूप से अविकसित, पीड़ित, शोषित निम्न जातियों के वर्गों की भी गणना दलित में होती है।"[2] अत: दार्शनिक माता प्रसाद जीने दलित जातियों का वर्गीकरण किया है– "1. अनुसूचित जातियाँ, 2. अनुसूचित जनजातियाँ, 3. भूतपूर्व अपराधकर्मी जातियाँ और घुमंतू जातियाँ, 4. अत्यधिक पिछड़ी जातियाँ और 5. पिछड़ी जातियाँ"[3] आदि।

उद्देश्य : दलित आत्मकथाओं में स्थित द्विभाषिकता और बहुभाषिकता के भाषाई प्रयोग का अनुशीलन करते हुए व्यक्तिगत भाषा और भाषाई सामाजिक समूहों की भाषाओं में स्थित भाषाई वर्तन व्यवहार को परिचित कराना मेरे शोध निबंध का उद्देश्य है।

बीज शब्द : वर्ण, जाति, दलित, आत्मकथा, सामाजिकता, सामाजिक समूह, समाजभाषाविज्ञान, द्विभाषिकता, बहुभाषिकता, भाषाई वर्तन व्यवहार आदि।

रूपनारायण सोनकर का परिचय : दलित आत्मकथाकार रूपनारायण सोनकर का जन्म सन् 1962,

1. आमदार शशिकांत शिंदे महाविद्यालय, मेढ़ा, तहसील. जावली, जि. सातारा, (महाराष्ट्र); दूरभाष : 9834727404

ईसवी में उत्तर प्रदेश, जिला फतेहपुर के तहसील बिंदकी में स्थित गाँव नसेनियाँ में हुआ। शिक्षा विधि स्नातक तक इलाहबाद विश्वविद्यालय में हुई। उनके सत्ताईस नाटक, दो हास्य-व्यंग्य काव्य संकलन, दो कहानी संग्रह और आत्मकथा प्रकाशित है। उनके 'एक दलित डिप्टी कलेक्टर', 'समाज द्रोही', 'खल-छल नीति' और 'महानायक और छायावती' आदि चर्चित नाटक और 'नागफनी' यह उनकी दलित आत्मकथा है। उन्हें डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय सम्मान हिंदी गौरव, नाट्य रत्न और साहित्य महोपाध्याय से सम्मानित किया गया है।

नागफनी (दलित आत्मकथा) : दलित आत्मकथाकार रूपनारायण सोनकर द्वारा लिखित 'नागफनी' सन् 2007, ईसवी में 'शिल्पायन' में प्रकाशित 142 पृष्ठों की दलित आत्मकथा है।

दलित आत्मकथा 'नागफनी' में भाषाई समाज : द्विभाषिकता और बहुभाषिकता

'समाज भाषाविज्ञान' में भाषा संपर्क प्रक्रिया के भाषाई वर्तन व्यवहार में बोली जाने वाली भाषाओं का विश्लेषण करने वाली द्विभाषिकता और बहुभाषिकता यह अवधारणा हैं। विद्वान हॉगेन ने द्विभाषिकता की परिभाषा को निर्देशित किया है- "दो भाषाओं के ज्ञान की स्थिति द्विभाषिक है।"[4] भाषाई प्रायोगिकता के स्तर पर द्विभाषिकता का अनुशीलन करते हुए वाइनराइख अवलोकित करते है- "दो भाषाओं का विकल्प से एक के बाद एक प्रयोग की स्थिति ही द्विभाषिकता है।"[5] दो भाषाएँ अथवा बहुभाषाएँ जानने वाला व्यक्ति, विशेष क्षेत्र, भूप्रदेश या देश के भाषाई समाज भाषाई वर्तन व्यवहार करते हुए भाषाई सामाजिक समूहों का संपर्क व्यवहार द्विभाषिकता या बहुभाषिकता का होता है। दो भाषाओं से अवगत होनेवाला भाषाई सामाजिक समुदाय का व्यक्ति भाषाई संपर्क व्यवहार करता है। उन दो भाषाओं में से किसी एक विशिष्ट भाषा पर उस व्यक्ति का प्रभाव, सामर्थ्य और प्रबलता होती है। वह भाषा उसकी मातृभाषा होती है। साधारणत: उस व्यक्ति के प्राप्त ज्ञान के आधार पर ज्ञात दूसरी भाषा कार्य उद्देश्यों के लिए प्रसंगों के अनुरूप बहुचर्चित भाषा संपर्क में प्रयोग करती है। उन्हीं उच्चरित भाषाओं में से प्रत्येक भाषा का कार्यक्षेत्र यह विभाजित करते हुए लिया जाता है। घर और स्वसमाज और ज्ञात भाषाई सामाजिक समूहों में मातृभाषा में संचरण या वर्तन व्यवहार होता है। अत: व्यक्ति विशेष के मातृभाषा से अनभिज्ञ भाषाई सामाजिक समूहों में आवश्यकता के अनुसार अन्य भाषा ऐसा विभाजन होता है। इसी आधार पर इस द्विभाषाई भाषा स्वरूप का भाषाई सामाजिक समूहों के सामाजिक स्तर के अनुसार अध्ययन किया जा सकता है। इस द्विभाषाई अवधारणा के अनुरूप ही 'समाजभाषाविज्ञान' में और एक संकल्पना प्रस्तुत की जाती है। उसे बहुभाषावाद कहते हैं। दो या दो से अधिक भाषाओं का प्रयोग बहुभाषी करता है। ब्लूम फील्ड ने बहुभाषिकता की परिभाषा अंकित की है- "बहुभाषिकता की स्थिति तब पैदा होती है जब व्यक्ति किसी ऐसे समाज में रहता है जो उसकी मातृभाषा से अलग भाषा बोलता है और उस समाज में रहते हुए वह उस अन्य भाषा में इतना पारंगत हो जाता है कि उस भाषा का प्रयोग मातृभाषा की तरह कर सकता है।"[6] किसी व्यक्ति या देश के भाषा संपर्क व्यवहार में तीन या तीन से अधिक भाषाओं का प्रयोग किया जाता है, तब ऐसे भाषा संपर्क व्यवहार को बहुभाषावाद कहा जाता हैं।

दलित आत्मकथा के भाषाई सामाजिक समूहों की इन अवधारणाओं के अनुसार विचारक माता प्रसाद के वर्गीकरण के अनुरूप यह भाषाई समाज परिवार और स्वसमाज में मातृभाषा का प्रयोग करते हैद्य हिंदी भाषा वर्गीकरण में उद्धृत हिंदी भाषा की पाँच उपभाषाएँ और उन उपभाषाओं के अंतर्गत बोलियाँ अंकित की है। वह निम्न है-

"1. पूर्वी हिंदी : बघेली, छत्तीसगढ़ी, अवधी आदि।
2. पश्चिमी हिंदी : ब्रजभाषा, खड़ी बोली, बुन्देलखंडी, कन्नौजी बंगारू आदि।
3. बिहारी हिंदी : मैथिलि, मगही, भोजपुरी आदि।
4. राजस्थानी हिंदी : मालवी, मेवाती, मारवाड़ी, जयपुरी आदि।
5. पहाड़ी हिंदी में कुमाउनी, गढ़वाली आदि।"[7]

यह भाषाई परिवार और भाषाई सामाजिक समूह मातृभाषा का और भाषा संपर्क व्यवहार में प्रसंग के अनुरूप हिंदी का उपयोग करते हैं। "भारत जैसे बहुभाषी देश में ऐसे द्विभाषी या बहुभाषी समाजों के दृश्य नए नहीं हैं। शिक्षा में भाषा की शिक्षा पर जोर देने से शिक्षित समाज निर्विवाद रूप से बहुभाषी प्रतीत होता है।"[8] दलित लेखक रूपनारायण सोनकर ने दलित भाषाई सामाजिक समूहों के भाषाई वर्तन व्यवहार का अनुशीलन किया गया है। इस प्रमाण के अनूरूप रूपनारायण सोनकर के शिक्षित होने के उपरांत उन्होंने भाषाई रचना की है। अपितु इस भाषाई रचना के प्रधानता के सदृश मानक हिंदी, गैर-मानक हिंदी, हिंदी शब्द या वाक्यांश और अंग्रेजी के शब्द विभिन्न भाषाई सामाजिक समूहों के संपर्क में आने वाले लोगों की भाषाएँ 'नागफनी' आत्मकथा में रेखांकित की गई है। यह भाषा भले ही आत्मकथाकार को ज्ञात हो या नहीं हो लेकिन आत्मकथा में अभिव्यक्त हुई है। जब 'नागफनी' में भाषाई सामाजिक समूहों का द्विभाषावाद और बहुभाषावाद का विचार करते हुए विवेक की आवश्यकता है। तब किसी एक समाज में एक से अधिक भाषाएँ विद्यमान होती है और उनका उपयोग किया जाता हो, तो असाधारण संदर्भों में अधिक वह किस भाषा का उपयोग करता है, इसकी यहाँ हम चर्चा कर सकते हैं।

दलित आत्मकथा 'नागफनी' में भाषाई सामाजिक समूह यह द्विभाषी तथा बहुभाषी समाज हैं। साधारणतः वह एक से अधिक भाषाओं का प्रयोग करते हैं। यथार्थ रूप में इन समग्र भाषाओं का सटीक ज्ञान हो भी सकता है और नहीं भी, यह उन व्यक्तियों के ज्ञान पर निर्भर करता है। 'नागफनी' में कुछ भाषाई सामाजिक समूहों को उनकी बोली के अनुसार प्रारंभ में शिक्षा प्राप्त करने हेतु अन्य भाषाओं का ज्ञान उन्हें प्राप्त होता हैं और उन ज्ञात भाषाओं के आधार पर मातृभाषा के साथ-साथ अन्य भाषाओं के कुछ शब्द, वाक्य या प्रोक्ति का बोलते समय प्रयोग करते है। विशेष रूप से अंग्रेजी शब्द, वाक्यांशों की प्रायोगिकता प्रमुख रहती है। दलित चिंतक "रूपनारायण सोनकर"[9] के दलित आत्मकथा 'नागफनी' में स्थित द्विभाषिकता, बहुभाषिकता और विभिन्न भाषाई सामाजिक समूहों के भाषाई वर्तन व्यवहार शब्द, वाक्य एवं प्रोक्ति को प्रतिपादित किया गया है- 'आई.इ.एस. '(पृ. 100), 'कोचिंग' (पृ. 100), "What qualities must be in an Administrator."(पृ. 100), "All of the first an Administrator must be honest, strict and smart."(पृ. 100), "I mean to say that all the schemes of the Government must be emplemented by the administrator honesty, strictly and boldly which are beneficiaries to the Down - trodden people, If the Administrator is strict and smart, his sub-ordinates will follow him."(पृ. 101), 'हॉस्टल' (पृ.101), 'पी.सी.एस.'(पृ. 101), 'अलाइड' (पृ. 101), 'सब रजिस्ट्रार' (पृ. 101), 'इंटरव्यू' (पृ.101), 'बोर्ड' (पृ.101), 'कंडीडेट' (पृ. 102), 'प्रेजेंस ऑफ माइंड' (पृ. 102), 'आई.क्यू.' (पृ. 102), 'सलेक्शन'(पृ. 102), 'रिजर्व कैटेगरी'(पृ. 102), 'सेलेक्ट'(पृ. 102), 'पोस्टिंग'(पृ. 102), "तुम इतनी जल्दी इंटरव्यू देकर क्यों निकल आए। चेयरमैन और मैम्बरों से और प्रश्न पूछने को कहते।"[10] "मुझे बहुत कॉन्फिडेंस था।"[11], "भाभी जी, आप तो इलैक्ट्रा वर्ल्ड में परसों विराट कवि सम्मेलन करवा रही हैं, लेकिन मेरे पति को आपने आमंत्रित नहीं किया है।"[12], "वी.पी. सिंहजी का उस दिन 'डायलिसिस' था। उन्होंने ऑल इंडिया इंस्टिट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज से डायलिसिस कराकर कार द्वारा अपने बंगले में प्रवेश कियाद्य कोठी की लॉन में कार्यक्रम के लिए साहित्यकार व विशिष्ट अतिथिगण मौजूद थे।"[13], आदि में इन वाक्यों में कही अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया है।

दलित आत्मकथा 'नागफनी' में रूपनारायण सोनकर जीने गोष्ठी में दो कविताएँ प्रस्तुत की थी। वह निम्न है-

1. "नहीं चाहता एटम बम बनकर
   दुनिया को दहलाऊँ
   नहीं चाहता ब्रह्मा बनकर.....

......तिरंगे झंडे में लिपटाया जाऊँ"[14]

2. "राजा साहब जैसे पी.एम.
कभी-कभी होते हैं
जो आते हैं एक बार धरती पर
अपने कार्यों के बल पर.........
......हिन्दुस्तान को सबसे आगे ले जाएँगे।"[15]

दलित चिंतक रूपनारायण सोनकर जीने हिंदू त्यौहार 'होली' के दिन सवर्ण भाषाई सामाजिक समूहों के लोगों ने दलित जाति समूहों के लोगों के साथ किए ढीठ तथा अनिष्ट भाषाई व्यवहार को अंकित किया है। सामान्यतया अनिष्ट, अमंगल एवं अवांछित सवर्ण और दलितों के भाषाई व्यवहार को अधोरेखांकित किया है-

"होली का बल्ला तरे-तरे, चमारिन चो ....परे, परे"[16]
"होली का बल्ला तरे-तरे"
खटिकिनिया चो-परे परे"[17]

रूपनारायण सोनकर जीने हरिशंकर अवस्थी, शिवभजन अवस्थी और सभी नौजवान लड़के जो होली के समय चिल्लाते हुए गालियाँ दे रहे थे, उन संबोधित गलियों को निर्देशित किया है-

"होली का बल्ला तरे-तरे
पासिनिया चो-परे परे"[18]

"होली का बल्ला तरे-तरे
भंगनिया चो-परे-परे"[19]

"बुरा न मानो होली है।
बामन का ल.. पसेरी है।
दलित औरतों की बारी है।"[20]

दलितों द्वारा हुए अनिष्ट भाषाई वर्तन व्यवहार को भी रूपनारायण सोनकर ने अंकित किया है-

"होली का बल्ला तरे-तरे
पंडिताइन चो.... परे परे"[21]

विचारक रूपनारायण सोनकर जीने 'नागफनी' दलित आत्मकथा में कुर्मी और यादव भाषाई सामाजिक समूह द्वारा गाए लोकगीत को प्रतिपादित किया है-

"त्यौहार है वही
लेकिन बदल गए हैं
मनाने के ढंग
मानव और दानव में
छिड़ गई है जंग.....
....उनकी रोशनी हर जगह फैलेगी"[22]

इसी तरह चिंतक रूपनारायण सोनकर जी ने दलित आत्मकथा में प्रायोगिक द्विभाषिकता, बहुभाषिकता, व्यक्तिगत बोली एवं सवर्ण-दलित भाषाई वर्तन व्यवहार को निर्दिष्ट किया है।

निष्कर्ष :

इसी तरह भाषाई सामाजिक समूहों के भाषाई रूप बनने लगते हैं। अतः भाषा की दृढ़ता भिन्न प्रसंगों के

अनुरूप होती है। यह बहुभाषाई सामाजिक समूह भाषाई वर्तन व्यवहार में विभिन्न भाषाओं का प्रयोग कैसे करने लगे, इसका भी नियमित गहन अध्ययन किया चिंतन योग्य हैं। इन भाषाई सामाजिक समूहों में धीरे-धीरे अन्य भाषाओं की पद्धति भी विकसित हो जाती है। तब यह भाषाई सामाजिक समूह उन्हीं भाषा के भाषाईयों के साथ संपर्क प्रस्थापित करते हुए उस भाषाईयों की भाषा में बोलने लगते हैं। घर, परिवार और रिश्तेदारों के वर्तुल के संदर्भ में मातृभाषा का प्रयोग करते हैं। व्यावसायिक, शिक्षा, नौकरी हेतु अन्य भाषाईयों के साथ जो संबंध आता है। उस स्थिति के अनुरूप उस समय उन्हें अपनी भाषा में परिवर्तन करना पड़ता है। यह सब अनुसूचित जाति शिक्षित, व्यापार- व्यावसायिक, नौकरी आदि करनेवाला भाषाई सामाजिक समूह व्यापार, नौकरी, पेट भरने हेतु समग्र भारत में देशाटन करते है। तभी वह जिन क्षेत्रों में जाते है, उसी क्षेत्र की गैर-मानक भाषा बोलते रहते है। इस भाषा में ही दलित आत्मकथा के अनुसूचित जाति, व्यापार-व्यवसाय, नौकरी और शिक्षित भाषाई सामाजिक समूहों का भाषाई व्यवहार निर्देशित हुआ है। वह अपनी भाषा बोलता है यदि उसी क्षेत्र की संपर्क व्यवहार की भाषा और कभी किसी अन्य भाषा से संपर्क में आ जाए तो संपर्क में आई भाषा बोलता है। इसके आधार से भी दलित आत्मकथा 'नागफनी' के अनुसूचित जाति, शिक्षित, व्यापार-व्यवसाय, नौकरी करनेवाले भाषाई सामाजिक समूहों के भाषाओं का स्वरूप द्विभाषाई एवं बहुभाषाई अवलोकित किया जा सकता है।

संदर्भ :

1. माता प्रसाद: 'उत्तराखंड सहित उत्तर प्रदेश की दलित जातियों का दस्तावेज', सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृ. 22
2. माता प्रसाद: 'उत्तराखंड सहित उत्तर प्रदेश की दलित जातियों का दस्तावेज', सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृ. 22
3. माता प्रसाद: 'उत्तराखंड सहित उत्तर प्रदेश की दलित जातियों का दस्तावेज', सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृ. 22
4. https://hi.m.wikipedia.org
5. https://www.sanchar.com
6. https://hi.m.wikipedia.org
7. https://testbook.com
8. काळे कल्याण: समाजभाषाविज्ञान: स्वरूप व व्याप्ती 'सामाजिक भाषाविज्ञान', संपा. प्रभाकर जोशी, सौ. चारुता गोखले, निराळी प्रकाशन, पुणे, प्रथम संस्करण, 1993, पृ. 18
9. रूपनारायण सोनकर: 'नागफनी', शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2007, पृ. 100 से 103
10. वही, पृ. 103
11. वही, पृ. 103
12. वही, पृ. 121
13. वही, पृ. 128
14. वही, पृ. 129
15. वही, पृ. 130
16. वही, पृ. 54
17. वही, पृ. 55
18. वही, पृ. 55
19. वही, पृ. 56

❑❑❑

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी साहित्य

❍ डॉ. अजित चुनिलाल चव्हान[1]

भूमिका :

भाषा केवल अभिव्यक्ति का साधन मात्र नहीं होती अपितु वह अपने देश काल की संस्कृति की आत्मा होती है। जीवनमात्र की वैचारिक अकुलाहट की अभिव्यक्ति भाषा ही है जो संप्रेषण हेतु नितांत आवश्यक मानी जाती है। अपने मनोभाव तथा संवेगों की अभिव्यक्ति हेतु प्रत्येक जीव कोई न कोई मार्ग खोज लेता है जिसके माध्यम से उसकी अवस्था, प्रकृति तथा प्रयोजन की सिद्धि हो सकती है। इस संचरण हेतु कुछ प्रतीक, चिह्न, संकेत तथा ध्वनियों आदि को सृष्टि के आरंभ से ही प्रयोग में लाया जाता रहा है। प्राकृतिक विकास क्रम में भाषा का विकास क्रम भी जुड़ा हुआ है और विकास प्रक्रिया का भाषा से सीधा-सीधा संबंध स्थापित रहता है। भाषा के अंतर्गत सुबोधता, सहजता, सरलता से युक्त भाषा संप्रेषण की अद्‌भुत क्षमता विद्यमान रहती है।

देश ही नहीं अपितु विश्व की प्रगति व उन्नति हेतु भाषा महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। 'वसुधैव कुटुंबकम्' प्राचीन काल से भारत का नीति वाक्य माना जाता रहा है। इसी परिप्रेक्ष्य में गणेश शंकर विद्यार्थी का यह कथन सारगर्भित प्रतीत होता है- "हिंदी भाषा भारतीय जीवन और उसकी संस्कृति की सर्वप्रथम रक्षिका है। वह उसके शील का दर्पण और उसके विकास का वैभव है । एक दिन हिंदी एशिया में ही नहीं विश्व के पंचायत में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी।"[1]

वैश्वीकरण और हिंदी भाषा :

भाषा न केवल विचारों का आदान-प्रदान है बल्कि समस्त एवं संपूर्ण परंपरा की संवाहिका भी होती है। किसी देश और राष्ट्र के स्वरूप तथा स्वाभिमान को अभिव्यक्ति देने का नाम भाषा है। भाषा मानव की सबसे बड़ी शक्ति है, क्योंकि ज्ञान-विज्ञान की समस्त शाखायें भी भाषा से ही जुड़ी हुई है। भाषा स्वाधीनता की सर्वोच्च पहचान है। भाषा मानव समाज की भागीरथी है। भाषा सोच, सभ्यता और संस्कृति का मूल मानी जाती है। किसी राष्ट्र की अस्मिता की द्योतक उसकी भाषा ही कहलाती है। भाषा संपूर्ण संस्कृति को स्पष्ट करने का दर्पण होती है। विश्व की किसी भी जाति का अस्तित्व बोध दुनिया को अपनी भाषा के द्वारा ही होता है। भाषा के अभाव में समाज का अस्तित्व संदिग्ध हो जायेगा और समाज के अभाव में भाषा का अस्तित्व असंभव है।

---

1. *सहयोगी प्राध्यापक, वसंतराव नाईक कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, शहादा*
मो. 9156583195 / 9422262445

भाषा को मानव उन्नति और संपूर्ण ज्ञान-विज्ञान का आधार माना जाता है। मानव की व्यक्तिगत उन्नति से लेकर सामाजिक एवं राष्ट्रीय उन्नति के मार्ग में भाषा द्वारा महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की जाती रही है। हिंदी भाषा द्वारा राष्ट्रभाषा की भूमिका को बखूबी निभाया गया है। आज भी वैश्वीकरण के समय में यह और अधिक सक्षम बनकर सबल भाषा के रूप में अपने दायित्वों का पूर्ण निर्वाह कर रही है। भाषा देश अथवा काल के किसी बिंदु पर निबद्ध नहीं हो सकती जिसके कारण ही भाषा को बहता नीर भी कहा जाता है। भाषा समय व स्थिति के अनुसार परिवर्तित होने की अदम्य क्षमता रखती है। हिंदी भाषा प्रारंभ से ही माँ भारती की राष्ट्रवाणी के रूप में अपनी प्रमुख भूमिका निभाती रही है।

राष्ट्रीय एकीकरण तथा जनभाषा की जीवंतता हिंदी की प्रमुख विशेषता मानी जाती है। हिंदी सबको जोड़ने वाली भाषा है सहिष्णुता, त्याग, सेवा तथा कर्म की भाषा भी यही है। भाषा लोक-मानस की उर्वर भूमि में अंकुरित, पल्लवित और विकसित होती है तथा लोक व्यवहार की प्रयोगशाला में उसका स्वरूप विश्व में संपर्क भाषा का रूप धारण कर संपूर्ण विश्व को एक सूत्र में बांधने का कार्य करता है।

वैश्वीकरण :

वैश्वीकरण जैसी नयी अर्थव्यवस्था विकसित देशों की ही देन है यह एक ऐसी विचारधारा है जिसके द्वारा सामाजिक संबंधों का विकास संभव हो पाता है। वर्तमान समय में वैश्वीकरण को सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के रूप में देखा जा रहा है। इंटरनेट, साइबर स्पेस, साइबर कैफे सभ्यता का इतिहास सूचना प्रौद्योगिकी और सूचना क्रांति का इस पर महत्त्वपूर्ण असर हुआ है। ज्ञान की अर्थव्यवस्था, भूगोल, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश व पूँजी की यही देन हैं।

"वैश्वीकरण वह शब्दावली है जिसका प्रयोग कुछ ऐसे आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, तकनीकी तथा राजनीतिक परिवर्तनों के जटिल समूह के लिए किया जा रहा है जिनके परिणामस्वरूप विश्व-स्तर पर दूर-दराज एवं विभिन्न स्थानों पर बैठे व्यक्तियों, समूहों, कंपनियों अथवा सरकारों के बीच अंतर्संबंध काफी तीव्रता से बढ़ता जा रहा है। वैश्वीकरण की धारणा समय तथा स्थान की सिकुड़न की तरफ भी संकेत करती है।"[2]

वैश्वीकरण के आर्थिक, सांस्कृतिक तथा तकनीकी पक्ष हैं। आज का समय बहुराष्ट्रीय संगठनों, राष्ट्र-राज्य और दिन-प्रतिदिन अपनी उपस्थिति दर्ज कराती अल्पसंख्यक अस्मिताओं के संघर्ष का समाज भी है अत: आज के समय में भाषाओं पर विचार करने हेतु ऐतिहासिक और समाज भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से काम चलाने वाला नहीं है। इन अस्मिताओं, राष्ट्रीयता और वैश्वीकरण की नई विचारधारा के संघर्ष के दायरे में भी भाषाओं की स्थिति पर भी विचार करना आवश्यक हो जाता है। वेलिज तथा स्मिथ के अनुसार- "वैश्वीकरण एक ऐसी ऐतिहासिक प्रक्रिया है जो मानवीय सामाजिक संगठन के स्थानीय सोपान के रूपांतर में मौलिक बदलाव है जो दूर-दराज के समुदायों को जोड़ता है तथा शक्ति संबंधों की पहुँच को क्षेत्रों तथा उपमहाद्वीपों के आर-पार फैला देता है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष (IMF) के अनुसार वैश्वीकरण का अर्थ है विश्व स्तर पर वस्तुएँ एवं सेवाओं का सीमा पार लेन-देन की मात्रा एवं भिन्नता में बढ़ोतरी।"[3]

वैश्वीकरण और हिंदी साहित्य :

साहित्य समाज का दर्पण है। भाषा को भावाभिव्यक्ति तथा संप्रेषण के एक सशक्त माध्यम के रूप में गरिमा प्रदान की जाती है क्योंकि किसी भी भाषा में लिखे ज्ञान के भंडार को साहित्य कहा जाता है। भाषा के अभाव में भाव उसी प्रकार प्रतीत होते हैं जैसे आत्मा के अभाव में शरीर। कहीं यह संकेतों के माध्यम से संप्रेषण को संभव करते हैं तो कहीं ध्वनि तथा लिपि चिह्नों की सहायता द्वारा यह संभव हो पाता है। भाषा में ही वह शक्ति है जो किसी साहित्यकार की गहन अनुभूति को साहित्य के रूप में अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

वर्तमान समय में विश्व में लगभग 6000 भाषाएँ हैं, जो प्रयोग में लायी जाती हैं जिनकी लिपि है और जिनका साहित्य भी है। लेकिन भाषा वैज्ञानिकों का मानना है कि भूमंडलीकरण अथवा वैश्वीकरण का अभियान और उसके साथ अंग्रेजी के प्रभुत्व का विस्तार इसी प्रकार चलता रहा तो अनेक भाषाएँ अपना प्रभुत्व खो चुकी होगी।

हिंदी विश्व के देशों में भारतीय संस्कृति को बनाए रखने हेतु मातृ भाषा या मूलभाषा ही नहीं, प्राण भाषा भी है जिसके अंतर्गत अनेक प्रकार से साहित्य रचना कार्य किया गया है । कुमार शुक्ल के अनुसार- "हिंदी हमारे लिए केवल भाषा ही नहीं, माँ का दूध है। कुछ इसी प्रकार उन कई विदेशी विद्वानों ने भी हिंदी से वैसा ही प्यार किया जैसे कोई बेटा अपनी माँ से करता है।"[4] हिंदी विश्वभर में निवास करने वाले भारतवासियों की सांस्कृतिक भाषा है, जिसकी लंबी ऐतिहासिक परंपरा है और यही हिंदी भाषा की शक्ति है जो विश्वभर में हो रहे हिंदी भाषा प्रचार-प्रसार का कारण भी है।

भारत से बहुत दूर मॉरिशस एक ऐसा देश है जहाँ की बहुसंख्यक जनता में हिंदी भाषा का साहित्य बहुतायत से प्रचारित-प्रसारित हो रहा है। भारतीय हिंदी भाषी मॉरिशस के हिंदी भाषा और साहित्य को कई दशक पूर्व ही अपने साहित्य का अंग स्वीकार कर चुके थे। मॉरिशस की बहुसंख्यक हिंदी जनता भारतीय मूल की है जिसके कारण उन्हें भारतीय संस्कृति व साहित्य से लगाव था। भारतीय भाषा, धर्म और संस्कृति से उनका प्रेम था। साहित्य के क्षेत्र में रामायण, रामचरितमानस, महाभारत, गीता, हनुमान चालीसा जैसी रचनाओं का बहुतायत से प्रचार-प्रसार किया। इस प्रकार के साहित्य के द्वारा सुख-दुख में दासता और विवशता में, पर्व और त्योहारों में इनका साथ देती थी। ये भोजपुरी और हिंदी भाषाएँ एक-दूसरे से जोड़ने व सुख-दुख में एक-दूसरे का साथ देने तथा धर्म ग्रंथों की कथाएँ सुनने और धर्म संस्कृति से जुड़े रहने की भाषाएँ बन गई। इस प्रकार इन भाषाओं ने मॉरिशस में प्रवासी मजदूरों को एक समाज के रूप में संगठित रखा।

सूरीनाम के हिंदुस्तानी लोगों की बोली, भाषा, खान-पान, धर्म, संस्कार, शादी-विवाह, काम-काज के आधार पर बोली जाने वाली बोली में संत तुलसीदास और संत कबीरदास की भाषा एवं विचार तथा भाव संस्कार दिखाई पड़ते हैं। हिंदी साहित्य द्वारा हिंदी के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया ।

"सन! 1935 तक 'हिंदुस्तानी' (1909), 'मॉरिशस आर्यपत्रिका' (1911), 'आर्यवीर' (1921), 'ओरियण्टल गजट (1912), 'मॉरिशस मित्र' (1924), 'सनातन धर्माक' (1933), आदि पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई तथा इन पत्रिकाओं में कविताएँ, कहानियाँ आदि के छपने से हिंदी साहित्य का विकास एवं प्रचार-प्रसार हुआ। इससे हिंदी भाषा का साहित्यिक रूप निर्मित होने लगा। जनवरी 1935 में हस्तलिखित मासिक पत्रिका 'दुर्गा' का शुभारंभ हुआ, जो सन् 1938 तक नियमित निकलती रही। यह मॉरिशस की हिंदी पत्रकारिता एवं हिंदी भाषा तथा साहित्य के विकास के लिए एक नयी क्रांति थी। 'दुर्गा' के इस महत्त्व का मूल्यांकन अभी होना है।"[5] अभिमन्यू अनत द्वारा मॉरिशस में रहकर अनेक कहानियों की रचना की गई। जैसे- टूटी प्रतिमा, धानी का दोस्त आदि। इसी प्रकार मॉरिशस में महिला कहानीकार के रूप में भानुमति नागदान का नाम प्रमुख रूप से साहित्य के उत्थान हेतु लिया जाता है। इस प्रकार अनेक साहित्यकारों के द्वारा हिंदी के उत्थान हेतु सराहनीय साहित्य की रचना समय-समय पर की गई तथा भविष्य में भी हिंदी के विकास में इस तरह के योगदान संभावित होते रहेंगे।

निष्कर्ष :

इस प्रकार हिंदी साहित्य का विकास विश्व के कोने-कोने में हुआ। वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी साहित्य अत्यंत समृद्ध साहित्य के रूप में माना जाता है तथा न केवल भारत बल्कि मॉरिशस, सूरीनाम, फिजी, इंडिनेशिया

आदि अनेक देशों में भारतीय अर्थात् हिंदी भाषा में रचित साहित्य को पढ़ने व समझने वाले लोगों के द्वारा हिंदी साहित्य दिन–प्रतिदिन अपना विस्तार कर रहा है जिससे संपूर्ण देश को भारतीयों के संगठित स्वरूप का परिचय प्राप्त होता है। इस प्रकार सृजनात्मक हिंदी साहित्य का मूल्यांकन करते हुए हिंदी के वैश्विक स्वरूप को ध्यान में रखना होगा। वर्तमान समय में हिंदी न केवल भारत की ही भाषा है बल्कि विश्व के अनेक देशों को एक सूत्र में बाँधने वाली वैश्विक हिंदी भाषा के रूप में साहित्य के विकास में अहम् भूमिका निभाने वाली प्रमुख भाषा है। विश्व की कोई भी भाषा और उसका साहित्य तभी कालजयी होते हैं, जब वह आमजन की एकजुटता को बढ़ाते तथा आकांक्षाओं की पूर्ति करते हैं।

संदर्भ :

1. पाटील, आनंद, हिंदी : विविध आयाम, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ. 176
2. मंजु, रानी, हिंदी का वैश्विक परिदृश्य, मानसरोवर प्रकाशन, नोएडा, 2017, पृ. 5
3. वही, पृ. 5.
4. वही, पृ. 28.
5. वही, पृ. 135.

❑❑❑

साहित्य और समाज

❍ डॉ. अमित एल. टंडेल[1]

संक्षिप्ति :

साहित्य को समाज का दर्पण कहा है क्योंकि साहित्य में हमारे ही समाज की विभिन्न समस्याओं पर प्रकाश डाला जाता हैं। यानी साहित्यकार अपने युग का प्रतिनिधि होता है। अतः वह अपनी भावनाओं को कभी प्रतीकों के माध्यम से, तो कभी पौराणिक ग्रंथो का आधार लेकर अपने विचार, भाव समाज के सामने रखते हैं। उपन्यासकार नरेन्द्र कोहलीजी ने भी रामकथा पर आधारित 'दीक्षा' उपन्यास के माध्यम से अपने विचार, अपने भाव व्यक्त किये हैं कि हमारे समाज में राम जैसे नेता भी हैं, जो बिना पक्षपात के न्याय करना जानता है, ऐसा नेता न तो धमकियों से डरता है, न किसी भी प्रकार की सत्ता का लोभ उसे ऐसा करने से रोक सकता हैं। जब हमारे समाज में ऐसा रक्षक होता है, तो देश का विकास होता है और देश की जनता अपने-आपको सुरक्षित महसूस करती है। पर हमारे समाज में इंद्र जैसा नेता भी है, जो अपनी सत्ता का, कुर्सी का, धन का गलत उपयोग करता है। यानी हमारे रक्षक ही भक्षक बन जाए, तो हमारे समाज की जनता, गरीब बेसहारा आदिवासी स्त्री की रक्षा कौन करेगा? हमारे समाज में गौतम मुनि जैसे सच्चरित्र, कर्तव्यनिष्ठ कुलपति भी हैं, तो मौकापरस्त, चापलूसी वृत्तिवाले आचार्य अमितलाभ जैसे उपकुलपति भी हैं, जो अपने फायदे के लिए पवित्र नारी पर भी कीचड़ उछाल सकता है। यानी नरेन्द्र कोहली लिखित 'दीक्षा' उपन्यास में हमारे समाज की वर्तमान समस्याओं पर प्रकाश डाला गया हैं।

प्रस्तावना :

हमारे समाज में आदिवासी और गरीब बच्चों के लिए सरकारी स्कूल और आश्रमों का निर्माण किया गया हैं, ताकि वे पढ़-लिखकर अपनी पहचान बना सकें; लेकिन अधिकतर आश्रमों में जवान लड़कियों का शारीरिक शोषण होता हैं और शोषण करनेवाले आश्रम का ट्रस्टी, नेता या उच्च पदाधिकारी ही होता हैं, पर ये गरीब घर की कन्याएं मौन रहती हैं, क्योंकि ऐसे अधिकारियों के विरुद्ध केस करने पर हमेशा लड़कियों को बदनामी के सिवा कुछ नहीं मिलता, ऊपर से आश्रम से भी निकाली जाती हैं और कोई हिम्मतवान लड़की अपनी बदनामी की चिंता किए बगैर ऐसे शोषक के विरुद्ध आवाज उठाती भी है तो उसकी आवाज को बंद कर दिया जाता

1. Dr. Amita L Tandel, Rofel Arts &Commerce college, Vapi(Gujarat)

है, क्योंकि शोषक अधिकतर अपनी सत्ता के जोर पर उच्च पदाधिकारीयों को कभी पैसे से, तो कभी अन्य कमजोरी को पकड़कर उसे अपने पक्ष में कर लेता है। 'दीक्षा' उपन्यास में भी कुछ ऐसी ही समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है।

मिथिला नगरी मे गौतम मुनि के आश्रम में सात दिवसीय सम्मेलन होनेवाला था। आश्रम के कुलपति गौतम मुनि ने बड़ी निष्ठा से हरेक जिम्मेदारी को संभाला और उनकी पत्नी अहल्या अपने दायित्व के प्रति पूर्णतः सजग थीं। आश्रम के संचालन में अकेला कुलपति कभी भी समर्थ नहीं होता; यद्यपि नाम केवल कुलपति का ही होता है। कुलपति की पत्नी आश्रम के दैनिक कार्यक्रम का अनिवार्य अंग तो होती ही हैं, ऐसे सम्मेलनों के अवसर पर उसका दायित्व और भी बढ़ जाता है। यज्ञों, गोष्ठियों, विचार वार्ताओं, प्रवचनों के कारण कुलपति तो अपने स्थान से हिल भी नहीं सकता। उनकी पत्नी आश्रमवासियों तथा मेहमानों का ध्यान रखती हैं और जरूरत पड़ी तो समारोह में उपस्थित भी होती हैं और अनिवार्य होने पर चर्चित समस्याओं पर अपना मत भी प्रकट करती है। सम्मेलनों की सफलता के लिए जरूरी है कि कुलपति में बुद्धि, तर्क, ज्ञान की पिपासा, सहिष्णुता एवं ईमानदारी हो, साथ ही यह भी आवश्यक है कि कुलपति की पत्नी बुद्धिमती, विदुषी, नम्र तथा व्यवहार कुशल हो। अहल्या भी अपने पति के हरेक कार्य में सहभागी बनती हैं। इस सम्मेलन में देवराज इन्द्र को भी आमंत्रित किया गया था। इन्द्र आकाशगामी विमान से आया था। उसके साथ अनेक अन्य विमान थे, जिनमें उसके सैनिक, सेवक तथा दासियाँ थीं। यानी इन्द्र धन, संपत्ति, सत्ता, शक्ति, मान-मर्यादा, पद इत्यादि की दृष्टि से सब पर भारी पड़ता था।

गौतम मुनि ने इन्द्र का स्वागत करते हुए कहा- 'देवराज ! हम आपके वैभव के अनुकूल आपका आतिथ्य नहीं कर सकते किंतु आशा है, आश्रम-भूमि जानकर, आप इन अभावों की ओर ध्यान नहीं देंगे।' पर इन्द्र का ध्यान गौतम मुनि की बातों पर न था, बल्कि गौतम मुनि की सुंदर पत्नी अहल्या पर ही था और सबके सामने उसने अहल्या से कहा- 'देवी अहल्या ! आप जैसी त्रैलोक्य सुंदरी के लिए यह अभावमय आश्रम तो अत्यंत कष्टदायक होगा ! मैं यहां से लौटकर आपके सुख के लिए कोई प्रयत्न करूंगा। तो अहल्या ने अत्यंत पीड़ित तथा अपमानित दृष्टि से उपालंभ सा देते हुए इंद्र से कहा- 'देवराज ! आश्रमवासी अपने धर्म का निर्वाह करते हैं। आश्रम के कुलपति की धर्मपत्नी के रूप में मिलने वाला सम्मान ही मेरा सुख वैभव है।'

इन्द्र के लिए इसी आश्रम में रहने की व्यवस्था की गई और आश्रम के नियम के विरुद्ध शराब की भी व्यवस्था की गई। पर उनका ध्यान सम्मेलन में कम और अहल्या पर ज्यादा था। गौतम ने सोचा था कि वे देवराज इन्द्र या महाराज सीरध्वज से अध्यक्षता के लिए कहेंगे। पर इन्द्र को सुबह में होनेवाले यज्ञ के सिवाय सारे सम्मेलन में कहीं भी नहीं देखा गया। उसे ज्ञान चर्चाओं में कोई रुचि नहीं थी, महाराज सीरध्वज हल्की सी अस्वस्थता के कारण विश्राम हेतु चले गए और रह गए केवल गौतम। अतः सारा काम अकेले ही करना पड़ता।

उपकुलपति आचार्य अमितलाभ थे, पर अमितलाभ हमेशा निंदा- चुगली करने की ताक पर रहता, और जिम्मेदारी से दूर भागता और गौतम मुनि के बारे में कहता- 'प्रत्येक काम स्वयं करेंगे, प्रत्येक स्थान पर स्वयं रहेंगे, प्रत्येक व्यक्ति से स्वयं बात करेंगे। किसी अन्य की क्षमता पर तो उनका विश्वास ही नहीं है। उनका बस चले तो आश्रम भर में झाड़ू भी वे स्वयं अपने हाथों ही लगाएं... 'ऐसे लोग हरेक देश और काल में पाए जाते हैं- 'जो ऊंचे आदर्शों तथा लक्ष्यों का आवरण ओढकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते रहते हैं, उनके लिए आश्रमों में ऐसे सम्मेलन ज्ञानोपार्जन का साधन न होकर, राजा मंत्रियों, श्रेष्ठियों अथवा अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों से संपर्क स्थापित करके लाभ पाना होता हैं। अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए कभी-कभी वे लोग राजाओं के दासों तक की चापलूसी करते हैं।' अतः कुलपति गौतम पर ही आश्रम की सारी जिम्मेदारी थी। अहिल्या को देखकर इंद्र विचलित हो गया था वह भूल गया कि वह यहां आमंत्रित होकर आया है और वह यह आश्रम बहुत ही पवित्र है और अहिल्या इस आश्रम के कुलपति की धर्मपत्नी है और अपने पति के प्रति पूर्णतया

निष्ठावान है। इंद्र यदि यह समझता है कि अहिल्या उसके रूप वैभव पद अथवा सत्ता से प्रभावित होकर उसके पास आ जाएगी तो यह उसकी भूल थी। अहिल्या अपने आप से उसके पास कभी नहीं आएगी, कभी नहीं क्योंकि वह पतिव्रता नारी थी।

आश्रम में विलास के वे साधन उपलब्ध नहीं थे जिसकी इंद्र को आदत थी फिर भी गौतम ने मदिरा की व्यवस्था कर दी थी। इन्द्र को ऐसे सम्मेलनों में आना अच्छा नहीं लगता था, पर आश्रमों से संबंध तोड़ भी नहीं सकता। आर्य संस्कृति के प्रचारक आश्रम के पोषक थे। इनका निमंत्रण अस्वीकार कर, इससे संबंध तोड़कर, इंद्र अपने शक्तियां क्षीण नहीं कर सकता।.... फिर इंद्र अपने मन से भी बाध्य था। आश्रमों में रहने वाली देव-बालाओं से भी सुंदर ऋषि कन्या और ऋषि-पत्नियां, दर्शन मात्र से इंद्र के उष्ण रक्त का संचार तीव्रतर कर देती थीं। इंद्र सब कुछ छोड़ सकता था, किंतु ऋषि-पत्नियों तथा ऋषि-बालाओं का आकर्षण नहीं छोड़ सकता था। यानी इन्द्र कामुक व्यक्ति था। इसलिए जब उसने अहल्या को देखा, तो उसका मन विचलित हो गया, किसी भी कार्य में उसका मन नहीं लगता, और वह कोई-न-कोई बहाना बनाकर आश्रम में ही आ जाता, और गौतम मुनि के घर का निरीक्षण करता रहता, कि कब अहल्या आश्रम में अकेली होती हैं और उसने जान भी लिया। अतः गौतम मुनि जब स्नान करने गये, तो उसके कुटीर में घुस गया, अहल्या ने अपने बचाव में बहुत प्रयास किया, चिल्लाई, अतः कुटीर के आसपास लोग एकत्र भी हो गये, पर कोई आगे बढ़कर अहल्या को न बचा सका, जब तक गौतम मुनि कुटिया तक पहुँचते, उससे पहले ही भीतर से द्वार खुला और इंद्र बाहर निकला -अस्त-व्यस्त वस्त्र और मुद्रा में। पर जाते-जाते कहता गया- 'पहले स्वयं बुला लिया और अब नाटक कर रही है....'। कहता हुआ वह जरा भी नहीं रुका। ऋषियों, तपस्वियों तथा आश्रमवासियों के सामने अपने विमान में बैठकर वहां से चला गया। उसने अहल्या के चरित्र पर उंगली उठायी थी, पर गौतम अपने पांच-छः साल के वैवाहिक जीवन से अहल्या को इतना पहचान ही गये थे कि, अहल्या का चरित्र इतना ऊँचा है कि वह किसी के पद, प्रतिष्ठा, सत्ता से विचलित नहीं हो सकती। पर अहल्या एक एक समाज भीरु नारी है और उस पर समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति ने उसके चरित्र पर उंगली उठायी थी, इसलिए वह डरती थी पर उसका पति गौतम उसे हिम्मत देता है और सबको सम्बोधित करके कहता है-

'दुष्ट देवराज ने मेरी पत्नी का अपमान किया है। इंद्र का यह अपराध अहल्या के विरुद्ध ही नहीं, मेरे विरुद्ध भी है। यह पवित्र नारी जाति का अपमान भी है, और आश्रमों की पवित्रता तथा ऋषि-समाज की दुर्बलता का उपहास भी है। यदि नीच इंद्र को इस अपराध का दंड नहीं दिया गया, तो पृथ्वी पर किसी भी स्त्री का सतीत्व सुरक्षित नहीं रहेगा, कोई ऋषि सम्मानित नहीं रहेगा, कोई आश्रम पवित्र नहीं रहेगा। तपस्वीगण ! आप सब प्रबुद्ध स्वतंत्र एवं न्यायपूर्ण बुद्धि से निर्णय लेने में समर्थ हैं। आपके सम्मुख मैं देवराज इंद्र पर दुश्चरित्र होने का अभियोग लगाकर आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप न्याय करें और इंद्र को देवराज, देव-संस्कृति के पूज्य तथा आर्य ऋषियों के संरक्षक के पद से पदच्युत कर दें ...।' इतना कहने पर भी वहां पर उपस्थित लोग वहां से चुपचाप खिसक गये; क्योंकि ये वे लोग हैं, जो अपना पल्ला बचाने के लिए तटस्थ, निर्विकार तथा उदासीन होने का अभिनय करते हैं। राह चलते मार्ग पर तमाशा देखने के लिए उत्सुक भीड़। जब तक तमाशा होता रहा, देखते रहे, और जैसे ही न्याय ने अपने पक्ष में कर्म करने की बारी आई, न्याय के पक्ष में, सच्चाई के पक्ष में बोलने की बारी आई तो, पल्ला झाड़कर, धीरे-धीरे वहां से बहाना करके खिसक गये, उस भीड़ में से कोई अहल्या को भ्रष्ट मानता था, तो कोई इन्द्र का मित्र था, कोई इन्द्र से भयभीत था, कोई इन्द्र से कुछ पाने का इच्छुक था। सिर्फ तीन व्यक्ति ही वहां पर रह गये- गौतम, अहल्या और उनका पुत्र शतानंद।

इतना ही नहीं उपकुलपति आचार्य अमितलाभ जैसे व्यक्ति ने अपना उल्लू सीधा करने के लिए, जले में घी छिड़कने का कार्य किया। उसने कहा - "यह आश्रम पूर्णतः भ्रष्ट हो चुका हैं। जिस आश्रम के कुलपति की धर्मपत्नी का चरित्र पतित हो, वहां अध्ययन-अध्यापन, ज्ञानार्जन-तपस्या, कुछ भी नहीं हो सकता। 'अहल्या

ने जब यह सारी बात सुनी, तो वह आत्महत्या करना चाहती है, पर गौतम उसका आत्मविश्वास बढ़ाता हुआ, उसे सांत्वना देता है और समझाता है– 'तुम मेरी धर्मपत्नी और पूर्णतः मेरे योग्य पत्नी हो। तुम पतित नहीं हो तुम्हें पतित कहने का साहस कोई नहीं कर सकता। तुम पूर्णतः शुद्ध, स्वच्छ और पवित्र हो।'

गौतम सीरध्वज के राज्य, मिथिला के प्रमुखतम आश्रम के कुलपति थे। वह अपने आपको सुरक्षित, सम्मानित और शक्तिशाली समझता थे। पर आज उनका सच्चाई से साक्षात्कार हुआ है कि तपस्या, चरित्र और ज्ञान की शक्ति सर्वोपरि नहीं होती; पद, धन और सत्ता की शक्ति ही सर्वोपरि थी। अहल्या निर्दोष है, फिर भी वह कुछ नहीं कर सकता। लेकिन तभी उनका मित्र ज्ञानप्रिय और उनकी पत्नी सदानीरा राजा सीरध्वज का संदेश लेकर आए कि राजा सीरध्वज एक नये आश्रम का निर्माण करना चाहते हैं, पर आश्रम के कुलपति सिर्फ और सिर्फ गौतम मुनि ही होंगे। पर शर्त यह थी कि उन्हें अहल्या का त्याग करना होगा। पर गौतम ने साफ मना कर दिया। परंतु अहल्या ने कहा कि 'उस दुष्ट इन्द्र से प्रतिशोध लेने का एक यही मार्ग हैं। अगर आप वहां नहीं गये तो इन्द्र बेदाग बच जाएगा। पाप करके भी वह सम्मानित और पूज्य रहेगा और हम पीड़ित और अपमानित। उस दुष्ट को दंडित करने के लिए आपको वहां जाना ही चाहिए और इससे शतानंद का भी भविष्य संवर जाएगा।' पर गौतम अहल्या को यहां अकेली कैसे छोड़ दें ? कहीं कोई दूसरा इन्द्र आ गया तो? पर अहल्या ने कहा – 'सीरध्वज के राज में ऐसी दुर्घटना की संभावना नहीं हैं। फिर भी, आप जनकपुर जाकर इस आश्रम की सुरक्षा की विशेष व्यवस्था करवा सकते हैं। मैं भरसक प्रयत्न करूंगी कि मैं जन–सामान्य के लिए अदृश्य बनी रहूँ, सावधान रहूँ, कुटिया के द्वार को मजबूत बनाऊँ, और मेरे पास कोई शस्त्र भी रखूंगी ताकि मैं अपनी स्व–रक्षा भी कर सकूँ।' और गौतम ने शतानंद को लेकर जाना स्वीकार कर लिया। सीरध्वज ने उनका स्वागत किया और गौतम को अपने नये आश्रम का कुलपति और आचार्य ज्ञानप्रिय को उपकुलपति घोषित किया। यज्ञ संपन्न होने के बाद गौतम ने उच्च स्वर में कहा– 'मैं आश्रम का कुलपति गौतम, इस पवित्र जल को हाथ में लेकर, आज देवराज इंद्र को श्राप देता हूं, अपनी दुश्चरित्रता के कारण, इंद्र देवराज होते हुए भी आज से आर्यावर्त में सम्मान्य तथा पूज्य नहीं होगा। उसे किसी यज्ञ, पूजा, ज्ञान–सम्मेलन अथवा किसी भी शुभ कार्य में आमंत्रित नहीं किया जाएगा। आज से देवोपासना में इन्द्र का कोई भाग नहीं होगा, उनकी पूजा नहीं होगी।' और मिथिला–नरेश सीरध्वज ने घोषणा की – 'जब तक कुलपति गौतम अपने पद की मर्यादा का पालन करेंगे, उनके शाप की रक्षा का दायित्व मुझ पर होगा।'... आज गौतम ने इन्द्र को दंडित किया था, यद्यपि उसके अपराध की तुलना में दंड बहुत कम था, किन्तु उसे दंडित तो किया ही गया। इस बात को भी पच्चीस साल बीत गये। उनका बेटा शतानंद अब मिथिला नगरी का राजपुरोहित बन गया, फिर भी अहल्या को बुलाने के लिए कोई नहीं आया। ये पच्चीस साल अहल्या ने कैसे गुजारे होंगे? उसकी तो हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

आज तक किसी सम्राट या राजकुमार को इतना साहस नहीं हुआ कि वह इस पतित नारी के द्वार पर जाए। स्वयं सीरध्वज भी यहां तक आने के लिए सहमत नहीं हुए। पर गुरु विश्वामित्र के साथ इस आश्रम में राम और लक्ष्मण आये। अहल्या को न्याय देने के लिए। राम ने अहल्या से कहा– 'मैं उन संपूर्ण लोगों की ओर से आपसे क्षमा याचना करता हूँ, जिन्होंने आपके साथ अपराध किया है, और प्रतिज्ञा करता हूं कि जीवन में जब कभी इंद्र से साक्षात्कार हुआ, तो उसे प्राण दंड दूंगा। मेरी वय अधिक नहीं, ज्ञान भी इतना नहीं, जितना इन ऋषियों, तपस्वियों–मुनियों और साधकों का है। मेरे सम्मुख तो अपना मार्ग भी स्पष्ट नहीं है। परंतु में अत्यंत चकित और पीड़ित हूँ। यह सत्य, उचित और न्याय को जानते हैं किंतु यह निष्क्रिय और जड़ हुए पड़े हैं। किस भय से ? आपने कहा है, देवी ! इन सबको युग–पुरुष की प्रतीक्षा है, जो इन्हें इस जड़ता से उबार नवजीवन दे सके; किंतु वह पुरुष मैं ही हूँ – कैसे कहा जा सकता है। पर हां ! मैं प्रयत्न करूंगा कि इस जड़ता को यथाशक्ति तोड़ूं। देवी ! मैं तो आज तक अपनी मां को ही बहुत पीड़ित मानता था, पर आपने तो उससे भी कहीं अधिक सहा है। पर अब तुम्हें कौशल्या के पुत्र राम का संरक्षण प्राप्त है। अब कोई भी जड़ चिंतक, ऋषि,

मुनि, पुरोहित, ब्राह्मण, समाज नियंता तुम्हें सामाजिक और नैतिक दृष्टि से अपराधी नहीं ठहरायेगा। 'इस प्रकार आश्वासन और हिम्मत दी और पुनर्वसु से कहकर आसपास के तपस्वियों को भी बुलाया और उन सबके सामने अहल्या को अधिकार ही नहीं दिया, बल्कि मान-सम्मान भी दिलाया। उसके बाद मिथिला नगरी जाकर सीरध्वज से भी बात कही। राम को देखकर सीरध्वज को लगा कि- 'जो व्यक्ति वनजा को सम्मान का वचन दे सकता है, अहल्या को सामाजिक प्रतिष्ठा देने का साहस कर सकता है, वह सीता के साथ अवश्य ही न्याय करेगा- ऐसा मेरा विश्वास है।' इतना ही नहीं सीरध्वज के मन में पच्चीस वर्ष पहले घटित घटनाएं याद आई, क्योंकि उस वक्त वे भी वहां उपस्थित थे। उनका मन भी यह मानता था कि अहल्या निर्दोष है। पर इन्द्र ने अहल्या को लांछित किया और लोगों ने भी मान लिया था। आश्रम के उपकुलपति ने स्वयं आश्रम को भ्रष्ट घोषित कर दिया था तो सिरध्वज क्या करते ? क्या वह धर्म नेताओं का विरोध करते ? धर्म नेताओं का विरोध सोच समझकर ही किया जा सकता था। पर इन्द्र का विरोध न कर पाने के पीछे भी सीरध्वज का एक रहस्य छुपा था, जो उसने विश्वामित्र को बताया- उनकी पालक पुत्री असाधारण सुंदर थी, पर सीता अज्ञातकुलशीला थी, पर सीता को हर कोई पाना चाहता था, पर सीरध्वज को यह मंजूर नहीं था। अतः सीता को पाने के लिए अनेक नरेशों ने मिथिला पर आक्रमण किया। आक्रमण का लक्ष्य था- सीता। उस वक्त सीरध्वज ने इन्द्र से सहायता मांगी थी, और इन्द्र ने सीरध्वज की सहायता की थी। इसलिए सीरध्वज इन्द्र के विरुद्ध नहीं बोलता था। पर युग-पुरुष राम ने अहल्या को भी न्याय दिलाया और सीता को भी।

निष्कर्ष:

सचमुच आज हमें राम जैसे हिम्मतवान नेता की जरूरत है, तभी हमारे देश की नारी सुरक्षित रह सकती है। साथ ही गौतम मुनि जैसे पति को पाकर भी अहल्या जैसी नारी अपने-आपको भाग्यशाली मानती है, क्योंकि सारे समाज का विरोध होने पर भी गौतम ने, अपनी पत्नी की सम्मान-रक्षा के लिए, सब कुछ दांव पर लगा दिया था। अंत में उन्होंने इन्द्र को दण्डित किया था। परंतु नागार्जुन लिखित 'भूमिजा' खंडकाव्य का गौतम इन्द्र को उनकी कुटीर से निकलते देखते ही, इन्द्र को शाप दे देता हैं और अहल्या के चरित्र पर भी शंका करके उस पर लांछन लगाता हैं, पर जब अहल्या उनके सामने गिड़गिड़ाइ, तब गौतम ने कहा- राम के हाथों आपका उद्धार होगा। जबकि 'दीक्षा' उपन्यास में गौतम मुनि अपनी पत्नी को न्याय दिलाने के लिए अपना पद, अधिकार को छोड़ सकता है, पर अपनी पत्नी को नहीं। इस प्रकार इस उपन्यास में हमारे समाज की विभिन्न समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है।

संदर्भ :

1. दीक्षा (उपन्यास), नरेन्द कोहली, पृ. 95, 96, 97
2. दीक्षा, पृ. 101
3. दीक्षा, पृ. 106
4. दीक्षा, पृ. 115
5. दीक्षा, पृ. 122
6. दीक्षा, पृ. 125
7. दीक्षा, पृ. 125,126
8. दीक्षा, पृ. 152
9. दीक्षा, पृ. 172

❑❑❑

भगवानदास मोरवाल के साहित्य में वैचारिक प्रतिबद्धता

❍ डॉ. अशोक शामराव मराठे[1]

साहित्यकार की किसी साहित्यिक कृति को वैचाारिक पृष्ठभूमि की समृद्धि और प्रामाणिकता ही स्थायी महत्व प्रदान करती है और व्यापक तथा संगत वैचारिकता ही किसी साहित्यकार की कसौटी है। साहित्यिक समीक्षा पद्धति की दार्शनिक मान्यताओं का उल्लेख सबसे पहले किया जाता है। दार्शनिक मान्यताओं का संबंध साहित्यकार के व्यक्तित्व के विचार पक्ष से होता है। साहित्यकार के व्यक्तित्व का विचार पक्ष उसके ज्ञान और चिंतन में निहित होता है। उस ज्ञान और चिंतन से ही हमें किसी विशेष व्यक्ति के मानस पक्ष का परिचय मिलता है। साहित्यकारों का व्यक्तित्व सामान्य व्यक्तियों से कुछ विशिष्ट हुआ करता है। इस कारण किसी साहित्यकार के व्यक्तित्व का आकलन और मूंल्याकन मुख्यत: उसके वैचारिक व्यक्तित्व का आकलन और मूल्यांकन होने पर ही सार्थक और सफल माना जाता है।

एक साहित्यकार के रूप में भगवानदास मोरवाल की वैचारिक प्रतिबद्धता, उसके सरोकार, उनकी चिन्ताओं और मूल चिंतन की गहन पड़ताल और परख उनके सृजनात्मक लेखन से होती है। इसलिए मोरवाल जी मौजुदा लेखन को लेकर कहते हैं कि, "किसी भी लेखक का लेखन मनुष्य की जिंदगी और सामाजिक सरोकारों से जुड़ा होना चाहिए। ये सरोकार लेखन में गम्भीरता और गहनता पैदा करते हैं। इन सरोकारों के अभाव में लेखन बौद्धिक विलासिता के साथ-साथ महज विमर्श बनकर रह जाते हैं। मैं समझता हूँ कि जो रचना तथ्यों, संवेदनशीलता, जीवनानुभव और जीवनानुभूति को आधार बनाकर रची जाएंगी, वे ही टिकी रहेंगी।"[1] मोरवाल जी उन लेखकों में से नहीं है जो स्वयं को विशेष सिद्ध करने के लिए कुछ तथ्यों को छिपा जाते हैं। उनका व्यक्तित्व और लेखन आईने की तरह बिल्कुल साफ है। लेखन कार्य उनके लिए शौक नहीं तपस्या है। वे स्वयं को महत्वाकांक्षी मानते हैं। उनका महत्वकांक्षी होने का मुख्य आधार उनका सामाजिक सरोकार है। अपनी महत्वाकांक्षा द्वारा ही वे सामाजिक और सामूहिक सरोकार को मुख्यधारा में लाने का जी तोड़ प्रयास अपने लेखन से करते है। वे मानते हैं कि, बिना महत्वाकांक्षा के मनुष्य जीवन में न तो संघर्षशील हो सकता है और न कल्पनाशील। अपनी महत्वकांक्षाओं का दमन एक तरह से अपने सपनों का दमन होता है।

साहित्यकार अपनी रचनाओं में पात्रों का विश्वसनीय चित्रण करता है। ऐसा करना एकदम सहज और

---

1. विभागाध्यक्ष, हिंदी, उत्तमराव पाटील कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, दहिवेल तह. साक्री जि. धुले.

अनिवार्य भी है। एक लेखक को सबसे पहले अपने पात्रों के प्रति सबसे ज्यादा जागृत होना चाहिए। किसी भी रचना में पात्रों की प्रतिबद्धता को लेकर मोरवाल जी लिखते है कि, "किसी भी रचना के चरित्र अथवा पात्र चाहे वे वास्तविक जीवन से लिए गये हों अथवा रचनाकार की कल्पना से गढे गये हो, रचनाकार के लिए एक चुनौती होते है। क्योंकि एक रचनाकार की प्रतिबद्धता, समाज के प्रति उसका नजरिया तथा मानवीय सरोकारों की अनुगूंज उसके इन चरित्रों और पात्रों के माध्यम से ही महसूस की जा सकती है।"[2] मोरवाल जी की रचनाओं की पृष्ठभूमि वास्तविक जीवनानुभवों पर आधारित है इसलिए उनके चरित्र एवं पात्र भी वास्तविक जीवन से लिए गये है। जैसे-जैसे पात्रों के विचारों का रचना में विस्तार होने लगता है, वैसे-वैसे लेखक की कल्पना का भी विस्तार होने लगता है। उनकी रचनाओं की जो कथाभूमि और पृष्ठभूमि है, उसके चलते उनके ज्यादातर पात्र ऐसे प्रतीत होते है जो विषमताओं में रहकर भी जीवन को जीने में पूरा विश्वास रखते है। वे अपने पात्रों के संदर्भ में लिखते है कि, "मेरी रचनाओं की सबसे बडी ताकत मेरे ऐसे ही पात्र है।"[3] इसलिए उन्हें ऐसे पात्र ज्यादा प्रभावित करते है जिनकी निष्ठा मनुष्य और समाज के प्रति अधिक ईमानदार होती है। उनकी दृष्टि में ऐसे पात्रों की कल्पना करना या संरचना करना समाज और मनुष्य्य को बचाने का प्रयास करना है। जब तक ऐसे पात्र बचे हैं तब तक लेखक भी बचा है।

एक साहित्यकार की सबसे बडी जमा-पूंजी उसकी वैचारिकता और प्रतिबद्धता होती है। यह वैचारिकता ही उसके लेखन का आईना होता है। इसी आईने से हम उसकी चिंताओं और उसके सरोकार से परिचित होते हैं। मोरवाल जी का यह वैचारिक आईना अपने समाज और जीवनानुभवों के संघर्षों के ताप से तपकर बना है। उनके साहित्यिक विवेक, समझ और उनकी परिपक्वता तथा नजरिए को धार देने का काम उनका लोक और जीवन संघर्ष करता है। वे अपने इसी लोक को लेकर लिखते है कि, "पुस्तकें मेरी समझ से एक लेखक में लेखन के प्रति ललक और जिज्ञासा तो पैदा करती है किन्तु उसकी समझ को अपने लोक को समझे बिना न हम अपने सरोकारों को समझ सकते हैं, न ही अपनी दुनिया को। किताबों से अधिक एक लेखक की दुनिया को ज्यादा व्यापक उसका लोक ही बनाता है।"[4] वे अपने लेखन के लिए कच्चे माल के रूप में इस लोक को ही सबसे बडी किताब मानते हैं। साथ ही अपनी इस लोकरूपी किताब को समझने के लिए वे इतिहास, समाज, संस्कृति तथा अपने पड़ोसी समाजों से संबंधित पुस्तकों का भी सहारा लेते हैं।

मोरवाल जी अपने तथ्यों और रचनात्मक कौशल को लेकर कहते है कि किसी भी रचना की सामायिकता और उसकी रचना मूल्यता का आधार यथार्थ और कल्पना का वह सम्मिश्रण है जो उसे विश्वसनीय और प्रामाणिक बनाता है। किसी भी लेखक के लिए कृति की रचना-प्रक्रिया को बताना सबसे कठिन कार्य है। क्योंकि रचना-प्रक्रिया यानी किसी रचना का शीर्षक और पात्र तय करके उनसे संवादों की अभिव्यक्ति करना मात्र नहीं है बल्कि उस रचना के माध्यम से उन सवालों से भी रूबरू होना है, जो लेखक के साथ-साथ पाठक को भी बेचैन करते हैं। रचना प्रक्रिया के संदर्भ में मोरवाल जी का मानना है कि, "रचना प्रक्रिया सिर्फ किसी रचना के लिए कच्चा माल एकत्रित कर उसे शब्दों में पिरोना भर भी नहीं है, बल्कि असली प्रक्रिया वह है जो रचनाकार के भीतर मिट्टी के कच्चे बर्तनों की तरह जतन से लगाये गये आवे में जाने कब से धीरे-धीरे पकती है। यह प्रक्रिया तब और भी जटिल और दुरूह हो जाती है जब किसी रचना का फलक यानी कैनवस इतना व्यापक हो, जहाँ पृष्ठ-दर-पृष्ठ रचनाकार अपने चरित्र और पात्रों से दो-चार होते हुए रह-रहकर मुठभेड़ करता है।"[5]

भगवानदास मोरवाल जी से जब अटल तिवारी ने पूछा कि समाज के हाशिए के लोगों के प्रति संवेदनात्मक लगाव जो बाद में रचनात्मक अभिव्यक्ति में परिणत होता है क्या यह किसी विचारधारा का प्रभाव है ? इस पर मोरवाल जी कहते हैं कि, "मेरा निजी मत है कि वंचितों, उपेक्षितों और हाशिए के लोगों के प्रति जो

संवेदनात्मक लगाव पैदा होता है, वह किसी न किसी विचारधारा से अवश्य प्रभावित होता है, मनुवादियों से तो कम से कम ऐसे संवेदनात्मक लगाव की उम्मीद करना बेमानी होगी। यह संवेदनात्मक लगाव लेखक के सामाजिक परिवेश उसके जीवन-संघर्ष और उसके लोक व्यवहार से उसकी जो जीवन दृष्टि बनती है, उससे प्रभावित रहती है। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि एक शूद्र और ब्राह्मण की संवेदना सर्वथा भिन्न-भिन्न होगी। कहीं-न-कहीं यह संवेदना संस्कारगत भी होती है। वंचितों, उपेक्षितों और हाशिए के लोगों के प्रति जों नजरिया शूद्र का होगा जरूरी नहीं कि वही नजरिया एक ब्राह्मण का भी हो। कहीं न कहीं आपको स्पष्ट अंतर नजर आ जाएगा। थोपा हुआ या बनाई गई संवेदना पाठक के अपने आप पकड़ में आ जाती है।"[6]

भगवानदास मोरवाल जी कभी भी पूर्णकालिक लेखक नहीं रहे। इसलिए लेखन के प्रति उनकी प्राथमिकतां निरंतर बदलती रहती थी। एक नौकरी पेशा व्यक्ति के पास सुबह दस बजे से शाम पाँच बजे तक कार्यालयीन काम-काज में बीताए समय के उपरांत जो समय बचता है, निश्चित ही लेखन के लिए अपर्याप्त था। फिर भी उन्होंने अपने इस थोड़े समय का सदुपयोग अध्ययन एवं लेखन के लिए किया है। मोरवाल जी स्वयं को सर्वहारा, दलित-आदिवासी, पिछड़े, कमजोर एवं अल्पसंख्यक वर्ग का हिमायती मानते हैं। वे इस बात का निर्णय अपने पाठकों पर छोड़ देते हैं कि ऐसे लेखकों को किस विचारधारा का लेखक माना जाए। लेखक के व्यक्तित्व में निहित स्पष्टवादिता का यह आयाम उनके पत्रकारिता के क्षेत्र में किये गए कार्य का प्रभाव माना जा सकता है। वे अपने लेखन को व्यक्ति के रूप में स्वयं भोगा हुआ कष्ट मानते हैं। वे एक अच्छे लेखक ही नहीं बल्कि एक प्रभावी वक्ता, अध्ययनप्रियता, स्पष्टवादिता, कुशल प्रशासक जैसे कई गुणों के धनी रहे है। अपनी ईमानदारी और वैचारिक स्पष्टता को लेकर वे कहते है कि, "ईमानदारी से कहूँ तो यह मुझ जैसे गँवई लेखक के लिए ऐसा दौर था जिसने मेरी वैचारिक परिपक्वता और प्रतिबद्धता को मांजा। यह वही दौर था जिसने अपने 'लोक' के प्रति मेरी समझ का विस्तार किया। यह लेखक का वही लोक है जो इसकी स्मृतियों में कैद चित्रों को उसकी रचनाओं में प्रामाणिकता और विश्वसनीयता के रंग भरता है। इसलिए एक लेखक के लिए इन स्मृतियों को यथार्थ और अपनी कल्पना के सहारे विश्वसनीय बनाना सबसे बड़ी चुनौती है। मेरी नजर में एक अच्छा कथाकार वही है जो अपने पूरे सामाजिक जीवन को पूरी ईमानदारी और निरपेक्षता के साथ साकार कर उसे प्रस्तुत करे।"[7]

अत: कहा जा सकता है कि वैचारिकता के विषय में लेखक का दृष्टिकोण स्वयं प्रेरित होने की ओर संकेत करता है। उनके विचारों मे लेखकीय कर्म करियर बनाने का साधन नहीं है। उनके लिए लेखन की प्रेरणा उनका अपना गांव और वहाँ के लोग हैं। उन्होंने अपने गांव में बीताए हुए जीवन से ही लेखन की प्रेरणा ग्रहण की है। इसलिए उनका साहित्य ग्रामीण जीवन की अभिव्यक्ति है। वे स्वयं को अपने समाज का लेखक मानते हैं। उनकी वैचारिकता पर किसी प्रकार की दलीय राजनीति अथवा गुटबाजी का प्रभाव नहीं रहा है।

संदर्भ :

1. लेखक का मन, भगवानदास मोरवाल, पृ. 14
2. लेखक का मन, भगवानदास मोरवाल, पृ. 16
3. लेखक का मन, भगवानदास मोरवाल, पृ. 23
4. लेखक का मन, भगवानदास मोरवाल, पृ. 51
5. लेखक का मन, भगवानदास मोरवाल, पृ. 16
6. सृजन संदर्भ (पत्रिका) संपा. सतीष पांडे, जनवरी-जून 2015, पृ. 14
7. समावर्तन (पत्रिका) संपा. मुकेश वर्मा, नवम्बर 2014, पृ. 11

❑❑❑

स्त्री शोषण और उत्पीड़न की कहानी
('बाबल तेरा देश में' उपन्यास के विशेष संदर्भ में)

❍ डॉ. चंद्रभान लक्ष्मण सुरवाड़े[1]

हिंदी उपन्यास साहित्य पर हम अगर दृष्टिपात करें, तो हमें यह पता चलता है कि हिंदी उपन्यास साहित्य में अपनी आरंभिक यात्रा से ही न केवल सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में स्त्री की स्थिति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत कर नारी मुक्ति के प्रश्न को पूरी ईमानदारी और व्यापकता के साथ उठाया गया, बल्कि हिंदी उपन्यास में नारी मुक्ति, उसकी स्वतंत्रता, समानता, आर्थिक निर्भरता एवं शिक्षा- दीक्षा से जुड़े कई प्रश्नों को उठाकर उसकी समस्या के समाधान का मार्ग समाज के सामने रखा गया। सदियों से भारतीय समाज में पुरुष प्रधान संस्कृति का समर्थन हो रहा है। इसलिए नारी को सदैव द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ है। वस्तु समझ कर ही नारी का इस्तेमाल किया गया। पितृसत्तात्मक समाज के दोहरी मापदंडों के कारण ही समाज में नारी की स्थिति हमेशा दयनीय रही है। आज नारी की सामाजिक-राजनितिक स्थिति और नारी मुक्ति तथा उसकी स्वतंत्रता को बुलंद आवाज देकर कलम से कागज पर चित्रित करने वाले प्रसिद्ध उपन्यासकार भगवानदास मोरवाल जी ने अपने 'बाबल तेरे देस में' उपन्यास में नारी की पराधीनता और उत्पीडन को गहराई से महसूस करके नारी जीवन की पीड़ा को पूरी संवेदना के साथ व्यक्त किया है।

हरियाणा राज्य में मेवात (आज का नूंह) जिले के कसबा 'नगीना' निवासी भगवानदास मोरवाल का जन्म 23 जनवरी 1960 में हुआ। उनका नाम आज हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यासकारों में प्रथम पंक्ति में लिया जाता है। उन्होंने हिंदी साहित्य को ऊँचा उठाने के साथ-साथ मेवात का नाम भी देश और दुनिया में रोशन किया हैं। गरीब खेतीहर मजदूर परिवार में जन्मे भगवानदास जी गरीबी और अभाव के दंश से जूझते हुए आज सफलता के जिस मुकाम पर हैं, उससे उनका जीवन और लेखन कार्य नई पीढ़ी के लिए मिसाल बन गया है।[1]

भगवानदास मोरवाल जी ने साहित्यिक सफर की शुरुआत कविताएँ लिखने से आरंभ की। उसके बाद वे कहानी लेखन और उपन्यास लिखने लगे। 1986 में उनका पहला कहानी संग्रह 'सिला हुआ आदमी' प्रसिद्ध हुआ, 1992 में 'सूर्यास्त से पहले' और 1994 में 'अस्सी मोडल उर्फ सूबेदार प्रकाशित हुआ। इसके बाद 'सीढ़ियाँ', 'माँ और उसका देवता', 'लक्ष्मण रेखा', 'दस प्रतिनिधि कहानियाँ' कहानी संग्रह प्रकाशित हुए।

1999 में 'काला पहाड़' उपन्यास राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित होते ही भगवानदास मोरवाल जी ने

1. हिंदी विभागाध्यक्ष, कला, वाणिज्य एवं विज्ञानं महाविद्यालय, नवापुर, जि.नंदुरबार (महाराष्ट्र)

साहित्यिक जगत में अपनी एक अलग पहचान बना ली। इसके बाद 2004 में 'बाबल तेरा देस में', 2008 में 'रेत', 2014 में 'नरक मसीहा', 2015 में 'हलाला', 2017 में 'सुर बंजारन', 'वंचना' 2019 में, 'शकुंतला' 2020 में और 2021 में 'खानजादा' आदि उपन्यासों ने हिंदी साहित्य में तहलका मचा दिया।[2]

हिंदी उपन्यास साहित्य पर हम अगर दृष्टिपात करें तो हमें यह पता चलता है कि हिंदी उपन्यास साहित्य में अपनी आरंभिक यात्रा से ही न केवल सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में स्त्री की स्थिति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करके नारी मुक्ति के प्रश्न को पूरी ईमानदारी और व्यापकता के साथ उठाया गया, बल्कि हिंदी उपन्यास में नारी मुक्ति, उसकी स्वतंत्रता, समानता, आर्थिक निर्भरता एवं शिक्षा-दीक्षा से जुड़े कई प्रश्नों को उठाकर उसकी समस्या के समाधान का मार्ग समाज के सामने रखा गया। सदियों से भारतीय समाज में पुरुषप्रधान संस्कृति का समर्थन हो रहा है। इसलिए नारी को सदैव द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ है। वस्तु समझ कर ही नारी का इस्तेमाल किया गया। पितृसत्तात्मक समाज के दोहरी मापदंडों के कारण ही समाज में नारी की स्थिति हमेशा दयनीय रही है। आधुनिक युग में विभिन्न सामाजिक एवं राजनीतिक आंदोलन के परिणाम स्वरूप स्त्री के बेहतर भविष्य और गरिमा के लिए नारी शोषण और उत्पीड़न से जुड़े समस्त पहलुओं और मुद्दों को समझने का प्रयास किया गया। हिंदी साहित्य में कई प्रकार के सामाजिक आंदोलन को जगह दी गई, जिसमें से कई विमर्श सामने आए.. दलित विमर्श, नारी विमर्श, आदिवासी विमर्श, विकलांग विमर्श, किन्नर विमर्श आदि। इन विमर्शों ने पूरे हिंदी साहित्यिक मापदंडों के समस्त समीकरण बदल दिए गए है, जिससे हिंदी के कुलीन साहित्य को मानो कटघरे में लाकर खड़ा कर दिया हो। इस संबंध में डॉ. राजेंद्र यादव ने लिखा है, "कुलीन साहित्य के नियंता पुरुषों ने 1850 से 1950 तक हिंदी की मुख्यधारा में दलित, स्त्री और अल्पसंख्यकों के प्रति जो अपमानजनक, आपराधिक और सुनियोजित रणनीति अपनाई है, उसका प्रतिकार प्रतिक्रिया होती है। कितना बड़ा अंतर्विरोध है कि उन्होंने 'साहित्य के लिए नारा' लगाने के बावजूद समाज के इन आधारभूत तत्वों को खुद कभी साहित्य में नहीं आने दिया।[3]

'बाबुल तेरा देस में' वर्तमान हिंदी उपन्यासों में नारी मुक्ति और उसकी उत्पीड़न का खुला दस्तावेज प्रस्तुत करनेवाला एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास में भगवानदास मोरवाल ने मेवाती मुस्लिम और हिंदू समाज और उसकी परंपरा से जुड़े ऐसे अनेक सवालों और चुनौतियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है, जिसको नारी एक अरसे से झेल रही है। उपन्यासकार ने अपने उपन्यास का कैनवास दक्षिणी दिल्ली का क्षेत्र मेवात को चुना है। उन्होंने वहाँ की धार्मिक और सामाजिक समस्याओं, विसंगतियों, विद्रूपताओं, विकृतियों और अंतर्विरोधों के साथ लोकजीवन की अलग-अलग घटनाओं के माध्यम से जीवंत चित्रण प्रस्तुत किया है, तथा उन सभी पितृसत्तात्मक जीवनमूल्यों और अवधारणाओं की छुपी परतों को हटाने का प्रयास किया है; जो नारी की यथास्थिति के पोषक है।

उन्होंने इस उपन्यास में मेवात (नूहं) के अत्यंत पिछड़े हिंदू और मुसलमान समाज की नारी पीड़ा और उसकी छटपटाहट का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है; जो शिक्षा और विकास से बहुत दूर है। इसलिए कि वह धार्मिक कट्टरता, सामाजिक विद्वेष, सांस्कृतिक रूढ़ि-परंपरा और कुरीतियों का शिकार है। उपन्यास की विशेष बात यह है कि इसमें महिलाओं के त्रासद जीवन को कथानक का केंद्र बिंदु बनाया गया। आज भारत को सामंतवाद एवं साम्राज्यवाद से आजाद हुए अनेक वर्ष हो गए हैं, परंतु न केवल मेवाती समाज में नारी की स्थिति बड़ी दयनीय और चिंताजनक है; बल्कि देश के प्रत्येक समाज में नारी की उपेक्षा और वह उत्पीड़न की शिकार हो रही है। वास्तव में मानव समाज, सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के इतिहास में स्त्री और पुरुष के बीच में जो धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक असमानता है; वह विषमता और अमानवीयता का भेदभाव किसी और के बीच नहीं है।

मध्ययुगीन इतिहास से पता चलता है कि पितृसत्ताक व्यवस्था और पुरुषप्रधान समाज औरतों का खुलापन बरदास्त नहीं करता उसपर कई प्रकार की पाबंदियां लगे जाती है. इसलिए नारी ही सबसे ज्यादा पुरुष की बर्बरता का शिकार रही है। पितृसत्ताक व्यवस्था में नारी उत्पीड़न, उपेक्षा एवं पराधीनता के अनेक रूप आज भी हमारे समाज में दिखाई देते हैं, जिनमें से कुछ दृश्य रूप में है, तो कुछ अदृश्य रूप में है।

'बाबुल तेरा देस में' पितृसत्तात्मक व्यवस्था में परतंत्रता की जंजीरों में जकड़ी हुई स्त्री के उत्पीड़न की संवेदना और दर्द को हम न केवल महसूस कर सकते हैं, बल्कि आज की सामाजिक व्यवस्था में नारी शोषण की कई घटनाएँ हमारे आसपास घटती हुई नजर आती है।

उपन्यास में चंद्रकला, पारो और जुम्मी के जीवन की विषम परिस्थितियों और विसंगतियों से वर्तमान सामाजिक व्यवस्था की विकृतियों और जटिलता को उद्घाटित करते हुए, इस तथ्य पर प्रकाश डाला गया है कि नारी अपने सगेसंबंधियों के संरक्षण में एक ऐसे मजबूत किले में कैद है, जहाँ उनके सगेसंबंधी ही कामवासना से ग्रस्त और मानसिक रूप से विकृत होकर घात लगाए बैठे हैं। उपन्यास का पुरुष पात्र ठाकुर जहाँ अपनी पुत्रवधू और पुत्री चंद्रकला को अपनी कामवासना का शिकार बनाता है, वहीं दूसरी ओर हाजी चांदमल अपने पुत्रवधू जुम्मी को अपनी हवस का शिकार बनाता है। चंद्रकला, चंद्रकला की भाभी पारो और जुम्मी का इसतरह पाश्विक व्यभिचार और उत्पीड़न को चुपचाप सहन करना उनकी विवशता को दर्शाता है, साथ ही आज के समाज में पारिवारिक अनैतिक विद्रूपता तथा सामंती बर्बरता के अनेक रूपों को भी दृष्टिगोचर करता है। यह अनैतिक व्यभिचार समाज में अनेक कुरीतियों और विकृतियों को जन्म देता हैं। यही सामाजिक विकृतियाँ और कुरीतियाँ धर्म, समाज और संस्कृति को बिगाड़ देती है। ऐसी पाश्विक बर्बरता के खिलाफ नारी अपना मुंह नहीं खोल पाती; क्योंकि नारी का पूरा अस्तित्व ही उसके सच्चरित्रवान (देहिक) होने पर टिका है। ठाकुर की पुत्रवधू पुरुषप्रधान समाज की संवेदनहीनता और नैतिकता पर सवाल करती है...."चंदा, बीबी हिम्मत करके अगर मैं भी भाग के तेरे भैया के जा लिपटती और सारी बात बता देती, तो ई तेरी भाभी अपने पिता समान ससुर की लौंडिया ना बनी फिरती। पतों ना जा बखत हमारे पिता समान ससुर की आँखन में कैसो खौफ हो। जाने तेरी जुबान ही किल दी। जब बताई तो बहुत अमेंर होगी। उल्टी तेरे भैया ने ई तोहमत और लगा दी के तू तो बस मेरी नाम की व्याहता है, लुगाई तो तू मेरे बाप की ही है।"[4]

ऐसा ही निष्ठुरता का आभास हमें जुम्मी के इन जुमले से भी हो जाता है.."बत्तो काई सू कहियो मत, नहीं में जीते-जी मर जाउंगी। मैं उमर भर तेरी बांदी बनके रहूंगी। तेरे पावन्ने धो धो के पिऊँगी। या गाय की लाज अब तेरा हाथ में है।"[5]

शायद यही नारी जीवन की नियति है, इसी ने नारी को उदासीन और कमजोर बनाया हो। उपन्यासकार ने उपन्यास में नारीजीवन की इन अनेक घटनाओं से नारी के अंतर्मन की पीड़ा का, उनके दर्द का मार्मिक चित्रण किया है। उसके साथ ही पुरुषप्रधान समाज की मानसिकता और सोच को भी उजागर किया है। इस संदर्भ में पुरुषसत्ताक समाज की सच्चाई की ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिए उपन्यास की प्रमुख पात्र बंतो का संकेत यही दर्शाता है; वह कहती है, "या मरद की जात की तो झूठी भी सच्ची हो जाए है और हम कलेजा चीर के दिखा देए, हमारे ऊपर कोई अकीन ना करें है।"[6]

मानव समाज के विकास में नारी की पराधीनता सबसे बड़ी बाधा रही है। यही कारण है कि राजा राममोहन राय, महात्मा फुले, सावित्री जोतिबा फुले, फातिमा शेख और बाबा साहब डॉ. भीमराव अंबेडकर जैसे महान समाज सुधारकों और चिंतकों का यह स्पष्ट विचार था, कि जब तक नारी को पराधीनता की बेड़ियो से मुक्ति दिलाने का प्रयास नहीं किया जाएगा, तब तक समाज का विकास असंभव है। ऐसी सोच और दूरदृष्टि के परिणाम स्वरूप समाज सुधार और सुधारवादी संगठनों ने नारी में शिक्षा का प्रचार-प्रसार करके नारी जागृति को प्रोत्साहन

दिया। इसी आधार पर नारी ने सामाजिक रूढ़िवादी मूल्यों का विरोध करते हुए समाज में अपने आप को सम्मानजनक स्थान दिलाने की दिशा में विशेष प्रयास किया। पराधीनता का बोध और स्वाधीनता की आकांक्षा के फलस्वरूप ही नारी संघर्ष रचनात्मक और सकारात्मक दिशा में आगे बढ़ा। वर्तमान में विविध भाषाओं के साहित्य में स्त्री विमर्श की चर्चा, सामाजिक-राजनीतिक विचारमंचों पर तथा साहित्यिक संगोष्ठियों में नारी पर होनेवाले अन्याय-अत्याचारों के खिलाफ आंदोलनों के साथ नारी मुक्ति की आवाज बुलंद होने लगी।

'बाबुल तेरा देस में' इस उपन्यास के जरिए भगवानदास मोरवाल जी ने अपने नारी पात्रों...मैडम शकीला, मुमताज, दादी जैतूनी, चन्द्रकला, पारो, के जरिए इन विचारों की सार्थक अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है। ये नारी पात्र अपने व्यवहार और विचारों में समाज के लांछनों एवं आरोपों की चिंता ना करके सामंती, धार्मिक एवं सामाजिक अनैतिकता के खिलाफ अपना आवाज बुलंद करती है, और वह सामाजिक एवं राजनीति में सक्रिय भाग लेकर नारी मुक्ति का परचम लहराती है। यानी मैडम शकीला नारी शोषण की कालिमा को हटाते हुए स्त्री को सामाजिक एवं राजनीतिक मर्यादा तथा प्रतिष्ठा दिलाने के लिए अपने राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों का प्रयोग करती है, तो पुरुष प्रधान समाज की बुनियाद हिल जाती है। वह कहती है, "बाप, अब तेरे बस की ना रही है ई विद्या। चाहे अब आई सरपंची रहे या जाए।"[7]

उधर दीन मोहब्बत को टूटता देख हाजी विचलित हो उठता हुआ कहता है कि, "यदि दीन मोहब्बत के हाथ से सत्ता की बागडोर चली गई तो, हवेली के मर्दों के लिए सिवाए डूब मरने के और कोई रास्ता नहीं बचेगा।"[8] इस तरह मैडम शकीला और मुमताज का यह प्रतिशोध उदयमान नारी पीढ़ी तक पहुंचता है। नारी उत्पीड़न का यह सफर आधी रात के अंधेरे से शुरू होकर सूर्योदय की चमकती किरनों तक जाता है.. उस दिन मुमताज, सबीना, फिरोजा, फोजिया, मैंना, सलीमा, नफीसा, नसरीन चिड़ियों की झुंड-सी चहकती, फुदकती हुई जा रही थी शकील के पास। पीछे-पीछे जैतुनी भी थी, उनके। छज्जे पर खड़ी शकीला को देखकर मुस्कुराते हुए कहा था उससे "ले, आगी तेरी फौज।"[9]

यह फौजी न सिर्फ शकीला का अस्तित्व और पहचान बन जाती है, बल्कि नारी की स्वाधीनता, अस्तित्व और अस्मिता की भावना एवं संवेदना को समाज में वैचारिक दृष्टि से जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। उपन्यास के नारी पात्र अपने स्वतंत्र, अस्तित्व और व्यक्तित्व के लिए निरंतर संघर्ष करते हैं। यह पैतृक संपत्ति में अपने हक के लिए आवाज उठाने का साहस करती है। धार्मिक और सामाजिक नैतिक मान्यताओं पर गंभीर चिंतन करके उन अवधारणाओं पर सवालिया निशान लगाती है, जो नारी शोषण को बढ़ावा देते हैं।

'बाबुल तेरा देस में' इस उपन्यास का फलक बहुत व्यापक है। इसमें मुस्लिम समाज की महिलाओं की ज्वलंत मानवीय समस्याओं को प्रस्तुत किया है। उपन्यासकार ने कई वर्षों से उत्पीड़ित और शोषित मुस्लिम औरतों का दर्द और जज्बातों को बड़े ही संजीदगी से अभिव्यक्त करते हुए मुस्लिम समाज में प्रचलित विकृतियों, अंधानुकरण, संबंध-विच्छेद और धार्मिक कट्टरता आदि को अपना निशाना बनाया है। मुस्लिम महिलाओं की सबसे महत्वपूर्ण समस्या है.. तलाक।

औरतों के हमदर्द उपन्यासकार भगवानदास मोरवाल जी ने मुस्लिम समाज के इस ज्वलंत मुद्दे को बड़ी गंभीरता से उठाया है। मुस्लिम समाज में तलाक की इस गंभीर समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया है। आज आधुनिक समाज में तलाक से मुस्लिम महिलाएँ त्रस्त है। तलाक के डर से दहशत में डूबी शगुफ्ता की उदासी को हम महसूस कर सकते है। घायल बछिया-सी तड़पते हुए वह कहती है, "बूढ़ी माई, थोड़ो सो जहर लाके और खवा दे मोह बस्स! मैं कोना-सा मुँ सूं जाऊंगी अपना बाबल की दहली पै।"[10]

आज भी तथाकथित पुरुषों द्वारा सनातन धर्म की मान्यताओं या आदेशों और उपदेशों को अपने स्वार्थ के

अनुसार प्रयोग करके महिलाओं को पीड़ा पहुंचाई जा रही है। कथित धर्म के ठेकेदार धर्मग्रंथो के आधार पर और धार्मिक व्यवस्था, मान्यताओं और आदेशों को अपने अनुकूल करके नारी का शोषण और उत्पीड़न कर रहे हैं। सामाजिक प्रतिबद्धता को मद्देनजर रख हमें जनता के सामने धर्म का वास्तविक रूप में पेश करना होगा। इसी सिलसिले में वह कहती है, "तलाक अल्लाह के नजदीक सबसे ज्यादा नापसंद चीज है। अम्मा, वैसे कुरान में कहा गया है, अल्लाहताला के नजदीक हलाल चीजों में सबसे ज्यादा घिनौनी चीज है, तो वह है.. तलाक।"[10]

'बाबुल तेरा देस में' इस उपन्यास में नारी की सामाजिक, धार्मिक स्थिति तथा नारी मुक्ति के सवालों पर गहराई से चिंतन किया गया। उपन्यास की नायिका मैडम शकीला, दादी जैतूनी, और मुमताज नारी मुक्ति को धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक मुक्ति से जोड़ देती है। वे सभी वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में नारी के व्यक्तित्व, अस्तित्व और अस्मिता से जुड़े कई सवालों को उपस्थित कर सही अर्थ में नारी जीवन की दयनीय स्थिति का बखान करती है, तथा सामाजिक, धार्मिक कुप्रथा, सड़ी-गली परंपरा को अपने हक के लिए कटघरे में खड़ा करती है। न्याय के लिए आवाज बुलंद कर समाज के उन तमाम धर्म के कथित ठेकेदारों, जो महिलाओं के अधिकारों के खिलाफ है, उन्हें ललकारते हुए सभी समाज का ध्यान आकर्षित करती है। इस तरह 'बाबल तेरा देस में' इस उपन्यास में भगवानदास मोरवाल जी ने नारी की पराधीनता और उत्पीड़न की पीड़ा को गहराई से समझकर नारी की पीड़ा को पूरी संवेदना के साथ अभिव्यक्त किया है। उन्होंने अपने लेखकीय उत्तरदायित्व और सामाजिक प्रतिबद्धता को स्वीकार करते हुए, नारी पर होनेवाले अन्याय-अत्याचार और शोषण से मुक्ति दिलाने के लिए नारी की आवाज बनने का प्रयास किया है, साथ-ही-साथ वे नारी को समाज में न्याय, उचित सम्मान, बराबरी का दर्जा और स्वतन्त्रता के साथ सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाने की पुरजोर वकालत करते है।

संदर्भ :

1. दैनिक जागरण, 28 जून, 2006
2. भगवानदास मोरवाल, विकिपीडिया
3. हंस, अगस्त, 2004, पृ. 6
4. बाबल तेरा देस में, भगवानदास मोरवाल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 142
5. वही, पृ. 129
6. वही, पृ. 131
7. वही, पृ. 322
8. वही, पृ. 323
9. वही, पृ. 280
10. वही, पृ. 346
11. वही, पृ. 347

❑❑❑

आदिवासी रामकथा में लव-कुश का प्रसंग

❍ डॉ. कल्पना बी.गण्वित[1]

भारतीय संस्कृति का महान ग्रंथ रामकथा है। भारतीय जन-समुदाय में रामकथा अति प्राचीन काल से लोकप्रिय है। हजारों वर्षों से रामायण भारतीय प्रजा के मन-मस्तिष्क एवं व्यवहार को लोह चुंबक की भांति प्रभावित कर रही है। यह कथा भारतीय संस्कृति के साथ अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है। श्रुति और स्मृति से यह कथा पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती रही है।

कुछ अवधि पश्चात प्रथम जैन परंपरा की राम कथा ईसा.पूर्व की तीसरी शताब्दी के आसपास और बाद में महर्षि वाल्मीकि ने ईसा. पूर्व की सदी के इर्द-गिर राम कथा का संपादन किया। भारतीय भाषाओं में विभिन्न प्रकार से उसकी अनुकृतियों का सृजन होने लगा है। इस महाकाव्य ने कई सर्जकों, संवेदकों, विचारकों एवं अनुगामियों को रामकथा का पुनः कथन, अनुसर्जन करने के लिए प्रेरित किया है।

भारत के अलग-अलग प्रांतों के वनवासियों ने भी अपनी संस्कृति में रामकथा को संजोया है। गुजरात में भगवानदास पटेल ने उत्तर गुजरात स्थित अरावली पर्वत की पहाड़ियों में रहने वाली भील जाति में मौखिक परंपराओं में गद्य और पद्य दोनों स्वरूपों में 'राम सीतमा की कहानी' शीर्षक से रामायण को अवतरित किया है। जबकि दक्षिण गुजरात के सम्माननीय श्री डाह्याभाई वाढू ने भी कुंकणा आदिवासी प्रजा में रामकथा को कुंकणा रामकथा से प्रकाशित किया गया है। भारतीय लोक मानस में मुख्यतः वाल्मीकि और तुलसीकृत रामकथा का प्रभाव सविशेष रहा है। किन्तु कुंकणा रामकथा आदिवासी प्रजा में अलग तरीके से कही जाती रही है। आदिवासी भाषाओं में आज भी रामकथा के प्रादेशिक प्रवाह प्रचलित है और केवल मौखिक परंपरा में ही प्रचलित है।

पूरे देश में लगभग 450 से भी ज्यादा रामकथाएँ हैं। इन सब में दक्षिण गुजरात के डांग इलाका, जोकि महाराष्ट्र की सीमा से लगा हुआ क्षेत्र है, वहाँ एक विशिष्ट प्रकार की कुंकणा भाषा में राम कथा प्रचलित है। कुंकणा रामकथा की शुरुआत तीन उपकथाओं से होती है।

- पहली उपकथा में अपाहिज रावण के रक्षा रूप में परिवर्तन और सीता के जन्म को दर्शाया गया है।

---

1. *Dr. KALPANA B. GANVIT, Associate Proffessor, G-D-Modi College of Arts, Palanpur. (North Gujarat)*

– दूसरी कहानी में वासुदेव रुकमाई और श्रवण की मृत्यु की कहानी रची गई है।

– तीसरी उपकथा में महादेव की पुत्री अहिल्या और गौतम ऋषि का उल्लेख है।

– मूल कहानी दशरथ राजा से शुरू होती है, दूसरी और तीसरी उपकहानी थोड़ी अधूरी रह जाती है।

इसके अलावा इस राम कथा में वासुदेव का, हिरन–हिरनी का प्रसंग, मत्स्य वेधन का प्रसंग, साब्रसर, सूर्पनखा प्रसंग, कुश–लव प्रसंग इत्यादि प्रसंग की बात राम कथा में की गई है। किंतु इस राम कथा में मैं कुश – लव के प्रसंग की कथा पेश करने वाली हूँ, क्योंकि प्रचलित रामायण में लव–कुश को जुड़वा बेटे के रूप में दिखाया गया है। जबकि यहाँ कुश–लव का जो प्रसंग बताया गया है वह प्रचारित लव–कुश से भिन्न है।

इस राम कथा में माता कौशल्या राम से नाराज थीं। अयोध्या के सिंहासन पर भरत को ही देखना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने राम–सीता के बीच मनभेद करने के कई प्रयास किए और अंत में जब माता कौशल्या को सीता के गर्भवती होने के समाचार मिलते हैं तब राम की नजर में सीता को नीचा दिखाने के लिए माता कौशल्या राम को बताती हैं कि सीता के मन में राम की अपेक्षा रावण अधिक शक्तिशाली था। यह सुनकर राम सीता को तिरस्कृत करते हैं और अपनी नजरों से हमेशा के लिए दूर करने की सोचते हैं। इसलिए राम ने लक्ष्मण को आदेश दिया कि सीता को अपने से दूर कर दे। लक्ष्मण सीता को निर्जन वन में छोड़कर आए। माता कौशल्या को अपने कार्य में सफलता मिलती है।

सीता जंगल में भटकते भटकते वाल्मीकि नामक एक अंध ऋषि के आश्रम में पहुंच जाती हैं उस समय पिता तुल्य वाल्मीकि ऋषि सीता को आश्रय देते हैं। इस दौरान सीता ने एक सुंदर बालक को जन्म दिया। माता सीता ने उसका नाम कुश रखा। माता सीता की अनुपस्थिति में ऋषि बच्चे की देखभाल कर रहे थे। एक दिन ऐसी घटना घटित होती है कि माता–सीता पानी भरने के लिए आश्रम के बाहर जाती है। उस समय एक बंदरिया अपने बच्चे को गले लगाकर एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर छलांग लगा रही थी। यह माता सीता ने देखा। इसलिए उन्होंने उछलती हुई बंदरिया मां से कहा आप कैसी मां है ? तू अपने नवजात शिशु को लेकर यहां वहां छलांग लगाती हो, वह गिर जाएगा तो ? तुम्हें अपने बच्चे की परवाह नहीं है। तब वानर माता ने माता सीता को उत्तर दिया "मेरा बच्चा मेरी गोद में मेरे पास है मैं मेरे बच्चे को बचाऊंगी पर तू अपने बच्चे को अंध ऋषि के भरोसे पर छोड़ आई है उसका क्या ? अगर कोई जंगली जानवर इसे खा ले तो ? अंध ऋषि को पता भी नहीं चलेगा।"

माता सीता को बंदर माता की बात सत्य लगी। वह दौड़ती हुई आश्रम पहुंचकर बाल कुश के पास जाती है तो कुश पालने में सो रहा था। किंतु वाल्मीकि ऋषि वहां मौजूद नहीं थे। माता सीता बाल कुश को लेकर अपने साथ ले जाती है। तभी ऋषि वहां आते हैं। पालना झूलाने पर खाली लगता है, पालना हल्का महसूस होता है। पालने में हाथ फेरते हैं तो बाल कुश पालने में नहीं है। ऋषि को कुछ अमंगल होने के संकेत लगे। वाल्मीकि ऋषि डर गए। हे भगवान! यह क्या हुआ ? सीता का बच्चा कहां गया ? अब सीता बच्चा मांगेगी तो मैं कहां से दूंगा ?

ऋषि जमीन पर टटोलने लगे किंतु बच्चा हाथ में ना आया पर जमीन टटोलते हुए ऋषि मुनि के हाथ में लव नामक पौधा हाथ में आया। मुसीबत के समय में ऋषि मुनि ने तपोबल से लव नामक पौधे को बच्चे के रूप में परिवर्तित किया और उसे बच्चे को पालने में रखकर झूलाने लगे। तभी माता सीता कुश को लेकर आई। उन्होंने पालने में दूसरे बच्चे को देखा तो वह आश्चर्यचकित रह गईं। कुश मेरे पास है तो यह दूसरा बच्चा ! माता सीता ने ऋषिवर को पूछा– बाबा यह दूसरा बच्चा कौन है ? ऋषिवर रो पड़े और जो घटना घटित हुई थी वह बात माता सीता को बताई। माता सीता भी सुनकर रो पड़ी और ऋषिवर को कहने लगी – बाबा कुश मेरे पास है। ऋषि ने कहा बेटे जो होना था वह हो चुका है और इसे उल्टा नहीं किया जा सकता। अब तुम

इस बालक को स्वीकार करो और उनकी माता बनो। माता सीता ऐसे लव के पौधे से रूपांतरित बच्चे की सगी मां बन जाती हैं।

वाल्मीकि ऋषि माता सीता से कहते हैं – "बेटे हम लव के पौधे से निर्मित बच्चे का नाम लव रखें। कुश लव भाई-भाई बनकर साथ रहेंगे; जैसे राम वैसे कुश और जैसे लक्ष्मण वैसे लव। राम और लक्ष्मण सगे भाई ना होते हुए भी सगे भाई से भी ज्यादा प्यार मोहब्बत से रहते हैं वैसे ही लव कुश भी भाई-भाई बनकर रहेंगे। इन दोनों बच्चों को आप अपना ही समझो" और वाल्मीकि ऋषि माता सीता को दोनों बच्चे सौंप देते हैं। यहां पर यह कथा पूर्ण होती है। आदिवासी रामायण में कुश लव का प्रसंग प्रचलित रामायण से अलग दर्शाया गया है। यह कथा केवल मौखिक परंपरा में प्रचलित होने से कथा प्रवाह में दूसरी कथाओं का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से देख सकते हैं।

इस तरह प्रचलित रामकथा से आदिवासी राम कथा अनूठी और विशिष्ट है। यह मौखिक राम कथा में डांग प्रदेश की संस्कृति के दर्शन होते हैं। अपनी संस्कृति के अनुसार परिवर्तन आता गया किंतु फिर भी भारतीय संस्कृति की महान धारा के रूप में थोड़े परिवर्तन के साथ जंगलों, पर्वतों के बीच भी यह कथा प्रशस्य है।

संदर्भ :

1. लाट साहित्य, संपादक और अनुवाद डाह्या भाई-वाढू, मार्च 2000
2. कुंकणा लोक-कथा, डाह्याभाई वाढू
3. ढोल-संकल्प : आदिवासी चेतना का सामयिक, अक्टूबर 2001
4. गुजरात के आदिवासी लोक साहित्य का इतिहास, हसु याज्ञिक।

❑❑❑

साहित्य और समाज की अन्योन्याश्रितता और दुष्यंत कुमार की कविता

❍ डॉ. अविनाश कासांडे[1]

साहित्य के पाठक और सर्जक सभी इस बात से भिज्ञ हैं कि साहित्य समाज का दर्पण कहलाता है। साहित्य को समाज का दर्पण कहने से तात्पर्य यह है कि साहित्य में समाज के विभिन्न पहलुओं और घटकों का स्वाभाविक चित्रण होता है। यह चित्रण समाज में स्थित मानवीय जीवन एवं उसके समस्त सामाजिक व्यवहारों के साथ समसामयिक सामाजिक परिवेश, समस्याएँ, घटनाएँ आदि के साथ सामाजिक उन्नति एवं अवनति आदि बातों का चित्रण सहजता और स्वाभाविकता के साथ होता हुआ दिखाई देता है। इसका एक और कारण यह भी है कि साहित्य और समाज का संबंध अन्योन्याश्रित है। अर्थात् साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक हैं, सहायक हैं। समाज साहित्य के लिए सामग्री स्रोत है तो साहित्य समाज का चित्रणकर्ता है। समाज साहित्य को सर्जन की प्रेरणा देता है तो साहित्य समाज की दिशा निर्देशन का कार्य करता है। तात्पर्य यह कि सृजन और सर्जक इन दोनों दृष्टिकोणों से साहित्य और समाज का पारस्पारिक सहयोग और दृढ संबंध दिखाई देता है।

साहित्य और समाज की दृष्टि से विचार किया जाये तो हिंदी साहित्य में ऐसा कोई लेखक नहीं होगा जिसके साहित्य में समाज और सामाजिक सरोकारों का चित्रण नहीं है। हर एक सर्जक, फिर वह किसी भी भाषा में अपना सृजनकार्य करता हो, सामाजिक सरोकारों से अपने आप को अलग नहीं रख सकता। उसे अपने समसामयिक सामाजिक स्थितियों से सृजन की ऊर्जा निरंतर प्राप्त होती रहती है। साहित्य सर्जक भी इसी समाज का एक अभिन्न घटक होता है इसलिए स्वाभाविक रूप से उसके द्वारा निर्मित साहित्य और समाज में अन्योन्याश्रित संबंध प्रस्थापित होते हुए दिखाई देते हैं।

हिंदी साहित्य में दुष्यंत कुमार एक ऐसे कवि है जिनकी कविता में साहित्य और समाज की दृष्टि से यह अन्योन्याश्रितता यत्र तत्र दिखाई देती है। दुष्यंत कुमार द्वारा लिखित 'सूर्य का स्वागत', 'आवाजों के घेरे', 'जलते हुए वन का वसन्त' आदि कविता संकलन और 'साये में धूप' इस गजल संग्रह में ऐसी कई कविताएँ एवं गजलें हैं जो अपने समसामयिक सामाजिक परिवेश का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करती हैं।

दुष्यंत कुमार ने समकालीन सामाजिक व्यवस्था एवं व्यवस्थागत विषमताओं को अपने काव्य में अभिव्यक्त किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सामान्य जनता की परिवर्तन से संबंधित अपेक्षाएँ ध्वस्त हुई। सामाजिक

---

1. हिंदी विभागाध्यक्ष, श्री पंडितगुरु पार्डीकर महाविद्यालय, सिरसाला, तह. परली, जि. बीड.

विषमताओं ने अधिक विकराल रूप धारण किया। आपसी मेल जोल और भाईचारा नाममात्र बनकर रह गया। समाज ऊँच नीच और अमीर गरीब आदि वर्गों में बँट गया जो आज वर्तमान व्यवस्था में भी उसी तरह बँटा हुआ दिखाई देता है। परिस्थिति एवं परिवेशगत परिवर्तनों के बावजूद भी अभी तक इसमें अपेक्षाकृत परिवर्तन नहीं हुआ है। इसी सामाजिक व्यवस्था को वाणी प्रदान करते हुए दुष्यंत कुमार लिखते हैं –

"नफरत और भेदभाव केवल मनुष्यों तक सीमित नहीं रह गया है अब"[1]

नफरत और भेदभाव जैसी भावनाएँ समाज में इतनी बढ़ गयी हैं कि लगभग हर मनुष्य इससे प्रभावित है। यह स्थिति केवल दुष्यंत कुमार की समकालीन स्थिति है ऐसी बात नहीं है अपितु आज की स्थिति में भी यह चित्रण चरितार्थ होता है। दुष्यंत कुमार को अपने परिवेश से अत्यधिक लगाव दिखाई देता है। वे अपने समाज में अपने आस पास कई असहाय, विवश, लाचार, हताश लोगों को देखकर उनकी अव्यक्त भावनाओं को वाणी प्रदान करने की कोशिश करते हुए दिखाई देते हैं। उनकी यह पीड़ा व्यक्तिगत न होकर सामाजिक है। उनकी कविताएँ सामाजिक पीड़ा का प्रतिनिधित्व करती हुई दिखाई देती हैं। इसिलिए वे स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए नयी राह खोजने के प्रयास से अभिभूत है –

"आह!
वातावरण में बेहद घुटन है
सब अँधेरे में सिमटा जाओ
और सट जाओ और जितने आ सको उतने निकट आओ
हम यहाँ से राह खोजेंगे।"[02]

प्रस्थापित राजनीति एवं राजनीतिज्ञों के दो मुँहेपन को भी दुष्यंत जी ने चित्रित किया हुआ दिखाई देता है। 'जलते हुए वन का वसन्त' संग्रह की कई कविताओं में प्रजातंत्र एवं सामाजिक व्यवस्था में हुए अकल्पित परिवर्तनों का चित्रण देखने को मिलता है। 'तुलना' कविता में व्यंग्यात्मकता द्वारा राजनीतिज्ञों की अविश्वसनीयता का विवेचन सराहनीय है–

"जनता की सेवा करने के भूखे,
सारे दल भेड़ियों से टूटते हैं।"[03]

चुनाव जितने से पहजे सभी राजनीतिक दल सामान्य जनता को आश्वासनों पर आश्वासन देने लगते हैं किंतु चुनाव जीत जाने पर उन सारे आश्वासनों को भूल जाते हैं और फिर उनमें जनहित की भावना की जगह आत्महित की भावना प्रबल हो जाती है। दुष्यंत जी ने नेताओं की इस स्वार्थी प्रवृत्ति, विलासिता और स्वार्थ के लिए दल बदलाव की प्रवृत्ति को भी सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान की है –

"मुझसे बतला, तेरी राहों में, बाधक
हर विघ्न को कुचल दूंगा,
यदि मेरे दल से उकतायी हो
सत्ता के साथ दल बदल दूंगा।"[04]

आज सामाजिक मूल्यों का भी निरंतर विघटन होता जा रहा है। महानगरीय विद्रूपता और भौतिकतावादी सभ्यता के कारण सामान्य व्यक्ति का जीवन असुरक्षित होता जा रहा है। सांप्रदायिक सद्भाव, बंधुता, समानता, समाज से नष्ट होती जा रही है। निरंतर कहीं न कहीं दंगें, फसाद, लूट मार, पथराव, मोर्चा, निषेध, विरोध की घटनाएँ घटित होने से सामान्य व्यक्ति भयग्रस्त और सशंक होकर जीवन यापन कर रहा है। इसका चित्रण भी दुष्यंत जी ने सटीक रूप से किया हुआ है–

"सैर के वास्ते सडकों पे निकल आते थे,
अब तो आकाश से भी पथराव का डर होता है।"[05]

समाज व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार भी एक बहुत बड़ी विकराल समस्या का रूप धारण कर समाज में व्याप्त है। जीवन के हर क्षेत्र में इसका प्रवेश हो चुका है। शासकीय स्तर पर इसे जड़ से मिटाने के प्रयास निरंतर हो रहे हैं किंतु भ्रष्ट व्यवस्था के चलते आज भी यह समस्या समाज में विद्यमान है। इस व्यवस्था के कारण अनेक कल्याणकारी शासकीय योजनाएँ आम आदमी तक सही मायनों में नहीं पहुँच पाती है। इस यथार्थ को भी दुष्यंत जी ने चित्रित किया हुआ दिखाई देता है -

"यहाँ तक आते आते सूख जाती हैं कई नदियाँ,
मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा।"[06]

बदलती हुई सामाजिक व्यवस्था में मानवीय मूल्यों में भी परिवर्तन हो रहे हैं। पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण, मानवीय अनास्था, पारिवारिक विघटन, आपसी सहयोग एवं सद्भाव का अभाव समाज में बढ़ता जा रहा है। जिससे मानवीय एवं सामाजिक मूल्यों का विघटन होता जा रहा है। इस बात को भी अपनी कविताओं द्वारा दुष्यंत कुमार अभिव्यक्त करते हैं

"किंतु आज.......
साक्षी है युग जिसमें
सिर्फ पाँवों तले की जमीन ही नहीं
बल्कि जीवन के मूल्य, तत्व, बदल गए।"[07]

आज हमारी भारतीय सभ्यता पर पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। जिसके कारण मानवीय संबंधों में दूरियाँ निर्माण होकर कृत्रिमता बढ़ती जा रही है। दुष्यंत जी अपनी व्यंग्यात्मक शैली में इस मूल्यगत-ह्रास को भी चित्रित करते हुए लिखते हैं -

"अब नयी तहजीब के पेशे नजर हम,
आदमी को भूनकर खाने लगे हैं।"[08]

मानवीय जीवन में व्याप्त संघर्ष को दुष्यंत जी महत्वपूर्ण मानते हैं। संघर्ष ही जीवन को सही मायनों में निखारता है। उनकी 'कैद परिन्दे का बयान' कविता इसी जीवन संघर्ष एवं प्रबल आस्था को प्रकट करती है। यह संघर्ष केवल समस्याओं से जूझने का ही नहीं बल्कि शोषण, अत्याचार, अन्याय आदि के विरुद्ध भी है। जिसका सामना कर जीवन को सार्थक, सिद्ध और सफल बनाया जा सकता है

"हाँ ! जिस दिन पिंजड़े की
सलाखें मोड़ लूँगा मैं,
उस दिन सहर्ष जीर्ण देह
छोड़ दूँगा मैं।"[09]

दुष्यंत जी की कविता आम आदमी के जीवन संघर्ष से जुड़कर उसमें प्रबल आस्था का निर्माण करने का प्रयास करती हुई दिखाई देती है। संघर्ष में ही जीवन की सार्थकता होने का प्रमाण भी देती है। इस समाज व्यवस्था में निरंतर संघर्षरत रहकर अपने अस्तित्व का निर्माण करने की प्रबल आस्था और विश्वास का निर्माण करती है-

"एक दाँव हारे हैं
एक जीत जायेंगे,

जीवन के कै दिन है
अभी बीत जायेंगे।"[10]

अतः संक्षेप में कहा जाये तो दुष्यंत कुमार की कविताओं में आम आदमी के जीवन संघर्ष, समस्या, यातना, जिजीविषा, सुख, दुःख, विवशता आदि सभी बातों के समावेश के साथ समसामयिक सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक परिवेश का यथार्थ चित्रण और सार्थक अभिव्यक्ति दिखाई देती है जो दुष्यंत की कविता को समाजधर्मी एवं समाज-सापेक्ष बना देती है। इसलिए साहित्य और समाज की अन्योन्याश्रितता की दृष्टि से दुष्यंतकुमार की कविता पूर्ण रूप से सफल एवं सार्थक सिद्ध होती है।

संदर्भ :

1. जभी तो, सूर्य का स्वागत, दुष्यंतकुमार, पृ. 34
2. राह खाजेंगे, आवाजों के घेरे, दुष्यंतकुमार, पृ. 36
3. तुलना, जलते हुए वन का वसन्त, दुष्यंतकुमार, पृ. 58
4. वही, पृ. 66
5. साये में धूप, दुष्यंत कुमार, पृ. 47
6. वही, पृ. 15
7. कहाँ से शुरू करें, यात्रा जलते हुए वन का वसन्त, दुष्यंत कुमार, पृ. 72
8. साये में धूप, दुष्यंत कुमार, पृ. 14
9 कैद परिन्दे का बयान, सूर्य का स्वागत, दुष्यंत कुमार, पृ.
10. एक मित्र के नाम, आवाजों के घेरे, दुष्यंत कुमार, पृ. 76

❑❑❑

आदिवासी दर्शन और हिंदी साहित्य

○ वसावे मुरलीधर बी.[1]

आदिवासी शब्द दो शब्दों 'आदि' और 'वासी' से मिलकर बना है और जिसका अर्थ मूल निवासी होता है। संविधान में आदिवासियों के लिए जनजाति पद का उपयोग किया गया हैं महात्मा गांधीजी ने आदिवासियों को 'गिरिजन' कह कर पुकारा है। आदिवासी याने किसी प्रदेश या राज्य के मूलनिवासी होता है। प्रो. गिलानी के अनुसार "एक विशिष्ठ भू-प्रदेश में रहनेवाला, समान बोली बोलनेवाला, अक्षरों की पहचान न होने वाला समूह गत आदिवासी कहलाता है। डॉ. विवेकी रॉय ने भी पिछड़े, अंचलों, पहाड़ों, जंगलों के निवासियों को आदिवासी माना है। अत: यह स्पष्ट है कि अप्रगत, पिछड़ा, अज्ञानी, अंधश्रद्धालु, प्रकृति की गोद में रहनेवाला, संस्कृति का रक्षक, भारत भूमि की संतान आदिवासी है। सामान्यत: आदिवासी (एबोरिजिनल) शब्द का प्रयोग किसी भौगोलिक क्षेत्र के उन निवासियों के लिए किया जाता है, जिनका उस भौगोलिक क्षेत्र से ज्ञात इतिहास में सबसे पुराना सम्बन्ध रहा हो, परंतु संसार के विभिन्न भूभागों में जहाँ अलग-अलग धाराओं में अलग-अलग क्षेत्रों से आकर लोग बसे हों उस विशिष्ठ भाग के प्राचीनतम अथवा प्राचीन निवासियों के लिए भी इस शब्द का प्रयोग किया जाता है।[1]

सामान्यत: आदिवासियों के सम्बन्ध में विश्व के मानववंश वैज्ञानिकों की जो परिभाषाएँ दी है, वह अधेंरे में ही रही है और आदिवासी संस्कृति के सम्बन्ध में लोकजीवन में, व्यवहार में, धर्म में, रिश्तों में, परंपराओं में, पूर्वाग्रहों में वृद्धि होती रही है। आज भी आदिवासी समाज के लिए कोई विशिष्ठ पहचान नहीं हो पाई है। यह समाज जंगलों, पहाड़ों और नदियों के किनारे ही अपना जीवन यापन कर रहा है। लेकिन हम आदिवासी दर्शन की बात करें तो यह समाज एक सुसंस्कृत, सीधा व्यवहार, प्रकृतिपूजक, जंगल के सभी पशु-पक्षी, पेड़-पौधों को माननेवाला यह समाज की पहचान हमारे सामने दिखाई देती है। उनकी विवाह की परंपरा को तो देश के सभी सभ्य समाज से भी आगे है। ना ही इस समाज में ऊँच-नीच है ना ही दहेजप्रथा/प्रकृति को ही अपना देव माननेवाला यह समाज है। अधिकांश आदिवासी संस्कृति के प्राथमिक धरातल पर जीवनयापन करते हैं। हम निम्न अनुसार कुछ विद्वानों की परिभाषा देख सकते है।[2]

आदिवासी की परिभाषा :

प्रो. गिलानी : "एक विशिष्ठ भू-प्रदेश में रहनेवाला, समान बोली बोलनेवाला, अक्षरों की पहचान न होने वाला समूह गत आदिवासी कहलाता है।"

मराठी शब्दकोष : "नागर संस्कृति से दूर तथा अलिप्त हुए लोक संबंधित प्रान्त के मूलनिवासी ही

---

1. Research Scholar.

आदिवासी है।"

ई.बी. टायलर : "एक सामाजिक भू-प्रदेश पर निवास करनेवाला, एक ही बोली भाषा बोलनेवाला, सांस्कृतिक एकात्मिक, सामाजिक संघठन से रहनेवाला सामाजिक गट ही आदिवासी है।"

आदिवासी दर्शन :

आदिवासी धर्म से तात्पर्य भारतीय आदिवासियों की धार्मिक आस्थाओं के उस मूल स्वरूप से है, जिसे प्रकारांतर में रिलीजन, सरना धर्म, सारि धर्म, जाहिरा धर्म, बोगाइज्म, बार्थो आदि नामों से विहित किया गया है। इस विश्लेषण और मूलस्वरूप निर्धारण चेष्टा के पीछे हमारा उद्देश्य है, अखिल भारतीय स्तर पर धार्मिक स्वरूप खड़ा करने में सहयोगी बनना। जिसके आधार पर भारतीय आदिवासी का धार्मिक आत्मविश्वास जगाया जा सके। जिसके अभाव में इस समय उसकी धार्मिक अस्मिता करीब-करीब नगण्य हो गई है। भारतीय संविधान में आदिवासियों को सांस्कृतिक रूप से एक विशिष्ठ समुदाय माना गया है। आज इक्कीसवीं सदी में भारत के प्रमुख आदिवासी समाज संघठनों ने अन्य धर्म को अपनाने के बजाय सिर्फ और सिर्फ आदिवासी धर्म की माँग सरकार के सामने रखने का प्रयास किया है, क्योंकि यह समाज पूरी तरह से प्राकृतिक जीवन जीता है और प्रकृति पर ही निर्भर है। साथ ही प्रकृति के विविध वृक्ष, पशु, पक्षी, वन्यजीव, पर्वतों, नदियों, पहाड़ों आदि को अपना परमेश्वर मानकर उसकी पूजा करता है। इसलिए स्वतंत्र रूप से आदिवासी धर्म की माँग वह करता है। आज कुछ आदिवासी ने अन्य ईसाई, मुसलमान या बौद्ध धार्मिक समुदाय में धर्मांतरीत होकर आंशिक रूप से अपने आदिवासीपन को खोया है। आदिवासी के लिए उसके अंदर जाना अनंतकाल के लिए गुलामी स्वीकार करनी है। किसी भी धार्मिक व्यवस्था में मुख्यत: तीन पक्ष होते है। दर्शनपक्ष, अनुष्ठानपक्ष और संगठनपक्ष ये तीनों पक्ष विवेचना के दृष्टिकोन से अलग होते हुए भी आपस में एक-दूसरे के परिपूरक है। अत: आदिवासी के अपने अलग तत्व है।[3]

प्रकृति :

प्रकृति ही आदिवासी समाज के जीवन जीने का आधार है। प्रकृति के बिना यह समाज अपाहिज नजर आता है। मुख्य तौर पर आज जो विविध वस्तु, खाने-पीने की चीजें, रहने की व्यवस्था, पशु-पक्षी आदि सब चीजें प्रकृति से ही उन्हें प्राप्त होती है इसलिए भारत को प्रमुख आदिवासी समाज प्रकृति की पूजा करते हैं। आदिवासी समाज किसी भी फसल को जब उगाता है तो पहले वह उस फसल की पूजा करता है और फिर उसका प्रयोग करता है। जब नई प्रकृति का स्वागत करना होता है तो वह अपनी समग्रता से नया होकर उसका स्वागत करता है। घर-द्वार की मरम्मत और लिपाई-पोताई करता है, नए कपड़े जुटाता है और उस अवसर पर परिवारों को बुलाकर पुराने सम्बन्धों को नया करता है।

जीवजंतु-वनस्पति :

आदिवासी समाज पूर्णत: जंगलों पर आश्रित है और इसी जगह वह रहता है इसलिए वह जंगलों में रहनेवाले अन्य जीवजंतु एवं वन्यप्राणी की भी पूजा करता है। वह जंगल के किसी भी जानवर को नुकसान नहीं पहुँचाता है। बल्कि जंगल के राजा एवं बाघ को देवता मानकर उसकी पूजा करता है ताकि वे मनुष्य को नुकसान ना पहुँचा सकें। साथ ही जंगल के पेड, पौधें, फल-फूल वनस्पतियाँ भगवान ने मनुष्य के काम आने के लिए बनाए हैं ऐसी उनकी सोच होती है। अत: यह भी एक आदिवासी समाज की एक खासियत है।"[4]

पृथ्वी :

आदिवासी समाज की दृष्टि में यह पृथ्वी ही सृष्टि का प्राथमिक मूल यथार्थ है। उसी के बाद सूरज, चाँद, तारे और अन्य ग्रह-नक्षत्रों की भूमिका बनती है। पानी, मिट्टी, हवा और ताप प्राथमिक तत्व है। पहले चारों ओर पानी ही पानी था। धरती पानी के अंदर से ऊपर आयी। मछली, केकड़ा और कछुआ धरती के निर्माण में भगवान

के सहयोगी बने। तभी से हर नए वर्ष की शुरुआत सरहूल के समय उनके स्मरण और समान के साथ होती है। हवा और गर्मी द्वारा सुखाए जाने से धरती का ठोस रूप बना। भगवान की पत्नी द्वारा धरती को बराबर करने एवं लीपने-पोतने के क्रम में छुटे हुए पहाड़ बने, नदियाँ बनीं और समतल भूमि बनी तथा वनस्पति उग आयी।

ग्रह-तारे :

प्राचीन समय में भयानक गर्मी थी और उस गर्मी से किस तरह से बचा जा सके यह इस समाज के लोगों को ज्ञान नहीं था। यह चाँद-तारे, ग्रह प्रकृति के सभी देवी-देवता हैं और जब उनको क्रोध आता है तभी यह भयानक गर्मी उत्पन्न करते हैं, इसी देवी-देवता के कोप से बचने के लिए आदिवासी समाज ग्रह, तारे, सूर्य आदि की भी पूजा करता है। सचमुच आदिवासी समाज सृष्टि के सभी नक्षत्रों, ग्रहण, पूर्णिमा आदि सभी प्राकृतिक नियमों का पालन करता है।

पाप-पूण्य :

प्रकृति की गोद में रहनेवाला यह समाज पाप-पुण्य इस संकल्पना को भी मानता है। समाज में अच्छे और बुरे कर्म होते रहते हैं और इस कार्य में जो असामाजिक कार्य होते हैं वह 'पाप' है और जो समाज हित में कार्य होते हैं वह 'पुण्य' है। जो 'पुण्य' का कार्य करता है, वह देहांत के बाद स्वर्ग-नरक कहीं नहीं जाता बल्कि वह वापिस धरती पर ही जनम लेता है। सामाजिक बनकर रहना ही स्वर्ग है और असामाजिक बनना नरक में रहने जैसा है। यह आदमी की पुनर्वापसी है। अत: इस संकल्पना में भी इस समाज का विश्वास दिखाई देता है।[5]

जल-जंगल-जमीन :

आदिवासी प्राचीनकाल से ही पहाड़ों, जंगलों एवं नदियों के किनारे जीवनयापन करता आये हैं और वहीं वह घुलमिल गया है। वहाँ के जल, जंगल और जमीन को ही वह अपना सबकुछ मानता है। उसी को अपना देवी-देवता मानता है। जलदेवता ही हमें अमृत देता है। उसी से ही वह जल प्राप्त करता है साथ ही जंगल से सभी खाने-पीने-रहने की चीजें आती हैं। अत: जंगल भी उनके लिए पूजनीय है। साथ ही जमीन भी उनके लिए फसल देती है, फसल से अनमोल आनंद की अनुभूति होती है। अत: यह समाज जल, जंगल और जमीन को भी अपना देवी-देवता मानता है।"[6]

हिंदी साहित्य में आदिवासी दर्शन :

हिंदी साहित्य के अंतर्गत महाश्वेताजी का 'जंगल का दावेदार' नामक उपन्यास बिहार के कई जिलों के जंगलों में रहनेवाली आदिम जातियों की अनुभूतियों, पुरातन कथाओं, सनातन, विश्वासों तथा जंगलों को माँ की तरह पूजा करने वाले, अमावस की रात के अँधेरे से भी काले- और प्रकृति जैसे निष्पाप- मुण्डा, हो, हूल, संथाल, कोल और अन्य बर्बर (?), असभ्य (?) जातियों पर अन्य जातियों द्वारा शोषण के विरुद्ध जंगल की मिल्कियत के छीन लिए गए अधिकारों को वापिस लेने के उद्देश्य से की गई सशस्त्र क्रांति की महागाथा है।[7]

महुआ मांझी का उपन्यास 'मरंडगोंडा नीलकंठ हुआ' में भी आदिवासी समाज का चित्रण किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में जम्बिरा की पीढ़ी जंगल और प्रकृति के साथ अपना जीवन व्यतीत करते आए थे। उन्होंने कभी जंगल को नुकसान नहीं पहुँचाया, बल्कि उनका संरक्षण किया और उसकी पूजा की। लेकिन बाहरी लोगों के आक्रमण एवं खोज के कारण वहाँ की प्रकृति पूरी तरह से प्रदूषित हो गई है और आदिवासी समाज को नष्ट करती जा रही है। आदिवासी समाज प्रकृति को नष्ट नहीं करते परंतु सरकार एवं ठेकेदार मिलकर प्रकृति को विकृत करने का कार्य करते आ रहे हैं।[8] उसी तरह योगेंद्र सिन्हा का 'वनलक्ष्मी' उपन्यास में भी बिहार के 'हो' आदिवासी जाति के उत्सव, धर्म, त्यौहार, समाज के रीतिरिवाज, परंपरा आदि का विस्तार का अध्ययन किया गया है, साथ ही धर्मांतरण की समस्या का भी चित्रण किया गया है।[9]

'पठार पर कोहरा' राकेश कुमार सिंह का एक प्रसिद्ध उपन्यास है। इस उपन्यास में झारखंड के आदिवासियों

की लय, वेशभूषा, उनकी भाषा, रहन-सहन, उनकी संस्कृति, उनके पर्व, त्यौहार, उनके देवी-देवता, उनका धार्मिक विधि, परंपरा आदि का चित्रण किया है। साथ ही उस समाज का पीढ़ियों से चले आ रह शोषण का भी चित्रण किया गया है।[10] राकेश कुमार सिंह का 'जहाँ खिले है रक्तपलाश' उपन्यास में भी झारखंड के एक उपेक्षित पलामू जिले का चित्रण है जहाँ वन का रोमांचकारी सौंदर्य है, पठार की नैसर्गिक सुषमा भी है, लेकिन अंधा वन-दोहन, लाचार कानून व्यवस्था, अपराध का राजनीतीकरण आदि के कारण वह मृत्यु की पलामू भूमि बन जाती है। इस तरह से हिंदी साहित्य में आदिवासी दर्शन का चित्रण मिलता है।[11]

इक्कीसवीं सदी में आदिवासी समाज के उपर लिखा गया 'मंगलसिंह मुंडा का छैला संदु' उपन्यास में भी आदिवासी दर्शन का चित्रण दिखाई देता है। प्रस्तुत उपन्यास में मुण्डा आदिवासी समाज की खूबियों, परंपराओं, रीतिरिवाज, दृढविश्वास तथा उनका प्रकृति के प्रति प्रेम की झलक देखने का मिलती है। जंगल में रहने वाला यह समाज मनुष्यता की सभी महनीय गुणों से संपन्न है। यह समाज आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से पिछड़ा जरूर है पर मानवीय सांस्कृतिक चेतना का कोई भी अभाव उसमें नहीं है। ना ही वह प्रकृति को नष्ट करता है और न ही उसका दोहन। एक सभ्य समाज जंगलों का ऐसा रक्षण नहीं कर सकता। आदिवासी समाज प्राकृतिक जीवन जीते हुए प्रकृति का प्राणपन से रक्षण करता है।

आज के इस भू-मंडलीकरण के दौर में उपर्युक्त आदिवासी हिंदी उपन्यासों में आदिवासी समाज की प्रकृति के प्रति प्रेम, रक्षा, श्रद्धा, विश्वास आदि गुणों की पहचान होती है। साथ ही आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से पिछड़ा होकर भी मानवीय दृष्टि से वह सभ्य समाज से भी आगे दिखाई देता है। प्रस्तुत उपन्यासों में आदिवासी समाज की सांस्कृतिक एवं आदिवासी दर्शन की प्रतिछवि साफ-साफ हमारे सामने प्रस्तुत होती है।[12]

निष्कर्ष :

अत: उपरोक्त विषय का अध्ययन करने के पश्चात यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय आदिवासी समाज प्रकृति, सृष्टि, पृथ्वी, जीवजंतु, सूर्य, चंद्र, तारे, वन, जल, जंगल, जमीन को ही अपना देवी-देवता मानता है और सिर्फ आदिवासी परंपरा, रीतिरिवाज, खानपान, वेशभूषा आदि को ही अपना धर्म मानता है। वह केवल स्वतंत्र आदिवासी धर्म का पालन करता है। यह समाज प्रकृति की ही पूजा करता है। प्रकृति उसका पालन-पोषण करती है; अत: उसके विविध रूप को वह देवी-देवता मानता है उन्हीं में उसका विश्वास होता है। अन्य समाज की तरह स्वार्थवृत्ति का शिकार हो वह प्रकृति को नष्ट नहीं करता बल्कि उसका संरक्षण करता है।

संदर्भ :

1. प्रा. डॉ. पी.डी. देवरे, 'विचार मंथन : मानवाधिकार आणि आव्हाणे', अथर्व पब्लिकेशन्स, सं. 2017, पृ. 167
2. रमणिका गुप्ता, 'आदिवासी साहित्ययात्रा', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2018, पृ. 44
3. रामदयाल मुंडा, 'आदिधरम', राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 2009, पृ. 11
4. डॉ. शशिकांत सोनवणे, 'भारतीय आदिम लोकसाहित्य', अभय प्रकाशन, कानपुर, पृ. 9
5. डॉ. शशिकांत सोनवणे, 'भारतीय आदिम लोकसाहित्य', अभय प्रकाशन, कानपुर, सं. 2015, पृ. 166
6. वही, पृ. 111
7. महाश्वेता देवी, 'जंगल के दावेदार', राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1981, पृ.1
8. महुआ मांझी, 'मरंगगोंडा नीलकंठ हुआ', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2012, पृ. 11
9. प्रो. बी.के. कलासवा, 'हिंदी में आदिवासी जीवन केंद्रित उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन', शांति प्रकाशन, हरियाणा, सं. 2009, पृ. 67
10. वहीं, पृ. 88
11. https://www.pustak.orglindex.php/books/bookedetails/9042
12. डॉ. उषाकीर्ति राणावत, 'आदिवासी केंद्रित हिंदी साहित्य', अतुल प्रकाशन, कानपुर, सं. 2012, पृ. 95

❑❑❑

सुशीला टाकभौरे के साहित्य में दलित जीवन की समस्याएँ

○ डॉ. प्रा. भरत सु. जवंजाल[1]

हिंदू समाज व्यवस्था में वर्ण व्यवस्था के आधार पर समाज को चार वर्णों में विभाजित किया गया– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अंतिम वर्ग के व्यक्तियों पर अनेक प्रकार की नियोग्यताएँ लाद दी गई और ये निर्योग्यताएँ दिन प्रतिदिन कठोर होती गई जिससे रीति–रिवाज, अंधविश्वास एवं रूढ़ियाँ जीवन के एक आवश्यक अंग के रूप में विद्यमान होती चली गई। दलित समाज भी इससे अछूता नहीं है। निम्न वर्ग को अस्पृश्य मानकर उन्हें समाज व धर्म से बहिष्कृत कर दिया गया, यहाँ तक कि विद्योपार्जन पर भी रोक लगी हुई थी, जबकि धार्मिक संस्कार जैसे उपनयन संस्कार दलित के लिए नहीं थे। मंदिरों में पूजा करना निषेध था। इस प्रकार हिन्दू धर्म में व्याप्त परम्परा और रूढ़ियों ने दलित वर्ग का शोषण ही किया है। मोहनदास नैमिशराय ने अपने कथा साहित्य में सामाजिक परम्परा एवं शोषण का वर्णन बड़े मार्मिक रूप में व्यक्त किया है। मोहनदास नैमिशराय ने 'अपना गाँव' कहानी में ऐसी अनैतिक परम्परा और रूढ़ियों को दिखाया है, जो नारकीय जीवन जीने को मजबूर व बाध्य करती है। "यूँ वह दस सालों से बराबर लड़ रहा था, गाँव की परम्पराओं से जिन्हें ठाकुरों तथा वामनों ने मिलजुल कर बनाया था। गाँव में उसी न्याय के प्रतीक थे मंदिर और हवेली।"

दलित शब्द का अर्थ हमारे सामने दो प्रकार से आता है, एक संकुचित अर्थ में और दूसरा व्यापक अर्थ में। दलित शब्द का संकुचित अर्थ यह होता है, दलित वह है जिन्हें सदियों से उच्च वर्गीय लोगों ने अछूत माना है। समाज का जो वर्ग आर्थिक, सामाजिक रूप से पिछड़ा हो उसे दलित वर्ग कहा जाता है। व्यापक अर्थ में दलित कोई जाति नहीं; बल्कि ऐसा मनुष्य, जो दीन हो, लाचार हो, उन्हें दलित कहा जाता है। इसके अंतर्गत किसान, बंधुआ मजदूर, नारी अपमानित तिरस्कृत सभी लोग आ जाते हैं। दलित शब्द के अर्थ को देखने के पश्चात दलित शब्द की परिभाषा पर विचार करना आवश्यक है। प्रख्यात दलित कवि डॉ. एन सिंह की मान्यता है, "दलित वह है जिसका दलन एवं शोषण होता है।" डॉक्टर राजेंद्र यादव के अनुसार, "दलित की श्रेणी में स्त्री, पिछड़ी जाति एवं दलित वर्ग के लोग आते हैं।" प्रख्यात दलित लेखिका सुशीला टाकभौरे ने अपनी रचनाओं में ऐसे अनेक प्रसंगों का निर्माण किया है, जो दलितों की समस्याओं को उजागर कर पाठक तक पहुँचाते हैं।

हमारे भारतीय समाज में गुरु को ईश्वर से भी बड़ा दर्जा दिया गया है, लेकिन कई गुरुओं ने अपने शिष्य

---

1. सहयोगी प्राध्यापक, गो.से. विज्ञान, कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, खामगांव, जिला – बुलढाणा।

की शिक्षा में बाधा डाली है। दलित निम्न वर्ग को जब स्कूल, कॉलेज संस्थानों में भेदभाव सहना पड़ता है तब उसका विरोध नहीं दलित वर्ग करता है और न ही उच्च वर्ग इसीलिए सिलसिला आज तक चलता आ रहा है और कभी खत्म नहीं होता 'नीला आकाश' उपन्यास में भीखू जी और चंदरी अपनी पाँचो संतानों को उच्च शिक्षा दिलाने की हर संभव कोशिश करते हैं, लेकिन सवर्ण मास्टरों द्वारा उन पाँचों को आठवीं कक्षा से आगे नहीं बढ़ने दिया जाता है। चंदेरी अपना दुःख व्यक्त करते हुए कहती है कि, "हम सिर्फ अपने बच्चों को दोष देते हैं बच्चों से यह कहना कि पढ़ लिख लो जिंदगी सुधर जाएगी आसान है मगर छुआछूत, भेदभाव, दुत्कार, अपमान, हिंसा, अत्याचार के साथ पढ़ पाना बहुत कठिन है। इतिहास की एक घटना के अनुसार गुरु द्रोणाचार्य द्वारा एकलव्य को धनुष की शिक्षा देने पर उसके दलित होने पर गुरु दक्षिणा के रूप में उसका अंगूठा कटवा लिया गया था। आज भी दलितों को शिक्षा के क्षेत्र में ऐसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। शिक्षा के क्षेत्र में अनुसूचित जातियों का स्थान अत्यंत दयनीय है। दलित वर्ग में शिक्षा के प्रति जागरूकता की कमी है। वर्तमान समय में दलितों के लिए जो शिक्षा व्यवस्था की गई है उससे कुछ हद तक दलितों के साथ समान व्यवहार होने लगा है।

हमारे भारतीय समाज में नारी की स्थिति दोयम दर्जे की होती है उसमे भी दलित वर्ग की नारी की स्थिति अत्यंत दयनीय होती है। समाज के उच्च वर्ग के लोग दलित स्त्रियों का शोषण करते हैं साथ ही दलित स्त्रियों को अपने परिवार के कुछ नियमों में बंध कर जीना पड़ता है। दलित वर्ग बचपन से ही अपने पैतृक रोजगार को अपना लेता है इसीलिए शिक्षा से वंचित रह जाता है। दलित परिवार में गरीबी की वजह से शिक्षा के साधनों के अभाव के कारण दलित परिवारों में स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखा जाता है और उन्हें खेतों और घर का काम आदि करना पड़ता है। शिक्षा क्षेत्र में भी दलित लड़कियाँ सवर्णो के शोषण एवं मानसिक अत्याचारों का शिकार बनती हैं वह अपनी समस्या किसी के सामने व्यक्त नहीं कर पाती 'नीला आकाश' उपन्यास में भीखू जी की बेटी राधा अपनी मां चंदरीसे शिकायत करते हुए कहती है कि, "माँ मक्खन चतुर्वेदी मास्टर हमको घूर घूर कर देता है। बनिया गुरुजी भी हमें घूरता रहता है, वैसे तो छुआ छूत मानी जाती है लेकिन कभी कभी मेरा हाथ पकड़ लेते हैं। हमें उनसे डर लगता है।" चंदरी की बेटी शारीरिक, मानसिक प्रताड़ना का शिकार बनती हैंप इस प्रकार तुच्छ एवं पुरुषवादी मानसिकता का शिकार लेखिका भी बनी जिसका कि उन्होंने 'शिकंजे का दर्द' इस आत्मकथा के माध्यम से अपनी ही नहीं पूरे दलित समाज की शोषण कथा कही हैं। स्त्रियाँ चाहे जितना शिक्षित हो जाएँ लेकिन उनको पुरुषों से कम समझा जाता है। पुरुष उनके साथ घर में मारपीट, गाली-गलौज आदी करते हैं यह सब महिलाओं को सहना पड़ता है। एक दलित नारी होने के नाते मायके में उसे समझाया जाता है कि, ससुराल में ही उनका गुजारा होता है और वह यह सोचकर वही रह जाती है। और यही सब सजती है।

हमारे भारतीय समाज उच्च में जातीयता के बीज बोकर जाहूल मानकर उनका जीवन नरक बना दिया है। आज भी गाँव में दलितों के साथ सवर्ण अच्छा व्यवहार नहीं करते व दलितों को अछूत मानकर अपने बराबर मानकर साथ में बैठने नही देते हैं। इसके भेदभाव एवं अस्पृश्यता की वजह से दलितों के जीवन में दुःख के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता। दलितों का प्राकृतिक संसाधनों पर से अधिकार छीन लिया गया जिसकी वजह से उन्हें प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जमींदारों पर निर्भर रहना पड़ता है। सुशीला टाकभौरे ने इस समस्या का वर्णन अपने अधिकांश रचनाओं में किया है। 'बोधिसत्व चिंतित है' कविता में कवयित्री कहती है "जब तक संसार में अशांति है, असत्य है, तृष्णा है, अधर्म है, हिंसक नीति है, क्रांति है, मानव-मानव के बीच भेदभाव है, समाज में समानता, मानवता, का भाव है निवारण मुक्ति की निंदा है।" शिक्षा का स्थान स्कूल जिसको मंदिर कहा जाता है वहा भी दलित बच्चों के साथ भेद भाव किया जाता है। उन्हें दलित अछूत मानकर

कक्षा में सबसे पीछे बिठाया जाता है वहीं उच्च वर्णीय बच्चों को आगे बिठाया जाता है। उन्हें स्कूल में सबके साथ बैठकर भोजन नहीं करने दिया जाता नाही घड़े के पानी को छूने दिया जाता। इस तरह के अनुभवों को उन्होंने अपनी मेरा बचपन कहानी में प्रदर्शित किया है। जैसे "कक्षा में ब्राह्मण बनियों के बच्चों को सबसे आगे बिठाया जाता था वहीं पिछड़ी जाति के बच्चों को सबसे पिछे बिठाया जाता था।" स्कूल में सभी शिक्षक सभी बच्चे मेरी जाति के बारे में जानते थे। सबके मन में मेरे लिए एक निश्चित दूरी थी में स्कूल में नहाकर, अच्छे कपड़े पहेनकर जाता था फिर भी में अध्यापक, व चपरासी के बच्चों के लिए अछूत ही था। अछूत मानकर उसके साथ कैसे कैसे भेद भाव किया जाता है इसका पता चलता है। एक दलित रचनाकार होने के नाते सुशीला टाकभौर ने यह वर्णन सटीक किया है।

शिक्षा ही बेरोजगारी का मूल कारण है। दलितों को उच्च वर्ण के लोग आगे बढ़ने नही देते है क्योंकि उन्हें चिंता होती है कि दलित वर्ण अगर शिक्षित हो जाए तो उन लोगों के पुश्तैनी कार्य कौन करेगा। दलित लोगों को प्राथमिक सुविधाएँ प्राप्त नहीं हो पाती, इसीलिए वह बच्चों को पढ़ा नहीं सकता। नई पीढ़ी अनपढ़ रह जाने के कारण साफ सफाई का काम उन्हें करना पड़ता है। अगर कोई बच्चा पढ़ लिखकर नौकरी की तलाश करता है तो वहा भी अछूत होने के कारण उसे नंबर कम दिए जाते हैं ताकि उसका चुनाव ना हो। यही समस्याएँ उसके जीवन में आती है। उसे रामचंद्र हीन शब्दों में कहते है, "केवल पढ़ाई लिखाई के बाद उन्हें काम देने की उसकी की व्यवस्था भी हमको ही करनी पड़ेगी तब हमारी समस्या सुलझ सकेगी।" उच्च शिक्षा के महत्व को अगर भली भांति जान समझ ले तो छुटकारा पाया जा सकता है। बेरोजगारी का मूल कारण व्यवसायों के प्रति दलित वर्ग का झुकाव भी है।

आवास की समस्या दलितों के लिए सबसे बड़ी समस्या है, क्योंकि उन्हें सफाई और उच्च वर्ग की सेवा करने का कार्य सौंपा गया है। दलितों के आवास गाँव के बाहर गंदी बस्तियों में होते हैं। उनके आवास समान सवर्णों की बस्तियों के आसपास नहीं बनाए जाते थे, लेकिन शहरों में अब अब यह समस्या इतनी ज्यादा नहीं, परन्तु सवर्ण वर्ग अभी भी दलितों को अपने पास निवास नहीं करने देता या फिर जहाँ दलित परिवार निवास करता है, वहाँ से वह स्वयं ही दूर चला जाता है। 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में लेखिका ने दलितों की बस्ती एवं उसकी आवास की चर्चा की है। मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले के बानापुरा गाँव में एक दलित परिवार में उनका जन्म हुआ। अपने घर के आस-पास के माहौल का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है कि, "रेलवे स्टेशन के दूसरी तरफ 'खोल' में मजदूर वर्ग के पिछड़े लोगों की बस्तियाँ थी। हम लोग पिछड़ों से भी पिछड़े थे। ऊँच-नीच, जातिभेद की भावना सब तरफ व्याप्त थी। तब गाँव में बहुत हुआछूत थी। अछूत भंगी हरिजनों के घर गाँव के बाहर रहते थे, हिंदू महाजनों की बस्ती से दूर, कच्चे खपरैल घर।" इस तरह की समस्याएँ आज भी गाँव में देखने को मिलती है। खासकर उत्तर प्रदेश के जिलों में।

सुशीला टाकभौरे ने अपने साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से युगों से रहे हैं, दलितों पर हो रहे शोषण को उजागर करने के साथ ही दलित वर्ग में लाने का सफल प्रयास भी किया है। ऊँच-नीच का भेदभाव, अस्पृश्यता, नारी जीवन की समस्याएँ, बेरोजगारी, आवास संबंधी दिक्कतें, दलितों पर वाले अन्याय, अत्याचार आदि को उन्होंने अपनी रचनाओं का केंद्र बिंदु बनाया है।

सन्दर्भ :

1. हिंदी आंचलिक उपन्यासों में दलित जीवन, डॉ. भरत सगरे, दिव्य डिस्ट्रीब्यूटर्स, प्रथम संस्करण 2011, पृ. 19
2. हंस पत्रिका, नई दिल्ली, मासिक 2004, पृ. 4.
3. नीला आकाश-सुशीला टाकभीरे, विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर, प्रथम सं. 1994, पृ. 38
4. वही, पृ. 39

5. मेरे काव्य संग्रह (यह तुम भी जानो), सुशीला टाकभौरे, शरद प्रकाशन, नागपुर, प्रथम सं. 1993, पृ. 42
6. टूटता वहम, सुशीला टाकभीरे, शरद प्रकाशन, नागपुर प्रथम सं. 2013, पृ. 17
7. संघर्ष कहानी संग्रह, सुशीला टाकभौरे, शरद प्रकाशन, प्रथम सं. 2013, पृ. 86
8. शिकंजे का दर्द–सुशीला टाकभौरे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं. 2011, पृ 09

❑❑❑

साहित्य और समाज का अंतःसंबंध

○ रत्ना सदाशिव गौडा[1]

संक्षिप्ति :

साहित्य समाज का दर्पण है। व्यक्ति समाज की इकाई है। इन दोनों का संबंध बहुत पुराना और घनिष्ठ है। एक सिक्के के दो पहलू सा समाज और साहित्य साथ निभाते हैं। समाज के हर पहलुओं और परिवेश का सूक्ष्म अध्ययन साहित्य द्वारा प्रस्तुत होते हुए लोगों के मन में उच्च विचारों को पहुँचाने का सबसे प्रभावित और आसान कार्य सहित्य द्वारा होता है। इन दोनों का संबंध कागज और लेखनी सा है, क्योंकि एक नहीं है तो दूसरे की कोई सत्ता संभव नहीं है। समाज समाज के हित के लिए ही साहित्य का जन्म हुआ है और समाज का विकास ही साहित्य का ध्येय है। समाज ही साहित्य का विषय वस्तु है और एक दूसरे के पूरक रहे हैं।

साहित्य का सृजन समाज के बिना नहीं हो सकता है। और, समाज का हल-चल ही सहित्य का केंद्रीय विषय होता है। समाज के छोटे-मोटे विषय को लेकर उद्देश्य के साथ अर्थ-भाव, उत्पन्न करते हुए साहित्यकार ने साहित्य का रचना करके समाज में एक नये बदलते स्वरूप लाना चाहता है। इसका प्रभाव लोगों पर पड़ते हुए उनके जीवन शैली सुधारने के लिए मदद होती है। रयूटर के अनुसार- 'समाज एक अमूर्त धारणा है, जो एक समूह सदस्यों के बीच पाए जाने वाली व्यक्ति एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं या संबद्ध है।'[1]

समाज और साहित्य साथ चलने वाले पैरों सा बनकर एक दूसरे को पूरक रहे हैं। जब समाज का उद्भव हुआ तब से साहित्य सृजन भी शुरू हुआ। साहित्य का विषय वस्तु समाज ही है और आदिकाल से लेकर अब तक साहित्यकारों ने अपने-अपने विचारों को लेकर अपने उस समय की घटनाओं के आधार पर साहित्य रचना किए हैं। अर्थात् साहित्यकारों ने अपने-अपने समय का प्रतिनिधि बनकर साहित्य द्वारा व्यक्तियों के सर्वत्र अभिवृद्धि, विकास, नवीन अनुभव, उनके विचारों, भाव-बोध को आदान-प्रदान करनेवाली विशेष कार्य कर रहे हैं। साहित्य सुंदर रचनात्मक कला भी है और इसके साथ-साथ साहित्य दर्शन और विज्ञान भी है। कलात्मक रूपों में लोगों की रुचि के अनुसार उनको प्रभावित करते हुए सुधार लाने की कोशिश साहित्यकारों द्वारा साहित्य में चलता है। समाज के हरेक रूप से यानी प्राकृतिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक और भावनात्मक, विचारात्मक रूप से हरेक विषय अथवा घटनाओं से होनेवाले प्रयोजन समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए उसमें सकारात्मक बदलाव लेकर समाज के लोगों पर ज्ञानात्मक प्रेरणा देना ही साहित्य का सच्चा कार्य है। उच्च समाज

1. प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग, एल.बी. तथा एस.बी.एस. कॉलेज, सागर, जिला-शिवमोग्गा, कर्नाटक- 577401

निर्माण करने में साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान है ।

कहानियाँ, कविताएँ, नाटक, उपन्यास रेखाचित्र निबंध आदि साहित्यिक विधाओं के द्वारा साहित्यकारों ने समाज की विसंगतिओं, अनाचार आदि कुकर्म से बाहर करते हुए लोगों के मन में साहित्यक रुचि रखना चाहा है और सिर्फ साहित्य ही लोगों के मन तक पहुँचने का सबसे आसान और प्रभावित मार्ग होने के कारण से यहाँ बेहतरीन विचारों को लेकर साहित्य सृजन करना बहुत जरूरी है। इससे लोगों के बीच अंतः संबंध सुधारने से ही उत्तम समाज की कल्पना कर सकते हैं। इस प्रकार साहित्य और समाज एक दूसरे को पूरक है।

साहित्यकारों ने मानवीय मूल्यों, धर्म, भाव और संस्कृति आदि की पहचान आम लोगों तक साहित्य द्वारा पहुंचाते है। साहित्य का प्रभाव समाज पर बहुत ज्यादा ही है। समाज की उन्नति के लिए प्रतीकात्मक पात्र चित्रण को लेकर साहित्य रचना करने से समाज के कोने कोने में रह रहे लोगों तक विषय- विचारों को पहुंचाकर जाग्रत भाव स्थापित कर सकते हैं। क्योंकि साहित्य से समाज में बहुत कुछ बदलाव होता है और साहित्य के बिना समाज का और समाज के बिना साहित्य का अस्तित्व संभव ही नहीं है। समाज की गतिविधियों से साहित्य में अवश्य प्रभाव होता है। इस साहित्य और समाज के बीच संबंध स्थापित करनेवाला अथवा संबंध को बचाने-बढ़ाने वाला साहित्यकार ही है। इसलिए साहित्य और समाज को जोड़नेवाला साहित्यकार का यहाँ महत्वपूर्ण स्थान रहा है। साहित्यकार समाज का कुशल चित्रकार, प्रतिनिधि और वास्तविकता का दर्शक होता है। प्रस्तुत समाज के प्रतिनिधियों पर कल्पना, कला और उच्च भाषा प्रयोग करते हुए रसात्मक बनाकर आकर्षित चीज बनाने वाला साहित्यकार को भी साहित्य और समाज के साथ अपना अनूठा संबंध बनाए रखना बहुत आवश्यक होता है। समाज के नवनिर्माण करने में साहित्य का बहुत बड़ा योगदान रहा है। जीवन की सत्यता, असलीयत, अलग-अलग क्षेत्रीय वैशिष्ट्य को सभी तक पहुंचाने की आसान मार्ग साहित्य है। "साहित्यकार द्रष्टा भी है और सृष्टा भी। वह आँखे खोलकर समाज को देखता है और पुनः उसके शोधन का उपाय करता है। अपनी कल्पना की विलक्षण शक्ति से वह भविष्य का निर्माण करता है। समाज का मार्गदर्शन करता है। वह अपनी कल्पना से समाज का आदर्श की ओर प्रेरित करता है समाज साहित्य से प्रेरणा और जीवन ग्रहण करता है।"[2]

साहित्य व्यक्ति की चाहत को पूरी करते हुए उसके दिमाग पर नये विचारों को भरने के साथ-साथ विमर्शात्मक और आलोचनात्मक गुण पैदा करने के लिए मदद करता है। साहित्य का संबंध व्यक्ति के साथ, राजनीति, संस्कृति, सामाजिक चेतना, समसामायिक विचारधाराएँ आदि पर बहुत गहरा है। साहित्य समाज की संस्कृति का संवाहक और संरक्षक रहा है। संस्कृति का संबंध मानवीय मूल्यों, धर्म, आचार-विचार, नियति और संस्कारों से होता है। इन सभी विचारों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ले जाने की वाहक है। "सामाजिक प्राणी होने की वजह से मनुष्य अपने लिए एक सुंदर समाज की रचना हेतु चिंतन-मनन करता है, उससे साहित्य के क्रमिक विकास को बल मिलता है। समाज में मनुष्य के एकाकीपन से उत्पन्न उदासीनता को, साहित्य मनोरम क्षणों में बदल देने की क्षमता रखता है। साहित्यकार का जीवन उसके उपने समाज में ही व्यतीत होता है, वही जीवन के अभावों से जूझता और भावो में आनंद प्राप्त करता है। सुख-दुःखात्मक परिस्थितियों और घटनाओं से संघर्षरत रहता है।"[3]

व्यक्ति की सामाजिक चेतना, नई विचार धाराओं को जन्म देते हुए उच्च ज्ञानी की विचारधाराओं को सामान्य से सामान्य तक पहुंचाने का काम साहित्य का है। साहित्यकार अपनी साहित्य में प्रभावित पंक्तियाँ या शब्दों के द्वारा लोगों में इच्छा शक्ति, दृढ़ विश्वास पैदा करते हुए नई क्रांति की प्रेरणा देती है। "जब समाज में व्यक्ति संघर्ष, द्वंद्व एवं अंतः द्वंद्व के दौर से गुजरता है। शोषण का शिकार होता है, आर्थिक विषमताओं का सामना करता है या फिर ऊँच-नीच की भावना और छुआछूत जैसी समस्याओं से आहत होता है तो वहाँ वह सामाजिक वैषम्य का अनुभव करता है। उसकी इसी अनुभूति के परिणाम स्वरूप सामाजिक चेतना का उदय होता है।"[4] साहित्य

और समाज को जोड़नेवाला साहित्यकार नि:स्वार्थी, निस्पक्षपाती और उच्च ज्ञानी होकर समाज में प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करते हुए इन सारे विचारों को साहित्यिक शैली में प्रस्तुत करता है। "साहित्यकार एक व्यक्ति के तौर पर स्वयं ही प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करता है। और समाज को भी इसके लिए प्रेरित करता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति अपने वर्ण भेद को भुलाकर सिर्फ और सिर्फ समाज की इकाई के रूप में व्यक्ति के हित को ध्यान में रखता है। और अपने दायित्यों एवं कार्यो का निर्वहण जनहित में करता है या करने का प्रयास करता है।"[5] कुल मिलाकर साहित्य समाज का दर्पण है, समाज साहित्य का केंद्र विषय वस्तु है। एक दूसरे का संबंध बहुत गहरा पुराना और शाश्वत भी है।

निष्कर्ष

समाज और साहित्य कभी एक दूसरे से अलग नहीं हो सकते हैं। जो समाज की इकाई व्यक्ति को लेकर सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखते हुए हर अच्छाई और बुराईयों पर ध्यान देकर शिक्षा प्रदत्त विचारों को समझते हुए साहित्य सुखद और विकासात्मक समाज निर्माण की कोशिश करती है। समाज साहित्य के लिए नवीनतम विषयवस्तु देते हैं। विषय को क्रियाशील विचारधाराओं के अंतर्गत ले जाकर मजबूत बनाकर समाज को साहित्यिक रूप में वापस लाने की कोशिश साहित्यकार द्वारा होता है। इन दोनों के बीच क्रियात्मक, सकारात्मक, विचारात्मक रूप में साहित्यकार का कार्य श्लाखनीय होता है। इनसे ही समाज और साहित्य का संबंध जीवित रहा है। अर्थात साहित्य और समाज के बीच रहे अंत: संबंध साहित्यकार के कार्य से ही संभव है।

संदर्भ :

1. विश्वेश्वरय्या (अनु), समाज, पृ. 25
2. डॉ. गोविंदलाल छाबडा, हिंदी निबंध (साहित्य और समाज), पृ. 246
3. डॉ. गोविंदलाल छाबडा, हिंदी निबंध (साहित्य और समाज) पृ. 237
4. सुनीता आनंद (अप्र शो प्र.) उदयभानु हंस के काव्य में समाजिक चेतना, पृ. 41
5. सुनीता आनंद (अप्र शो प्र.) उदयभानु हंस के काव्य में समाजिक चेतना, पृ. 42

❑❑❑

हिंदी साहित्य के 'उपन्यास सम्राट' मुंशी प्रेमचंद

❍ डॉ. शेखर नामदेव[1]

संक्षिप्ति :

प्रेमचंद को हिंदी और उर्दू के महानतम लेखकों में शुमार किया जाता है। प्रेमचंद की रचनाओं को देखकर बंगाल के विख्यात उपन्यासकार शरतचंद्र चट्टोपाध्याय ने उन्हें 'उपन्यास सम्राट' की उपाधि दी थी। प्रेमचंद ने कहानी और उपन्यास में एक नई परंपरा की शुरुआत की जिसने आने वाली पीढ़ियों के साहित्यकारों का मार्गदर्शन किया। प्रेमचंद ने साहित्य में यथार्थवाद की नींव रखी। प्रेमचंद की रचनाएं हिंदी साहित्य की धरोहर हैं।

प्रस्तावना

प्रेमचंद की हर रचना बहुमूल्य है जो अपने समय की सच्चाई को बयां करती है और उनकी खासियत है कि वे आज भी प्रासंगिक हैं। प्रेमचंद की कहानी ईदगाह आपने भी शायद जरूर पढ़ी होगी। हामिद को मेला घूमने के लिए उसकी दादी अमीना ने तीन पैसे दिए। मेले में किस्म-किस्म की मिठाईयां, झूले और तोहफे बिक रहे थे। जहाँ दूसरे बच्चों ने मेले से अपने लिए खिलौने, भिश्ती और मिठाइयां खरीदी, वहीं चार या पांच साल के हामिद ने दादी के लिए चिमटा खरीदा। 6 पैसे के चिमटे को मोलभाव कर 3 पैसे में खरीद लेता है। क्योंकि रोटियाँ सेकते समय दादी का हाथ तवे से जल जाता था और पैसों की कमी की वजह से दादी चिमटा नहीं खरीद पा रही थी। हामिद ने अपने बचपन की ख़्वाहिशों को भुलाकर अपनी उम्र से बड़ा हो गया। गरीबी कैसे इंसान को उम्र से पहले बड़ा बना देती है, इस मनोविज्ञान को ईदगाह की कहानी खोल कर रख देती है।

प्रेमचंद का मूल नाम धनपतराय था और उनका जन्म 31 जुलाई 1880 को वाराणसी के नजदीक लमही गांव में हुआ था। पिता का नाम अजायब राय था और वे डाकखाने में मामूली नौकरी करते थे। वे जब सिर्फ आठ साल के थे तब मां का निधन हो गया। पिता ने दूसरा विवाह कर लिया लेकिन वे मां के प्यार और वात्सल्य से महरूम रहे। प्रेमचंद का जीवन बहुत अभाव में बीता।

जब उनकी उम्र महज 15 साल थी तो पिता अजायब राय ने उनकी शादी उम्र में बड़ी लड़की से करा दी। शादी के एक साल बाद पिता का निधन हो गया और अचानक ही उनके सिर पांच लोगों की गृहस्थी और खर्च का बोझ आ गया। प्रेमचंद को बचपन से ही पढ़ने का शौक था और वे वकील बनना चाहते थे। लेकिन

---

1. डॉ. शेखर नामदेव खडसे, सहायक प्रोफेसर, जी. एस. महाविद्यालय, खामगाँव।

गरीबी की मार के कारण उच्च शिक्षा प्राप्त करने का सपना अधूरा रह गया। प्रेमचंद को बचपन से ही उर्दू भाषा की शिक्षा मिली थी। हिंदी साहित्य के इतिहासकार बताते हैं कि उन्हें उपन्यास पढ़ने का ऐसा चस्का था कि बुकसेलर की दुकान पर बैठकर ही उन्होंने सारे उपन्यास पढ़ लिए और दो-तीन सालों के भीतर सैकड़ों उपन्यास पढ़ डाले।

13 साल की उम्र में से ही प्रेमचन्द ने लिखना शुरू कर दिया था। शुरुआत में कुछ नाटक लिखे और बाद में उर्दू में उपन्यास लिखा। इस तरह उनका साहित्यिक सफर शुरू हुआ जो उनके अंतिम समय तक उनका हमसफर बना रहा।

आर्थिक तंगी और पारिवारिक समस्याओं के कारण उनकी पत्नी मायके चली गई और फिर कभी नहीं लौटी। वे उस समय के धार्मिक और सामाजिक आंदोलन आर्य समाज से प्रभावित रहे। प्रेमचंद विधवा विवाह का समर्थन करते थे और 1906 में अपनी प्रगतिशील परंपरा को जीवन में ढालते हुए उन्होंने दूसरा विवाह बाल-विधवा शिवरानी देवी से किया। इसके बाद उनकी जिंदगी के हालत कुछ बेहतर हुए। अध्यापक से प्रमोशन होकर वे स्कूलों के डिप्टी इंस्पेक्टर बने और इसी दौरान उनकी पांच कहानियों का संग्रह 'सोजे वतन' छपा जो बहुत लोकप्रिय हुआ।

प्रेमचंद आजादी से पहले के समय, समाज और अंग्रेजी शासन के बारे में लिख रहे थे। उन्होंने जनता के शोषण, दुख, दर्द और उत्पीड़न को बहुत बारीकी से महसूस किया और उसे लिखा। लेकिन अंग्रेजी हुकूमत को ये गवारा नहीं था। 1910 में उनकी रचना 'सोज़े-वतन' (राष्ट्र का विलाप) के लिए हमीरपुर के जिला कलेक्टर ने तलब किया और उन पर जनता को भड़काने का आरोप लगाया। उस समय वे नवाबराय के नाम से लिखते थे। उनकी खोज हुई और उनकी आंखों के सामने 'सोज़े-वतन' की सभी प्रतियाँ जला दी गईं। कलेक्टर ने उन्हें बिना अनुमति के लिखने पर भी पाबंदी लगा दी।

20वीं सदी में उर्दू में प्रकाशित होने वाली 'जमाना' पत्रिका के संपादक और प्रेमचंद के घनिष्ठ मित्र मुंशी दयानारायण निगम ने उन्हें प्रेमचंद नाम से लिखने की सलाह दी। इसके बाद नवाबराय हमेशा के लिए प्रेमचंद हो गए और इसी नाम से लिखने लगे।

प्रेमचंद का रचना संसार बहुत बड़ा और समृद्ध है। बहुआयामी प्रतिभा के धनी प्रेमचंद ने कहानी, नाटक, उपन्यास, लेख, आलोचना, संस्मरण, संपादकीय जैसी अनेक विधाओं में साहित्य का सृजन किया है। उन्होंने कुल 300 से ज्यादा कहानियाँ, 3 नाटक, 15 उपन्यास, 10 अनुवाद, 7 बाल-पुस्तकें लिखीं। इसके अलावा सैकड़ों लेख, संपादकीय लिखे जिसकी गिनती नहीं है। हालांकि उनकी कहानियां और उपन्यास उन्हें प्रसिद्धि के जिस मुकाम तक ले गए वो आज तक अछूता है।

प्रेमचंद ने शुरुआती सभी उपन्यास उर्दू में लिखे जिनका बाद में हिंदी में अनुवाद हुआ। 1918 में 'सेवासदन' उनका हिंदी में लिखा पहला उपन्यास था। इस उपन्यास को उन्होंने पहले 'बाजारे हुस्न' नाम से उर्दू में लिखा लेकिन हिंदी में इसका अनुवाद 'सेवासदन' के रूप में प्रकाशित हुआ। यह एक स्त्री के वेश्या बनने की कहानी है। हिंदी साहित्यकार डॉ. रामविलास शर्मा के मुताबिक सेवासदन भारतीय नारी की पराधीनता की समस्या को सामने रखता है। इसके बाद 1921 में किसान जीवन पर उनका पहला उपन्यास 'प्रेमाश्रम' प्रकाशित हुआ। अवध के किसान आंदोलनों के दौर में 'प्रेमाश्रम' किसानों के जीवन पर लिखा हिंदी का शायद पहला उपन्यास है। फिर 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'निर्मला', 'गबन', 'कर्मभूमि' से होता हुआ उपन्यास लिखने का उनका यह सफर 1936 में 'गोदान' के उफक तक पहुंचा।

उपसंहार

प्रेमचंद के उपन्यासों में 'गोदान' सबसे ज्यादा मशहूर हुआ और विश्व साहित्य में भी उसका बहुत महत्वपूर्ण

स्थान है। एक सामान्य किसान को पूरे उपन्यास का नायक बनाना भारतीय उपन्यास परंपरा की दिशा बदल देने जैसा था। गोदान पढ़कर महसूस होता है कि किसान का जीवन सिर्फ खेती से जुड़ा हुआ नहीं होता। उसमें सूदखोर जैसे पुराने जमाने की संस्थाएँ तो हैं ही नए जमाने की पुलिस, अदालत जैसी संस्थाएँ भी हैं। यह सब मिलकर होरी की जान लेती हैं। होरी की मृत्यु पाठकों के जहन को झकझोर कर रख देती है। गोदान का कारुणिक अंत इस बात का गवाह है कि तब तक प्रेमचंद का आदर्शवाद से मोहभंग हो चुका था। उनकी आखिरी दौर की कहानियों में भी ये देखा जा सकता है। जीवन के आखिरी दिनों में वे उपन्यास 'मंगलसूत्र' लिख रहे थे जिसे वे पूरा नहीं कर सके।

लंबी बीमारी के बाद 8 अक्टूबर 1936 में उन्होंने आखिरी सांसें लीं। प्रेमचंद अपने उपन्यासों में भारतीय ग्रामीण जीवन को केंद्र में रखते थे। प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास को जिस ऊँचाई तक पहुँचाया वो आने वाली पीढ़ियों के उपन्यासकारों के लिए एक चुनौती बनी रही। प्रेमचंद के उपन्यास और कहानियों का भारत और दुनिया की कई भाषाओं में अनुवाद हुआ है। प्रेमचंद हिंदी साहित्य में एक मील का पत्थर हैं और बने रहेंगे।

संदर्भ :

1. प्रेमचन्द : जीवन परिचय (हिन्दी) (एच.टी.एम.एल)। अभिगमन तिथि: 9 नवंबर, 2010
2. अध्याय 16, पृ. 574, हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, 33वां संस्करण- 2007, मयूर पेपरबैक्स, नौएडा
3. प्रो. डी.पी. चन्द्रवंशी, "हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द्र का योगदान" Research Journal of Humanities and Social Sciences 2015
4. 'प्रेमचंद की हिंदी कहानी, Premchand ki hindi kahani, हिंदी कहानी के सम्राट मुँशी प्रेमचंद की कहानी, मुंशी प्रेमचंद "Premchand ki Kahani ka sangrah, premchand hindi story, munshi premchand ki kahaniyan, hindi stories munshi premchand, premchand hindi novels, B" - Hindisamay.com हिंदी साहित्य सबके लिए . अभिगमन तिथि 19 दिसम्बर 2017
5. प्रेमचंद (2003), प्रेमचंद की 75 लोकप्रिय कहानियाँ, दिल्ली, भारत : राजा प्रकाशन...।

❑❑❑

निर्मला पुतुल के काव्य में नारी अस्मिता

❍ डॉ. भारती सी.रावत[1]

निर्मला पुतुल आदिवासी महिला साहित्य जगत की सशक्त रचनाकार हैं। निर्मला अत्यंत भावुक किस्म की इंसान हैं। उनकी यह संवेदनशीलता उनके साहित्य में साफ झलकती है। वह मानववाद के पक्षधर हैं।

वर्तमान युग के सवालों को निर्मला पुतुल अपने आदिवासी क्षेत्र के साथ जोड़कर इस तरह से चुनौती भरे सवाल उठाती हैं जिससे यह प्रतीत होता है कि उनकी कविता एक स्त्री के अस्तित्व और अस्मिता की सोच प्रस्तुत करती है हालांकि कविता में अनेक विषयों का समावेश किया गया है। किंतु स्त्री दृष्टि को एक नए आयाम के साथ प्रस्तुत करती है इसी कारण साहित्य में उनकी एक अलग और विशिष्ट पहचान है "नगाड़े की तरह बजते शब्द" काव्य संग्रह में उनकी प्रसिद्ध कविता "उतनी दूर मत ब्याहना बाबा" अपनी संस्कृति को बनाए रखना चाहती है और कविता में युवती विवाह भी उसकी भूमि के आसपास करना चाहती है। कविता में निर्मला पुतुल ने एक युवती की भावनाओं का सुंदर चित्रण किया है। बेटी अपने बाबा के सामने पसंद ना पसंद व्यक्त करती है जिसमें उसकी सोच विचार समझदारी पसंदीदा भावनात्मकता प्रकट हुई है।

"बाबा!
मुझे इतनी दूर मत ब्याहना
यहां मुझसे मिलने जाने खातिर
घर की बकरियां बेचनी पड़े तुम्हें"

बेटी पिताजी की आर्थिक स्थिति को देखकर अपने बाबा के सामने यह प्रकट करती है कि शादी इतनी दूर नहीं करना चाहती है कि उससे मिलने आने के लिए बाबा को बकरियां बेचनी पड़े। पशु जानवर ही उनके पिता की संपत्ति है जिससे बेटी बेचने देना नहीं चाहती।

युवती को गांव के प्रति आकर्षण है:

"मत ब्याहना उसे उस देश में
जहां आदमी से ज्यादा ईश्वर बस्ते हों
जंगल नदी पहाड़ नहीं हो जहां
वहां मत कर आना मेरा लगन।

---

1. डॉ. भारती सी. रावत, जी.डी मोदी कॉलेज ऑफ आर्ट्स पालनपुर, उत्तर गुजरात, बनासकांठा।

मन से भी ज्यादा तेज दौड़ती हो मोटर गाड़ियां
ऊंचे ऊंचे मकान और बड़ी-बड़ी दुकाने ।"

बेटी बाबा से कहती है उसकी शादी सामान्य मनुष्य के साथ हो, जहां उसकी कीमत हो मनुष्य से ज्यादा ईश्वर बसते हो वहां वह शादी करना नहीं चाहती है। आदिवासी लोग प्रकृति पूजक है प्रकृति का विनाश कवियत्री नहीं चाहती। प्रकृति के साथ घुल मिलकर रहना चाहती है। जहां जंगल, नदी, पहाड़ नहीं है वहां शादी करना नहीं चाहती। जहां सड़कों पर मन से भी ज्यादा बड़ी-बड़ी गाड़ियां दौड़ती है जहां ऊंचे बड़े मकान है, बड़ी-बड़ी दुकान है, ऐसी जगह पर वह विवाह शादी करना नहीं चाहती है। कवियत्री कहना चाहती है कि आधुनिक समाज में लड़कियां अपनी शादी शहरी युवक के साथ संजोए सपने देखती है, कि जिसके पास बड़ी-बडी गाड़ियां हो, ऊंचे महल की कल्पना, ठाट-बाट का जीवन पसंद करती है। इस स्थान पर बेटी पिता से कह देती कि जिस घर का खुला आंगन ना हो, जहां सुबह मुर्गे की बांग सुनाई नहीं देती और शाम को पहाड़ पर डूबता सूरज दिखाई नहीं देता, ऐसी जगह पर वह रिश्ता जोड़ना नहीं चाहती। वह शहर के दमनकारी माहौल और चालाक शहर वासियों के प्रति अपना तिरस्कार व्यक्त करती है। आगे वह पिताजी से कहती है कि हमेशा नशे में डूबे रहने वाले के साथ उसकी शादी मत कर देना। आलसी, निकम्मा और मेले से लड़कियों को भगा ले जाने में माहिर हो, ऐसे युवक के साथ उसकी शादी मत कराना। जो आदमी बात-बात पर झगड़ा कर कहीं चला जाता हो ऐसा वर उसे नहीं चाहिए-

"ऐसा वर मत चुनना मेरी खातिर
कोई थारी लौटा तो नहीं
कि बाद में जब चाहूंगी बदला लूंगी
अच्छा खराब होने पर जो बात कर लाठी डंडा की
कब चाहे चला जाए बंगाल असम कश्मीर।"

युवती कहती है कि शादी एक बार ही की जाती है, वह थाली लोटा तो नहीं है जब चाहे तब बदला जा सके, पेशावर भी नहीं चाहती, ऐसा वर भी नहीं चाहती लड़ाई-झगड़ा होने पर लाठी-डंडा, तीर, धनुष हाथ में उठा ले और जब चाहे तब उन्हें छोड़कर बंगाल, असम, कश्मीर चला जाए। जिसके हाथों ने कभी कोई पेड़ नहीं लगाया, वह फसलें नहीं उगाई हो, और किसी की सहायता न की हो उसके साथ उसे शादी नहीं करना है, जो आदमी अनपढ़ हो, अपने हाथ से 'ह' लिखना नहीं जानता उसके हाथ में अपना हाथ देना इनकार करती है।

आगे अपनी पसंद के बारे में कहती है- जहां सुबह जाकर शाम को लौट सके पैदल, वहां उसका ब्याह कराना चाहती है। वह दुख से रोती तो नदी के उस पार उसके पिता उसका विलाप सुन सके उतनी ही दूरी पर वह शादी करके जाना चाहती है। वह चाहती है कि उसकी शादी इतनी पास हो कि जब वह चाहे अपने घर वालों को कुछ भी बनाकर भेज सके, बाबा के लिए महुआ का लट और खजूर का गुड। समय-समय पर अपनी (गोगो) मां के लिए कद्दू, खेखसा, बरबटी भेज सके। मेला जाते वक्त अपने गांव के लोगों से मिल सके और गांव के लोगों का हाल-चाल पूछ सके। उतनी दूर पर ही वह ब्याह कर जाना चाहती है। वह पिताजी से कहती है-

"उसे उस देश में ब्याहना ईश्वर कम आदमी ज्यादा रहते हो
बकरी और शेर
एक घाट का पानी पीते हो जहां "

किसी तरह के भेदभाव के बिना जहां लोग रहते हैं, वह जगह उसे पसंद है। वह शोषण मुक्त जीवन चाहती है। युवती आगे कहती है कि उसी के साथ मेरा विवाह करना जो हमेशा मेरे साथ रहे। घर और बाहर, खेतों में काम करने से लेकर रात को सुख-दुख बांटने तक जो मेरा साथ दे, जैसे कबूतर का जोड़ा और पंडुक पक्षी का जोड़ा सदैव साथ रहता है वैसे ही वह मेरे साथ रहे। यहां यह पंक्ति जायसी की नागमती का विरह वर्णन कि याद दिलाती है-

"जो बजाता हो बाँसुरी सुरीली और ढोल-मांदल बजाने में हो पारंगत
वसंत के दिनों में ला सके जो रोज मेरे जूड़े के खातिर पलाश के फूल
जिससे खाया नहीं जाए
मेरे भूखे रहने पर
उसी से ब्याहना मुझे!"[1]

कवयित्री की कविता में युवती कहती है कि जो युवक हमेशा उसका सुख दुःख में साथ दे, ऐसा वर चुनना जो सुरीली बांसुरी और ढोल मादल बजाने में निपुण हो। जब भी बसंत ऋतु आए तो वह मेरे जुड़े में सजाने के लिए पलाश के फूल लेकर आए और मैं यदि भूखी हूं तो उससे भी खाया ना जाये अर्थात ऐसा वर चुनना जो प्रेम करने वाला हो, मेरे श्रृंगार का भी ख्याल रखनेवाला हो, उसी से ब्याहना मुझे। अंत में कहा जा सकता है कि कविता आदिवासी और अविवाहित बेटी की करुण पुकार है। वह अपने वर का चुनाव, स्वयं नहीं कर सकती इसलिए वह अपने बाबा से अपने मन की इच्छाएँ समय दर्शन तरीके से व्यक्त कर रही है।

पूरी कविता में आदिवासी भूमि और समाज की वास्तविकता को कवयित्री ने प्रस्तुत किया है। वस्तुतः यह कविता आदिवासी क्षेत्र में रहने वाली युवती की यथार्थ चित्र मात्र न होकर समूची भारतीय आदिवासी स्त्री की करुण पुकार है। स्त्री चाहे शहरी, महानगरी, ग्रामीण या आदिवासी इलाके की हो वह यही चाहती है कि उसका जो परिवेश है उसके आसपास की जो संस्कृति है, जो जीवन शैली है, वह सब कुछ विवाह होने के बाद न छूटे इसलिए वह युवती अपने पिता से अपनी इच्छा को करुण पुकार के रूप में पहले ही बता देना चाहती है। यह कविता उन तमाम बेटियों की ओर से है जो विवाह से पूर्व अपने पिता से अपने मन की बात बोलकर यह बताती है कि उसको कैसा वर चाहिए और कैसा वर नहीं चाहिए। निर्मला पुतुल झारखंड के रहने वाली है और वह जिस इलाके से आती है वह आदिवास इलाका है। इसलिए उनकी कविता में आदिवासी जीवन शैली की झलक अधिक देखने मिलती है।

निर्मला पुतुल की "इतनी दूर मत ब्याहना बाबा" चर्चित कविता है इसमें स्त्री अस्मिता का सवाल, चेतना का सवाल, निर्णय लेने का अधिकार न होना, आदिवासी संस्कृति विस्थापन की समस्या है।

निर्मला पुतुल एक आदिवासी कवयित्री है पर सबसे पहले वह एक स्त्री है। एक आदिवासी स्त्री इसके लिए उनके शोषण के आधार भूमि दोहरे स्तर की है, एक स्त्री होने के नाते और दूसरा आदिवासी स्त्री होने के नाते ! स्त्री जीवन में कटु अनुभव होने के साथ-साथ उन्हें अपनी जड़ जमीन और अपने समाज की विविध समस्याओं और संघर्षों की भारी शिनाख्त है। नागरिकता, कानून के अभाव में आदिवासी स्त्रियां किस तरह दोहरी शोषण का शिकार हैं इस तरह पहचान करवाती है उनकी अनेक कविताएं। ऐसे मामलों में सत्ता भी चुप रहना ही वाजिब समझती है क्योंकि उनकी नजर में आदिवासी नक्सलवाद घुसपैठिए है अलगाववादीः

"हमारे बिस्तर पर करते हैं
हमारी बस्ती का बलात्कार
और हमारी जमीन पर खड़े हो
पूछते हैं हमसे हमारी औकात।"

निर्मला पुतुल स्त्री अस्मिता के सवाल पर जंगलों और उन में वास करने वाले ईश्वर से भी सवाल करती उनके अस्तित्व को चुनौती देती हैं :

"मैं सब जानती हूं
तुम अब हमारे नहीं रहे
हमारा चढ़ावा भी तुम्हें रास नहीं आता वरना
रोज लाठी डंडा बन
उन दरिंदों पर बरस पड़ते।[2]

स्त्री अपराधों से जुड़े मामले चाहे घर में हो या घर से बाहर अधिकतर का संबंध स्त्री की देह से ही होता है मारपीट गाली गलोच, भावहीन संभोग, बलात्कार वगैरह-वगैरह क्यों भूल जाते हैं कि स्त्री एक हार्ड मांस से बनी मानवी है। जिसे कोमल शरीर के भीतर एक मां भी होती है। निर्मल पुतुल उचित प्रश्न करती है:

'ढेपचा के बाबू' शीर्षक कविता में कवयित्री भी इन्हीं दुरभिसंधियों की ओर इशारा करती है। इस कविता में बेरोजगारी, भुखमरी और गरीबी से त्रस्त ढेपचा के पिता कश्मीर, बहन 'सुगिया' बंगाल और 'ढेपचा' असम को पलायन कर जाता है। किंतु ढेपचा की माँ नहीं छोड़ पाती अपना घर और झेलती है पीड़ा भूमंडलीकरण के मार की। वह अपनी पीड़ा बयान करती हुई 'ढेपचा के बाबू' से कहती है कि "दोना पत्तल भी नहीं बिकता और न ही लेता है कोई चर-चटाई, झाड़ू, पंखा, दातुन का भी बाजार नहीं रहा, अब भूले-भटके गर कभी कोई पैकार आता भी है तो रुपये जोड़ा माँगता है, पंखा और सौ रुपये दर्जन चटाई, एक तो सब छोड़-छाड़ दिन-भर लगे रहो, उस पर भी गर पचास-साठ नहीं निकले तो उसे करने से क्या फायदा?"

श्रम के इस अर्थगत स्त्री-शोषण के बरअक्स यौनगत स्त्री-शोषण का चित्रण भी 'निर्मला पुतुल' की कविताओं में देखने मिलता है। 'ढेपचा के बाबू' की 'सुगिया' जैसी अनेक आदिवासी स्त्रियाँ भूख की मार से त्रस्त होकर या फिर उज्ज्वल भविष्य की तलाश हेतु बंगाल, दिल्ली, असम इत्यादि शहरों को रोजगार हेतु पलायन कर जाती हैं। जहाँ पर उनका यौन उत्पीड़न होता है। 'चुड़का सोरेन से' शीर्षक कविता में इसी संदर्भ पर प्रकाश डालती हुई कवयित्री लिखती है कि "धनकटनी में खाली पेट बंगाल गयी पड़ोस की बुधनी किसका पेट सजाकर लौटी है गाँव-

"किसके शिकार में रोज जाते हो जंगल ?

शाम घिरते ही अपनी बस्तियों में उतर आए उन खतरनाक शहरी-जानवरों को पहचानो चुड़का सोरेन पहचानो"[3]

निर्मलाजी की कविताओं में चित्रित स्त्री अपने घर, परिवार, रिश्तों, नातों में अपना स्थान खोजती है। अपने अस्तित्व की तलाश करते हुए अपनी जमीन तलाशती है। अपने आप से लड़ती है पूरा घर उस स्त्री का है पर वह कहती है स्वयं उस घर में नहीं है, बच्चे बरामदे में खेलते हैं, बाहर नेम प्लेट पति की है। वह कहती है मैं धरती नहीं, पूरी धरती मेरे अंदर है। इसका चित्रण वह "अपने घर की तलाश में" कविता में दिखाई देता है। वह कहती हैं-

"अन्दर समेटे पूरा का पूरा घर में बिखरी हूँ पूरे घर में पर यह घर मेरा नहीं है"

वह पैदा तो इंसान के रूप में होती है किंतु उसके साथ व्यवहार एक वस्तु जैसा ही होता है। जहाँ वह पति और घर की देखभाल करती है और तत्पश्चात बच्चों का पालन-पोषण करती है। किंतु बावजूद स्त्री का न तो घर और संपत्ति पर कोई स्वामित्व होता है और न ही निर्णय लेने संबंधी कोई अधिकार। स्त्री के साथ इस दोयम दर्जे का व्यवहार उस मानसिकता का ही प्रतिफल है जिसमें स्त्री को पुरुषों की अपेक्षा शक्तिहीन माना जाता है और घर एवं बच्चों तक ही उसकी भूमिका को सीमित माना जाता है। इस विडंबना के प्रति अपना

तीव्र आक्रोश व्यक्त करती हुई कवयित्री लिखती है कि :

"यह कैसी विडम्बना
दृष्टि से देखते मुक्त होना चाहती हूँ अपनी जाति से"

इस प्रकार उक्त पंक्तियों के माध्यम से कवयित्री, अपनी जमीन तलाशती है:

"धरती के इस छोर से उस छोर तक
मुट्ठी भर सवाल लिए मैं
दौड़ती- हाँफती-भागती
तलाश रही हूँ सदियों से निरंतर
अपनी जमीन, अपना घर
अपने होने का अर्थ"[4]

आदिकाल से ही स्त्री को केवल चार दीवारी में ही सीमित रखा गया है। उसकी सारी इच्छाओं का दमन किया जाता है। जब-जब उसने अपने ऊपर हो रहे अत्याचार का विरोध करना चाहा तब प्रेमवश या क्रोध से पुरुष उसे दबाता चला आ रहा है। पुरुष के लिए स्त्री एक भोग की वस्तु रही है। उसका अपना घर कोई नहीं है। भोग के अतिरिक्त पुरुष स्त्री को कभी जान ही नहीं पाया। कवयित्री "क्या तुम जानते हो" कविता में कहती है-

"क्या तुम जानते हो
पुरुष से भिन्न
एक स्त्री का एकांत ।
घर प्रेम और जाती से अलग
एक स्त्री को उसकी अपनी जमीन
के बारे में बता सकते हो तुम?"[5]

पुरुष ने कभी स्त्रियों की वेदना को जाना ही नहीं। कवयित्री कहती है कि पुरुष स्त्री के गर्भ में बीज तो छोड़ देता है, किन्तु गर्भवती स्त्री की वेदना को समझने की कोशिश कभी नहीं की। स्त्री के मन में चल रहे द्वंद्व को कभी नहीं जाना। इस संदर्भ में निर्मला पुतुल का कहना है-

"एक उन्मुक्त आकाश
जो शब्द से परे हो
एक हाथ
जो हाथ नहीं
उसके होने का आभास हो!"

वह अपनी एक अलग पहचान बनाना चाहती है। वह घर, प्रेम और जाती से परे अपनी जमीन तलाशती है जो सिर्फ उसकी हो। इन कविताओं के माध्यम से निर्मला पुतुल स्त्री को सिर्फ देह समझने वाली मानसिकता का खंडन करती है। कवयित्री आदिवासी स्त्रियों के साथ होने वाले अत्याचार और शारीरिक शोषण को सबके सामने लाती है।

रोज जन्मती मरती है
घर भर की पीड़ा सहती है सबकी सुनती है।"

कवयित्री अपनी कविताओं में स्त्री की मुक्ति की कामना करती है। स्त्री समाज में अपना स्वतंत्र जीवन

चाहती है। निर्मला पुतुल की कविता स्त्री संवेदना और भावना को व्यक्त करने के साथ हमें स्त्रियों की दशा पर चिंतन करने के लिए विवश करती है। स्त्री की मुक्ति ही निर्मला जी की कविताओं का केंद्र बिन्दु है। स्त्री को पहचान दिलाना ही इन कविताओं का ध्येय है। कवयित्री अपनी कविताओं के माध्यम से स्त्रियों को इतिहास में नई जगह दिलाना चाहती है।

"स्त्रियों को इतिहास में जगह नहीं मिली इसलिए हम स्त्रियाँ लिखेंगे अपना इतिहास"

कवयित्री ने केवल स्त्रियों के शोषण का वर्णन ही नहीं किया अपितु कविताओं के माध्यम से विद्रोह भी व्यक्त करती है। वह निडर होकर अपने ऊपर किए जुल्मों को सबके सामने प्रस्तुत करते हुए कहती है–

"पर तुम ही बताओं, यह कैसे संभव है? आँख रहते अंधी कैसे हो जाऊँ मैं? कैसे कह दूँ रात को दिन? खून को पानी कैसे लिख दूँ।"[6]

निष्कर्षतः निर्मला पुतुल की कविताओं में स्त्रियों के प्रति गहरी संवेदना झलकती है। साथ ही कवयित्री आदिवासी स्त्री की वेदना, संघर्ष, अत्याचार को अपने कविता में अभिव्यक्त करती है। निर्मला पुतुल ने इन दुखों को खुद भोगा है, खूब करीब से देखा भी है इसलिए उनकी कविताएं सीधे हृदय पर चोट करती है। वस्तुतः कवयित्री अपने समाजवादी चिंतन समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करना चाहती है।

संदर्भ :

1. "उतनी दूर मत ब्याहना बाबा" नगाड़े की तरह बजते शब्द, पृ. 49
   रचनाकार : निर्मला पुतुल, प्रकाशनः 2005
2. चुड़का सोरेन : वही, निर्मला पुतुल, पृ. 29
3. अपने घर की तलाश में : निर्मला पुतुल, पृ. 30
4. क्या तुम जानते हो : नगाड़े की तरह बजते शब्द, पृ. 7
5. नगाड़े की तरह बजते शब्दः निर्मला पुतुल, पृ. 11
6. आलेखः निर्मला पुतुक की कविताओं में आदिवासी स्त्री :
   विजयसिंह सातपालकर, संपादक : अपनी माटी, अक्तूबर, 28, 2020

❑❑❑

'उर्वशी' में कामाध्यात्म चिंतन

❍ प्रा. सुनील पानपाटील[1]

'काम' शब्द का अर्थ व स्वरूप :

सामान्यतः 'काम' शब्द का अर्थ कर्म अथवा कार्य के लिए प्रयुक्त होता है। कोश में 'काम' शब्द के अर्थ– इच्छा, चाह, कामना आदि रूप में मिलते हैं। हमारे भारतीय दर्शन में मनुष्य-जीवन के चार पुरुषार्थ– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को स्वीकारा गया है। इन पुरुषार्थ में से एक 'काम' है। प्रेम के देवता और रति के पति के लिए 'कामदेव' शब्द का प्रयोग हुआ है।

कामशास्त्र में 'काम' का अर्थ स्त्री-पुरुष के समागम से जोड़ा गया है। 'काम' को प्रेम और अनुराग का व्यंजक माना गया है। यौन-भाव, रति-क्रीड़ा, वासना तथा अंग्रेजी में 'सेक्स' आदि शब्द काम के निकटवर्ती शब्द हैं जो काममूलक भाव को पुष्ट करते हैं। भाववृत्ति के रूप में काम का अर्थ ग्रहण किया जाना यहाँ अपेक्षित है।

हिंदी विश्वकोश में काम के संबंध में लिखा गया है– "मानवीय शरीर में जिस प्रकार श्रद्धा, मेधा, क्षुधा, निद्रा, स्मृति आदि अनेक वृत्तियों का समावेश है, उसी प्रकार काम वृत्ति भी देवी की एक कला के रूप में यहाँ निवास करती है और यह चेतना का अभिन्न अंग है।"[1] अर्थात् काम एक चेतना वृत्ति है और जो प्रत्येक प्राणीमात्र में निवास करती है। आ. वात्स्यायन ने अपने ग्रंथ 'कामसूत्र' में लिखा है– "क्षेत्रत्वकवक्षुर्जिहवाघ्राणानाम आत्मसयुक्तेन मनसाधिष्ठिताना स्वेषु विषयेषु आनुकूलयतः प्रवृतिः कामः।" इसका अर्थ है– आत्मा से युक्त मन के द्वारा कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा एवं नासिका या प्राण की पंचेन्द्रियों का अपने-अपने विषय में प्रवृत्त होकर आनंद प्राप्ति का नाम काम है।[2] अर्थात् काम भावना की सृष्टि के लिए शब्द, गंध, स्पर्श, रूप और रस आदि का योग महत्वपूर्ण माना जाता है। काममूलकता एक संवेदना है जिसके मूल में काम विषयक प्रेरणा कार्य करती है।

समस्त मनुष्य मात्र की मूलप्रवृत्तियों में काम-वृत्ति महत्त्वपूर्ण है, जो कि सभी में लगभग एक-सी होती है। 'काम' अत्यंत आवश्यक आवश्यकता है। यह नितान्त शक्तिशाली एवं व्यापक एषणा है, जिसका मनुष्य जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह नर-नारी के जीवन में सूक्ष्म आनंद की सृष्टि करता है तथापि आधुनिक सभ्यता के विकास के कारण काम-भाव का विकास तो हुआ है साथ ही उसकी जटिलता भी बढ़ी है। आनंद की जगह

1. प्रा. सुनील पानपाटील, कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महिला, महाविद्यालय नंदुरबार, महाराष्ट्र।

भोगवृत्ति बढ़ी है। कवि दिनकर कहते हैं- "जीवन के सूक्ष्म आनंद और निरूद्देश्य सुख के जितने भी स्रोत हैं, वे कहीं न कहीं काम के पर्वत से फूटते हैं। जिसका काम कुण्ठित उपेक्षित अथवा अवरुद्ध है वह आनंद के अनेक सूक्ष्म रूपों से वंचित रह जाता है।"[3] अत: कहना होगा कि काम एक प्रकार से क्षुधा है, भूख है जिसको बूझाकर ही मन को शांति प्राप्त होती है। नर-नारी के परस्पर प्रेम, आकर्षण, संगम, सहयोग और उपभोग से जिस सुख और आनंद का अनुभव होता है उसे ही काम कहते हैं। इस कामपूर्ति के पश्चात् ही सुख और सूक्ष्म आनंद की अनुभूति होती है। यह आनंद अलौकिक आनंद के समकक्ष माना गया है। इसलिए हमारे भारतीय शास्त्रों में, दर्शन में 'काम' का संबंध धर्म और आध्यात्म से जोड़ा गया है। वही पाश्चात्य चिन्तन में 'काम' का संबंध मनोविज्ञान एवं भौतिकवाद से जोड़ा गया है।

'उर्वशी' में कामाध्यात्म चिन्तन :

आधुनिक हिंदी काव्यधारा में राष्ट्रकवि के रूप में दिनकर का नाम सुपरिचित रहा है। इनके काव्य का मूल स्वर राष्ट्रवाद और राष्ट्रीयता रहा है। आप स्वतंत्रता पूर्व एक विद्रोही कवि के रूप में परिचित हुए और स्वतंत्रता के बाद 'राष्ट्रकवि' के रूप में स्थापित हुए। दिनकर जी छायावाद के बाद के कवियों की पहली पीढ़ी के कवि थे, जिनकी कविता में ओज, विद्रोह, आक्रोश और क्रांति की पुकार तो गुंजती है, साथ ही कोमलकांत शृंगार रस की अभिव्यक्ति पाठकों को उत्तेजित करती है। एक मानववादी कवि के रूप में दिनकरजी ने पौराणिक एवं ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से ओजस्वी स्वर को बुलंद किया है। उनकी 'रश्मिरथी', 'परशुराम की प्रतीक्षा', 'कुरूक्षेत्र' रचनाएँ वीर रस से ओत-प्रोत हैं। कवि दिनकर ने 'उर्वशी' की रचना स्वातंत्र्योत्तर काल में की है, जो ज्ञानपीठ से सम्मानित रचना है। यह कहा जाता है कि इस रचना का समय 1953 से सन् 1960 तक का माना गया है। इस रचना का प्रथम संस्करण 1961 ई. का है। यह एक गीतिनाट्य है जिसमें पात्रों के संवादों को छन्दोबद्ध कर अभिव्यक्ति प्रदान की है। इस रचना ने दिनकर को ख्याति प्रदान की है, जिसकी वजह है इस रचना का वैचारिक पक्ष जिसमें कामाध्यात्म चिन्तन को एक नये ढ़ंग से प्रस्तुत किया गया है।
'उर्वशी' की कथा वैदिककालीन है। शतपथ ब्राह्मण, महाभारत, विष्णु पुराण, स्कंद पुराण तथा विक्रमोर्वशीय आदि पौराणिक ग्रंथों में अलग-अलग रूपों में वर्णित हुई है। महाकवि कालिदास लिखित 'विक्रमोर्वशीय' नाटक उर्वशी की कथा का मूलाधार है। प्रस्तुत रचना में कवि दिनकर ने पुरूरवा और उर्वशी के प्राचीन आख्यान को एक नए सन्दर्भ के रूप में प्रस्तुत किया है। इस रचना की कथा प्राचीन होते हुए भी आधुनिक वैचारिक स्रोतों को प्रवाहित करती है। उर्वशी की सबसे बडी विशेषता यह है कि इसमें कथानक की अपेक्षा विचारधारा अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस कृति में दिनकर ने काम और अध्यात्म का संतुलन स्थापित करने का महत प्रयास किया है। काम इसका प्रधान विषय है और उससे संबंधित मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक चिंतन प्रकट हुआ है। अत: उर्वशी कृति की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए कहा जाता है कि आधुनिक हिंदी कविता में 'कामायनी' के उपरांत की सर्वोत्तम रचना है। आनंद नारायण शर्मा लिखते हैं- "उर्वशी निस्सन्देह कामायनी के बाद आधुनिक हिंदी कविता की दूसरी सबसे प्रमुख उपलब्धि है, न केवल जीवन के एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रश्न को मौलिक ढंग से उठाने की दृष्टि से, बल्कि भाषा की प्रौढ़ता और सम्मर्तनविधान की दृष्टि से भी।"[4]

प्रस्तुत रचना का विषय प्रेम-सौन्दर्य से काम के दर्शन की प्राप्ति है। 'उर्वशी' में पुरूरवा और उर्वशी के आपसी प्रेमात्मक आकर्षण से प्रेम की प्रबल उत्तेजना और प्रबल उत्तेजना का परिणाम काम रूप में अभिहित हुआ है। अत: काम के अलौकिक आनंद प्राप्ति का मार्ग नर-नारी के आकर्षण से प्रारंभ होता है। उर्वशी के सौन्दर्य को देखने के पश्चात् पुरूरवा का मन बेचौन होता है, वह उर्वशी के प्रति आकर्षित होता है-

"जब से हम-तुम मिले, रूप के अगम, फुल्ल कानन में
अनिमिष मेरी दृष्टि किसी विस्मय में डूब गयी है

अर्थ नहीं सूझता मुझे अपनी ही विकल गिरा का।"[5]

दूसरी ओर जब से उर्वशी पुरूरवा को मिली है पता नहीं वह भी कहीं न कहीं पुरूरवा के पौरूषत्व की ओर आकर्षित हो चुकी है। उर्वशी कहती है–

"जब से हम–तुम मिले, न जाने क्या हो गया समय को
लय होता जा रहा मरूद्‌गति से अतीत–गह्वर में।"[6]

इस तरह दोनों का प्रेमात्मक प्रबल आवेग चिर–अतृप्ति का दर्शन करवाते हैं। कवि ने जीवन में विद्यमान प्रेम की अनुभूति को दोनों के माध्यम से व्यक्त किया है। भारतीय चिंतन–प्रणाली में यह सर्वमान्य है कि सृष्टि का विकास शिव और शक्ति के समन्वय में ही है। शिव के बिना शक्ति अपूर्ण हैं और शक्ति के बिना शिव अपूर्ण है। शिव–शक्ति की समरसता ही प्रेम का दिव्य रूप है। कवि दिनकर उर्वशी में दिव्य स्वरूप इसी प्रेम को व्यक्त करते हुए लिखते हैं–

"वह निरभ्र आकाश, जहाँ की निर्विकल्प सुषमा में
न तो पुरूष मैं पुरूष, न तुम नारी केवल नारी हो।
दोनों है प्रतिमान किसी एक ही मूल सत्ता के
देह–बुद्धि से परे नहीं जो नर अथवा नारी हैं।"[7]

यहाँ कवि ने भारतीय दर्शन के शाक्त–सम्प्रदाय के चिंतन को दृष्टि में रखते हुए नर–नारी के समागम को तुच्छ एवं पाप न समझते हुए उसे आनंद का प्रतीक मानकर प्रेम के उदात्तीकरण को प्रस्तुत किया है। वैसे भी मनुष्य दाम्पत्य जीवन में अपने शारीरिक समागम की स्थिति द्वारा ही अपनी काम–वासना की पूर्ति करता है लेकिन यही शारीरिक संभोग की स्थिति धीरे–धीरे काम की शुद्ध आध्यात्मिक स्थिति को अर्थात् समाधि को प्राप्त करती है। काम की यह स्थिति ऊर्ध्वमुखी है–

"ये किरणें, ये फूल, किन्तु अंतिम सोपान नहीं हैं
उठना होगा बहुत दूर, ऊपर, इनके तारों पर।
स्यात, ऊर्ध्व उस अंबर तक जिसकी ऊँचाई पर से
यह मृत्तिका–विहार, दिव्य किरणों का हीन लगेगा।"[8]

कवि ने प्रस्तुत रचना में काम की सहज और प्राकृतिक स्थिति को सर्वोत्तम कहा है। उनका मानना है कि काम–कृत्य प्रकृति के अनुसार संपादन हो, जिसमें शरीर की हवस न होते हुए आत्माओं का सम्मेलन हो। दो मन–आत्माओं के प्राकृतिक मिलन का क्षण ही दिव्यानंद के समीप ले जाता है और प्रकृति के विरुद्ध का काम–कृत्य पाप का भागी बनाता है –

"काम–कृत्य वे सभी दुष्ट है, जिनके संपादन में
मन–आत्माएँ नहीं, मात्र दो वपुस मिला करते है ;
या तन जहाँ विरुद्ध प्रकृति के विवश किया जाता है
सुख पाने को, क्षुधा नहीं, केवल मन की लिप्सा से ;
जहाँ नहीं मिलते नर–नारी उस सहजाकर्षण से।"[9]

प्रस्तुत सन्दर्भ के द्वारा कवि नर–नारी के बीच होता काम–कृत्य सहजाकर्षण से ही सम्पादित होना चाहिए इसी दृष्टिकोण को बताना चाहते हैं। जहाँ स्नेह नहीं, छल और बल से काम प्राप्ति हो, वहाँ वह वृत्ति दानवी है। वह कर्म बलात्कार है, पाप है। इसलिए कवि कहना चाहते है कि श्रेष्ठ साध्य के लिए साधन भी श्रेष्ठ होना चाहिए –

"हम इच्छुक अकलुष प्रमोद के, पर वह प्रमुद निरामय

विधि-निषेध-मय संघर्षों, यत्नों से साध्य नहीं हैं।"[10]

हम जब 'उर्वशी' के वैचारिक पक्ष को समझने का प्रयास करते हैं तब हमें यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि कवि दिनकर पर एक ओर पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक फ्रायड, लॉरेन्स, बर्ट्रेड रसेल आदि का प्रभाव भी नजर आता है। इन मनोविज्ञानवेत्ताओं ने मन शांति के लिए काम-भावना की तृप्ति को आवश्यक माना है अन्यथा मनुष्य का मन कुण्ठित हो जाएगा या मानसिक रोगी बन जाएगा। अर्थात मनुष्य कामपूर्ति के अभाव में अनेक मनोवेगों से ग्रसित हो जाता है। इन लोगों के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत बुद्धिवाद पर आधारित है। दूसरी ओर हमारे प्राचीन काल के संस्कृत ग्रंथों में भी काम को जीवन का आधार माना गया है। मनुस्मृति में मनु काम को जीवन की समस्त क्रियाओं का मूल मानते है। दिव्य तथा चैतन्य आत्मा के सुख की प्राप्ति को प्रधान माना गया है। अत: भारतीय दर्शन में काम को आध्यात्मिक चिन्तन के रूप में स्वीकारा गया है। प्रस्तुत रचना 'उर्वशी' के माध्यम से कवि दिनकर काम के आनंद को शरीर का सुख न मानकर मन का अलौकिक आनंद मानते हैं। काम नर-नारी को वही आनंद देता है जो कि दर्शन का प्रयोजन है। कवि कहते हैं -

"इसीलिए, निष्काम काम-सुख वह स्वर्गीय पुलक है,
सपने में भी नहीं स्वल्प जिस पर अधिकार किसी का।
नहीं साध्य वह तन के आस्फालन या संकोचन से ;
वह तो आता अनायास, जैसे बूँदें स्वाती की,
आ गिरती है, अकस्मात सीपी के खुले ह्दय में।"[11]

इस प्रकार हम देखते है कि, 'उर्वशी' में कामाध्यात्म का चिन्तन एवं दर्शन ध्वनित होता है।

काम और आध्यात्म एक-दूसरे के विरोधी नहीं है बल्कि वे परस्पर के लिए पूरक हैं। आध्यात्म आत्म-चिंतन है, उसे ही दर्शन कहा जाता है। दर्शन वह मार्ग है, जो सुखानुभूति का अन्वेषण करते हुए आगे बढ़ता है। इसका प्रधान उद्देश्य है- आत्मा के लिए आनंद। इसलिए काम दर्शन का विरोधी तत्व नहीं है, वह मोक्ष का सोपान है। दर्शन के मार्ग में आनंद की उर्जा का कार्य काम ही करता है। आध्यात्म का आत्मा से प्रणय और परमात्मा से मिलन होता है। यह आत्मालीन की अवस्था ही समाधि है। समाधि की अवस्था में मन और बुद्धि अचेत एवं अबोध रहती है। आत्मा की यह समाधि अवस्था ही आध्यात्मवाद है। काम की स्थिति भी वही है जहाँ मन अबोध हो जाता है। अत: पुरूरवा कहता है -

"यह अतिक्रान्ति वियोग नहीं, आलिंगित नर-नारी का,
देह-धर्म से परे अन्तरात्मा तक उठ जाना है।"[12]

इसी सन्दर्भ को लेकर उर्वशी कहती है-

"बहने दो निश्चेत शांति की इस अकूल धारा में,
देश-काल से परे, छूट कर अपने भी हाथों से।
किस समाधि का शिखर, चेतना जिस पर ठहर गयी है?
उडता हुआ विशिख अम्बर में स्थिर-समान लगता है।"[13]

अर्थात समाधि की स्थिति में नर-नारी दोनों आत्मानंद की अनुभूति प्राप्त करते हैं। उस काम की समाधि अवस्था में सांसारिक क्षणों से निवृत्ति मिलती है। यही निवृत्ति की स्थिति मोक्ष के समकक्ष होती है। पुरूरवा कहता है-

"छूट गयी धरती नीचे, आभा के झंकारों पर
चढे हुए हम देह छोड़कर मन में पहुँच रहे है।"[14]

सारांश रूप में यही कहा जाएगा कि दिनकर की प्रस्तुत रचना 'उर्वशी' में कामाध्यात्म का चिन्तन प्रस्तुत

हुआ है। कवि ने इस रचना में काम को अलौकिक आनंद स्वरूप में प्रकट किया हैं। काम के इन्द्रिय मार्ग से अतिन्द्रिय धरातल की ओर जाना ही कामाध्यात्म है। कवि ने निष्काम काम को चरितार्थ किया है। अंत में यही कहा जाएगा कि प्रस्तुत गीतिनाट्य के माध्यम से कवि ने कई प्रश्नों को उजागर किया हैं। इसलिए 'उर्वशी' वर्तमान युग की 'चिन्तन परक' रचना बन गई है।

संदर्भ :

1. संपा. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी विश्वकोश, खण्ड-2, पृ. 455
2. डॉ. श्रीराम महाजन, आधुनिक हिंदी कहानी-साहित्य में काममूलक संवेदना, से (उद्धृत), पृ. 12, 13
3. रामधारीसिंह 'दिनकर', 'उर्वशी' की भूमिका से, पृ. च
4. आनंद नारायण शर्मा, सुकवि समीक्षा, पृ. 207
5. रामधारी सिंह 'दिनकर', 'उर्वशी', पृ. 31
6. वही, पृ. 31
7. वही, पृ.48
8. वही, पृ. 47
9. वही, पृ. 67
10. वही, पृ. 62
11. वही, पृ. 68
12. वही, पृ. 49
13. वही, पृ. 54
14. वही, पृ. 57

❑❑❑

असाध्य वीणा : पाठ का पुनर्पाठ

❍ डॉ. आकाश वर्मा[1]

अज्ञेय की कविताएँ आत्माभिव्यंजना प्रधान मानी जाती हैं विशेष रूप से उनकी असाध्य वीणा कविता तो इस स्वभाव की प्रतिनिधि कविता कही जाती है जिसे व्यक्ति के अहं-साधना की कविता के रूप में व्याख्यायित किया जाता है। इस पाठ के पीछे अज्ञेय का व्यक्तिवादी- अस्तित्ववादी चिन्तन-दर्शन प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है। वस्तुत: हम जानते हैं कि आत्म की चेतना अज्ञेय के साहित्य का मुख्य स्वर रहा है। हालांकि, उनकी कहानियों में लोक तथा जीवन के भी कई स्वर प्रस्तुत होते हैं परन्तु उपन्यासों और कविताओं पर गौर किया जाय तो उनमें व्यक्ति के अस्तित्त्व और उसकी सत्ता के मूल्य, बोध तथा उसकी स्थापना के संघर्ष को देखा जा सकता है। उपन्यासों में यह अधिक शक्तिशाली रूप में प्रकट हुआ है और कविताओं में यह प्राय: सामान्य रूप में। कविताओं की भावधारा आत्मकेन्द्रित तो है लेकिन यह लोकोन्मुख भी है। विचार करें तो कविताएँ वस्तुत: आत्मकेन्द्रित ही होती हैं। इसके साथ ही कविता का मुख्य औचित्य उसकी व्यंजनात्मक प्रवृत्ति तथा कथ्यात्मक चेतना से जुड़ी रहती है। एक ही भाव के कई कविताओं की चेतना भिन्न हो सकती है। अज्ञेय की सभी कविताएँ तो नहीं, लेकिन उनकी प्रसिद्ध कविताओं में इस तत्त्व को अवश्य देखा जा सकता है। अज्ञेय की असाध्य वीणा कविता आत्मकेन्द्रित प्रतीत होती है जैसा कि इसका पाठ होता आया है और प्राय: समीक्षात्मक चर्चा में उसी पर विचार किया जाता है लेकिन उसकी व्यंजना और मुख्य चेतना गहनतम रूप से लोकोन्मुख प्रतीत होती है। इस तथ्य को हम कविता के प्रस्थान और उनके उद्देश्य की उपस्थिति से पहचान सकते हैं। असाध्य वीणा में आत्म के विस्तार को, लोक की ओर होने बजाय, सही अर्थों में देखें तो लोक का विस्तार ही लोक के बीच, लोक के लिए हुआ है जिसके मध्य युगस्रष्टा की भूमिका का निर्वाह प्रियम्बद केशकम्बली करता है। सत्य पहले से व्याप्त था अर्थात लोक का सत्य पहले से था- उसका आविष्कार नहीं करना था। इस स्थिति में, समाज को विभ्रम की स्थिति से मुक्त करना था जिससे लोक को, स्वयं के वास्तविक सत्य का ज्ञान महसूस हो सके। अत: लोक के ज्ञान को, लोक से लेकर लोक में प्रतिस्थापित करना ही इस कविता का मुख्य उद्देश्य है। गौतम बुद्ध, जीसस क्राईस्ट, मुहम्मद साहब, गुरुनानक जैसे लोक साधक ही लोक में नई चेतना भर सके। यह उनकी आत्म स्थापना नहीं थी। उनके सामने लोक था, लोक का स्वरूप था। उसकी वास्तविकता को उन्होंने नये रूप में उजागर किया तथा नवचेतना का विस्तार किया। साथ ही लोक की जटिलताओं,

1. डॉ. आकाश वर्मा, हिन्दी विभाग, असम विश्वविद्यालय, सिलचर, असम, 788011; मो. 09435173672

विकृतियों, अप्रयोजनीय वस्तुओं अथवा तथ्यों का ज्ञान कराकर उन लोगों ने नवलोक को रचने का प्रयास किया। इसके लिए ही वे लोक की साधना करते हैं। असाध्य वीणा इसी प्रकार के लोक साधना की कविता है। ऐसे में यह व्यष्टि से समष्टि के बजाय समष्टि से नव समष्टि तक की कविता है।

विचार करें तो आत्म का विद्रोह, आत्म की प्रस्तुति या अभिव्यंजना, आत्म की स्थापना, आत्म का विस्तार और आत्म का संघर्ष अथवा संकट ये सभी अलग-अलग अवस्थाएँ हैं। ये सब आत्मसाधना का हिस्सा हैं और यह सब अज्ञेय के उपन्यासों में अधिक देखने को मिलता है। कविताओं में भी प्राप्त होता है लेकिन कविताएँ अधिक व्यंजनात्मक हैं। आत्मबोध तथा आत्मपीड़ा की कविताएँ भी अज्ञेय रचते हैं लेकिन असाध्य वीणा केवल आत्म की स्थापना अथवा व्यष्टि का समष्टि पर स्थापित होना भर नहीं हैं जैसा कि ऊपर हमने कहा कि वह समष्टि का ही समष्टि पर स्थापित होना है। किसी भी आत्म का सत्य अथवा आत्म की अवधारणा, लोक के विभिन्न कलेवरों से ही निर्मित होती है अथवा उसके निर्दिष्ट संरचना का ही प्रतिफलन होता है। इस प्रकार वह (आत्म) पूर्णतः लोक के सत्य पर ही निर्भर करता है। ऐसी अवस्था सें अज्ञेय की असाध्य वीणा कविता आत्म साधना से हटकर लोक साधना की कविता के रूप में बदल जाती है। इस दृष्टि से कविता का पाठ और उसकी व्याख्या का स्वरूप नया हो जाता है।

कविता की ओर आगे बढ़ने से पहले एक तथ्य पर और विचार कर लेना ठीक रहेगा। वह ये कि अज्ञेय के यहाँ प्रकट हुआ- स्व। इस स्व के निर्माण, विस्तार, संघर्ष, स्थापना, संकट की तलाश और उसके प्रक्रिया की पूरी पहचान अज्ञेय के उपन्यासों से की जा सकती है। असाध्य वीणा उन प्रक्रियाओं के बाद का परिणाम है। अतः उन प्रक्रियाओं में ही कविता को दोहराना औचित्यपूर्ण नहीं है। असाध्य वीणा के भीतर प्रियम्बद केशकम्बली का स्व है लेकिन वह उनके उपन्यासों में निर्मित हो चुका है। इस चरित्र-निर्माण के मंथन की तलाश करें तो इसकी अवस्थाओं के पीछे केवल आत्म का अहं मात्र ही नहीं होता बल्कि लोक और लोक के भीतर स्थित अनेक स्व होते हैं। अज्ञेय का स्व (अथवा आत्म) एकाकी रूप से नहीं बल्कि इन्हीं अनेक स्व-ओं से निर्मित होता है। इन स्व-ओं से टकराव एवं संघर्ष से उपस्थित अवस्था में वह आत्म केवल अहं की उपासना नहीं करता है। वह बाकी स्व-ओं की भी उपासना करता है। इसी प्रक्रिया में वह लोक के पुनर्निमाण की पृष्ठभूमि भी रखता है जिनसे उसका निर्माण हुआ रहता है। ध्यान दें तो प्रियम्बद अपने आत्म (व्यष्टि) की स्थापना नहीं करता वह उन तमाम स्व-ओं के आत्म (समष्टि) को स्थापित करता है, जिनसे उसका बोध निर्मित होता है। अज्ञेय की असाध्य वीणा कविता इसी लोक के बोध के पुनर्निमाण की कविता है जहाँ से पुराने और विकृत लोक के स्व-ओं का नाश हो जाता है तथा नये और सामाजिक विकास के हितकारी स्व-ओं का निर्माण होता है और वहीं से युग परिवर्तन भी हो जाता है। ऐसे में यह कविता स्व के साधना की कविता से कहीं अधिक सामाजिक साधना और समाज के वास्तविक सत्य के स्थापना की कविता बन जाती है। इस लिहाज से हमें इसके सीमित पाठ से अधिक इसकी व्यापकता पर विचार करना चाहिए। प्रायः इसके पाठ में अन्त में लोक की अनुभूति पर आत्म के अनुभूत की स्थापना की तरह देखा और माना जाता रहा है परन्तु कविता उतनी ही तो नहीं होती जितनी दिखाई देती है। अज्ञेय एक अस्तित्त्ववादी कवि हैं इसमें कोई संदेह नहीं है लेकिन इसमें भी कोई संदेह नहीं हैं कि आत्म की अनुभूति स्वयं से अधिक लोक की अनुभूति होती है।

जापानी (तथा चीनी) लोककथा पर आधारित यह असाध्य वीणा कविता, आँगन के पार द्वार (1961) में संग्रहीत है। अब तक असाध्य वीणा के पाठ में इसकी कथा और स्वरूप को अनेक नाम दिये गये हैं जिसे हम- रागात्मक ऐश्वर्य की रहस्यमयी परिणति, साहस और आस्था की खोज, रूमानियत का रहस्यवाद में विलय आदि-आदि के रूप में जानते आये हैं। इस कविता पर सर्वात्म (लोक) पर मात्र आत्म (व्यक्ति) की स्थापना का पाठ भी हुआ । इन सब पाठों पर विचार करना तथा उनकी व्याख्या करना यहाँ अनावश्यक है। इन पाठों

के लिहाज से अपनी बात करूँ तो असाध्य वीणा का पाठ केवल आत्म का लोक में प्रतिस्थापन अथवा विस्तार मात्र नहीं हैं। वह लोक से निर्मित स्व तथा उस स्व के माध्यम से लोक का विरेचन है जहाँ से युगान्तकारी बदलाव आता है।

एक प्रकार से देखें तो पहले भी इस कविता में विरेचन को स्वीकार किया गया है लेकिन लोक की शुद्धता और परिष्कार को महत्त्वपूर्ण नहीं माना गया, वहाँ आत्म को ही प्रमुख मान लिया गया। हम जानते हैं लोक सदैव श्रेष्ठता की ओर नहीं बढ़ता, उसमें अनेक ऐसे तत्त्व होते हैं जो पतन की ओर भी जाते हैं। कई ऐसी चीजें भी होती हैं जिसे हम श्रेष्ठ समझते हैं लेकिन उससे भी विकृति ही उत्पन्न होती है। अपनी सहज मनोवृति तथा सरलता को भूलता हुआ समाज ही अपने को असाध्य विकृतियों से भर लेता है। सहज स्वभावों के विपरीत ऐसी बहुमान्य प्रवृतियों का ही विरेचन यह कविता करती है। अज्ञेय का स्व (आत्म) इन्हीं से अधिक संघर्ष करता है। ठीक यहीं पर वीणा इसी समाज का प्रतीक बनती है। सामाजिक संरचना में ऐसा बहुत कुछ है जिसके औचित्य, श्रेष्ठता पर अज्ञेय तार्किक दृष्टि से सवाल करते हैं और उसमें परिवर्तन की अपेक्षा रखते हैं। अपने लाभ, अपने हित, स्वार्थ तथा सुखकारी संसाधनों के व्यामोह में अपनायी गई स्थितियों को सहज स्वीकार कर लेने की अवस्था में मानव समाज, अज्ञात विकृतियों को अपने भीतर जन्म देता जाता है जिसको हल कर पाना स्वयं मानव समाज की क्षमता से बाहर चला जाता है। असाध्य वीणा में राजा से लेकर दरबार के चारो ओर उपस्थित मानव समाज इसी प्रकार का होता है जो हजारों वर्षों से दिग्भ्रमित है जो अपने चारो ओर छाई असाध्यता से मुक्त होने की प्रतीक्षा में हैं ।

कविता में वीणा हजारों वर्ष के उस समाज के प्रतीक के रूप में रखी जाती है जिसके वास्तविक सुर को सुनने (जानने) के लिए व्यग्र मानवता खड़ी है। अज्ञेय एक ओर प्रतीकात्म वीणा को रखते हैं तो दूसरी ओर कालप्रवाह में भटके वर्तमान समाज को भी उसके समक्ष रखते हैं। वास्तव में यहीं से कविता का उद्देश्य युग में श्रेष्ठ समाज की चेतना का संचार करके परिवर्तन करना है। यह उद्देश्य लोकोन्मुखी अथवा लोककल्याणकारी होता है। प्रत्येक युग परिवर्तन के लिए जो कि कविता का एकमात्र उद्देश्य है, आत्मशोधन आवश्यक होता है। यह दायित्व सम्पूर्ण समाज का होता है लेकिन जैसा कि हमने ऊपर कहा लोक बड़ी ही तेजी से अपनी सुख-सुविधा और समाज में सहज स्वीकार कर ली जानी वाली मान्यताओं के चलते विकृत और परिवर्तित होता चला जाता है। ऐसा नहीं है कि यह तकनीकी तथा संसाधनों से भरे मानव समाज के ऊपर दोषारोप है लेकिन इनसे मानव समाज में विकृत मनोवृत्तियाँ जन्म लेती हैं। भयानक रूप से जटिल जीवन अवस्थाएँ प्रकट होती हैं। वहाँ क्रमश: विकार बढ़ता ही जाता है। आज अनुमान लगा सकते हैं विकसित और आधुनिक मानव समाज कितना अधिक तनावग्रस्त, कुण्ठित, जटिल और विकृत हो चुका है। मानसिक सुख-शान्ति, सन्तोष, आनन्द, कोमलता जैसे भाव खतम होते जा रहे हैं। यह आत्मशोधन गौतम बुद्ध ने किया था, मूसा ने किया था, ईसा मसीह, मुहम्मद साहब, गुरुनानक आदि जैसे लोकसाधकों ने किया था। वहाँ युग परिवर्तन हुए थे तथा नवीन परम्पराएँ विकसित हुईं। निश्चय ही इस आत्मशोधन की मानव सभ्यता को लगातार आवश्यकता है। प्रियम्वद केशकम्बली का आत्मशोधन, अज्ञेय की अस्तित्ववादी अवधारणा नहीं है- वह लोकहित तथा लोकचिन्तन की प्रक्रिया है जिसका सत्य उजागर होते ही सभी को अपने-अपने सत्य की स्वरलहरियाँ सुनाई पड़ने लगती हैं

इस लिहाज से असाध्य वीणा कविता स्व के शोधन से अधिक सर्व के अस्तित्त्व के पहचान की कविता है। यह बहुत ही जटिल प्रक्रिया है जिसे प्रियम्वद गुफाओं में किये गये दशकों की एकान्त साधना से प्राप्त शक्ति द्वारा लोक के सत्य का ज्ञान प्राप्त करते हैं। किसी एक व्यक्ति के सत्य को सम्पूर्ण समाज पर स्थापित नहीं किया जा सकता। लोक का सत्य ही लोक पर लागू किया जा सकता है केवल उसकी दिशा सही होनी चाहिए। इस सही दिशा का शोधन प्रियम्बद को करना था। अत: इसके लोक कल्याण के सार्थक उद्देश्य से तथा उसकी

चिन्ता से नकारा नहीं जा सकता। इसको देखने के लिए समाज तथा व्यक्ति के अन्योन्यश्रित सम्बन्ध की अवधारणा पर विचार करना होगा। समाज तथा व्यक्ति के इस सम्बन्ध का सहयोग लेना होगा। इस प्रकार विचार करने से यह कविता मानव समाज की जटिल स्थितियों-परिस्थियों, जीवन-प्रक्रियाओं तथा सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक अवस्थाओं को सत्य केन्द्रित सन्दर्भों की ओर जाने के लिए प्रेरित करती है।

हम जानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति का निर्माण उसकी सामाजिक परिस्थितियों एवं आसपास के सांस्कृतिक वातावरण की प्रक्रियायों के अन्तर्गत ही होता है। वह चाहे कोई भी हो इससे मुक्त नहीं हो सकता। यह मनुष्य के निर्माण की प्रक्रिया का एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। समाज की गत्यात्मक परम्परा और मानस निर्माण की पद्धति इसमें अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बाद में भले ही विचारवान होने के बाद उसके पक्ष अथवा विपक्ष से जुड़े या फिर समाज की बनी बनाई परिपाटी को न माने, यह अलग स्थिति है। उसके विचार और भाव निर्माण में सामाजिक अवधारणाओं और मनुष्य से सम्बन्धित अवस्थाओं की परिभाषाओं का प्रभाव निश्चित रहता है। हो सकता है कि उन्हीं पृष्ठभूमि पर वह अपने लिए नये विचार निर्मित कर ले। अज्ञेय की नदी के द्वीप तथा यह दीप अकेला जैसी कवितायें भी समाज के सह अस्तित्त्व को स्वीकार करती हैं।

एक व्यक्ति जो अपनी सभी व्यक्तिवादी मान्यताओं के बावजूद सामाजिक निर्माण तथा उसकी संरचना में विश्वास रखता है और भूमिका भी निभाता है। वह युग के सत्य की पहचान रखता है। असाध्य वीणा का भी यही मुख्य संप्रेषण है। समाज के सत्य से निर्मित व्यक्ति का सत्य, अपनी साधना द्वारा युग का अगला सत्य निर्मित करता है। इस प्रक्रिया में युग के सत्य और व्यक्ति के सत्य, अन्योन्याश्रित तरीके से एक दूसरे को पुनर्निर्मित और पुनर्स्थापित करते हैं। ये दोनों प्रक्रियाएँ समयानुकूल भी चलती हैं और कई बार तो समानान्तर भी। इस तर्क से हम विश्व के दार्शनिक विचारों, समय-समय पर प्रकट धर्मो, वैज्ञानिक आविष्कारों पर भी गौर कर सकते हैं। उन सब में लोक के कल्याण के लिए, लोक के विकास का भाव रहता है। अत: यह एक व्यक्ति की स्थापना नहीं होती बल्कि युग सत्य के समष्टिबोध का ही प्रसार होता है जिसका उद्देश्य लोक का कल्याण होता है। ऐसे में यह माना जा सकता है कि व्यक्ति का सत्य, युग के सत्य से कभी भी भिन्न नहीं हो सकता। उसका बोध अवश्य भिन्न हो सकता है। हाँ जब व्यक्ति का सत्यबोध युग पर स्थापित होता है तो वह नायकत्व को प्राप्त कर जाता है। इस कविता का प्रियंवद भी उसी प्रकार से नायकत्व की ओर बढ़ता है, जो अगणित स्व-ओं के सत्य से निर्मित युग के सत्य की तलाश करता है, उसकी पहचान करता है।

कविता के कथानक की ओर चलें तो लोक के समक्ष असाध्य वीणा इतनी विकराल समस्या है कि राजा से लेकर साधारण मनुष्य तक उसका हल नहीं ढूँढ पाते हैं। यह वीणा केवल वाद्य यंत्र भर नहीं है। अज्ञेय उसे लोक जीवन की उन सभी जटिलताओं और विकृतियों के प्रतीक के रूप में रखना चाहते हैं जिनके प्रवाह में समाज का हर तबका, हर आदमी यहाँ तक की राजा भी दिग्भ्रमित हो चुका है। ऐसा प्रतीत होता है कि इससे मुक्ति का कोई मार्ग ही नहीं, इसे हल करने की कोई शक्ति ही नहीं। राजा वीणा रूपी समस्या को को प्रियंवद के सामने रख देता है-

तात प्रियंवद लो यह वीणा रही सम्मुख तुम्हारे
वज्रकीर्ति की वीणा
यह मैं, यह रानी, भरी सभा यह
सब उदग्र, पर्युत्सुक
जन मात्र प्रतीक्षामाण

अधिकांशत: किसी भी कार्य को करने के लिए हम उसी तरीके को अपनाते हैं जो हमारे समक्ष परम्परागत रूप में उपलब्ध होता है या फिर इस प्रकार कहें कि जो हमें बताया अथवा सिखाया गया रहता है। लेकिन यह

आवश्यक नहीं कि वही एकमात्र तरीका हो। लोक अपने विकास और परिवर्तन के क्रम में उन स्वरूपों को भूलता चला जाता है जिससे असाध्य को साधा जा सके। उससे अभिज्ञ होता चला जाता है। एक दिन वह स्वरूप छूट जाता है। असाध्य वीणा कविता भी समाज के उसी लुप्त हो गये ज्ञान का बोध कराती है। हम पाते हैं कि राजा वीणा को सामने रखता है तो जैसे एक प्राचीन समस्या को सामने रखता है। वह समस्या इतनी प्राचीन, विशाल और रूढ़ है कि कोई भी उसके बारे में ठीक-ठीक कुछ नहीं बता सकता कि इसकी शुरुआत कब और कैसे हुई। स्वयं राजा ही कह देता है- पूरा तो इतिहास न जान सके हम, किन्तु सुना है। वह समस्या इतने वर्षों बाद भी मानव की कई पीढ़ियों के आगे असाध्य रह गयी है।

हम यहाँ सवाल कर सकते हैं कि वीणा ही इसका प्रतीक क्यों बनी। वस्तुतः संगीत ही ऐसी वस्तु है जिसको उत्पन्न करना जितना जटिल है, आत्मसात करना उतना सरल। एक बार उत्पन्न होने के बाद स्वर-लहरियाँ आत्मा तथा मन को तृप्त करने लगती हैं। संभव है अज्ञेय ने इसी कारण इस समस्या को वीणा के प्रतीक के रूप में रखा। जटिलता से सरलता की ओर ले जाना भी कविता का ध्येय है। हम जानते हैं वीणा में असंख्य प्रकार की ध्वनियाँ निकाली जा सकती है। असंख्य मनुष्य के लिए असंख्य स्वरलहरियाँ। असंख्य स्वरलहरियाँ- असंख्य स्व-ओं का सत्य। असंख्य स्व-ओं का सत्य-असंख्य अनुभव, ज्ञान, बोध। इस असंख्य बोध तक पहुँचना ही वास्तविक रूप से इस कविता का उद्देश्य है।

वीणा रूपी यह समस्या युग की हो सकती है, समाज की हो सकती है, जो परिवर्तन के क्रम में क्रमशः विकराल रूप ले लेती है कि सृष्टि का कोई भी संचालक, धर्मगुरु और प्रशासक इसका हल नहीं ढूँढ पाता। स्पष्ट है कि अहंकार और विकृतियाँ के सहारे इसको हल नहीं किया जा सकता। दिग्भ्रमित, कुण्ठित और विकृत मानव इसको और बढ़ायेगा ही। तब ऐसे सिद्ध शक्ति वाले लोगों की तलाश करनी पड़ जाती है जो उसको साध सके। उसका निवारण कर सके। उस बिन्दु को वज्रकीर्ति विश्लेषित और परिभाषित तो कर जाता है, किन्तु वह नयी व्यवस्था और नयी विचारधारा (युग परिवर्तन) को लोगों में प्रवाहित नहीं कर पाता। समय के साथ बदलता हुआ युग सत्य स्वयं ही विस्मृत अवस्था में चला जाता है। पीढ़ीयाँ अपने आधुनिक अवस्थाओं के प्राप्त करती हुई जीवन की जटिलताओं में उलझती चली जाती हैं। वे अपनी परम्परा, अपने मूल ज्ञान एवं ऐतिहासिक सत्य से विमुख होती जाती है। ये बदलाव ही आने वाले युग का सत्य बनते चले जाते हैं। लेकिन मानव समाज अपने आन्तरिक सुख को, अपने सत्य को भूलता जाता है। इसीलिए वह वज्रकीर्ति की वीणा को साध नहीं पाते क्योंकि वे सब कुछ सैकड़ों हजारों वर्ष पीछे विस्मृत कर आये होते हैं। भूल गये होते हैं। प्रियंवद केशकम्बली से पहले इस वीणा को साधने वाले और उसको सुनने की प्रतीक्षा करने वाले सभी लोग भी उन्हीं सामाजिक परम्पराओं, परिभाषाओं तथा प्रकियाओं द्वारा ही निर्मित होते हैं। अब जबकि वर्तमान सामाजिक जटिलता इन सभी स्व-ओं पर हावी है। इसलिए इनका बोध और ज्ञान वीणा को असाध्य बना चुका था। वह काल के प्रवाह में विच्छिन्न हो चुका रहता है। राजा गहरी साँस लेकर संकेत करता है-

मेरे हार गए सब जाने माने कलावंत
सबकी विद्या हो गई अकारथ, दर्प चूर
कोई ज्ञानी गुणी आज तक इसे न साध सका।
अब यह असाध्य वीणा ही ख्यात हो गई।
पर मेरा अब भी है विश्वास
कृच्छ्र-तप वज्रकीर्ति का व्यर्थ नहीं था।
वीणा बोलेगी अवश्य, पर तभी
इस जब सच्चा-स्वरसिद्ध गोद में लेगा।

वज्रकीर्ति की वीणा वह कल्पना है जो समाज का वास्तविक सच होता है। उसका सम्पूर्ण जीवन समाज की संरचना और उसकी दिशा को समझने और उसके चिन्तन में समाप्त हो जाता है। वज्रकीर्ति के इसी साधना की बात किंवदंती के रूप में चलती चली आयी है। वह युग की साधना करता है। सत्य की साधना करता है। उस बिन्दु को वज्रकीर्ति विश्लेषित तो कर जाता है, लेकिन वह नयी व्यवस्था और नयी विचारधारा को लोगों में नहीं प्रवाहित कर पाता है। प्रियंवद केशकम्बली, वज्रकीर्ति की साधनावस्था तक पहुँचता है, उसके सत्यबोध तक पहुँच जाता है। यहाँ ध्यान देना होगा कि वज्रकीर्ति के समय का सत्य भिन्न होता है और वर्तमान समय का भिन्न। ऐसी अवस्था में प्रियंवद केशकम्बली मानव के उसी सत्य आह्वान करता है जो मानव सभ्यता तथा उसके जीवन के लिए आवश्यक है। वह मानव समाज के सात्विक गुणों की संरचना को समझने का प्रयास करता है।

यहाँ सवाल उठता है कि असाध्य क्या है और यह युग परिवर्तन क्या है। इन दोनों पर साथ-साथ विचार कर सकते हैं। समाज और लोक में परिवर्तन को युग परिवर्तन कह सकते हैं। लेकिन युग का सत्य बड़ी मुश्किल से बदलता है। प्राचीन मान्यता है कि प्रलय के पश्चात मानव समाज एक नया आकार लेता है और तत्पश्चात युग सत्य नवीन रूप लेता है। पिछले युग के अवशेषों से नवीन का निर्माण होता है। पिछली सभ्यता के सम्पूर्ण विनाश के पश्चात मानव के सामने मात्र जीवन को चलायमान रखने का कार्य रहता है। अब दूसरी ओर विचार करें कि इससे पूर्व क्या स्थिति रहती है। वह यह होती है कि मानव, जीवन विकास के साथ अनेक विकृतियों को निर्मित करता आता है। जीवन की सरलता के स्थान पर उलझा और जटिल जीवन बनाता जाता है। भय, घृणा, मानसिक तनाव, कुत्सित इच्छाएँ अपराध, स्वार्थ जैसी समस्यायें पनपती जाती हैं जिनका कोई हल नहीं होता। सभी चाहते हैं कि सबकुछ ठीक हो, भ्रष्टचार खतम हो, अपराध समाप्त हो, लोगों के बीच में दूरी न हो, स्वार्थ खतम हो, लोग मेल मिलाप से रहें, लेकिन ऐसा होता नहीं। प्रजा से लेकर शासन तक, सभी अपने भ्रष्ठ आचरण में डूबे सृष्टि के स्वतः सुधरने अथवा किसी और द्वारा सुधार दिए जाने की प्रतीक्षा में रहते हैं। यही रूप स्थापित हो जाता है धीरे-धीरे यह जटिलतम सांसारिक चक्र ही यथार्थ और सत्य बन जाता है। यह असाध्य बन जाता है।

हम जानते हैं मनुष्य आज भी उतना विकसित नहीं हुआ है जितनी उसकी क्षमता है। इस स्थिति में मानव के भीतर बदलते परिवेश, युगचरित्र और जटिलता के बावजूद भी वह भाव रहता है जिसमें इन कुण्ठाओं, विकृतियों आदि से मुक्ति की कामना रहती है। इसीलिए राजा के दरबार के चारों ओर सारी जनता समाधान के लिए प्रतीक्षारत है। अज्ञेय कल्पना करते हैं युग सचेता साधक ही इससे मुक्ति दिला सकता है। स्वार्थ, पतित व्यवहार, लोभ और लालच से मुक्त जीवन की साधना में लीन युग सचेता साधक ही इसकी संभावना को सफल सकता है। लाभार्थी संस्थाओं एवं आकण्ठ युग प्रवाह में डूबा व्यक्ति युग परिवर्तनकारी नहीं हो सकता। सच्चे और पवित्र साधक में ही इतनी शक्ति होती है कि वह युग सचेता बन सके। प्रियम्बद केशकम्बली की संरचना ऐसे व्यक्ति की है जो समाज में उपजे स्वार्थ से कोई सरोकार नहीं रखता न ही कोई लाभ चाहता है। निश्चय ही ऐसा साधक समाज के प्रवाह तथा स्वभाव से दूर रहता है। उसका प्रवेश सामाजिक सत्य का ज्ञान, लोक को कराने के उद्देश्य से होता है। संभवतः अज्ञेय सामाजिक ढाँचे को युग का बनावटी सत्य मानते हैं। इसी कारण इनकी कविताएँ बनावटी सामाजिक समझौतों एवं आचरण से भिन्न व्यक्ति के आत्मसत्य से युक्त कही जा सकती हैं। अज्ञेय कोई महान विचारक अथवा दार्शिनक चिन्तक अथवा धर्मज्ञाता नहीं थे लेकिन उनके भीतर बनावटी युग सत्य को अपनाने की इच्छा नहीं थी। इसीलिए उनका शेखर विद्रोही बन जाता है और नदी के द्वीप से लेकर अपने अपने अजनबी तक के पात्रों में फैल जाता है और उनकी तमाम कविताएँ आत्मबोध की कविता में प्रकट होती हैं। मनुष्य अपनी विकृतियों के चलते ही अपने भीतर की कमियों को नहीं देख पाता और समाज के सही

रूप का ज्ञान नहीं प्राप्त कर पाता। प्रियम्बद केशकम्बली अज्ञेय की उसी इच्छा का पर्याय बनकर प्रकट होते हैं जो समाज के युग सत्य का बोध करता है और उसे सामने रखता है। इसलिए अज्ञेय कविता में केशकम्बली से कहलवाते हैं-

राजन पर मैं तो
कलावन्त हूँ नहीं, शिष्य, साधक हूँ
जीवन के अनकहे सत्य का साक्षी।
वज्रकीर्ति
प्राचीन किरीटी-तरू

अज्ञेय अपने इस बोध को ही जापानी लोककथा के माध्यम से हमारे सामने रखते हैं। स्पष्टतः इच्छाजन्य पतन, भ्रष्टाचार, मूल्यहीन कुण्ठाओं से मुक्त समाज को नई दिशा देना ही इस कविता की स्थापना हो सकती है। जैसे ही अज्ञेय जीवन के अनकहे सत्य का साक्षी कहते हैं, यह कविता पूर्णतः लोक साधना से जुड़ जाती है। वज्रकीर्ति का अनुभव ज्ञान, किरीटी वृक्ष के सांसारिक चक्र का बोध करना, युग चेतना का ही बोध है। यह गलत नहीं होगा कि कोई पूरे युग-सत्य को साध ले, पहचान ले- वह युग को नई दिशा न दे दे। यह जो साध लेना, पहचान लेना है यह अनुभव की साधना, समाज के युगसत्य की साधना है। वह युग जो अपनी मानसिक संरचनाओं, कुण्ठाओं, स्वभावों और भौतिक अवस्थाओं से उभरी जटिलताओं से बने मनुष्यों के साथ राजा के दरबार में उपस्थित होता है। केशकम्बली वर्तमान के सहारे भूतकाल से लेकर वर्तमान तक के अवशेषों, परिवर्तनों, विभिन्न पड़ावों तक का शोधन करके लोगों तक स्वयं पहुँचाता है। वहाँ से समाज तथा युग के वास्तविक सत्य को पहचान कर लाता है। प्रियंवद केशकम्बली द्वारा वीणा का वादन यही है जिसके सहारे सभी उस सत्य में अन्तर्भुक्त होकर अपने सत्य को पहचान पाये। उस सत्य का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सके। यह एक सर्वहितकारी घटना होती है जो स्वार्थ, भ्रष्टता और विकृतियों एवं जड़ समस्याओं से मुक्त होती है। इसमें सभी तिर जाते है, यही अज्ञेय का युग परिवर्तन होता है। अज्ञेय के लिए वीणा से प्रकट होने वाला संगीत मात्र संगीत न होकर ब्रह्माण्ड के उस प्रथम विस्फोट की तरह होता है जहाँ से ग्रह-नक्षत्र बनते हैं, जहाँ से जीवन के कण निर्मित होते हैं। इसी में प्रकृति का गतिशील, स्वाभाविक और सार्वभौमिक रूप होता है। मनुष्य जिसने ब्रह्मण्ड की मौन निर्मिति को सदैव नियन्त्रित और विकृत किया, इस ध्वनि द्वारा मुक्ति पाता है। स्वनिर्मित पीड़ाओं में डूबा सम्पूर्ण दरबार प्रियम्वद की वीणा साधना को धारण कर पाता है-

अवतरित हुआ संगीत
स्वयंभू
जिसमें अखण्ड सोता था
ब्रह्म का मौन
अशेष प्रभामय।
पूरे दरबार में सन्नाटा छा जाता है और
डूब गए सब एक साथ।
सब अलग-अलग एकाकी पार तिरे।

वज्रकीर्ति के सत्य, सदियों पुराने कीरिटी तरू के समक्ष प्रवाहित समय के सत्य, हजारों वर्षों से चली आ रही मानव सभ्यता की सभी ज्ञात-अज्ञात जीवन अवस्थाओं की सत्य साधना, अज्ञेय का काव्य-कौशल ही कहा जायेगा कि वीणा को प्रतीक रूप में रखते हैं और उसके झंकार को आनुभूतिक विस्तार देते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि अज्ञेय ने इस पूरी प्रक्रिया में विरेचन सिद्धान्त को भी अपनाया है। स्वयं की अनुभूति द्वारा

हर सामाजिक मनोवृत्ति के भीतर समा चुकी विकृति को संगीत के बल पर विरेचित करके सम्पूर्ण जन समुदाय को निर्मल एवं पवित्र करने का विचार कवि के यहाँ दिखायी देता है। वीणा के संधान से सबकुछ विरेचित होने के बाद सभी को अपने जीवन सत्य का भान होता है। नैतिक और व्यावहारिक जीवन का अहसास होता है। जीवन के व्यर्थ तत्त्वों का विनाश होता है। प्रत्येक मानव मन में अपने कर्म के प्रति सद्भाव का संचार होता है। प्रत्येक भ्रमित मनुष्य केशकम्बली के संधान से विरेचित होकर भ्रममुक्त होता है। असाध्य समाज अथवा लोक को साध पाना सरल कार्य नहीं है लेकिन अज्ञेय ने इसको भी अपनी कविता के माध्यम से फलित होते दिखाया है। एक प्रकार से संकेत है कि प्रत्येक प्रवाह को सही दिशा दी जा सकती है कुछ भी असाध्य नहीं है। इसके लिए आत्म की शुद्धता अति आवश्यक है जिसकी प्रस्तुति यह कविता करती है।

इस सत्य संधान और विरेचन के बाद मनुष्य को जीवन की सार्थकता और दिशा का अहसास होता है। विचारणीय है कि एक मनुष्य कहीं राजा होता है तो कहीं भिखारी होता, कहीं वैद्य तो कहीं व्याधियों से भरा जीव, कहीं मजदूर तो कहीं मालिक, कहीं किसान तो कहीं व्यापारी, कहीं सोनार तो कहीं लोहे का काम करने वाला तो कहीं चमड़े का काम करने वाला, कहीं धनी तो कहीं गरीब। आधुनिक सन्दर्भों से जोड़ें तो वैज्ञानिक, आविष्कारक आदि अनेक रूप भी हैं। ऐसे हजारों हजार स्त्री-पुरुष होते हैं जो समाज, देशकाल में विभिन्न भूमिकाओं में होते हैं तथा जिनका सामाजिक उत्थान एवं पतन में हिस्सा रहता है। इन्हीं भूमिकाओं में भटकाव ही सबको भ्रमित कर देता है और विकृतियों को असाध्य कर देता है। समाज को बेहतर बनाये रखने के लिए इन सबका विभ्रम दूर करना इस असाध्य वीणा का एक विशेष उद्देश्य होता है। ऐसा नहीं है कि सबकुछ विकृतियों से ही भरा होता है लेकिन पतनशील अवस्था में सही कर्म और प्रक्रिया भी अपने औचित्यपूर्ण अवस्था में नहीं रहती। वीणा की ध्वनि के साथ सबकी कलुषित भावना, द्वेष सब कुछ पुराने लगड़े की तरह झड़ जाते हैं। राजा के भीतर अहंकार, सर्वाधिकार की भावना, महत्त्वाकांक्षा, ईर्ष्या भाव का विनाश होता है तो उसे अपना राजमुकुट शिरीश के फूल की तरह हल्का प्रतीत होता है। वह धर्मभाव के लिए अपने को न्यौछावर कर देने का संकल्प लेता है। रानी को जीवन के आलोक प्रेम भाव का ज्ञान प्राप्त होता है। वह मोह के मणिमाणिक्यों को छोड़ प्रेम को साधने का संकल्प लेती है।

सभी मनुष्य अपने अपने जीवन संरचनाओं के अनुसार उस युगीन सत्य को महसूस करते हैं- किसी को प्रभु की कृपावाक्य की तरह सुनाई दिया। किसी को आतंकमुक्ति का आश्वासन, किसी को भरी तिजोरी में सोने की खनक, किसी को बटलोई में बहुत दिनों के बाद अन्न की खुशबू, किसी को वधू के सहमी पायल जैसी ध्वनि, किसी को शिशु की किलकारी, किसी को जाल में फंसी मछली की तड़पन। सभी अपने भीतर के स्व को अर्थात् जिन जिन इच्छाओं, मानसिक संवेदनाओं से बने हैं, उसी सत्य को सुनते हैं। मानव समाज के श्रेष्ठ विकास के लिए प्रत्येक मानव की विशिष्ट भूमिका है वही उसका सत्य है- वही उसका कर्म है। वीणा की ध्वनि उसके वास्तविक कर्म के स्वर की तरह सुनाई देती है- वही उसका सत्य होता है। सभी अपने औचित्यपूर्ण भूमिका का ज्ञान (बोध) प्राप्त करते हैं। केशकम्बली की इस वीणा- साधना में सभी भौतिक प्रवृत्तियाँ विरेचित होती हैं और उन विकृतियों का नाश होता है। यही कविता का साध्य है। केशकम्बली स्पष्ट कहता जिसे हमने जाना वह ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, वही सत्य है-

मैं तो डूब गया था स्वयं महाशून्य में-
सुना आपने जो वह मेरा नहीं,
न वीणा का था
वह तो सब कुछ की तथता थी
महाशून्य वह महामौन

अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
जो शब्द हीन सबमें गाता है।

अभी तक जो हम चर्चा करते आये हैं उसी को अज्ञेय तथता कहते हैं। तथता अर्थात तथ्यता। संसार की तथता जो वास्तविकता और सत्य से निर्मित है। तथता शब्द बौद्धधर्म के महायान शाखा की अवधारणा है जिसका सम्बन्ध संसार की वास्तविकता से है। अज्ञेय के सब कुछ की तथता के साथ कविता समाज तथा संसार के उस वास्तविक सत्य के तलाश को पूरी करती है जो सत्य चारो ओर व्याप्त है जिसका विनाश नहीं किया जा सकता। वह सार्वभौमिक ब्रह्मसत्य, चिरस्थाई होता है। सम्पूर्ण जगत इसी से विमुख, दिग्भ्रमित होकर, विकृतियों को अपनाता जाता है। जीवन को धारण करने वाले शरीर के व्यवस्था की वास्तविकता में विकृतियों का प्रवेश पतनशीलता है। उस व्यवस्था में विकसित मायाजाल की सभ्यता में लिप्त मानव, जीवन को जटिल से जटिलतर बनाता चला जाता है। मानव सभ्यता तथाकथित विकास और तमाम भौतिक एवं तकनीकी संसाधनों का निर्माण करते हुए मनुष्य और मनुष्यता सबकुछ खो देते हैं। संसार इसमें खो जाता है और वीणा असाध्य हो जाती है। अज्ञेय की अध्वनित वीणा, ध्वनिमय होने के बाद युग के महान सत्य को सबके भीतर समाहित करती है। उसके बाद युग बदलने की सूचना के साथ अज्ञेय कविता समाप्त करते हैं साथ ही साथ अपनी वाणी के भी मौन होने का संकेत करते हैं–

उठ गयी सभा। सब अपने अपने काम लगे ।
युग पलट गया।
प्रिय पाठकों यों मेरी भी वाणी
मौन हुई।

जब कविता इन सरल और सहज पँक्तियों के साथ समाप्त होती है तो यह संकेत है कि यह कविता बड़े ही शान्त तरीके से कालखण्डों के बीच मानव सभ्यता को, पतनशील परिवर्तनों के प्रति सचेत रहने के आवश्यकता की ओर संकेत करती है। सम्पूर्ण जगत सत्य और ज्ञान के प्रति सचेत करती है। जीवन के वास्तविक और सार्थक उद्देश्य की ओर लौटने के लिए प्रेरित करती है। स्पष्टतः असाध्य वीणा कविता जीर्ण-पुरातन के नष्ट होते जाने के पश्चात जनमानस को दैनिक जीवन प्रक्रिया की ओर नवोन्मुख करने का संकेत करती है। यही युग पलटने के बाद की स्थिति है जैसे प्रलयोपरान्त नवीन युग का आरम्भ होना। साधारण शब्दों में कहें तो तमाम अन्तर्विरोधों, जटिलताओं, स्वार्थ से भरे सांसारिक संघर्ष का समाप्त होना ही युग पलट जाना है। एक युग के बाद दूसरे युग का आरम्भ होना है। यह कविता इन्हीं अर्थों में अज्ञेय की श्रेष्ठतम कविताओं में रखी जायेगी, जिसके अंत में कवि कथावाचक की तरह कविता तथा अपनी वाणी दोनों के मौन होने की बात करता है। हालांकि यह असाध्य वीणा कविता सदैव लोक तथा उसके युगीन सत्यबोध का पाठ करती रहेगी।

❖❖❖

रघुवीर सहाय एवं सर्वेश्वर की कविताओं में प्रतिरोध का स्वर

❍ कुणाल भारती[1]

रघुवीर सहाय एवं सर्वेश्वर नयी कविता के दो महत्वपूर्ण कवि हैं। लेकिन इन दोनों कवियों की खासियत यह है कि नयी कविता की प्रवृत्ति में बंध कर कविताएँ नहीं लिखते हैं। नयी कविता से शुरुआत करने के बावजूद नयी कविता की सीमाओं का अतिक्रमण करते हैं और जनवादी रूझान की या जन संबद्ध कविताएँ लिखने लगते हैं। शुरुआती दौर में दोनों कवियों की कविताओं में रोमानी भाव-बोध मौजूद है लेकिन बदलते हुए समय, समाज, राजनीति, सत्ता व्यवस्था के स्वरूप एवं तत्कालीन समय की जमीनी यथार्थ को गहराई से जानने, समझने, महसूस करने एवं उनसे जुड़ने के चलते इन दोनों कवियों की कविताओं में अपने समय और समाज का सत्य एवं यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है। यही वजह है कि इन दोनों कवियों की कविताएँ प्रतिरोधी स्वर की कविताएँ हो जाती हैं। इन दोनों कवियों की कविताओं का मूल स्वर प्रतिरोध है।

प्रतिरोध का यह स्वर सन् साठ के बाद इन दोनों कवियों की कविताओं में पूरी मुखरता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। दोनों कवियों की कविताओं में प्रतिरोध का जो स्वर है वह शोषित, पीड़ित, उपेक्षित आम जन के प्रति उनकी संवेदनशीलता एवं प्रतिबद्धता के चलते भी है। साथ ही सत्ता, व्यवस्था, राजनीति के अमानवीय चरित्र के चलते और भारतीय लोकतंत्र को समाजवादी, जनवादी विचार से काटकर अवसरवादी चरित्र में तब्दील कर देने के चलते है। यही वजह है कि दोनों कवियों की कविताओं में भारतीय समाज व राजनीति के छल-छद्म, अवसरवाद, सत्ता-लोलुपता, भाई-भतीजावाद, आभिजात्यवाद, अधिनायकवाद की जो प्रवृत्ति उभरी है, इन्हीं अमानवीय प्रवृत्तियों एवं लोकतंत्र विरोधी चरित्रों के विरुद्ध इन दोनों कवियों की कविताओं में प्रतिरोध का स्वर मुखर रूप से अभिव्यक्त हुआ है।

दोनों कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से भारतीय समाज एवं भारत के लोगों को चेतस बनाने का काम किया है और भारतीय लोकतंत्र जिसके मूल में समाजवाद व जनवाद है, उस रास्ते पर इसे पूरी प्रतिबद्धता के साथ आगे बढ़ाने का काम किया है। दोनों कवियों को जनता और जनता की ताकत पर पूरा भरोसा है। इसीलिये वे आम जन को जागरूक व चेतना सम्पन्न बनाना चाहते हैं। इस कार्य में वे कवियों, साहित्यकारों, पत्रकारों व बुद्धिजीवियों की बड़ी भूमिका को रेखांकित करते हैं। साहित्यकारों की भूमिका के संदर्भ में रघुवीर

1. सीनियर रिसर्च फेलो, हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना; मो.- 953491407

सहाय का स्पष्ट मानना हैं- "साहित्यकारों का काम है जनता की राजनीतिक चेतना को बढ़ाएं।"

कविता संबंधी अपने वक्तव्य में जहाँ एक ओर रघुवीर सहाय कहते हैं कि "विचार-वस्तु का कविता में खून की दौड़ते रहना कविता को जीवन और शक्ति देता है और यह तभी संभव है जब हमारी कविता की जड़ें यथार्थ में हों।"[1] वहीं दूसरी ओर सर्वेश्वर स्पष्ट शब्दों में घोषित करते हैं कि "कविता अपना वक्तव्य स्वयं देती है, कवि की वकालत उसके लिए जरूरी नहीं है क्योंकि आगे भी यदि उसे रहना है तो अपना वक्तव्य स्वयं देना होगा, कवि सदैव साथ नहीं रहेगा।"[2] स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि कविता में प्रतिरोध का महत्व एवं उसकी भूमिका उल्लेखनीय है। प्रतिरोध ही वह चेतना है जो कविता में विचार-वस्तु की यथार्थपरक अभिव्यक्ति को संभव बनती है। साथ ही उसे समसामयिक एवं प्रासंगिक बनाती है। यह हमेशा यथास्थितिवाद, अवसरवाद, एवं अधिनायकवाद के विरुद्ध संघर्ष करने वाली चेतना है।

'आत्महत्या के विरुद्ध' कविता में रघुवीर सहाय आम जन को तमाम तरह के शोषण, दमन व अत्याचार के विरुद्ध बोलने को प्रेरित करते हैं। वे कहते हैं कि यदि मेरे बोलने से सत्ता का तिलस्म नहीं भी टूटेगा तो मेरे भीतर की कायरता अवश्य टूटेगी। कायरता के टूटने का मतलब है कि विरोध और प्रतिरोध के रास्ते आगे बढ़ने के लिए वह तैयार हो रहा है। वे इस कविता में लिखते हैं-

"कुछ होगा कुछ होगा अगर मैं बोलूंगा
न टूटे न टूटे तिलस्म सत्ता का मेरे अन्दर एक कायर टूटेगा टूट
मेरे मन टूट एक बार सही तरह
अच्छी तरह टूट मत झूठमूठ ऊब मत रूठ
मत डूब सिर्फ टूट"[3]

कहा जाता है कि बोलने से सब होगा। अगर सब नहीं भी हुआ तो, कुछ न कुछ अवश्य होगा। हमें इसी कुछ को बचाए रखने की जिम्मेदारी का निर्वाह करना होगा। हमारा डर ही सत्ता का हथियार है। प्रतिरोध के लिए डर का त्याग आवश्यक है। डर का त्याग हो इसके लिए बोलना जरूरी है। जब हम बोलना शुरू करते हैं, तब हम अपने अधिकारों के लिए लड़ना भी शुरू करते हैं। इसलिए जरुरी है अपने भीतर के आवेग को शब्द दिया जाए। उसे बोला जाय, ताकि प्रतिरोध को जिन्दा रखा जा सके।

सर्वेश्वर आम जन से संवाद स्थापित करते हुए उन्हें आभिजात्यवादी प्रवृत्तियों को तोड़ने, उसके विरुद्ध आवाज उठाने की प्रेरणा देते हैं। साथ ही सत्य की ताकत और उसकी चोट के परिवर्तनकारी प्रभाव को रेखांकित करते हुए कहते हैं -

"मैं नया कवि हूँ-
इसी से जानता हूँ
सत्य की चोट बहुत गहरी होती है
मैं नया कवि हूँ-
इसी से मानता हूँ
चश्मे के तले ही दृष्टि बहरी होती है,
इसी से सच्ची चोटें बाँटता हूँ- झूठी मुसकानें नहीं बेचता"[4]

यहाँ 'सत्य की चोट' और 'बहरी दृष्टि' तथा 'सच्ची चोटें' और 'झूठी मुसकानें' एक दूसरे के आमने-सामने आकर जीवन की गहरी विडंबना को उभारती हैं जो नये कवि-कर्म का एक मुख्य दायित्व है। यहाँ सर्वेश्वर अपने कवि कर्म को स्पष्ट करते हैं। वे मर्म को सहला कर व्यथा को सुला देना अपना धर्म नहीं मानते, बल्कि मर्म को कुरेदना अपना कवि धर्म मानते हैं ताकि व्यथा से अंतर्दृष्टि मिल सके। जीवन-दृष्टि मिल सके। संघर्ष

और प्रतिरोध का रास्ता अख्तियार हो सके।

रघुवीर सहाय तत्कालीन समाज के यथार्थ को उजागर करते हैं और यह दिखाते हैं कि आजादी के बीस वर्ष बीत जाने के बाद भी समाज व सामाजिक स्थितियों में कोई खास बदलाव नहीं हुआ है। आज भी गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा, स्वास्थ्य जैसी मूलभूत समस्याएँ बनी हुई हैं। आम जन के हिस्से झूठे आश्वासन और छल के सिवा कुछ नहीं आया। रघुवीर सहाय कहते हैं-

"बीस वर्ष खो गये भरमे उपदेश में
एक पूरी पीढ़ी पली पुसी क्लेश में
बेगानी हो गयी अपने ही देश में"[5]

....

'बीस बरस बीत गए
लालसा मनुष्य की तिलतिल कर मिट गई'[6]

भारत को आजाद हुए बीस वर्ष बीत जाने के बावजूद सामाजिक परिवर्तन में कोई खास बदलाव नहीं आया। आज भी सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक न्याय भ्रम एवं बहलावे का विषय बना हुआ है। सत्ता एवं शासन व्यवस्था में आम जन की भागीदारी नहीं के बराबर है। एक पूरी पीढ़ी जिसका जन्म आजाद भारत में हुआ, भ्रम का शिकार हो गया। वे अपने से पहले की पीढ़ी से किस्से सुने भारत की आजादी के। वे उन सपनों को भी सुने जो स्वाधीनता आंदोलन के केंद्र में थे। उसने अपने पुरखों से जाना था स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा और सामाजिक भागीदारी का महत्व। अब वे उन सपनों को टूटते भी देख रहा है। कितनी बड़ी त्रासदी है यह कि जब पता चले कि बीस वर्षो का विश्वास महज एक भ्रम था। यह त्रासदी एक पूरी पीढ़ी ने महसूस किया।

बीस साल का सच यह है कि जनता ठगी का शिकार हुआ। सत्ता और सत्ता प्रतिष्ठान के द्वारा की जाने वाली घोषणाएँ महज कोरा वायदा साबित हुआ। उनके वक्तव्य पाखण्ड व अहंकार से भरे पड़े है। न्याय में घटतौल है, मिलावट है। कुल मिलाकर देखा जाय तो उनके आचरण में ही खोट है। इसका परिणाम हुआ की जनता की इच्छा मिटती-सिमटती चली गई।

सर्वेश्वर आजाद भारत के सामाजिक यथार्थ और समाज में आम आदमी की स्थितियों को लेकर चिंतित हैं। वे इन स्थितियों को अपनी कविताओं में बारीकी के साथ अभिव्यक्त करते हैं और आम जन के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त करते हुए कहते हैं-

"जहाँ मैं खड़ा हूँ-
पचास करोड़ आदमी पेट बजाते
ठठरियाँ खड़खड़ाते
हर क्षण मेरे सामने से गुजर जाते हैं
झाँकियाँ निकलती हैं
ढोंग की विश्वासघात की
बदबू आती है हर बार
एक मरी हुई बात की"[7]

देश की आजादी को डेढ़ दशक बीत चुका है। प्रत्येक वर्ष आजादी की वर्षगाँठ को धूम-धाम से मनाया जाता है और ढोंग, विश्वासघात एवं झूठ की झाँकियाँ निकाली जाती हैं। अपने निबंध में 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र' में हरिशंकर परसाई लिखते हैं "गणतंत्र - समारोह में हर राज्य की झाँकी निकलती है। ये अपने राज्य का सही

प्रतिनिधित्व नहीं करतीं। 'सत्यमेव जयते' हमारा मोटो है मगर झाँकियाँ झूठ बोलती हैं। इनमें विकास-कार्य, जनजीवन, इतिहास आदि रहते हैं। असल में हर राज्य को उस विशिष्ट बात को यहाँ प्रदर्शित करना चाहिए जिसके कारण पिछले साल वह राज्य मशहूर हुआ। गुजरात की झाँकी में इस साल दंगे का दृश्य होना चाहिए, जलता हुआ घर और आग में झोंके जाते बच्चे। पिछले साल मैंने उम्मीद की थी कि आन्ध्र की झाँकी में हरिजन जलाते हुए दिखाए जाएँगे। मगर ऐसा नहीं दिखा। यह कितना बड़ा झूठ है कि कोई राज्य दंगे के कारण अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति पाए, लेकिन झाँकी सजाए लघु-उद्योगों की।... जो हाल झाँकियों का, वही घोषणाओं का। हर साल घोषणा की जाती है कि समाजवाद आ रहा है, पर अभी तक नहीं आया। कहाँ अटक गया ? लगभग सभी दल समाजवाद लाने का दावा करते हैं, लेकिन वह नहीं आ रहा।"[8] सबने, सभी दल ने अपने मतलब से जनता को केवल ठगा है। ना समाजवाद आया, ना भुखमरी मिटी, ना ही आमलोगों के जीवन स्तर में कोई स्थायी सुधार आया।

रघुवीर सहाय सत्ता संरचना के अमानवीय चरित्रों को उजागर करते हुए बताते हैं कि अब उनमें जन सरोकार की भावना नहीं रह गयी है। सत्ता भय और आतंक का ऐसा परिवेश निर्मित करता है जहाँ आम आदमी का सम्मान के साथ जीना मुश्किल हो गया है। 'हँसो हँसो जल्दी हँसो' कविता में सत्ता के इस अमानवीय चरित्र को उजागर करते हुए कहते हैं-

"हँसो तुम पर निगाह रखी जा रही है
हँसो अपने पर न हँसना क्योंकि उसकी कड़वाहट
पकड़ ली जायेगी और तुम मारे जाओगे
ऐसे हँसो कि बहुत खुश न मालूम हो
वरना शक होगा कि यह शख्स शर्म में शामिल नहीं
और मारे जाओगे "[9]

आपातकाल की पृष्ठभूमि में तैयार इस संग्रह में कवि हँसने पर ज्यादा जोड़ देते है। हँसना इसलिए जरूरी है कि यहाँ बोलने की मनाही है। जिस लोकतंत्र में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का दमन किया जा रहा हो, वहां हँसना ही एक माध्यम बच जाता है प्रतिरोध का। बोलने के बजाय हँसना भी, असहमति व्यक्त करना है। और असहमति के अपने खतरे है। वैसे खतरा तो यहाँ हँसने पर भी है मारे जाने का। यही कारण है कि कवि हँसते हुए को भी सचेत करते हैं। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि जनता एक अपनापे की हँसी हँसे। दिखावटी हँसी हँसे।

सर्वेश्वर सत्ता के अमानवीय चरित्रों को उजागर करते हुए उसके हिंसक एवं आदमखोर स्वरूप को पाठक के सामने 'काला तेंदुआ' कविता के माध्यम से उजागर करते हैं। वे इस कविता में लिखते हैं-

"चट्टानों पर झिंझोड़ रहा है अपना शिकार
काला तेंदुआ
चट्टानें, चट्टानें नहीं रहीं
तेंदुओं में बदल गयी हैं
एक तेंदुआ
सारे जंगल को
काले तेंदुए में बदल रहा है"[10]

एक तेंदुआ-एक व्यक्ति जिसकी वृत्ति पाशविक है वह सारे समाज और सामाजिक को जंगल और काले तेंदुआ में बदलने को आतुर है। राजनीति में व्यक्ति पूजा की परंपरा सत्ता का षड्यंत्र है जो पूरी व्यवस्था को

अपने जैसा बना रहा है ।

भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था की विसंगतियों, संसदीय प्रणाली की खामियों, सत्ता के अवसरवादी एवं मूल्यहीन चरित्रों व उसके छल-छद्म और पत्रकारिता के जनविरोधी हो जाने और सत्ता की चाटुकारिता में लग जाने को 'नयी हँसी' कविता में अभिव्यक्त करते हुए रघुवीर सहाय लिखते हैं-

"बीस बड़े अखबारों के प्रतिनिधि पूछें पचीस बार
क्या हुआ समाजवाद
कहे महासंघपति पचीस बार हम करेंगे विचार
आँख मारकर पचीस बार वह, हँसे वह पचीस बार
हँसे बीस अखबार"[11]

रघुवीर सहाय पेशे से एक पत्रकार थे। वे पत्रकारिता के भीतर होने वाले छल-छदम से परिचित थे। यों तो पत्रकारिता जनता की आवाज होती है। जनता और सत्ता के बीच की कड़ी होती है। पत्रकारिता का दायित्व लोकजीवन की तकलीफों, समस्याओं, सवालों, जरूरतों एवं लोकहित से जुडी अन्य जरूरी मुद्दों को प्रकाश में लाना है। लेकिन पत्रकारिता भी कभी-कभी सत्ता के दबाब में या सत्ता के साथ काम करने लगता है। वह अपने दायित्व को भूल कर सत्ता के साथ लूट में शामिल हो जाते हैं।

जनता का जरूरी सवाल जब अखबारों एवं उसके प्रतिनिधियों के लिए मनोरंजन साधन बनने लगे, तब हमें सावधान हो जाना चाहिए। यह एक खतरनाक स्थिति है किसी भी लोकतांत्रिक देश के लिए। वैसे तो पत्रकारिता को लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ माना जाता है, लेकिन जब यह स्तम्भ सत्ता की चाटुकारिता में लग जाय तो देश अपंगता का शिकार होने लगता है।

सर्वेश्वर व्यवस्था की स्वार्थ प्रेरित मनोवृत्ति, अवसरवाद, और उसके छल-छद्म को 'लोहिया के न रहने पर' कविता में पूरी मुखरता के साथ अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं-

"उसने थूका था इस
सड़ी-गली व्यवस्था पर
उलटकर दिखा दिया था
कालीनों के नीचे छिपा टूटा हुआ फर्श,
पहचानता था वह उन्हें
जो रँगे-चुने कूड़े के कनस्तरों से
सभा के बीच खड़े रहते थे"[12]

व्यवस्था की उदासीनता, सामाजिक विसंगतियां, राजनीतिक अस्थिरता, मोहभंग आदि मौजूद परिस्थितियों के बावजूद कवि निराश नहीं होते हैं। बल्कि वे आशान्वित है, उन्हें विश्वास है कि जब आम लोग जगेंगे और चेतन सम्पन्न होंगे तो बदलाव होगा। रघुवीर सहाय स्पष्ट शब्दों में कहते हैं-

"तोड़ो तोड़ो तोड़ो
ये पत्थर ये चट्टानें
ये झूठे बंधन टूटे
तो धरती को हम जाने
सुनते हैं मिट्टी में रस है जिससे उगती दूब है
अपने मन के मैदानों पर व्यापी कैसी ऊब है"[13]

वहीं सर्वेश्वर को भी पूरा भरोसा हैं कि स्थितियाँ बदलेंगी। वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि उम्मीद की आखिरी किरण भी यदि बाकी है तो वह नये बदलाव का संकेत है। हमें निराश नहीं होना चाहिए बल्कि उस बदलाव के लिए तैयार रहना चाहिए। वे साफ-साफ कहते हैं-

"निराशा की ऊँची काली दीवार में भी
बहुत छोटे रोशनदान सी
जड़ी रहती है कोई न कोई आकांक्षा
जिसमें उजाला फँसा रहता है"[14]

मानव के जीवन मूल्यों, उनकी जरूरतों, उनके संघर्षों और उनके अस्तित्व को लेकर इन दोनों कवियों की कविताएँ उनके प्रति पूरी प्रतिबद्धता के साथ प्रतिरोध रचते हैं। रघुवीर सहाय इस लज्जित और पराजित समय में कहीं से भी संवेदनशील एवं जनप्रतिबद्ध दिमाग ले आना चाहते हैं एवं उसकी तलाश करते हैं। वे 'आने वाला खतरा' कविता में कहते हैं-

"इस लज्जित और पराजित युग में
कहीं से ले आओ वह दिमाग
जो खुशामद आदतन नहीं करता"[15]

वहीं सर्वेश्वर संघर्षो से भरे जीवन के साथ जी मर रहे आम लोगों के बीच से उस प्रतिबद्ध आम जन को सामने लाते हैं जो अपने अस्तित्व बोध के प्रति सजग हैं। 'धूल' कविता में उस आमजन को संबोधित करते हुए वे कहते हैं-

"तुम धूल हो-
पैरों से रौंदी हुई धूल
बेचैन हवा के साथ उठो
आँधी बन
उनकी आँखों में पड़ो
जिनके पैरों के नीचे हो"[16]

इस प्रकार रघुवीर सहाय एवं सर्वेश्वर अपनी कविताओं के माध्यम से जन समस्या के कारण और उसका निवारण दोनों प्रस्तुत करते हैं। दोनों कवि की कविताओं में जनपक्षधरता की गूंज हैं। बुर्जुआ लोकतंत्र की तानाशाही, उसकी उदासीनता एवं निरंकुशता, अवसरवाद, भाई-भतीजावाद, छल-छद्म और मूल्यहीनता का खुला प्रतिरोध दोनों कवि की कविताएँ हैं। दोनों कवि अपनी कविताओं के माध्यम से जन-जागृति लाना चाहते हैं। जनता के भीतर सामाजिक-राजनीतिक जागरूकता पैदा करना चाहते हैं। दोनों कवि की कविताएँ अपनी सम्पूर्णता में जन-प्रतिरोध की अभिव्यक्ति हैं।

अत: रघुवीर सहाय और सर्वेश्वर दोनों कवियों की कविताओं के मूल में प्रतिरोध एवं प्रतिरोध की चेतना मौजूद है। दोनों कवि की कविताओं का सरोकार आम आदमी के बुनियादी सवाल, बुनियादी जरूरतों, उनके सुख-दुख, भूख-प्यास, संघर्ष एवं आशा-उम्मीदों को पूरी तरह से सुरक्षित रखना है। साथ ही अपनी-अपनी कविताओं के माध्यम से आम जन मानस को जागरूक एवं चेतन सम्पन्न बनाना है जिससे की वे अपने तमाम तरह के हक-अधिकार को हासिल करने में सक्षम हो सकें और एक नागरिक के तौर पर आत्मसम्मान के साथ एक मुकम्मल जिंदगी जी सकें।

संदर्भ :

1. अज्ञेय, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन, संपा० 'दूसरा सप्तक', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2020, पृ. 139
2. वही, पृ. 107
3. शर्मा, सुरेश, संपा० 'रघुवीर सहाय रचनावली 1', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 144
4. अज्ञेय, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन, संपा० 'तीसरा सप्तक', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2020, पृ 222
5. शर्मा, सुरेश, संपा० 'रघुवीर सहाय रचनावली 1', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 110
6. वही, पृ. 139
7. जैन, वीरेंद्र, संपा० 'सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली: खण्ड एक', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 315
8. परसाई, हरिशंकर, 'प्रतिनिधि व्यंग्य: हरिशंकर परसाई', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022, पृ. 102-103
9. शर्मा, सुरेश, संपा० 'रघुवीर सहाय रचनावली 1', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 168
10. जैन, वीरेंद्र, संपा० 'सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली: खण्ड दो', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 315
11. शर्मा, सुरेश, संपा० 'रघुवीर सहाय रचनावली 1', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 133
12. जैन, वीरेंद्र, संपा० 'सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली: खण्ड एक', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 315
13. शर्मा, सुरेश, संपा० 'रघुवीर सहाय रचनावली 1', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 93
14. जैन, वीरेंद्र, संपा० 'सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली: खण्ड दो', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 315
15. शर्मा, सुरेश, संपा० 'रघुवीर सहाय रचनावली 1', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 160
16. जैन, वीरेंद्र, संपा० 'सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली: खण्ड दो', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 315

❑❑❑

कलि का माणस कौन विचारूँ

❍ डॉ. रूपा चारी[1]

संक्षिप्ति :

गुरु जाम्भोजी की वाणी में अध्यात्म चिंतन और समाज चिंतन परस्पर एक-दूसरे के पूरक हैं। गुरुजी की वाणी समाज में फैली कुरीतियों का विरोध करती है। गुरुजी की वाणी पावन मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करती है। गुरु जाम्भोजी के अनुसार कृष्ण की अनुकंपा पाने के लिए बाह्य आकर्षणों का परित्याग करना होगा। आंतरिक वृत्तियों की ओर मुड़ना होगा। यह पावन शक्ति कलि के माणस को आत्मबल प्रदान करती है। यह आत्मबल प्रभु की कृपा से जाग्रत होता है। जिस मनुष्य का अन्तःकरण अपवित्र, राग-द्वेष से युक्त होता है, वह उस ज्योति स्वरूप का अनुभव नहीं कर सकता है। वह मनुष्य स्वार्थवश अथवा अनजाने में पाप कर्म करने में लग जाता है। गुरु जाम्भोजी कलियुग में आचार-विचार द्वारा लोगों को भव सागर पार कराने हेतु उनका मार्ग दर्शन करते हुए उनसे बार-बार आग्रह करते हैं। दिन का भूला यदि रात्रि में लौट आए तो उसके जीवन में सुधार की संभावनाएँ बनी रहती है। भव सागर के माया जंजाल से विष्णु का आरध नहीं मुक्त कर सकता है। इस कलियुग में मुक्ति का एक मात्र और सर्वोत्तम मार्ग है- 'सदाचरण'। जीवन की सार्थकता उनके पालन में निहित है। मनुष्य झूठ, छल-कपट युक्त वचन लोभवश ही बोलता है जो इनका परित्याग कर मान-अपमान और घमण्ड को छोड़ संतोष, संयम और सत को अपने आचार-विचार में धारण कर लेता है, उसका आचरण धर्ममय हो जाता है। जीवन के लक्ष्य को पाने के मार्ग पर ले जाती है। गुरु की महत्ता का बोध कराती है।

बीज शब्द : अस्सारता, ज्योतिर्मय, अन्तर्मुखी, दुर्व्यवहार

गुरु जाम्भोजी की शब्द वाणी तत्कालीन युग और वर्तमान दौर में मनुष्य का मार्ग दर्शन करती है। दुष्ट प्रकृति के लोगों को अनुशासित करती है। धर्म के नाम पर समाज में फैली कुरीतियों, विसंगतियों, बाह्याडम्बरों का कड़ा विरोध करती है। बाहरी दुनिया की चकाचौंध की अस्सारता से अवगत कराते हुए गुरु के बताए मार्ग का अनुसरण करने के लिए प्रेरित करती है। सभी के कल्याणार्थ परमपिता परमेश्वर की कृपा से जोड़ने के लिए सदगुरु की शरण में जाने का आह्वान करती है क्योंकि सतगुरु ही प्रभु की महिमा का बोध कराता है कि उसकी अनुकम्पा के बिना संसार में कोई कार्य सम्पन्न नहीं होता है- "सतगुरु है सहज पिछाणी, कृष्ण चरित बिन काचौ करवै रह्यो न रहसी पांणी।" कच्चे घड़े में न तो कभी जल ठहरा और न ही भविष्य में ठहर सकेगा, लेकिन कृष्ण की कृपा से असंभव भी संभव हो जाता है। कृष्ण का कृपा-पात्र बनने के लिए मनुष्य को बाह्य आकर्षणों का परित्याग का मनमुखी से गुरमुखी बनने की साधना करनी होगी। ज्योतिर्मय सत्ता से जुड़ने के लिए बाह्य वृत्तियों

1. असोसिएट प्रोफेसर, श्री मल्लिकार्जुन एवं श्री चेतन मंजु देसाई महाविद्यालय, काणकोण, गोवा।

को त्यागकर आन्तरिक वृत्तियों की ओर उन्मुख होना पड़ता है। यह भीतर की यात्रा मनुष्य को सद्वृत्तियों से जोड़ देती है- "अड़सठ तीर्थ हिरदै भीतर, बाहर लोकाचारूं।" भीतर की यात्रा कलि के माणस को आत्मबल प्रदान करती है। यह आत्मबल प्रभु की कृपा से जाग्रत होता है। सद्गुरु का मार्ग दर्शन ही निरंजन की सत्ता का बोध कराता है-

जपां तो एक निरालंभशिम्भू, जिहिं के माई न पीऊं।
न तन रक्तूं न तन धातूं, न तन ताव न सीऊं।
सर्व सिरजत मरत विवरजत, तास न मूल ज लेणा कीयों।
अइयालो अपरंपर बाणी, म्हे जपां न जाया जीऊं।

वह सत्य सम्पूर्ण चराचर सृष्टि के कण-कण में ज्योति स्वरूप में सर्वत्र विद्यमान है। प्रत्येक शरीर में स्थित जीवात्मा उसी प्रभु का प्रतिबिम्ब है। दोनों में कोई अन्तर नहीं है। यदि ऐसा भेद लगता है, तो उपाधि के कारण है। उस परमसत्ता का अनुभव सात्विक वृत्ति के लोग ही करते हैं। वह अनादि अनन्त, अजन्मा स्वयंभू सर्वत्र विद्यमान है। मन की एकाग्रता से स्थित प्रज्ञ होकर उसका अनुभव किया जा सकता है। जिस मनुष्य का अन्तःकरण पवित्र, राग-द्वेष से रहित और शुद्ध आचार-विचार वाला होता है, वह जाति-पाँति, ऊँच-नीच से परे है, वही उस ज्योति स्वरूप का अनुभव कर सकता है- 'भवन भवण म्हें एका जोती।' का एहसास दर्द की सह-अनुभूति से जोड़ता है, तब मन में मानवीय भाव जाग्रत हो उठता है। सबका दर्द अपना ही प्रतीत होता है- "आप खुदाय बंद लेखौ मांगै, रे वीन्है गुन्है जीव क्यूं मारो। थे तक जाणों तक पीड़ न जांणो।" मनुष्य स्वार्थवश अथवा अनजाने में पाप कर्म करने में लग जाता है। शुभ कर्म तो किये नहीं, सिर पर पापों की गठरी भारी हो जाती है। इसी में युवावस्था बीत गई, कभी विष्णु का सुमिरन नहीं किया। वृद्धावस्था आ गई। सभी का समय निश्चित है। इस जन्म-जीवन का मूल्य कैसे चुकाएगा?

अपने कर्मों का दोष प्रभु को देना सर्वथा अनुचित है। यह तो कलि के 'माणस' का दोष है। उसकी विचारहीनता का परिणाम है- 'विष्णु न दोष किसो रे प्राणी, तेरी करणी का उपकारूं।' प्रसंगवश जो सम्वाद गुरु जाम्भोजी ने तत्कालीन समाज को प्रबोधित करने हेतु जाट समुदाय से किया था, तब उन्होंने मूल से जुड़ने पर जोर दिया था- 'विष्णु विष्णु भण अजर जरीजै, यह जीवन का मूलूं।' गुरु जाम्भोजी सर्वाधिक जोर करनी पर दिया है। शुभ कर्मों से रहित यही जन्म निष्फल हो जाएगा। सत् संगति में मन लगा जो दोनों का भला होगा, अन्यथा सुकरत रहित यह जीवन रूपी रथ बिना गुरु कृपा के अथाह भव सागर में डूब जाएगा। संसार सागर से पार उतारने वाला सत् गुरु मिलना बहुत कठिन है। संयोग से ही सतगुरु मिलता है जो आपकी नौका को इस कलिकाल में पार लगा सकता है, अन्यथा डूबना तो निश्चित है। कृष्ण की कृपा से ही भव सागर को पार किया जा सकता है। बेड़ी दृष्टांत उल्लेखनीय है-

बेड़ी काठ संजोगे मिलिया, खेवट खेवा खेहूं।
लोहा नीर किस विध तरिबा, उत्तम संग सनेहूं।
बिन किरिया रथ बैसैला, ज्यूं काठ संगीणी लोहा नीर तरीलूं।

इस युग का मनुष्य सदाचार से रहित हो मोह-माया के जंजाल में फंसा है। झूठे अहं में अपना जीवन नष्ट कर रहा है। मृत्यु की तरफ जा रहा है, उसे उबारना कठिन है। धार्मिक और सात्विक वृत्ति वालों को मात्र सहारे की आवश्यकता है, उनका मैं उद्धार कर देता हूँ। दुष्ट वृत्ति वालों को मैं सदाचार से जोड़कर संमार्ग पर ले आता हूँ। लेकिन कलि का माणस सात्विक और अन्तर्मुखी प्रवृत्ति को मनमुखी होता जा रहा है। इस युग में भौतिकवादी प्रवृत्तियों का मकड़जाल सबको माया के नए-नए रूपों में लिप्त कर रहा है। अनेक तरह के विकार अमानवीय, असत्य, अनाचार, दुर्व्यवहार आदि दोष अन्न में घुण (कीड़े के समान) खोखला किए जा रहे हैं, फिर भी अयाना बना हुआ है-

वेद कुराणं जालूं, भूला कुजीव कुजांणी।
वैसंदर नांही नख हीरूं, धरम पुरिख सिरजीवै पूरूं।
कलि का माया जाल फिटा करि प्रांणी,
गुर की कलम कुरांण पिछांणी।
दीन गुमांन सैतांन चुकावौ, ज्यौं तिस चुकावै पांणी।
नर पूरौ सरि विणजै हीरा, लेस्यै जारे हिरदै लोयण।
अंधा रह्या इंवांणीं, निरखि लहो नर निरहारी।
जिण चौखंड भीतरि खेल पसारी, जंपौ रे जिणि जंप्यां लाभै।
रतन काया एक हां'णी, कांही मारूं कांहीं तारूं।
क्रिया विहूंणा पर हंस या'रूं, सेल दहूं डबारूं ऊन्हां।
ईह कलि एह क हां'णी। केवल न्यानी थल सिरि आयौ; परगट खेल पसारी।
कोड़ि तेतीस पहूंचण हारी, ज्यैं छकि आई सा'री।।

कलियुग में व्यास गद्दी पर बैठे महन्त, पुरोहित और विभिन्न धर्माचार्य वेदों, उपनिषदों, गीता आदि शास्त्रों में निहित सत्य और ज्ञान की चर्चा तो करते हैं, परन्तु आचार-विचार और व्यवहार में उसका पालन नहीं करते हैं। अत: शीलहीन ज्ञान किसी का भी भला नहीं कर सकता। ऐसे योगी शास्त्र आदि को पढ़ तो लेते हैं, किन्तु अनुभवहीन होते हैं। सुनी-सुनाई बातों से लोगों को भ्रमित करते हैं। ऐसे लोगों ने वेद-शास्त्र के मार्ग को छोड़कर दन्त कथाओं द्वारा अपने सिद्ध होने का दावा करते हैं- 'पढ़ वेद कुराण कुमाया जालों, दंत कथा जुग छायो।' सिद्धों के चमत्कार द्वारा ऐसे महन्त और पुरोहित और पंडों ने भोले-भाले लोगों को भरमाकर पाखण्ड के जाल में फँसा रखा है। ये सभी साधक न होकर मनमुखी हैं। प्रसंग 46 के सन्दर्भ में 'इह तो चेडो तुच्छ है, जाणंत थोड़ी बात। कलि के चेड़े आवसी, वै पलटे सकल जमात।' के प्रति उत्तर में यह सबद कहा था। उल्लेखनीय है-

चोइस चेड़ा कालिंग केड़ा, अधिक कलावंत आयसै।
वै फेर आसन मुकर होय बैसेला, नुगरा थान रचायसै।
जाणत भूला महा पापी, बहूं दुनियां भोलायसै।
दिल का कूड़ा कुड़ियारा, उपंग बात चलायसै।
गुर गहणां जो लेवे नांही, दश बंध घर बोसायसै।
आप थापी महा पापी, दग्घी परलै जायसै।
सतगुरू के बेड़े न चढ़ै, गुरू स्वामी नै भायसै।
मंत्र बेलू ऋद्ध सिद्ध करसै, दे दे कार चलायसै।
काठ का घोड़ा निरजीवता, सरजीव करसै, तानै दाल चरायसै।
अधर आसन मांड बैसेला, मुवा मड़ा हंसायसै।

गुरु जाम्भोजी कलियुग में आचार-विचार द्वारा लोगों को भव सागर पार कराने हेतु उनका मार्ग दर्शन करते हुए उनसे बार-बार आग्रह करते हैं कि 'जे थे गुरु का शब्द मानीलो, लांघिबा भवजल पारूं। आसण छोड़ी सुखासण बैठो, जुग जुग जीवै जम्भ लुहारूं।' अभी समय है है गुरु की शरण में आ जाओ। दिन का भूला यदि रात्रि में लौट आए तो उसके जीवन में सुधार की संभावनाएँ बनी रहती है। भव सागर के माया जंजाल से विष्णु का आरध नही मुक्त कर सकता है। संमार्ग पर ला सकता है। मन को प्रभु सिमरन में स्थिर करते हुए शुभकर्म कीजिए। परिश्रम से रोजी-रोटी उपार्जित कीजिए। पत्थर या धातु से बनी मूर्तियों से लगाव मुक्ति का मार्ग नहीं हो सकता-

विष्णु विष्णु तूं भण रे प्राणी, जो मन मानै रे भाई।
दिन का भूला रात न चेता, कांय पड़ा सूता आस किसी मन थाई।
तेरी कुड़काची लगवाड़ घणों छै, कुशल किसी मन भाई।
हिरदै नाम विष्णु को जंपो, हाथे करो खाई।
हर पर हरि की आंण न मानी, भूला भूल जपी महमाई।
पाहन प्रीत फिटाकर प्राणी, गुर बिन मुक्त न जाई।

इस कलियुग में मुक्ति का एक मात्र और सर्वोत्तम मार्ग है– 'सदाचरण'। ' मानूं एक सुचील सिनानूं' स्नान से बाह्य शुद्धि होती है, जबकि शील व्रत आन्तरिक शुचिता का आधार है। सफलता का, मुक्ति का सबसे श्रेष्ठ उपाय है उसमें समस्त नियम समाहित है। जीवन की सार्थकता उनके पालन में निहित है। ये नियम मोक्ष का मार्ग भी प्रशस्त करते हैं– 'सहजे शीले सहज बिछायो, उनमन रह्य उदासूं। मनुष्य झूठ, छल–कपट युक्त वचन लोभवश ही बोलता है जो इनका परित्याग कर मान–अपमान और घमण्ड को छोड़ संतोष, संयम और सत को अपने आचार–विचार में धारण कर लेता है, उसका आचरण धर्ममय हो जाता है– 'सदा संतोषी सम उपकरणां, म्हे तजिया मान अभिमानूं।' यह वाणी मनुष्य को जीने की राह दिखाती है– 'जीवत मरो रे जीवत मरो, जिन जीवन की विध जांणी।' यह वाणी सोते को जगाती है। जीवन के लक्ष्य को पाने के मार्ग पर ले जाती है। गुरु की महत्ता का बोध कराती है। नवण का महत्त्व बताती है। गोवलवास में सुकरत द्वारा सच्चे घर में प्रवेश का आधार देती है। उल्लेखनीय है–

काची काया दृढ़ कर सींचो, ज्यूं माली सींचे बाड़ी।
ले काया बासन्दर होमो, ज्यूं इन्धन की भारी।
शील स्नाने संजमें चालो, पाणी देह पखाली।
गुरु के वचन निंव खिंव चालो, हाथ जपो जलमाली।
धर आगी इत गोवलवासो, कूड़ी आधो चारी।
सुकरत जीवन सखायत होयसी, हेत फलै संसारी।

यह सबद वाणी जागरण काल की है। कलयुग में अचेत पड़े माणस को होश में लाने का प्रयास है। जो जाग जाता है, वह तर जाता है अन्यथा 'कलि का माणस कौन विचारूं'। इस कहावत को चरितार्थ करता है– भीगा है पण भेद्या नांही, पाणी मांह पखाणों।'

निष्कर्ष :

गुरु जाम्भोजी की शब्द वाणी तत्कालीन युग और वर्तमान दौर में दुष्ट प्रकृति के लोगों को अनुशासित करती है। धर्म के नाम पर समाज में फैली बुराइयों का कड़ा विरोध करती है। बाहरी दुनिया की चकाचौंध से दूर गुरु के बताए मार्ग का अनुसरण करने के लिए प्रेरित करती है। कृष्ण का कृपा–पात्र बनने के लिए मनुष्य को बाह्य आकर्षणों का परित्याग का मनमुखी से गुरमुखी बनना एक प्रकार की साधना होगी। ज्योतिर्मय सत्ता से जुड़ने के लिए बाह्य वृत्तियों को त्यागकर आन्तरिक वृत्तियों की ओर उन्मुख होना यह भीतर की यात्रा कलि के माणस को आत्मबल प्रदान करती है। प्रत्येक शरीर में स्थित जीवात्मा उसी प्रभु का प्रतिबिम्ब है। दोनों में कोई अन्तर नहीं है। यदि ऐसा भेद लगता है, तो उपाधि के कारण है। उस परमसत्ता का अनुभव सात्विक वृत्ति के लोग ही करते हैं। वह अनादि अनन्त, अजन्मा स्वयंभू सर्वत्र विद्यमान है। मन की एकाग्रता से स्थित प्रज्ञ होकर उसका अनुभव किया जा सकता है। जिस मनुष्य का अन्त:करण पवित्र, राग–द्वेष से रहित और शुद्ध आचार–विचार वाला होता है, मनुष्य स्वार्थवश अथवा अनजाने में पाप कर्म करने में लग जाता है। अपने कर्मों का दोष प्रभु को देना सर्वथा अनुचित है। गुरु जाम्भोजी सर्वाधिक जोर करनी पर दिया है। शुभ कर्मों से रहित यही जन्म निष्फल हो

जाएगा। संसार सागर से पार उतारने वाला सत् गुरु मिलना बहुत कठिन है। कृष्ण की कृपा से ही भव सागर को पार किया जा सकता है। इस युग का मनुष्य सदाचार से रहित हो मोह-माया के जंजाल में फंसा है। झूठे अहं में अपना जीवन नष्ट कर रहा है।

सन्दर्भ :

1. जम्भसागर, टीकाकार-कृष्णानन्द आचार्य, सबद-1, पृ. 22
2. वही, सबद-3, पृ. 27
3. वही, सबद-5, पृ. 31
4. वही, सबद-6, पृ. 32
5. वही, सबद-11, पृ. 41
6. *कांय रे मुरखा तै जन्म गुमायो, भुंय भारी ले मारूं।*
जं दिन तेरे होम नै जाप नै, तप नै किरिया।
गुरू नै चीपन्थन पायो , अहल गई जमवा रूं।
ताती बेला ताव न जाग्यो, ठाढ़ी बेला ठारूं।
बिम्बै बैला विष्णु न जंप्यो , ताते बहुत भई कसवारूं। - वही, सबद-13, पृ. 43
7. वही, पृ. 45
8. वही, सबद-15, पृ. 49
9. वही, सबद-16, पृ.-50
10. जम्भवाणी 1/4गुटका1/2, डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, सबद-72, पृ. 147
11. (क) काजी कथै कुरान कूं, पण्डित वाचौ वेद ।
इनके ज्ञान उपज्या नहीं मिटा न संसृत खेद। -जम्भसागर, पृ. 88
(ख) वही, सबद-92, पृ. 194
12. जम्भसागर, सबद-90, पृ. 189
13. वही, सबद-96, पृ. 203
14. वही, सबद-97, पृ. 205
15. वही, सबद-104, पृ. 219
16. *सहजे शीले सहज बिछायो, उनमन रह्या उदासूं।*
जुगे जुगन्तर भवे भवन्तर, कहो कहाणी कासूं।
रवि ऊगा जब उल्लू अन्धा, दुनिया भया उजासूं।
सतगुरू मिलिया सत पथं बतायौ भ्रांत चुकाई, सुगरा भयो विश्वासूं।
जां जां जांण्यो तहां प्रवाण्यो सहज समाणां जिहि के मन की पूगी आसूं।
जहां गुरू त चीन्हों पन्थ न पायो, तहां गल पड़ी परासूं।
17. वही, सबद-107, पृ. 223
18. वही, सबद-99, पृ. 210
19. वही, सबद-98, पृ. 208
20. वही, सबद-86, पृ. 181
21. जुग जागो जुगजाग पिराणाी, कायं जागंता सोवो। -वही

❑❑❑

काशी की महान विभूति देवतीर्थ स्वामी और उनका रचना संसार

❍ डॉ. सुमन तिवारी[1]

काशी भारत की अत्यन्त प्राचीनतम एवं पवित्रतम नगरी है। विद्या नगरी के साथ ही इसे धर्म नगरी होने का भी गौरव प्राप्त है। वैदिक साहित्य में भी इसका उल्लेख मिलता है। महाभारत के अनुशासन पर्व में राजा दिवोदास के पितामह 'हर्यश्व' 'काशि' लोगों के राजा कहे जाते थे। 'हर्यश्व' के पौत्र दिवोदास जब काशी के राजा बने तो उन्होंने गोमती के उत्तरी तट पर सभी वर्णों से युक्त वाराणसी नगर की स्थापना की। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल में काशी एक राज्य का नाम था और राजा दिवोदास ही वाराणसी नगरी के संस्थापक थे।[1] रामायण में भी काशी का उल्लेख मिलता है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार कैकेयी के क्रोध को शान्त करने के लिए राजा दशरथ ने अपने विशाल साम्राज्य में होने वाली वस्तुओं को मंगाने के लिए काशी का भी नामोल्लेख किया है।

गंगाः मगधा मत्स्याः समृद्धाः काशिकोशलः।[2]

काशी का उल्लेख बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में भी उपलब्ध है। भगवान बुद्ध ने 'गया' में 'सम्बोधि' प्राप्त करने के पश्चात 'मृगदाव' में आकर 'धर्म चक्र प्रवर्तन' किया था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय तक काशी आर्य संस्कृति के क्रिया कलापों का केन्द्र बन चुकी थी। जैन तीर्थङ्.कर पार्श्वनाथ जी की जन्मस्थली काशी ही रही है। मौर्य वंश के सबसे महान सम्राट अशोक ने भी काशी के पास सारनाथ में 'धम्मेक स्तूप' की स्थापना की थी। 12वीं शताब्दी के आसपास गहड़वाल राजाओं ने इस पावन नगरी को अपनी राजधानी के रूप में प्रतिष्ठित किया था। राजपूत काल में भी राजपूत राजाओं तथा मराठों ने अनेक मंदिरों तथा घाटों का निर्माण करवाया था। इस संबंध में डॉ. पी.वी. कणे ने ठीक ही लिखा है कि "काशी का महत्व, इसाइयों के रोम, मूसाइयों के यारूसलेम और मुसलमानों के मक्का से भी कहीं अधिक है।"[3] सिस्टर निवेदिता ने काशी की महिमा का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि "यह हिन्दुओं के लिए कैण्टरबरी ही नहीं, बल्कि आक्सफोर्ड भी है। रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के अनुयायियों के लिए पोपपुरी (वेटिकन) का जो महत्व है, काशी की गरिमा उससे भी कहीं सहस्रगुनी अधिक है।"[4] प्राचीन काल से ही काशी प्रख्यात तीर्थ स्थल होने के साथ-साथ विद्या की विश्रुत स्थली भी रही है। नवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भगवान शंकराचार्य ने केरल प्रान्त में जन्म ग्रहण करने

---

1. असिस्टेन्ट प्रोफेसर, आर्य महिला पी. जी. कॉलेज, वाराणसी।

के पश्चात पैदल चलकर काशी आये थे और यहीं पर ब्रह्मसूत्रों पर 'शारीरिक भाष्य' का निर्माण किये थे। स्वामी बल्लाभाचार्य ने भी काशी में ही अपनी शिक्षा–दीक्षा पूर्ण की थी। गौड़ीय सम्प्रदाय के संस्थापक चैतन्य महाप्रभु भी आते–जाते कई महीने काशी में ही व्यतीत करते थे। रामावत सम्प्रदाय के संस्थापक स्वामी रामानन्द जी की साधना स्थली काशी ही रही है। रामचरितमानस के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस के अंतिम चार काण्डों की रचना इसी काशी में रहकर ही पूरा किये थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी रचना 'प्रेमयोगिनी' में काशी के विषय में लिखा है कि "आधा पेट कोई ना सूतता, ऐसी है यह काशी।"

काशी की इसी पावन धरती पर अध्येता विद्वान सन्यासी काष्ठजिह्वास्वामी भी रहते थे। भारतीय परम्परा में लेखकों, कवियों तथा संतों ने अपने जीवन के विषय में कुछ भी नहीं लिखा है। वे अपनी बात कृतियों के माध्यम से व्यक्त करना उचित समझते थे। इनसे सामान्य जनता जिस प्रकार अनुप्राणित हुई है उसका कतिपय निर्देश उनकी रचनाओं में संकलित किया जा सकता है। इन्होंने स्वंय भी जीवन शैली में भारतीय परम्पराओं के मूल आधार का अतिक्रमण नहीं किया है। 'काष्ठजिह्वास्वामी' उन्नीसवीं शताब्दी के उतरार्द्ध में काशी के सन्यासियों में गण्यमान संत के रूप में प्रतिष्ठित थे। शास्त्रीय विषयों के साथ ही तान्त्रिक विषयों पर भी इनका समान अधिकार था। ये काशी नरेश महाराजा ईश्वरी नारायण सिंह के गुरु थे। स्वामी जी अत्यंत विनम्र थे। इनकी विनम्रता का सूचक इनका नाम ही है। जनश्रुति के अनुसार एक बार इन्होंने अपने किसी गुरुतुल्य व्यक्ति से शास्त्रार्थ किया और उन्हें पराजित कर दिये। इसके कारण इनको अत्यंत दुःख हुआ कि जिनसे मैंने ज्ञान प्राप्त किया, उन्हीं के साथ शास्त्रार्थ किया और इसी आत्मग्लानि के फलस्वरूप इन्होंने अपनी जीभ पर काठ की बनी खोल चढ़ा ली थी। इनका गुरू प्रदत्त नाम 'देवतीर्थ स्वामी' था, परन्तु जीभ पर काठ की खोल चढ़ा लेने के कारण ये 'काष्ठजिह्वास्वामी' के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

स्वामी जी के जन्मकाल, स्थान, माता–पिता आदि के नाम का कोई उल्लेख नही मिलता है। स्वामी जी ने बिन्दु उपाधि से जैसे प्रयाग बिन्दु, काशी बिन्दु, कान्ति बिन्दु, दिल्ली बिन्दु जैसी छोटी–छोटी पद्यात्मक पुस्तकों की रचना की है। इन्हीं में 'असनी बिन्दु' भी एक रचना है। 'बिन्दु' नाम से स्वामी जी की जितनी भी रचनाएं हैं वे किसी न किसी 'भारतीय तीर्थ' 'देवी' या 'देश की राजधानी' से संबंधित है, परन्तु 'असनी बिन्दु' 'असनी' नामक स्थान से संबंधित है। स्वामी जी के समग्र साहित्य के वस्तुनिष्ठ अध्येता तथा मर्मज्ञ विद्वान श्री भानू बाबू (चन्द्रधर नारायण सिंह) के अनुसार इनकी मृत्यु के बाद स्वाभाविक जिज्ञासा के कारण कोई व्यक्ति इनकी जन्मभूमि पर गया था। उसने कुछ तथ्यों का संग्रह फुटकल पन्नों में हाथ से बने एक लम्बे कागज पर सुलिखित अक्षरों में रामनगर दुर्ग के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री लक्ष्मण झा जी को प्राप्त कराया था। उसमें उनका नाम देवदत्ता मिश्र तथा जन्मस्थान असनी उल्लिखित था। रामनगर निवासी श्री रामजी मिश्र काष्ठजिह्वा स्वामी के साहित्य के प्रति विशेष अनुरागी और ज्ञाता थे। इनके अनुसार स्वामी जी ने असनी में शिवमन्दिर का निर्माण करवाया था जिसका उल्लेख मंदिर में संलग्न शिलालेख पर है। स्थानीय परम्पराओं में भी यही प्रचलित है कि स्वामी जी की जन्मभूमि असनी ही है। इस उपलक्ष्य में मंदिर के प्रांगण में प्रतिवर्ष उत्सव भी मनाया जाता है।

स्वामी जी की शिक्षा–दीक्षा का कुछ भी परिचय प्राप्त नहीं होता है। इनके हस्तलेखों के अनुसार इनका नाम 'विश्वेश्वर दत्त मिश्र' तथा इनके गुरु का नाम 'विद्यारण्य तीर्थ' था, जिनसे इन्होंने सन्यास–दीक्षा ग्रहण की थी। ये स्वामी विशुद्धानन्द जी के समकालीन माने जाते हैं। समकालीन सन्त महादेवाश्रम जी से इनका मैत्रीपूर्ण संबंध था। देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी 'आत्मकथा' में अपने वाराणसी आगमन, पूजा अर्चना तथा पण्डित सभाओं का विशद वर्णन किया है। इसमें उन्होंने गैरिक वस्त्रधारी एक सन्यासी का उल्लेख किया है जो रामनगर की लीला में हाथी पर चल रहा था, वह शान्त था और बोलता भी नही था, क्योंकि उसकी जीभ पर लकड़ी की खोल चढ़ी थी।'[5] इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि वह व्यक्ति काष्ठजिह्वा स्वामी ही थे।

काशीराज के यहाँ संतों तथा निगमागम व्यक्तियों का पोषण किया जाता था। महाराज ईश्वरी नारायण सिंह इस परम्परा के विद्याव्यसनी राजा थे। उनकी पारखी दृष्टि ने काष्ठजिह्वा स्वामी की प्रतिभा सम्पन्नता का परीक्षण कर उन्हें अपना गुरु बनाया और किले में ही उन्हें रहने का स्थान दिया। गोस्वामी तुलसीदास जी के रामचरितमानस के आधार पर रामनगर राज्य ने भी जनहित में रामलीला का प्रचलन आरम्भ किया। कहा जाता है कि लीला का व्यवस्थित रूप देने के लिए महाराज ईश्वरी नारायण सिंह जी ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, रीवा नरेश रघुराज सिंह तथा काष्ठजिह्वा स्वामी की भी सहायता ली थी। यह कार्य अत्यंत वैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादित किया गया। अयोध्या, जनकपुर, चित्रकूट, लंका आदि स्थलों का चुनाव इसप्रकार किया गया कि लीला के लिए यथार्थ मंच की उपलब्धि हो सके। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लीला प्रदर्शन को व्यवस्थित रूप देने में रघुराज सिंह तथा काष्ठजिह्वा स्वामी ने लीला अंशों तथा संवादों के निर्धारण में विशेष योगदान दिया था। काष्ठजिह्वा स्वामी द्वारा लीला के लिए तैयार की हुई मानस की प्रति आज भी रामनगर दुर्ग में सुरक्षित है।[6] रामलीला के संवादों की परम्परा यह रही है कि मानस पाठ के पश्चात लीला के व्यास पात्रों के संवाद गद्य में बोलते हैं और पात्र उन्हें सुन-सुन कर दोहराते हैं। काशी के लीला मण्डलियों में यह परम्परा प्रायः मौखिक रूप में ही चलती है, इसका लिखित रूप नहीं प्राप्त होताा है। अतः स्वाभाविक है कि पीढ़ी दर पीढ़ी इसकी भाषा में कुछ परिवर्तन होते रहते होंगे। इसके विपरीत रामनगर में पात्रों के संवाद रटवाने पर बल दिया गया। इसके लिए संवादों के लिखित रूप की आवश्यकता पड़ी। महाराज ईश्वरी नारायण सिंह जी के समय संवादों की लिखित प्रतियाँ तैयार की गयी। इनमें तत्कालीन लीला में प्रयुक्त भाषा (उनीसवीं शती) का रूप सुरक्षित है।

स्वामी जी की 'काशीराजसागर' नाम से संग्रहित रचनाएँ तो मानो माधूर्य के मूर्त रूप हैं। कहा जाता है कि इन्हें श्वेत कुष्ठ रोग हो गया था। इन्होंने इसके लिए किसी महात्मा से निराकरण पूछा और उनके बताने पर 'उदासीन साधुस्तोत्र' की रचना की, जिससे उनका रोग शान्त हो गया। इनके पद्य अत्यंत मनोहारी तथा कठिन दार्शनिक तत्त्वों का सरल भाषा में प्रतिपादन करने वाले हैं। यह रचना सर्वप्रथम पंजाब से छपी ब्रिटिश म्युजियम की ग्रंथ सूची में उपलब्ध होती है। इसका आधुनिक संस्करण सन् 1952 ई. साधुबेला भदैनी, वाराणसी से 'मंजुला' नाम्नी टीका तथा 'पं. महादेव पाण्डेय' का हिन्दी अनुवाद के साथ छपा है। यही इसका प्रथम संस्करण है। इसमें 'तत्वमसि' तथा आचार का सम्यक् बोधगम्य तथा हृदयग्राही वर्णन है। स्वामी जी के गुरु के नाम से दो ग्रन्थ मिलते हैं- विष्णुसहस्रनाम परिचर्या तथा श्याम सुधा। विष्णुसहस्रनाम भगवान विष्णु के कतिपय नामों की टिप्पणी है। इसमें वेदों के उद्धरणों तथा व्याख्याओं से इनकी गम्भीर आलोचना शैली का परिचय मिलता है। 'श्याम सुधा' हिन्दी का ग्रन्थ है। काशीराज के आज्ञानुसार द्विज कवि पं. मन्नालाल शर्मा ने शोध कर भारत जीवन प्रेस, बाबू रामकृष्ण वर्मा के द्वारा मुद्रित करवाया है। यह ग्रंथ 131 पृष्ठ की लम्बे आकार वाली 302 पद्यों की पुस्तक है। इसमें अनेक प्रकार के ईश्वरीय लीलाओं का वर्णन है। जैसे- गोचरावन, वसन्त ऋतु वर्णन, जन्माष्टमी, आत्म निवेदन, गोपी प्रेम, भ्रमर गीत आदि। इसके एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

छवि छलक रही है लालन की।
चंदा के चहुँ दिसि तारा जस, तैरी भीर गोपालन की।
सुन्दर भौंह नयन नासा पुट, का बरनौं दुति गालन की।
मधुर हंसनि अनियारी चितवनि, दम कनि कुण्डलहालन की।
काँस फूल के चंवर बनाये, ग्वालन छाँह रसालन की।
धूप महक दीपक की जगमग, बरसनि सुमन समालन की।
तरवा चाटति है श्रुति गैया, जहाँ विभूति निहालन की।
'देव' रूप रसिकन के कबहू, चाहत औरी चालन की।[7]

लीथो में मुद्रित 'शिव चरण परिचर्या' के अनुशीलन से स्वामी जी की तान्त्रिक प्रणवता तथा निगमागम प्रवीणता का संकेत मिलता है। 'शिव चरण परिचर्या' में स्वामी जी ने भगवान शंकर के निर्गुण रूप, परिवार का स्वरूप, भूषण, वाहन आदि के तात्विक तथा आध्यात्मिक रूप की अत्यंत सुन्दर तथा प्रामाणिक और शास्त्र सम्मत व्याख्या श्लोकों में की है। इन समस्त पदार्थों के अन्तराल में विद्यमान जो इनका आध्यात्मिक रूप है, उसका संकेत स्वामी जी ने किया है। शिव जी के पंचतत्त्वों के प्रतीक रूप में विद्यमान भूषणों का वर्णन इस प्रकार है-

भूरेव भूतिः सलिलं च गंगा,
जलं तृतीयं नयनं च तेजः।
व्यालः समीरो डमरूर्न भोमहत्,
चिन्त्यानि चौव शिव भूषणानि।[8]

स्वामी जी उच्चकोटि के साधक थे। जिसका प्रमाण इनके द्वारा रचित हिन्दी की 'पदावली' है। इस रचना में भी आध्यात्मिकता का साम्राज्य विद्यमान है। तन्त्र विद्या में विपुल वैदुष्य सम्पन्न स्वामी जी की रचना 'काशीराज सागर' तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र आदि से युक्त होने के कारण संस्कृत विद्वानों के लिए भी अगम्य है। इनके द्वारा रचित अनेक संस्कृत ग्रन्थ जो प्रकाशित नहीं हो सके हैं परन्तु उनकी हस्तलिखित प्रतियां काशी नरेश के रामनगर दुर्ग में स्थित पुस्तकालय में आज भी सुरक्षित है। स्वामी जी अपनी कविताएं 'देव' तथा 'पतित' दो नामों से लिखते थे। स्वामी जी द्वारा रचित संस्कृत ग्रन्थों का विवरण निम्नांकित है-

शिवचरण परिचर्या, रामचरण परिचर्या, महाभाष्य परिचर्या, रामानुज परिचर्या, राम रक्षा परिचर्या, पद्धति परिचर्या, नीति तरंग, धर्म तरंग, योग तरंग, सांख्य तरंग, छन्द तरंग, शब्द शक्ति तरंग, शांडिल्यसूत्र व्याख्या, गायत्री व्याख्या। तरंग परिचर्या (मराठी) दिल्ली बिन्दु, रेखता संग्रह (उर्दू) हिन्दी ग्रन्थों में देवरामायण, रामसुधा, पंचक्रोश सुधा, देव बिन्दु, जानकी बिन्दु, काशी बिन्दु, कान्ति बिन्दु, अयोध्या बिन्दु, गया बिन्दु, प्रयाग बिन्दु, हनुमत बिन्दु।

देव सर्वस्व : उपासना सर्वस्व, विनयामृत, श्यामलगन, रामलगन, भूषण रहस्य, रामायण परिचर्या आदि।

स्वामी जी द्वारा रचित हिन्दी ग्रंथों में से कुछ प्राप्त ग्रंथों का वर्णन निम्नांकित है-

रामसुधा : इसमें कुल 113 पद्य हैं। कुछ पद्य में भगवान गणेश की वन्दना की गयी है। जैसे-

मंगलमय गजमुख को मंगल यह ध्यान है।
माथे सिन्दूर लाल दूब हरित बान है।
भाल चन्द्र नाद बिन्दु, मोती सो जान है।
कुंडल सी सुंड एकदन्त गलित मान है।[9]

'रामसुधा' रामायण के आधार लिखी गयी है। जो बालकाण्ड, अयोध्या काण्ड, अरण्य काण्ड, किष्किन्धा काण्ड, सुन्दर काण्ड, लंका काण्ड तथा उत्तर काण्ड मे विभक्त है। अंत में रामसेवा, सीताहनुमत संवाद, राम राज्य तथा षटऋतु वर्णन से संबंधित कुछ पद्य लिखे गये हैं। बाल काण्ड के आरम्भ में गणेश वन्दना के पश्चात अयोध्या नगरी का वर्णन किया गया है-

अवध की महिमा अपरम्पार, गावत है श्रुति चार।
बिस्मित अचल समाधिन्ह से जो ध्याई बारम्बार।
ताते नाम अयोध्या गावे, यह ऋग्वेद प्रकार।
रजधानी परबल कंचनमय आठचक्र नवद्वार।

तातें नाम अयोध्या पावन अस यजु कहत विचार।[10]
तत्पश्चात् सरयू नदी का वर्णन है–
झलक रही श्रुति सी सरयू माय।
ब्रह्मोत्तर मानस ते निकरी मिली अवध से आय।
स्वच्छ बरन पद क्रम सुर जाके अंग रहे हरषाय।
जो ब्राह्मण को जीवन धन है, जहां बिहरत रघुराय।[11]

प्रस्तुत रचना में विभिन्न रामायणों के विरोधों का समन्वय, अपेक्षित शंकाओं का समाधान और अद्भूत अर्थों का प्रतिपादन किया गया है। शंका समाधान की परम्परा में यह पद्य द्रष्टव्य है–

रामलखन दोउ नाहि सहोदर, कोकिल मुनि तौ तदपि कह्यो।
यह सुनि शंका कोउ कर, जिनि यामे परम रहस्य रह्यो।।
कहत उपनिषद संग शेष औ हरि को गर्भो में निवह्यो।
एहि प्रमान ते भये सहोदर अब कौ वाद विवाद चह्यो।।[12]

इस ग्रन्थ का उत्तरकाण्ड महत्त्व तथा विस्तार की दृष्टि अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। 'रामसेवा खण्ड में राम के अयोध्या में राज्याभिषेक के पश्चात् का यह पद्य द्रष्टव्य है–

पँवढौ प्रभु आई,
जोगिन के मानस में आनन्द सेज बिछाई।
चारिउ वेद पलंग के पाये अंग उपंग सहाई।
पराभक्ति ठकुराईन बिलसै सिर तकिया सुघराई।।
सिय में राम राम में सिय हैं,
गंध भूमि में एकै जिय हैं।
दोउ कल्पित तिय औ पिय हैं।
ऐसो राम रसायन पीजै।।[13]

'सीता हनुमत संवाद' खण्ड सैद्धान्तिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है–

सुनु हनुमन ग्यान धन मेरो।
जाहि बिना सब जगत अंधेरो।
जीवेश्वर दुइ आतम गाये जीव तहां ईश्वर को चेरो।
देह भयो दूनौ की टीका यातें सो विग्रह कहि टेरो।
उदित प्रथम प्रतिबिम्ब ईश हैं, तामे कछु नहि तम के डेरो।
आगे कोटिन्ह प्रतिबिम्ब में जस अंतर तस तम को घेरो।
सोई तम माया कहि गाई रचत जीव गन विविध धनेरो।
तम अनुसार कर्म तब लागे एहि विधि माया जीवहि पेरो।[14]

'राम राज्य वर्णन' के अन्तर्गत यह पद्य उदाहरणार्थ है–

अवधपुरी मह छाये,
चारिउ चरन धाम के।
प्रथम चरन तप ग्यान दूसरो,
क्रिया कलाप सहित मष तिसरो।

कैसे ऊँदान चउथ पद निसरो,
सब कहं भक्ति बनाये।।[15]

'षट्ऋतु' तथा 'बारह मासा' सम्बन्धी रचनाएं हिन्दी की लगभग सभी बोलियों में मिलती है। इन रचनाओं की भावधारा के विश्लेषण से पता चलता है कि षट्ऋतु वर्णन मूलतः संयोग शृंगार काव्य है और 'बारहमासा वर्णन' विप्रलंभ शृंगार पर आधारित रचना है। स्वामी जी ने षट्ऋतु वर्णन के केन्द्र बिन्दु भगवान राम हैं, जो सभी प्रकार के दुखों के उद्धारक हैं। ऋतु वर्णन सम्बन्धी कुछ पद्य द्रष्टव्य हैं–

ग्रीष्म ऋतु–

अवधि में ग्रीषम की बलिहार।
राम बाहु छाया में सब कुछ सुख से करत विहार।
मानस पदुमन के रचि रचि कै रामहि अपरत हार।

वर्षा ऋतु–

मुकुट के रतन षद्योत भेक याचक गन,
चरित नदी करत ब्रह्म सिंधु में विलास है।
राम देव सावन से जग मग भावन हौ
राउरि छवि छटा देषि बढ़त मन हुलास हैं।

शरद ऋतु–

अवध में नितहीं शरद विलास।
निर्मल मानस अंबर पूरन सिय पति चंद प्रकाश।
सुजल चंद्रिका तारा निर्मल कुमुद मनोहर हास।
तोष अगस्त क्षमा सरदी से मिटे दोष टुष डांस।

शिशिर ऋतु–

नित बस्यौ अवधि में जनु प्रयाग
सानु चंद को जोत जात श्रवन मकर रवि व्यतीपात।
महापर्व में बुध नहात लावत रधुपति से सरस नात।

बसन्त ऋतु–

होय रही ऐसी होरी
श्री अवधपुरी में।
सुमति सोहा गिनि सब संतन की प्रेम रंग में बोरी
रामकथा पिचुकारी चलावत लक्ष्य राम के ओरी
सुरति निरति जोगिन की सषिया नजरि एक तक जोरी।
राम झलक में मगन भई है जैसे चंद चकोरी।[16]

षट्ऋतु वर्णन का साहित्यिक दृष्टि से बहुत महत्त्व है। 'रामसुधा' विभिन्न राग रागिनियों में निबद्ध है। इस ग्रंथ के गूढ़ अर्थों को अभिव्यक्त करने के लिए काशी नरेश महाराज ईश्वरी नारायण सिंह ने इसकी सारगर्भित टीका लिखी है। इस प्रकार यह ग्रंथ गुरू तथा शिष्य के सम्मिलित रूप का सुन्दर परिणाम है।

रामायण परिचर्या : पं. बिहारीलाल बैद्यराज ने विजयादशमी के दिन स्वामी जी से यह प्रार्थना की कि

महाराज ईश्वरी नारायण सिंह की बहुत इच्छा है कि आप रामायण की एक टीका लिखें जिससे सर्व साधारण उसका अर्थ आसानी से समझ सके। स्वामी जी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। वे कार्तिक कृष्ण पक्ष चतुर्थी हनुमत जयन्ती के दिन अस्सी घाट पर स्थित हनुमान जी के मंदिर में जाकर पूजा किये और उस मंदिर में स्थापित श्रीराम यंत्र राज की विधिवत् अर्चना किये। इसके पश्चात् इन्होंने उस मंदिर के पुजारी श्री लक्ष्मणदास जी से अनुमति लेकर रामायण की उस हस्तलिखित प्रति को प्राप्त किया जो संवत् 1700 वि. में लिपिबद्ध की गयी थी। इस विषय में रामायण परिचर्या, परिशिष्ट तथा प्रकाश की भूमिका में लिखा गया है कि–

हनुमत जन्मदिन गोसाई जी के मंदिर जाय,
पूजा करि जाग्रत श्रीरामयंत्र राज की।
तहां मारूतनन्दन की अर्चा किई तैसी,
श्री महाराज लछमनदास साधु सिरताज की।
मुदित मन आज्ञा भई, सुद्ध खास पोथी मिली,
सत्रह सौ साल की।
साधु चरन कमल धूरि सीसै धरि तिलक करौ,
सम्वत, जुग, अंक, आठ एक मिली आज की।

इस प्रकार स्वामी जी ने रामायण परिचर्या लिखना आरम्भ किया। 'रामायण परिचर्या' की टीका तत्कालीन नरेश के फुफेरे भाई श्री हरिहर प्रसाद जी ने 'रामायण प्रकाश' नाम से लिखा। इन दोनों के आधार पर निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि महाराज ईश्वरी नारायण सिंह ने परिशिष्ट नाम की टीका का निर्माण किया। यह समग्र पुस्तक रामायण परिचर्या, परिशिष्ट तथा प्रकाश पटना खड्ग विलास प्रेस बाकीपुर से 'साहिब सिंह' ने छापकर प्रकाशित किया था। इसमें बालकाण्ड से लेकर उत्तरकाण्ड तक के पदों तथा चौपाइयों पर की जाने वाली शंकाओं का समाधान भी किया गया है। मानस परिचर्या के अनुशीलन से स्वामी जी के गम्भीर शास्त्रीय चिन्तन, तान्त्रिक वैदुष्य तथा लोकातीत व्यक्तित्व का पूरा परिचय मिलता है। ये संस्कृत व्याकरण के भी ज्ञाता थे। रामचरित मानस में आये हुए अपठनीय प्रयोगों को शुद्ध रूप सिद्ध करने के लिए इन्होंने अनेक स्थलों पर सूत्रों का उल्लेख किया है। स्वामी जी द्वारा मानस पर लिखित कुछ शंकाओं का समाधान निम्न प्रकार है–

प्रश्न– मानस के षष्ठ काण्ड का नाम गोस्वामी जी ने 'लंका काण्ड' रखा है जबकि वाल्मीकि ने 'युद्ध काण्ड' लिखा है। गोस्वामी जी ने इसे 'लंका काण्ड' क्यों कहा?

इस प्रश्न के उत्तर में स्वामी जी ने यह समाधान दिया है कि

1 'ल' का अर्थ 'लक्ष्मी' और 'अंक' अर्थात् चिह्न (लक्ष्मी के चिह्न भूत– सोना, चांदी, हीरा आदि) से सम्पन्न होने के कारण 'लंका काण्ड' नाम पड़ा।
2. 'ल' अर्थात् 'पृथ्वी' और 'अंक' अर्थात् गोद (पृथ्वी की कन्या सीता को अपनी गोद) में धारण करने के कारण 'लंका काण्ड' नाम पड़ा।
3. 'ल' अर्थात् 'हनुमान' और 'अंक' अर्थात् दाह या जलाना (हनुमान के द्वारा लंका जलाये जाने) के कारण 'लंका काण्ड' नाम पड़ा।
4. 'ल' का अर्थ 'लवण' और 'समुद्र अंक' का अर्थ परिखा या घेरा (लवण समुद्र से घिरे रहने) के कारण 'लंका काण्ड' नाम पड़ा।[17]

सीता राम गुण ग्राम पुण्यारण्य विहारिणौ।
वन्दे विशुद्ध विज्ञानी कवीश्वर कपीश्वरौ।।

इस श्लोक पर टिप्पणी करते हुए स्वामी जी ने लिखा है कि–

‘कवीश्वर’ वाल्मीकि ‘कपीश्वर’ हनुमान दुनौ जनै राम चरित के विहारी।
एक दक्षिणचारी, एक उत्तरचारी।।

स्वामी जी की इस संक्षिप्त टिप्पणी की व्याख्या करते हुए महाराज ईश्वरी नारायण सिंह ने लिखा है कि–

“वाल्मीकि जी चित्रकूट राम सो मिलन मानस में लिखा। अतएव वे दक्षिणचारी हनुमान उत्तरचारी।”

कदली विपिन विहारार्थ भीम से मिलन वन पर्व अध्याय 145 में लिखा है। राजा साहब की इस टीका पर हरिहर प्रसाद जी ने अपने प्रकाश में लिखा है– “दोनों को प्रणाम।”

वाल्मीकिनी वक्ता शिरोमणि, हनुमान श्रोता शिरोमणि।

पुण्यारण्य विहारिणौ दोनो बनवासी हैं। एक दक्षिण एक उळारवासी होने से दोनो तुल्य हैं।[18]

उपरोक्त विवरण से इन तीनो ग्रन्थकारों की गद्यशैली का पता चलता है। यह अक्षरशः उन्हीं के द्वारा लिखित उद्धरण है। यह भाषा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के लगभग 40 वर्ष पूर्व की भाषा है।

स्वामी जी अद्‌भूत प्रतिभा सम्पन्न बहुशास्त्रविज्ञ तथा बहुज्ञ थे। वे देशाटन प्रिय तथा शास्त्रचर्चा प्रिय भी थे। संस्कृत, हिन्दी, मराठी, उर्दू भाषाओं के उद्‌भट विद्वान होने के साथ ही ये कवि, लेखक तथा उच्चकोटि के विचारक थे। स्वामी जी का विपुल देव साहित्य बहुव्यापी है। स्वामी जी के साहित्य का वैविध्य इसी से लगाया जा सकता है कि इसकी तुलना कुछ साहित्यकारों ने कबीर के साहित्य से की, तो किसी ने प्रधान रूप से इसे नीति तथा उपदेश के रूप में ग्रहण किया। रामावत सम्प्रदाय के मधुरोपासना की धारा ग्रन्थकार को अपने वर्ग का आचार्य होने का दावा करती है, जबकि काशी की जनता उन्हें काशीवासियों के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार करती है। शत-शत व्यक्ति ऐसे भी हैं जो ग्रन्थकार को द्वितीय तुलसीदास तथा उदार भक्त के रूप में देखते हैं। जिसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। स्वामी जी के वाड्.मय मे शाक्त पदावली का एक विशिष्ट स्थान है। वह हिन्दी साहित्य की एक दुर्लभ सम्पत्ति है। इस ग्रंथ में तन्त्र साहित्य का व्यापक रूप दिखायी देता है। कुछ पद वैदिक साहित्य तथा कर्मकाण्ड की व्याख्या के रूप में भी लिखे गये हैं। दार्शनिक समस्याओं तथा शास्त्रीय गुत्थियों का विवेचन और समाधान तो यत्र-तत्र, सर्वत्र मिलता है। साहित्यिक शैली तथा रसों की दृष्टि से भी इस साहित्य की विविधता देखकर आश्चर्य चकित होना पड़ता है। संगीत के क्षेत्र में भी इन पदों का विस्तार लोक गीतों से लेकर ‘ख्याल’ और ‘धुप्रद’ पर्यन्त है। रागों की विविधता भी अपूर्व है।

सन्दर्भ :

1. डॉ. बलदेव उपाध्याय, काशी की पांडित्य परम्परा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1994, पृ. 2.
2. वही, पृ. 4
3. डॉ. पी.वी. कणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 4, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1910, पृ. 23,
4. सिस्टर निवेदिता, फुट फाल्स ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, प्रकाशन लॉगमैन ग्रीन एण्ड कम्पनी, 1915
5. आत्मकथा देवेन्द्रनाथ टैगोर, हिन्दी अनुवाद श्री सत्येन्द्रनाथ टैगोर तथा इन्दिरा देवी, प्रकाशन, एस के लाहिड़ी एण्ड कम्पनी, 54 स्ट्रीट, कलकत्ता, 1909
6. रामचरित मानस की भूमिका, सम्पादक सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद, काशी, 1971, पृ. 12,
7. श्याम सुधा, पद्य 72, पृ. 34/35

8. शिवचरण परिचर्या, श्लोक 8, पृ. 3
9. रामसुधा देवतीर्थ स्वामी, पद्य 3, बाल काण्ड, पृ. 2
10. रामसुधा देवतीर्थ स्वामी, पद्य 4, बाल काण्ड, पृ. 5
11. रामसुधा देवतीर्थ स्वामी, पद्य 5, बाल काण्ड, पृ. 6
12. रामसुधा देवतीर्थ स्वामी, पद्य 46, लंका काण्ड, पृ. 31
13. रामसुधा देवतीर्थ स्वामी, पद्य 66, उत्तर काण्ड - रामसेवा, पृ. 49
14. रामसुधा देवतीर्थ स्वामी, पद्य 1,2,3, उत्तर काण्ड - सीता हनुमत संवाद, पृ. 61
15. रामसुधा देवतीर्थ स्वामी, पद्य 91, उत्तर काण्ड - रामराज्य वर्णन, पृ. 91
16. रामसुधा देवतीर्थ स्वामी, पद्य 92,93,95,97,99, पृ. 75, 76, 78, 80, 82
17. रामायण परिचर्या, परिशिष्ट प्रकाश, (हस्तलेख) रामनगर दुर्ग से प्राप्त, पृ. 37
18. रामायण परिचर्या, परिशिष्ट प्रकाश, (हस्तलेख) रामनगर दुर्ग से प्राप्त, पृ. 57

नोट– सन्दर्भ सूची 7 से 18 तक के सभी उल्लिखित ग्रंथ हस्तलेख के रूप में रामनगर दुर्ग के सरस्वती पुस्तकालय से श्री बद्री नारायण जी के द्वारा प्राप्त हुए थे।

❑❑❑

हिंदी उपन्यासों में वृद्ध स्त्रियों की संवेदना

❍ मंजुला अशोक बिसनाल[1]
❍ डॉ. अमरनाथ प्रजापति[2]

संक्षिप्ति :

भारतीय समाज पुरुष प्रधान है जिसमें स्त्रियों का जीवन हमेशा से उपेक्षित रहा है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक स्त्री और पुरुष का चित्रण प्रायः साहित्य में द्रष्टव्य होता है, जिसमें स्त्रियों के जीवन से जुड़ी अनेक समस्याओं को हम देख सकते हैं। वर्तमान समय में साहित्य की अनेक विधाओं में स्त्रियों के जीवन से जुड़े सूक्ष्म विचारों, संवेदनाओं, सामाजिक और पारिवारिक स्थिति का यथार्थ तथा समाज में नारी पर हो रहे शोषण, अत्याचार आदि को मार्मिकता के साथ में प्रस्तुत किया जा रहा है। स्त्री स्वावलंबी है तो उसके साथ अच्छा व्यवहार किया जाता है, लेकिन जो स्त्री पुरुष पर आश्रित रहती है उसको सम्मान नहीं दिया जाता। इसमें भी वृद्ध स्त्रियों की स्थिति अत्यंत ही दयनीय है। हिंदी साहित्य में वृद्ध स्त्री के जीवन पर केंदित अनेक उपन्यासों की रचना हुई है, जिसमें कृष्णा सोबती का 'समय सरगम', टेकचन्द का 'दाई', गीतांजलि श्री का 'रेत समाधि' आदि महत्वपूर्ण हैं। इन उपन्यासों में वृद्ध स्त्रियों की मानसिक दशा, पारिवारिक उपेक्षा, आर्थिक एवं सामाजिक असमानता, संवेदनाओं तथा अनुभूतियों को मार्मिक रूप से अभिव्यक्त किया गया है। स्त्री किस तरह बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था में दूसरों पर आश्रित रहकर अपना जीवन बिताती है, उसे इन उपन्यासों में बारीकी से व्यक्त किया गया है।

बीज शब्द : वृद्धावस्था, संवेदना, मानसिक, पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक, दु:ख, आश्रित, मानवीय संबंध, उपेक्षित।

संवेदना का अर्थ है मानसिक अनुभूति। स्त्री के अंतर्मन के बोध को नारी या स्त्री संवेदना कहा जा सकता है। संवेदना का पर्यायवाची शब्द है – "सहानुभूति, सहभावना, हमदर्दी, अनुकंपा, दया, करुणा।"[1] मानवीय समाज में स्त्री और पुरुष को अलग-अलग वर्ग में देखा जाता है। वृद्ध पुरुष से अधिक वृद्ध स्त्री का जीवन पीड़ा और दर्द से भरा रहता है। स्त्री बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक किसी न किसी पर आश्रित अवश्य रहती है। स्त्री जीवन के विविध पहलुओं को अनेक उपन्यासों में चित्रित किया गया है तथा उनके जीवन से जुड़े हर विषय

---

1. शोधछात्रा, हिंदी विभाग, कर्नाटक राज्य अक्कमहादेवी महिला विश्वविद्यालय, विजयपुर, कर्नाटक – 586108

2. शोध पर्यवेक्षक, सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, कर्नाटक राज्य अक्कमहादेवी महिला विश्वविद्यालय, विजयपुर, कर्नाटक

को सशक्त रूप से दर्शाया गया है। प्राचीन काल से वृद्ध स्त्री को सम्मान भाव से देखते आ रहे हैं लेकिन आज बदलते सामाजिक परिवेश में मानवीय संवेदना नष्ट होती जा रही है।

आधुनिक समाज में स्त्रियों की जीवन शैली में महत्वपूर्ण बदलाव आया है। स्त्री अपना जीवन स्वतंत्र रूप से बिता सकती है। फिर भी वृद्धावस्था में वह अपनों द्वारा उपेक्षित हो रही है। वह अनेक समस्याओं से लड़ते हुए अपना जीवन जीती है। वृद्ध महिलाओं की समस्याओं के बारे में डॉ. अर्चना बलवीर लिखती हैं- "वृद्ध महिला पेंशन वाली है तो उसके साथ ठीक व्यवहार नहीं होता। और, अगर वह आश्रित है तो उसकी स्थिति और भी बदतर हो जाती है। उसे घर के किसी भी शुभ कार्य में शामिल नहीं किया जाता। इस तरह का व्यवहार कर उस पर मानसिक अत्याचार किया जाता है।"[2] मानवीय मूल्य के बिखरते स्वरूप को अनेक उपन्यासों में व्यक्त किया गया है। स्त्री शिक्षित हो या अशिक्षित उसके साथ दुर्व्यवहार होता रहा है। वृद्ध स्त्री की संवेदनाओं तथा उसके बदलते हुए व्यक्तित्व को अनेक हिंदी उपन्यासों में देखा जा सकता है। 'समय सरगम', 'दाई', 'रेत समाधि' जैसे उपन्यासों में वृद्ध स्त्रियों की संवेदना को बहुत ही मार्मिक एवं बारीकी से अभिव्यक्त किया गया है।

कृष्णा सोबती द्वारा रचित उपन्यास 'समय सरगम' सन् 2000 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास को बिड़ला फाउंडेशन ने वर्ष 2007 में व्यास सम्मान से सम्मानित किया था। विषय की विविधता और भाषा की विशिष्टता के कारण इनके उपन्यास प्रभावशाली रहे हैं। 'समय सरगम' वृद्धावस्था पर आधारित उनका प्रमुख उपन्यास है। बुढ़ापे में बदलते समय के साथ कैसे रहना चाहिए, उसे उजागर करने का प्रयास किया गया है। इस उपन्यास में हम कथा के दो पहलू देख सकते हैं। एक तरफ परिवार से उपेक्षित और शोषित वृद्ध को दर्शाया गया है तो दूसरी ओर उपन्यास की मुख्य पात्र आरण्य के माध्यम से नई सोच और उमंग का चित्रण किया गया है।

उपन्यास में युवा पीढ़ि और वृद्धजन के बीच के अंतर को व्यक्त किया गया है। वृद्ध स्त्री के रूप में आरण्य को मुख्य पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। साथ ही दमयंती और कामिनी नामक वृद्ध स्त्री के जीवन को भी सूक्ष्मता से अभिव्यक्त किया गया है। आरण्य, ईशान, दमयंती, प्रभुदयाल और कामिनी लगभग एक ही आयु के मित्र हैं। सभी के जीवन की विचारधारा भिन्न-भिन्न है। सभी पारिवारिक कष्ट को सहन करते हुए अपना जीवन बिताते हैं तथा अपनी भावनाओं को एक दूसरे से बताते रहते हैं। लेखिका बढ़ती हुई उम्र के बारे में इस तरह कहती है- "नि:शब्द है समय, पर इसमें भी बहुत कुछ धड़क रहा है। और उम्र? वह बकरी बनी चर रही है, धीरे-धीरे। चरने दो। उस ओर मत देखो!"[3] इस तरह लेखिका आरण्य के माध्यम से बुढ़ापे में आने वाली चिंताओं के बारे में न सोच कर खुशी से बुढ़ापे को बिताने के लिए कहती हैं। आरण्य वृद्ध स्त्री है, जो अपने स्वाभिमान के साथ स्वतंत्र रूप से अपना जीवन जीती है। वह वृद्ध स्त्री है फिर भी अकेली रहती है, अपने मन की सुनती है। वह अपने दोस्तों से कहती है कि अकेले रहकर भी चैन से जीवन बिताया जा सकता है।

आरण्य और ईशान हम उम्र के दोस्त हैं तथा दोनों दोस्ती को पूर्ण रूप से निभाते हैं। ईशान आरण्य की समस्याओं के समय उसकी सहायता करता है। यहाँ पर एक आदर्श मित्रता की पहचान मिलती है। इनकी एक मित्र है दमयंती। दमयंती अपने बच्चों द्वारा हो रहे प्रताड़ना के बारे में आरण्य से बताती है। वह अपने बच्चों के दुर्व्यवहार को बताते हुए आरण्य से कहती है- "मैं तुम्हारी तरह अकेली होती तो क्यों परेशान होती। बच्चे साथ रह रहे हैं। मेरे घर में - मेरा किचन चल रहा है। खर्चा मैं कर रही हूँ। और मैं अपने कमरे में अकेली पड़ी रहती हूँ। बिना मेरी इजाजत मेरा सामान इधर से उधर करते रहते हैं। आरण्य, मैं बहुत दु:खी हूँ।"[4] दमयंती अपने ही घर में अकेली हो जाती है। बच्चों द्वारा वह उपेक्षित है। आधुनिक समाज के युवा माँ की संवेदनाओं को समझ नहीं पा रहे हैं। वह अपने माता-पिता पर अपना कठोर अनुशासन करने लगते हैं। दमयंती भी अपने ऊपर हो रहे शोषण और मानसिक यातना को आरण्य के सामने व्यक्त करती है।

आरण्य और ईशान की एक और दोस्त का नाम है कामिनी। कामिनी अपने भाई की स्वार्थपरक विचारधारा से त्रस्त है। कामिनी नौकरी करने वाली स्त्री है। उसने अपने युवावस्था में सम्मानजनक जीवन बिताई है। जब वृद्धावस्था पर पहुंची तो अपने भाई द्वारा शोषित होती है। भाई उसके पैसों को हड़पने के लिए उसको कमरे में बंद कर देता है। अपनों द्वारा ही कामिनी को वृद्धावस्था में कैदी की तरह रहना पड़ता है। ईशान और आरण्य से वह अपने भैया के बारे में बताते हुए कहती है कि वह उसे अपने फार्महाउस बुला रहे हैं। तब ईशान उससे कहते है की जाओ। फिर कामिनी उससे कहती है– "भैया और भाभी अपने घर में नहीं बुला रहे हैं। फार्म पर। वहाँ तो मैदान साफ है! कोई भी मेरा गला घोंट सकता है।"[5] वृद्ध स्त्री अपनों द्वारा भी असुरक्षित महसूस करती है। कृष्णा सोबती ने इस उपन्यास में वृद्ध स्त्री की संवेदनाओं को सूक्ष्म रूप से चित्रित किया है। लेखिका ने आरण्य जैसी वृद्ध स्त्री का एक आदर्श उदाहरण दिया है साथ ही दमयंती और कामिनी जैसी वृद्ध स्त्रियों की संवेदनाओं की गहन एवं मार्मिक चित्रण किया है।

'दाई' सन् 2017 में प्रकाशित टेकचन्द जी का महत्वपूर्ण उपन्यास है। यह वृद्धावस्था पर आधारित लघु उपन्यास है। वृद्धवस्था के एक अलग व्यक्तित्व को इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। जहाँ तक बुढ़ापे की बात करते हैं तो स्त्री और पुरुष के रूप में विभाजित नहीं करते हैं। परंतु कुछ संदर्भों में स्त्री वृद्ध और पुरुष वृद्ध के व्यवहार में भिन्नता पाई जाती है। परिवार के रिश्तों में और जिम्मेदारियों में पुरुष से ज्यादा स्त्री जूझती है। अपनी भावानाओं को अपने में समेटकर स्त्री घुटन से भरा जीवन बिताती है। 'दाई' उपन्यास के बारे में डॉ. पार्वती गोसाई का कहना है– "ऐसा पहला उपन्यास है जिसमें स्त्री के जीवन संघर्ष को उसकी अंतिम परिणति तक आते आते मरती, खपती, टूटती, बिखरती, बेबस, असमर्थ होते हुए दिखाया गया है।"[6] यह उपन्यास वृद्ध स्त्री की संवेदना से रूबरू कराता है।

इस उपन्यास में रेशम बुआ की विशेष भूमिका को दर्शाया गया है। बचपन से वृद्धावस्था तक वह कष्टों को सहती रही। उसने अपने परिवार के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन त्याग कर दिया था। रेशम बुआ अपने दुःख और समस्याओं को अपने में ही छिपाकर सभी को हँसाती है। नाटक करती है और किसी का नकल भी, इससे उसकी विविधता से भरा व्यक्तित्व हम देख सकते हैं। पुरुषों जैसा सभी काम करते हुए अपना परिवार सँभालती है। दाई काम को निस्वार्थ रूप से करती है। सभी लोग उसे सम्मान देते थे। लेकिन अपने बच्चों द्वारा उपेक्षित है। अपनी मानसिक संवेदनाओं से ग्रस्त होकर जीवन यापन करती है। वह निरंतर काम करते हुए अपने बच्चों की परवरिश करती है। उसके जीवन संघर्ष के बारे में लेखक कहते हैं– "धधकते–सुलगते, धूल–आँधियों वाले मैदानों में से रेशम जीवन–यापन के साधन जुटाती।"[7] जब वह बकरियों (रेवड़) को चराने के लिए गाँव से दूर चली जाती थी तब वहाँ बच्चों के लिए और घर के काम के लिए वस्तुओं को इकट्ठा करती थी।

जीवन भर वह अपने लिए कुछ नहीं की थी। सिर्फ अपने बच्चों के लिए सारी दुःख और यातनाओं को सहन करते हए उन्हें बड़ा करती है। वृद्धावस्था में भी वह अपने बेटे–बहुओं का खयाल रखती है। वह खुद काम करके पैसे कमा कर घर चलाती थी, फिर भी उसको सम्मान नहीं देते थे। रेशम बुआ अपने दुःख को रिश्तेदरों के सामने बताते हुए कहती है– "मेरा इ लाया, कमाया, खावैं, पहरी है सारे... फेर बी लिहाज कोन्या करते।"[8] इस तरह स्त्री होकर काम करके पैसे कमाने के बाद भी उसको अपने बच्चों से प्रेम नहीं मिलता है। जीवनभर परिवार वालों से तिरस्कार मिलता है।

रेशम बुआ दाई होने का कार्य सफलता से निभाती हैं। वह डॉक्टरों से न होने वाले काम को भी कर डालती थी। उसके पास ऐसा कौशल था कि हर समस्या का समाधान निकालती थी। साथ ही पशुपालन में भी उसे रुचि थी। रेशम बुआ के पति की तरह उसके बेटे भी मौज–मस्ती करने वाले निकले। बुढ़ापे में भी उसे अपनी रोजी रोटी खुद कमानी पड़ती है। एक दिन उसका बड़ा बेटा उससे पैसा माँगता है शराब पीने के लिए, लेकिन

वह नहीं देती है। माँ-बेटे में झगड़ा होने लगता है। बेटा उसे धक्का देकर गिरा देता है और पैसों को लेकर चला जाता है। उस वृद्ध माँ को चोट लगती है और बेटे के इस दुर्व्यवहार से वह मानसिक रूप से टूट जाती है। इस घटना के कारण उसकी मृत्यु हो जाती है, यहाँ पर वृद्ध स्त्री की मानसिक व्यथा को सूक्ष्म रूप से व्यक्त किया गया है।

रेशम बुआ की मृत्यु के बाद उसके रिश्तेदार उसके दुःख बारे में इस तरह कहते हैं- "सारी उमर बुढ़िया चूंट-चूंट (नोच-नोच) कै खाई इन बाप-बेट्टा नैं! अर ईब इस माट्टी की बी दुरगत बणा रे सैं"[9] इस तरह कहकर रेशम बुआ के दुःख और दर्द के बारे में बताते हैं। उसे न ही बेटों से और न ही पति से सुख मिला, जीवन भर वह समस्याओं से लड़ती रही। पति ने भी उससे काम करवाकर अपना जीवन आराम से बिताया था। अब उसके बेटे भी पिता की तरह उससे काम करवाते रहे। इस तरह टेकचन्द रेशम बुआ के माध्यम से वृद्ध स्त्री का यथार्थ रूप प्रस्तुत करते हैं। रेशम बुआ के दुःख, दर्द, को अभिव्यक्त करते हुए वृद्ध स्त्री का यातनामय जीवन प्रस्तुत करते हैं। आधुनिक समाज में खो रही मानवीय संवेदनाओं को इस उपन्यास में दर्शाया गया है। माँ के प्रति बेटे के कठोर व्यवहार को प्रस्तुत करते हुए आधुनिक समाज के कटु यथार्थ को सूक्ष्मता के साथ अंकन किया है।

गीतांजलि श्री द्वारा रचित उपन्यास 'रेत समाधि' 2018 में प्रकाशित हुआ है। यह वृद्धावस्था पर आधारित उपन्यास है। यह उपन्यास मध्यमवर्गीय जीवन को प्रस्तुत करता है। 80 साल की वृद्ध माँ को उपन्यास के मुख्य पात्र के रूप में चित्रित किया गया है जो अपने पति के मृत्यु के बाद एक कमरे में अपने आप को बंद कर लेती है। पति जब तक जीवित थे वह बूढ़ी माँ खुशी से घर में घूमती रहती थी। पति के चले जाने के बाद अपने सुख-संतोष को भूल कर जीवन जीती है। माँ को पहले जैसा बनाने के लिए परिवार के सभी सदस्य प्रयत्न करते रहते हैं। माँ को सभी लोग उठने के लिए कहते है तो माँ कहती है- "नहीं, मैं नहीं उठूँगी।"[10] वह उस कमरे में ही बंद रहना चाहती है। दीवार की तरफ मुँह करके घर के लोगों से विमुख होती चली जाती है। वह वृद्ध माँ अपने पति की स्मृति में खोई सी रहती है। उनकी बेटी और बेटा भी उसके मनपसंद खाने पीने का खयाल रखते थे। लेकिन वह उन सब चीजों में रुचि नहीं दिखाती है। वृद्ध माँ को हर तरह की सुविधाओं को देने के बाद भी उन सब से दूर रहना चाहती है। बाहर की दुनिया को नहीं देखना चाहती है।

इस उपन्यास में संयुक्त परिवार का चित्रण किया गया है। परिवार के लोगों की आशा थी कि माँ पहले की तरह उनके साथ मिल जुलकर रहे। वृद्ध माँ के पोते तक उसको खुशी देने वाले काम करते हैं। रिश्तों की घनिष्ठता को भी यहाँ पर देख सकते है। आधुनिक समाज के बदलते हुए जीवन शैली को यहाँ पर प्रस्तुत किया गया है। माँ जब उठती है तो एक अलग जीवन शैली को अपनाती है। पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव वृद्ध माँ पर होता है। नई जिज्ञासा और नई उमंग के साथ उठती है। वह सामाजिक और पारिवारिक बंधनों से मुक्त होकर जीवन जीती है। वह अपने में नया प्राणवायु भर कर उठती है। प्रत्येक क्षण को नए तरीके से जीती है। उसकी बदलती विचारधारा के बारे में लेखिका कहती है- "माँ सुंदर कढ़े अबा या गाउन, जो चाहो कहो, पहनने लगी।"[11] इस तरह वह आधुनिकता की ओर मुड़ रही थी। अपने रहन सहन में बदलाव लाने लगी। बेटी उस बदलाव को देख कर एक तरफ खुश होती और दूसरी तरफ चिंतित है। माँ और बेटी की विचारधाराओं में अंतर दिखाया गया है। वृद्ध माँ सरहद तक पार करने की आशा रखती है। लेकिन बेटी पुराने विचारों से ग्रस्त है। लेखिका ने वृद्धावस्था में युवावस्था की सोच को दिखाकर एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया हैं, साथ ही इस उपन्यास में वृद्ध स्त्री की संवेदनाओं को एक नए भाव-बोध के साथ चित्रित किया गया है।

निष्कर्ष:

निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि 'समय सरगम', 'दाई' और 'रेत समाधि' यह तीनों उपन्यास वृद्ध स्त्रियों

पर आधारित है, लेकिन तीनों उपन्यासों का दृष्टिकोण अलग-अलग है। 'समय सरगम' में आरण्य के अकेलेपन और स्वतंत्र जीवन को दर्शाया गया है। 'दाई' उपन्यास में रेशम बुआ नामक वृद्ध स्त्री की अपने परिवार में यातनामय जीवन को हम देख सकते हैं। इसमें वृद्ध स्त्री की संवेदनाओं को सूक्ष्म रूप से चित्रित किया गया है। 'रेत समाधि' में वृद्ध स्त्री का नया रूप हमारे सामने आता है। इसमें नई और पुरानी पीढ़ी के बीच के अंतरद्वन्द्व को सरलता से व्यक्त किया गया है। उपर्युक्त सभी उपन्यासों में वृद्ध स्त्री की संवेदनाओं, भावनाओं, सामाजिक एवं पारिवारिक यातनाओं को यथार्थ रूप में एवं सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया गया है।

संदर्भ:

1 https://samanarthishabd.in
2 डॉ. शिवचन्द्र सिंह (संपादक), साहित्योतिहास में वृद्ध विमर्श, दिशा इंटेरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, ग्रेटर नोएडा, संस्करण, 2017, पृ. 79
3 कृष्णा सोबती, समय सरगम, राजकमल पपेरबैक्स, नई दिल्ली, 2019, पृ. 15
4 वही, पृ. 74
5 वही, पृ. 97
6 डॉ. दिलीप मेहरा (संपादक), हिन्दी कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श, उत्कर्ष पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, संस्करण 2021, पृ. 227
7 टेकचन्द, दाई, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2017, पृ. 28
8 वही, पृ. 57
9 वही, पृ. 70
10 गीतांजलि श्री, रेत समाधि, राजकमल पेपरबैक्स, दरियागंज नई दिल्ली, संस्करण 2022, पृ. 12
11 वही, पृ. 154

❑❑❑

काशी का अस्सी : उपन्यास में लोकधर्म और सामाजिक सरोकार

○ प्रतिमा द्विवेदी[1]
○ डॉ. अमृता[2]

काशीनाथ सिंह समकालीन हिन्दी कथा साहित्य के महत्वपूर्ण कथाकारों में से एक है। उनके साहित्य में उत्तर प्रदेश के पूर्वांचली समाज और संस्कृति की छवियाँ दृष्टिगोचर होती है। इस समाज एवं संस्कृति में कथाकार काशीनाथ सिंह की गहरी पैठ है। उनका उपन्यास 'काशी का अस्सी' अपने कथ्य और शिल्प में एक नूतन प्रयोग था। उनका यह नूतन प्रयोग सफल ही नहीं सार्थक भी साबित हुआ और काशीनाथ सिंह को एक नयी पहचान मिली। उनके इस उपन्यास पर 'मोहल्ला अस्सी' नाम से एक फिल्म का भी निर्माण हुआ। काशीनाथ सिंह ने बनारस के एक छोटे से मोहल्ले गंगा नदी के घाट के माध्यम से भारत देश की आंतरिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक समस्या को बखूबी चित्रित किया है। 'काशी का अस्सी' उपन्यास के माध्यम से यह भी दिखाने का प्रयास किया गया है कि जिस जनता को नेता और बुद्धिजीवी वर्ग गंवार या नासमझ समझते है, वस्तुतः वह जनता हर बदलाव को अपने अनुसार समझती है। वह वैश्विक घटनाओं को स्थानीय परिप्रेक्ष्य में समझती है।

काशीनाथ सिंह एक ऐसे रचनाकार हैं जो अपने समय को सही सन्दर्भों में पकड़ने की कोशिश करते है। भूमंडलीकरण के दौर में हमारे समाज में अनेक परिवर्तन हो रहे हैं, जिसका असर हमारी संस्कृति पर भी हो रहा है। इस भूमंडलीकरण के कारण हम अकेलेपन का जीवन जीने के लिए अभिशप्त होते जा रहे हैं। देश की लोक संस्कृति लुप्त होती जा रही है। सामूहिक जीवन इस देश का प्राण तत्व है। उपन्यास के केन्द्र में बनारस शहर का 'अस्सी चौराहा' है। जिसकी खासियत है कि यहाँ मोहल्ले भर के लोग एकत्रित होते हैं। यह उनके मिलने का ठिकाना है, लेकिन धीरे-धीरे यह सब खत्म होता जा रहा है। हमारे देश में मोहल्ले वह जगह है, जहाँ पर एकत्रित होकर लोग आनंद महसूस करते रहे है। बाजारवाद इन चीजों को खत्म कर रहा है।

'काशी का अस्सी' उपन्यास को दो हिस्सो में समझा जा सकता है। एक वैश्वीकरण के पहले के बनारस की संस्कृति और उसके बाद की संस्कृति। उपन्यास में हमें काशी की संस्कृति उसके क्षरण और समकालीन

1. शोधार्थी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
2. शोध निर्देशक, असिस्टेंट प्रोफेसर, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

दौर की राजनीति और धर्म के आतंक एवं उसके द्वारा फैलाये जाने जाने वाले उन्माद को ठेठ काशी के लहजे में उपन्यासकार ने वर्णित किया है। काशी में विभिन्न संस्कृतियों के प्रभाव और परंपरा का मूल कारण गंगा के तट पर उनकी स्थिति रही है। यहाँ की धार्मिक परंपरा में यक्ष गान एवं प्रकृति पूजा की परंपराओं का सम्बन्ध भी घाटों से रहा है। अस्सी की धार्मिकता के बारे में लेखक लिखते है कि, "उस दिन शृंगार या अस्सी के देवी देवताओं का ठंड के ये तीन महीने-बल्कि चार-पाँच महीने देवी-देवताओं के शृंगार के महीने होते हैं। ऐसी कोई गली, सड़क, नुक्कड़, दोराहा, तिराहा, चौराहा नहीं जहाँ कोई-न-कोई देवी-देवता न हो और उसका शृंगार न होता है और जब भी शृंगार होता है, बुलाए जाते हैं कजली गानेवाले, बिरहिया, कव्वाल।"[1]

अस्सी की अश्लील और खूबसूरत भाषा का पूरा मजा हमें इस उपन्यास में देखने को मिलता है। कथाकार पहले पन्ने में ही लिखते है कि, "मित्रो, यह संस्मरण वयस्कों के लिए है, बच्चों और बूढ़ों के लिए नहीं और उनके लिए भी नहीं जो यह नहीं जानते कि अस्सी और भाषा के बीच ननद-भौजाई और साली-बहनोई का रिश्ता है! जो भाषा में गन्दगी गाली, अश्लीलता और जाने क्या-क्या देखते हैं और जिन्हें हमारे मुहल्ले के भाषाविद् 'परम' (चूतिया का पर्याय) कहते हैं, वे भी कृपया इस पढ़कर अपना दिल न दुखाएँ।"[2]

भाषा और अस्सी का रिश्ता प्रेमियों के जैसा बहुत गहरा है दूसरा मतलब यह है कि भाषा अस्सी वालों के पहचान से गहरी रूप से जुड़ी है। लोग अपनी भाषा में ही अपने दिल की बात अभिव्यक्त कर देते हैं। इसके अलावा बोलचाल की जबान 'बनारसीपन' का माहौल भी बनाती है। अस्सी का लोकजीवन सबसे अलग है। यहाँ पर वैमनस्य, कटुता और जातिगत विभाजन के रहते हुए भी अस्सी अपनी सामूहिकता को खत्म नहीं होने देता। इसी अर्थ में अस्सी की जुबान स्वयं अपने समाज के भेदभाव के सामने प्रतिरोधी रूप में है। काशीनाथ सिंह ने उपन्यास में कैथरीन शर्मा की डायरी से अस्सी के बारे में कहते हैं कि, "यह मुहल्ला है 'अस्सी' धर्म की धूरी! आज की भाषा में अनुवाद का शक्तिपीठ! सनातन धर्म जहाँ चौबीस घंटे हरिकीर्तन करता है, शंकराचार्य से टकराने का साहस है, जिसमें जिसके आकाश में धर्मध्वजा फहराती रहती है। काशी में कोई विद्युत परिषद है जिसका सचिवालय है यह मुहल्ला।"[3]

अस्सी एक जगज मात्र नहीं, यह एक परिघटना है। अस्सी घाट में सिर्फ जजमानी पंडिताई नहीं है। वह सामूहिकता और आनंद के मेल का दस्तावेज है।

दरअसल काशी का अस्सी जड़ता, मोह एवं नॉस्टेल्जिया का आख्यान नहीं है, जैसा कि प्राय: किसी अन्य वर्चस्ववादी संस्कृति से टकराहट के क्रम में स्थानीय संस्कृति की पक्षधरता के क्रम में उभर आता है। 'काशी का अस्सी' में काशीनाथ सिंह ने स्थानीय सांस्कृतिक विशिष्टता की पक्षधरता के साथ यहाँ के समाज के मिजाज में मौजूद उस बेचैनी को भी स्तर दिया है जो कि परंपरागत जड़ता से निपटने की चाहत में पनप रही है। यह समझ पुरोहित 'धर्मनाथ शास्त्री' में भी है और फक्कड़ बौद्धिक गया सिंह में भी।

"हरिश्चन्द्र महाविद्यालय के अध्यापक डॉ. गया सिंह ने 'विद्वान' कहलाने के लिए अथक संघर्ष किया है। एक ओर विद्वानों की संगत दूसरी ओर ऐसे लोगों से मारपीट जो उन्हें गुण्डा, लंठ झगड़ालू, मुकदमेबाज और जाने क्या-क्या कहते थे। अपने को 'विद्वान' साबित करने के लिए उन्होंने कई लोगों से कई मुकदमें भी लड़े।"[4]

काशी एक हिन्दू धार्मिक स्पेस में है और यह लगभग गैर-उत्पादक समाज है। इसके पास मानव संसाधन तो है पर जीवन के लिए आवश्यक भौतिक संसाधन का अभाव है। यह समाज असमान आर्थिक विकास एवं स्वतंत्रता पश्चात की नीतियों की खामी का शिकार है। इस समाज के पास श्रम की संतुष्टि एवं आर्थिक संबल के बजाए मिथ्या संतुष्टि है, लेकिन यह शिक्षा एवं ज्ञान का महत्वपूर्ण केन्द्र भी है, जिसकी ऊर्जा एवं तर्क पद्धति इस समाज के पास है। विरासत से प्राप्त धर्म, दर्शन एवं संस्कृति की प्रचुरता है। सामाजिक परम्परा है। दरअसल कहें तो अस्सी भारतीय विशिष्टताओं और विरोधाभासों का एक समन्वित मॉडल है। इसकी मस्ती एवं फक्कड़पन

इस अर्थ में प्रशंसनीय है कि व्यक्ति यहाँ सामाजिक इकाई के रूप में है। देश और समाज के प्रति उसका आलोचनात्मक दृष्टिकोण है। 'काशी का अस्सी' सामाजिक परिवर्तन-सामाजिकता से वैयक्तिकता का आख्यान है।

आजादी के बाद का इतना लम्बा दौर गुजर जाने के बाद भी देश की विकास-प्रक्रिया को गति देने में सत्ता एवं प्रतिसत्ता दोनों असफल रही है। अपनी असफलता को छिपाने के लिए उसने धर्म एवं जाति के प्रश्न को उछाल दिया है। धर्म जिसका अर्थ मानवता होता है, विघटन एवं सत्ताकारी शक्तियों ने उसे उसके मूल अर्थ में च्यूत कर दिया है। उसे उन्माद एवं राजनीतिक सामूहीकरण का हथियार बना दिया है। 'काशी का अस्सी' के अस्सी में जहाँ लोक सत्ता की छलना का प्रतिरोधी है वहाँ हिन्दू धार्मिक केन्द्र होने तथा लोगों के हिन्द साधना पद्धति में रचे-बसे होने के बावजूद आम लोगों में दूसरे धर्म या साधना पद्धति के प्रति वह घृणा के तंत्र को समझते हैं। यह प्रक्रिया किस प्रकार कार्य करता है, उपन्यास में रामवचन पाण्डेय के वक्तव्य से स्पष्ट होता है- "जब डेढ़ दो करोड़ जय श्री राम, जै सियाराम एक साथ गाना शुरू करेंगे तो हमारे न चाहते हुए भी अपने आप हमारे मुँह से निकल पड़ेगा, और फिर कहीं आँसू गैस, लाठी चार्ज और गोलियाँ चलनी शुरू हुई तो सारे रामभक्त हमें भारत की जनता लगने लगेंगे और रामलला की दया से कहीं दो-चार डंडे हम भी खा गए तो हो गए धर्मनिरपेक्ष!...... इसलिए हम यहीं खड़े-खड़े कारसेवा देखेंगे!....."[5]

रामवचन पाण्डेय इस तत्वों के उन्मादी चरित्र के साथ ही जनता के वास्तविक समस्या को ओझल करने की प्रवृत्ति की ओर भी इशारा करते हैं- "जब पिछले दिनों दाल चौबीस रुपये किलो बिक रही थी तो बीस लाख की आबादी वाले इस शहर में एक भी ऐसा आदमी आपको मिला जो उसके खिलाफ सड़क पर चिल्लाया हो।"[6]

'काशी का अस्सी' बीते दो-ढाई दशकों में भारत में हुए सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिवर्तन की दास्तान है। यह ऐसा दौर है कि प्रसारित वैमनस्य ने पूरे समुदाय को अपने गिरफ्त में ले लिया है। परस्पर गहरा अविश्वास है, अविश्वास के कारक विभिन्न रूपों में अपना पाँव फैला रहा है कहीं वह धर्म के रूप में है कही जाति के रूप में। 'काशी का अस्सी' इस विडम्बनात्मक स्थिति का दास्तान है। जातिगत धर्मगत वैमनस्य की भयावहता पर टिप्पणी करते हुए उपन्यास में रामबचन पांडे कहते है- "देखिए साफ-साफ बताते है आपसे ठाकुरों-बाभनों के वोट तो हैं नहीं इनमें नेता जरूर हैं लेकिन इनके वोट नहीं हैं। वोट किनके हैं तो यादवों के चमारों के।"[7]

राजनीति में आदर्श एवं सिद्धांत के प्रति इस तरह की धारणा रखने वाले लोग धार्मिक पहचान, जातिगत पहचान को उभारकर अपनी राजनीति करते रहे है। आज का समाज बहुस्तरीय विभाजन वाला समाज है। इसमें आर्थिक, धार्मिक और जातीय भेद है। जातिगत अस्मिता को उभारकर नेताओं ने सत्ता प्राप्त की और जातियों को अपना बंधक बना लिया। जाति की राजनीति में एक और विडम्बनापूर्ण स्थिति यह बनी कि जो लोग जाति की राजनीति का नेता बने उन्होने कालान्तर में अपने को जाति के पर्याय एवं प्रतीक के रूप में प्रचारित स्थापित किया। जाति की राजनीति के स्वरूप पर टिप्पणी करते हुए उपन्यास में राजकिशोर कहते हैं- "यह है जाति का नया चेहरा, मुलायम जिसे टिकट दें, वह अहिर; कांसीराम जिसे टिकट दें, वह चमार; नीतिश कुमार जिसे टिकट दें, वह कुर्मी; ठाकुर, बाभन, बनिया, लाला चाहे जो हो। कांसीराम का टिकट मिला नहीं कि चामार हुआ। बनारस से अवधेश राय लड़ रहे हैं बसपा और हरिजन बस्तियों में जाकर देख लीजिए। अरे इसे छोड़िए, अपने यहाँ चन्दौली में ही देखिए। कांग्रेस से श्यामलाल यादव हैं और मुलायम की मुहर के साथ सपा से जायसवाल। अब यादव श्यामलाल नही रह गए, यादव है जवाहर जायसवाल"......[8] लेकिन इस वैमनस्य, कटुता, जातिगत विभाजन के रहते हुए भी अस्सी सामूहिकता को खत्म नहीं होने देता।

इस उपन्यास में काशीनाथ सिंह समकालीन वैश्विक आर्थिक प्रक्रिया की प्रभाव-व्यापकता को सामने लाते हैं। यहाँ उन्नत आर्थिक राष्ट्र द्वारा लक्षित विकासशील राष्ट्र का हर संभव दोहन है। पश्चिमी समाज सांस्कृतिक कुतुहल के साथ आता है और अपनी विकृति थोप जाता है। उपन्यास में गया सिंह कहते है- "वह शुरू में ऐसे ही किसी मुल्क को चाटना शुरू करता है जैसे गाय बछड़े को चाटती है -प्यार के साथ! बाद में जब चमड़ी छिलने लगती है, खाल उधड़ने लगती है, दर्द शुरू हो जाता है, जीभ पर काँटे उभरते दिखाई पड़ने लगते हैं, जबड़े चलने की आवाज सुनाई पड़ती है तब पता चलता है कि यह जीभ गाय की नहीं, किसी और जानवर की है। और क्या समझते हो, जो देखते-देखते देश का देश चबा गया हो और उसमें भी सोवियत रूस जैसा देश उसके लिए नगर का मुहल्ला क्या चीज है।"[9]

गया सिंह की यह टिप्पणी भूमंडलीकरण के वास्तविक चरित्र को सामने रखती है। भूमंडलीकरण का स्वरूप अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक प्रक्रिया न होकर पश्चिमी उत्पाद, संस्कृति एवं मूल्य के वर्चस्व की प्रक्रिया है। वह पूरी दुनिया को अपना चारागाह बनाता है। 'काशी का अस्सी' में गया सिंह कहते हैं- "उन्हें जितनी बार आना-जाना हो, आएँ-जाएँ, जब तक रहना हो, तब तक रहें, लेकिन हम हैं, हमारी हैसियत एक बार भी अमेरिका जाने की नहीं, हमारा घर उनका घर है लेकिन उनका घर उन्हीं का घर है, हमारा - तुम्हारा नहीं।...... अभी क्या देख रहे हो, थोड़े दिन बाद ही ये बोलेंगे.......अस्सी जर्जर हो रहा है, ढह रहा है, मर रहा है, हमें दे दो तो नया कर दें-एकदम चमाचम! कल बनारस को चमकाएँगे, परसों दिल्ली को ठीक करेंगे, नरसों पूरे देश को ही गोद ले लेंगे और झुलाएँगे-खेलाएँगे अपनी गोद में! यह बाद में पता चलेगा कि हम किसकी गोद में हैं- जसोदा मइया की कि पूतना की।"[10]

सामूहिकता को खत्म करना, राष्ट्र-राज्य को कमजोर बनाना तथा पारिवारिक मूल्य को नुकसान पहुँचाना पश्चिमी मॉडल के भूमंडलीकरण की खास विशेषता है। सामूहिकता वस्तुगत निर्भरता को खत्म करती है तथा किसी भी जनविरोधी तंत्र को चुनौती देता है।

इस उपन्यास में तत्कालीन समाज में घट रहे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक घटनाओं को प्रमुखता से लेखक ने उठाया है। राजनीतिक हित में धर्म के इस्तेमाल से धार्मिक साम्प्रदायिकता इतनी बढ़ गयी कि मंदिर आन्दोलन की आड़ में गाँवों व शहरों में जमीनें हथियायी गयीं। नब्बे के दशक की एक ऐसी ही महत्वपूर्ण घटना का जिक्र इसमें आया है। जनता पार्टी के विश्वनाथ प्रताप सिंह के माध्यम से। जो ठाकुर-ब्राह्मण-भूमिहार 3 अगस्त 1990 को देवीलाल के निकाले जाने पर वी.पी. सिंह जिंदाबाद के नारे लगा रहे थे, उन्हीं लोगों ने 15 अगस्त 1990 को मंडल आयोग की सिफारिशों के लागू होने पर वी.पी. सिंह मुर्दाबाद के नारे लगाने शुरू कर दिए। "राजनीति में इतने बड़े फेरबदल को कौन नोटिस करता, सारे उच्च वर्ग जो क्षत्रिय बी.पी. सिंह के साथ थे उन्होंने रातों-रात कैसे जनता दल में शिफ्ट कर लिया, इस माइग्रेशन को तो पकड़ा जाना चाहिए था न; काशीनाथ सिंह ने इसको पकड़ा, अस्सी का उच्च वर्ग बहुत राजनीतिक है और अन्दर से बहुत जातिवादी भी।"[11]

आजादी के बाद इतना लम्बा समय गुजर जाने के बाद भी देश की विकास प्रक्रिया को गति देने में सत्ता और प्रतिसत्ता दोनों विफल रही है। अपनी असफलता छिपाने के लिए उसने जाति और धर्म के प्रश्न उछाल दिए है। धर्म की लोगों को एकत्र करने की क्षमता के कारण सांप्रदायिक ताकतो ने धर्म को हथियार के रूप में इस्तेमाल किया है। 1989 में राम मंदिर का शिलान्यास और इसके बनाने के लिए पूरी दुनिया से एकत्र की गयी रामशिलाएँ भारतीय समाज के सामाजिक ताने बाने को छिन्न-भिन्न करने की एक शुरुआत थी। 1990 में ही उन्माद की चरम परिणति 6 दिसम्बर 1992 को हुई। जब राजनीतिक स्वार्थ से प्रेरित हिन्दुत्ववादी ताकतों ने अयोध्या में बाबरी मस्जिद को ढहा दिया। इस घटना से पूरा भारतीय समाज नफरत की आग में झुलस गया।

एक-दूसरे के प्रति जो अवश्विास पैदा हुआ वो बढ़ता ही जा रहा है। काशी का अस्सी उस संकट की उपज हैं जिसमें व्यक्ति ज्यादा से ज्यादा हीन और प्रोडक्ट महत्वपूर्ण हो रहा है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि काशीनाथ सिंह के सृजन कर्म में उनके संघर्षो का भी बहुत बड़ा योगदान रहा है। वे संघर्षों से घबराते नहीं बल्कि उसका डटकर मुकाबला करते हैं। लिखने के पहले काशीनाथ सिंह तथ्यों की जाँच पड़ताल करते हैं। उसके तह तक जाने की कोशिश करते हैं और यह पता लगाते हैं कि पाठकों की जरूरत के मुताबिक सामान है या नहीं और फिर कुछ कल्पना का मिश्रण का रचना को योग्य और पाठकों के लिए उपयोगी बनाते हैं। उनका मानना है कि रचनाकार में अगर रचनाशीलता होगी तो जरूर उसे पाठकों का एक बड़ा सामान मिलेगा। काशीनाथ सिंह ने इस उपन्यास में पात्र के स्थान पर किसी व्यक्ति को न चुनकर स्थान को चुना। वह स्थान और नहीं बल्कि काशी (बनारस) है। इस उपन्यास में पाँच लम्बी कहानियों की कड़ियाँ है, जो 'काशी का अस्सी' के रूप को साकार होती है। यह उस बनारस शहर की तस्वीर पेश करता नजर आता है, जो भूमंडलीकरण और बाजारवाद के प्रभाव से प्रभावित हो रहा है। चुँकि यह उपन्यास पाँच अलग-अलग कहानियों का सम्मिश्रण है, जिसमें 'देख तमाशा लकड़ी का' और 'संतों घर में झगड़ा भारी' कथा-रिपोर्ताज है। तीसरा 'संतों और घोघां बसंतों का अस्सी' संस्मरण है, जबकि चौथा और पॉचवाँ 'पाण्डे कौन कुमति तोहे लागी' और 'कौन ठगवा नगरिया लुटल हों' कहानी के रूप में छप चुकी रचनाएँ हैं। इस उपन्यास या संस्मरण या लम्बी कहानी या रिपोर्ताज जो भी कहें, में समाज के साथ-साथ रचना के 'फार्म' के मामले में एक तरह की लोकतांत्रिक अवधारणा का दर्शन होता है। संभवत: इसीलिए विधाओं के बने बनाए चौखटे को भी यह रचना तोड़ती परिलक्षित होती है।

संन्दर्भ :

1. काशी का अस्सी: काशीनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली 110002, 18वाँ संस्करण, जुलाई 2022, पृ. 133
2. वही, पृ. 11
3. वही, पृ. 107, 108
4. वही, पृ. 18
5. वही, पृ. 27
6. वही, पृ. 27
7. वही, पृ. 45
8. वही, पृ. 41
9. वही, पृ. 112
10. वही, पृ. 112,113
11. वही, पृ. 100

❑❑❑

समकालीन कविता में बालश्रम

❍ प्रीति खजूरिया[1]

बालक मानव जीवन की नींव है। बालक रूपी बीज से ही मानव वृक्ष का निर्माण होता है। किसी भी राष्ट्र की भावी स्थिति का अनुमान वहाँ के बच्चों को देखकर लगाया जा सकता है क्योंकि ये बच्चे ही देश के भावी कर्णधार होते हैं उन्हें ही देश का भावी भाग्य विधाता कहा जा सकता है। परन्तु आज हमारे मानव समाज ने बच्चों के हाथों को मासूमियत को छीनकर उनके कोमल हाथों में कुदाल, फावड़ा, सर पर भारी भरकम बोझ लाद दिया, उसे होटल या रेस्टोरेंट में मेजों और बर्तनों की झूठे बर्तन धोने, कारखानों के दूषित वातावरण में छोटी बड़ी मशीनों से जूझना, अपने मालिक की अर्दली में रहते उसकी डाँट फटकार सहना उसकी नियति बना दिया है। बच्चों की इस कारुणिक, मार्मिक दशा और असहाय स्थिति को समकालीन कवि महसूस करता है और संवेदनशील होने के नाते अपनी कविताओं के माध्यम से लोगों के दिलों में इन बच्चों के प्रति सचेतना लाने का प्रयास करता है। मजदूरी करने वाले बच्चे की विवशता, उसकी दिनचर्या, उनकी थकान, बीमारी, स्वप्न, अकेलापन, छोटी-छोटी खुशियाँ, अपमान, पीछे छूट गए दिन और आने वाले दिनों की कल्पना इन सबका उल्लेख समकालीन कवि अपनी कविताओं में करता है।

आर्थिक स्तर पर बाल मजदूरी की विवशता झेलने के लिए मध्य वर्ग का बच्चा अभिशप्त है। दो जून का भोजन पाने के लिए बच्चों को मजदूरी करने की अत्यंत आवश्यकता है। बच्चों का बचपन खेलने और पढ़ने के बजाय मजदूरी करने में जाता है। कवि अरुण कमल 'मातृभूमि' कविता में इन बच्चों के लिए इस प्रकार प्रार्थना करता है -

"ये बच्चे कालाहाँडी के
ये आंध्र के किसानों के बच्चे
ये पलामू के पत्रृन नरौदापटिया के
ये यतीम, ये अनाथ ये बंधुआ
इनके माथे पर हाथ फेर दो माँ"[1]

इसी प्रकार 'दोस्त' कविता में भी कवि सुबह से शाम तक ग्राहक की तलाश में बैठे बच्चों का चित्रण उभार, देश की आर्थिक स्थिति और चुनौतियों को अभिव्यक्त करता है -

1. पीएच.डी. शोधार्थी, हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर- 190006; मो. 6005793640

"दो छोटे बच्चे जूता चमकाने वाले
बैठे हैं सुबह से ग्राहक के वास्ते
कि शाम होते होते आता है उनके पास एक ग्राहक
और दूसरा उसे अपनी डिबिया से देता है क्रीम"[2]

एक छोटी सी कविता 'होटल' की अरुण कमल की अनेक कविताओं की तरह बाल श्रमिकों के प्रति अपनी संवेदना को व्यक्त करती है–

"जैसे ही कौर उठाया
हाथ रुक गया
सामने किवाड़ से लगकर
रो रहा था वह लड़का
जिसने मेरे सामने
रखी थी थाली"[3]

यह छोटी–सी कविता भी अपने आप में पूर्ण है। रोते हुए बच्चे का दृश्य उभारकर कवि पाठक वर्ग को सोचने पर विवश कर देता है कि आखिर बच्चा क्यों रो रहा था? हो सकता है उसे उसके मालिक ने पीटा हो या फिर ये भी हो सकता है कि उसने कई दिनों से खाना नहीं खाया हो और भूख के मारे वह रो रहा हो? यह छोटी सी कविता भी पूरे अर्थतंत्र के लिए सवाल पैदा कर देती है।

बाल श्रमिकों की स्थिति पर राजेश जोशी की कविता 'बच्चे काम पर जा रहे हैं' भी पूरी सामाजिक संरचना को हिला देती है। इस कविता में कवि का इरादा केवल एक मार्मिक दृश्य की रचना करना नहीं है उसे आगे जाकर हमारे देखने की आदत की मीमांसा करना है।

'कोहरे से ढकी सड़क पर बच्चे काम
पर जा रहे हैं सुबह–सुबह"[4]

कविता की पहली पंक्ति में ही कवि पाठकों के सामने सुबह का दृश्य अंकित करता है कि आप ठीक से जगे भी नहीं हैं और आप देखते हैं कोहरे से ढकी सड़क पर काम पर जाते हुए बच्चों को। ये मैले कुचले बच्चे जो अपना सामान उठाए जा रहे हैं, पहली नजर में कोहरे के कारण स्कूल में जाते हुए बच्चों की तरह प्रतीत होते हैं। लेकिन ये स्कूल जाते बच्चे नहीं हैं इसलिए कवि जोर देकर कहता है –

"बच्चे काम पर जा रहे हैं
बच्चे काम पर जा रहे हैं"[5]

यह कविता की केन्द्रीय पंक्ति है, इसलिए कवि इस बात को बार–बार दोहरा रहा है। इससे पहले कि पाठक इस दृश्य में डूब जाए, कवि इस सवाल के आगे की दुनिया भी स्थगित कर देना चाहता है। आखिर बच्चे काम पर क्यों जा रहे हैं? यह प्रश्न कवि की भावुक मनः स्थिति के साथ–साथ सामाजिक संरचना पर प्रश्न लगा देता है।

बाल मजदूरी समाज के लिए श्राप है इस सत्य को ज्ञानेन्द्रपति ने अपनी कविताओं में सिद्ध किया है। आज की मँहगाई, गरीबी और भूखमरी की मार झेल रहा आज का बच्चा शिक्षा के अभाव में मजदूरी करने को विवश है। उसका जर्जर बचपन समाज के मुँह पर आर्थिक विकास पर, सर्वशिक्षा अभियान पर करारा तमाचा है। कवि गणतंत्र दिवस कविता में इस प्रकार उल्लेख करता है –

"गिनती सीखने की उम्र वाले बच्चे चार–पाँच

पकड़े हुए एक-एक हाथ में एक-एक नहीं, कई-कई
नन्हें कागजी राष्ट्रीय झण्डे तिरंगे
लेकिन थोड़ा करीब होते ही

° ° °

वे बेच रहे हैं ये झंडे
घरमुँही दीठ के आगे लहराते
झंडे, स्कूल जाने वाले उनके समवयसी बच्चे जिन्हें पकड़ेंगे
गणतंत्र दिवस की सुबह"[6]

बंधुआ मजदूर के रूप में बच्चों की तस्करी की जाती है और मनमाने तरीके से उन्हें इस्तेमाल किया जाता है। आर्थिक विपन्नता छोटे-छोटे बच्चों को कारखानों में काम करने को विवश करती है। शिवकाशी के कारखानों में काम करने वाले बच्चों का त्रासद चित्रण कवि 'दीवाली की रात' कविता में दिखाई देता है जो समाज को उजाला, त्योहार की खुशी देने के लिए अपने जीवन को सुलगाते हैं।

"सुलगती उँगलियों जलती आँखों
पटाखों के पेट में भरते
बारूद में मिला हुआ अपनी जिंदगी का बुरादा
शिवकाशी के वे लाख बच्चे"[7]

बाल मजदूरी के प्रति जगूड़ी जी ने भी अपनी चिंता अभिव्यक्त की है। वे समाज का ध्यान उन कमाऊ बच्चों की स्थितियों की ओर ले जाना चाहते हैं जिन्हें अनदेखा किया जाता है। उनके जीवन की त्रासदी किसी को दिखाई नहीं देती है –

"हमारे अप्रस्तुत जीवन में हर वक्त प्रस्तुत है
उत्पीड़ित कमाऊ बच्चों की अस्थायी नींद
और स्थायी बीमारियाँ
जो सकल और सभ्य समाज में
साबुन पाऊडर क्रीम और हिंसक खिलौनों में
बदल जाती है।"[8]

बच्चों का श्रम विज्ञापन की बलि चढ़ जाता है और वो बीमारियाँ और अधूरा जीवन जीने को विवश है।

चन्द्रकान्त देवताले की कविता 'थोड़े से बच्चे और बाकी बच्चे' में सुखी और समृद्ध दुनिया के बच्चों की तुलना में भूख, अन्धेरे और अभाव की दुनिया के बच्चों को दिखलाते हुए कवि दो दुनिया को एक-दूसरे के इतने करीब रख देता है कि अर्थ का एक विस्फोट-सा होता है। अभाव की दुनिया के बच्चों की छोटी-छोटी हरकतों को और समाज के साथ बनते उनके सम्बन्धों की मार्मिकता को इतनी गहराई से रचा गया है कि सारे दृश्य उनकी बेचौनी और करुणा से हमारा साक्षात्कार भी कराते हैं,

"एक मेज है
सिर्फ छः बच्चों के लिए
और उनके सामने
उतने ही अण्डे और उतने ही सेब हैं
एक कटोरदार है सौ बच्चों के लिए

और हजारों बच्चे
एक हाथ में रखी आधी रोटी को
दूसरे से तोड़ रहे हैं।"[9]

विष्णु खरे की 'घर' कविता एक और जटिल संसार को रचती है। दिल्ली की एक संभ्रात कालोनी में घरेलू काम पर गई स्त्री के तीन अबोध बच्चों का रोज पूरा दिन पार्क में बीतता है। यूँ देखने में कवि एक वस्तुनिष्ठ दृश्य को ही रचता है लेकिन ये विवरण अपनी एक अन्तर्धारा को साथ लाते हैं, जो धीरे-धीरे उन तीन छोटे बच्चों से गुजरता रहता है। हम खुले में उस असुरक्षा को महसूस करते हैं जिसके ये बच्चे दिन-प्रतिदिन आदि होते जाएंगे। इन बच्चों के आपस में एक-दूसरे से व्यवहार बड़े बच्चे की छोटे बच्चे के प्रति जिम्मेदारी की भावना, उसकी एक प्रच्छन्न मार्मिकता, जीवन शक्ति, यह सब कुछ कितनी तरह की छोटी-छोटी बातों के ड्रामों के भीतर है बल्कि वह हमें अपने सीमित परिबोध और आत्मबद्ध स्थितियों के दबानों से तटस्थ होकर बाहर के सच को देखने परखने के तरीके सिखाता है। उसे रचने के लिए एक असीम धीरज, एक गहरा लगाव और एक तीक्ष्ण दृष्टि चाहिए। वह लगभग एक जिद की तरह सूक्ष्म-दर्शी यन्त्र का इस्तेमाल कर किसी सामान्य के भीतर छिपी असाधारण को उद्घाटित करता है। इसमें नई तरह की कलात्मक सम्भावनाएं हैं -

"उन्होंने पार्क के उस पेड़ के नीचे अड्डा बना लिया
यकीन नहीं आता कि दिल्ली जैसे शहर
और इसकी भी इस संभ्रात कालोनी में ऐसा हो सकता है
यानि यह कि रोज सुबह एक जवान-सी औरत आए
और अपने साथ तीन बच्चे लाए"[10]

मंगलेश डबराल की कविता 'गाता हुआ लड़का' इसमें दिल्ली की बसों में गा-बजाकर भीख माँगते हुए अपना पेट भरने वाले बारह-तेरह बरस के लड़के और उसकी चार वर्ष की बहन का चित्र खींचा गया है-

"लड़का बीच-बीच में उसे डांटता अपने पास बुलाता था
कहीं गिर न जाए वह नीचे चलती बस से
वह बार-बार ऊपर करता अपनी फटी पैण्ट को
जो नीचे खिसक रही थी
फिर भरपूर गले से गाता था किसी विकल राग से
कच्चे पक्के सुर
जिसमें नदियाँ बहती थी पहाड़ पिघलते थे।"[11]

भगवत रावत की कविता 'खुद ही अपनी मां. उन लड़कियों की कारुणिक दास्तां है जो रोज मोहल्ले में कचरा उठाने आती है। इनकी दयनीय दैनिक स्थिति का वर्णन कवि कुछ इस प्रकार करता है -

"मोहल्ले भर के कूड़े के ढेर पर
चौपायों-सी चलती-फिरती
कचरों में अपने आप पैदा हो गई-सी नहीं लगती
ये कचरा बीनने वाली लड़कियाँ"[12]

दिन भर कचरा बीनने वाली लड़कियां दिन-भर तपती धूम में काम करने के कारण और हमेशा कूड़ा कचरा उठाने के कारण इनका चेहरा बचपन की मासूमियत को खो देता है। धूप और प्रदूषण में काम करने के कारण पसीने से मैल इनके शरीर में चिपक जाती है और हम इन्हें घृणा की दृष्टि से देखते हैं। मगर हम भूल जाते

हैं कि इनकी यह दशा हमारी ही देन है।

नरेश चंद्रकर की कविता 'दुखा की कहानी' बाल मनोविज्ञान को व्यक्त करती है। इस कविता में कवि ने दो बातों की ओर संकेत किया है। पहली बात यह है कि बाल श्रमिक अपने अस्तित्व को टटोलता है। वह सोचता है कि वह दूसरे बच्चों से भिन्न क्यों है? क्यों नहीं वह दूसरे बच्चों की तरह खेलने जा रहा है? दूसरे बच्चों की तरह उनको कोई क्यों लाड-प्यार नहीं करता? और दूसरी बात हमारी सामाजिक संरचना पर कहीं गई है कि कभी-कभी लोगों के अवैध सम्बन्धों के कारण अवैध सन्तान पैदा होती है और लोग डर से इन बच्चों को मार देते या फिर छोड़ देते हैं। यह छोड़े हुए बच्चे बाल-श्रमिकों के रूप में सामने आते हैं। इन बच्चों का संघर्ष दूसरे बाल-श्रमिकों से भिन्न होता है। वे भी हमेशा अपने अस्तित्व को टटोलते रहते हैं और स्वयं से प्रश्न करते हैं कि मैं कौन हूँ। मेरा घर कहाँ है? मेरे माता-पिता कौन हैं? क्यों त्याग दिया उन्होंने मुझे? इन्हीं बातों का उल्लेख कवि इस प्रकार करता है -

"उसकी देह-भाषा से एक भी शब्द नहीं पढ़ा होगा कभी
कितना छोटा हूँ अभी
खेलने कहाँ जाता हूँ मैं
घर कहाँ है मेरा
मुझे नहीं मालूम मैं कब यहाँ आया
आश्चर्य है
होते हुए भी लड़का गायब था सबके बीच से"[13]

विजय कुमार की कविता 'सड़क के बच्चे' उन लाखों बच्चों को केन्द्र में रखकर लिखी गई है जिनका पूरा बचपन सड़कों और प्लेटफार्मो पर बीतता है। ये बच्चे कार की चमचमाती रोशनी देखकर गाँव से शहर एक सपना लिए आते हैं कि एक दिन और शहर की तमाम चिकनी सतहों पर निशान इसकी मैली उँगलियों को कौन दुत्कारता है इन्हें कौन बड़बड़ाता है किसके भीतर बची है अठन्नी भर की दया। दिन भर श्रम करने के बाद जब ये थके-हारे बच्चे रात को शरण लेते हैं रेलवे प्लेटफार्म या पार्क, सड़कों पर या पुल की सुनी सीढ़ियों पर तब उन्हें पुलिस की डण्डों का प्रहार अपने थके-जर्जर बदन पर सहने पड़ते हैं।

इन बच्चों को जी आइसक्रीम, बिस्कुट, गुब्बारों और चाय के जूठे कप के लिए ललचाता है, मगर कौन सहृदय व्यक्ति है इस संसार में जो इन सड़कों पर घूमते हुए बच्चों के लिए ला दे आइसक्रीम और गुब्बारे। इन छोटे-छोटे बच्चों को गरीबी ही सीखा देती है दुनियादारी की सारी बातें। इसलिए ये बचपन में ही प्रबुद्ध हो जाते हैं। इनका जी बिस्कुट, आइसक्रीम देखकर मचलता तो है, मगर ये अपनी लालसा अपने मन में ही रखते हैं, क्योंकि ये बच्चे जानते हैं कि इनके भाग्य में ये सब चीजें नहीं लिखी हुई हैं। अपने में तृप्त हो जाते हैं ये बच्चे।

"आइसक्रीम बिस्कुट गुब्बारे और
चाय के जूठे कपों के लिए
आकाश की ओर देखकर
ये फेंकते हैं एक फीकी हंसी
छिपा ले जाते हुए"[14]

घनश्याम की कविता 'बचपन बेचता बच्चा' नारियल बेचते उस बच्चे पर आधारित है जो कभी प्लेटफार्म पर तो कभी बस स्टॉप पर, कभी सिनेमा हॉल के पास तो कभी एन.एच. के किनारे अक्सर मिल जाता है नारियल

बेचते हुए। वह मासूम बच्चा न दुनिया के छल-कपट से परिचित है और न जीवन के बारे में ही कुछ जानता है, वह दुनिया के दाँव-पेंच से भी अज्ञात है। वह सिर्फ नारियल की कीमत जानता है। नारियल की तरह ही उसकी जिन्दगी बँटी हुई है ठीक एक नारियल के कई टुकड़ों की तरह,

"वह बच्चा
नारियल की शक्ल में
बचपन बेचता हुआ
नारियल लो, नारियल लो
आवाज के साथ साथ
जीवन के क ख ग से
छल-प्रपंच से
दाँव-पेंच से
नारियल बेचते उस बच्चे की जिन्दगी
बंटी हुई है। फाँक-फाँक में
ठीक एक नारियल के कई-कई टुकड़ों की
तरह"[15]

ऋतुराज की कविता 'कोयला बीनने वाली लड़की' बाल श्रम के इतिहास का उल्लेख करते हुए कहती है कि बाल-श्रम रूपी अंधकार की जड़ें इतिहास में भी देखने को मिलती हैं। अर्थात् ये समस्या आज की नहीं अपितु बहुत प्राचीन है और आज तक इस अन्धकार को मिटाने की सब कोशिशों को टाला गया है। बाल श्रम के विवध रूपों का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि श्रम करते जूझ रहे बच्चों को आप लोहे की खानों में पत्थर तोड़ते हुए या कोयला बीनते हुए देख सकते हो। इस विस्तृत संसार में तंगी के कारण इन बच्चों ने अपने लिए बस यही रास्ता चुन लिया है। तंगी ही वह जड़ है जो इन बच्चों को श्रम करने के लिए मजबूर करती है।

"जिन्दगी की बर्बर छलांग
चेहरा नहीं
सिर्फ एक जड़ है
लोहे, पत्थर, कोयले में धंसी
मुड़कर फैली
इस अपार अथाह संसार की तंगी में
एक जड़"[16]

इसी तंगी से मजबूर होकर वह अपनी बीमारी में भी तपिश की तरह हड़बड़ा कर इंजन की तरह काम पर निकलता है। कवि पुनः कहता है -

"अपनी बीमारी की तपिश में
हड़बाता जले हुए को भी

इस प्रकार समकालीन कवियों ने अपनी कविताओं में समाज के त्रस्त, जर्जर, बचपन को उजागर किया है। जो भूखमरी, गरीबी की चपेट में आकर शिक्षा के अभाव को स्वीकार कर मजदूरी करने को विवश है। संवैधानिक प्रावधानों एवं समाजसेवी व स्वैक्षिक संगठनों के अथक प्रयासों के बावजूद आज भी बालश्रम के

प्रतिबंध की दिशा में राष्ट्र को अपेक्षित परिणाम नहीं मिल पा रहे हैं। समाज में हर जगह ये बच्चे काम करते दिखाई देते हैं और इनकी स्थितियों के प्रति समाज की संवेदना समाप्त हो चुकी है।

सन्दर्भ :

1. अरुण कमल, पुतली में संसार, मातृभूमि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 44
2. अरुण कमल, पुतली में संसार, दोस्त, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 49
3. Kavita Kosh-.org/KK/होटल-।- अरुण-कमल
4. राजेश जोशी, नेपथ्य में हंसी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 23
5. वही, पृ. 23
6. ज्ञानेन्द्रपति, संश्यात्मा, गणतंत्र दिवस, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 249
7. ज्ञानेन्द्रपति, गंगातट, दीवाली की रात, सेतु प्रकाशन, 2022, पृ. 46
8. लीलाधर जगूड़ी, नाटक जारी है, विज्ञापन सुंदरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1972, पृ. 20
9. चन्द्रकान्त देवताले, थोड़े से बच्चे और बाकी बच्चे, अन्यथा साहित्य संवाद परिसर, रुचिका प्रिण्टर्स, नई दिल्ली, नवम्बर 2005, अंक-5, पृ. 27
10. विष्णु खरे, घर अन्यथा साहित्य-संवाद परिसर, रुचिका प्रिण्टर्स, नई दिल्ली, नवम्बर 2005, अंक-5, पृ. 28
11. Kavita Kosh.org/KK/गाता हुआ लड़का-।-मंगलेश-डबराल
12. भागवत रावत, खुद ही अपनी माँ, अन्यथा, साहित्य संवाद परिसर, रुचिका प्रिण्टर्स, नई दिल्ली, नवम्बर 2005, अंक-5, पृ. 24
13. नरेश चंद्रकर, दुखा की कहानी, अन्यथा साहित्य संवाद परिसर, रुचिका प्रिण्टर्स, नई दिल्ली, नवम्बर 2005, अंक-5, पृ. 26
14. विजय कुमार, सड़क के बच्चे' अन्यथा साहित्य संवाद परिसर, रुचिका प्रिण्टर्स, नई दिल्ली, नवम्बर 2005, अंक-5, पृ. 30
15. Kavita Kosh-.org/KK/बचपन-बेचता-बच्चा-घनश्याम
16. Kavita Kosh.org/KK/कोयला-बीनने-वाली-लड़की-की प्रेम-कविता-।-ऋतुराज

❑❑❑

‘महाप्रस्थान’ खंडकाव्य में अभिव्यक्त हिमालय का सांस्कृतिक संदर्भ

❍ डॉ. प्रणीता. पी[1]

> “*हिमालय जड़ भी है और चेतन भी, वह गमलाई वनस्पति के पोषकों के लिए हिमालय पहाड़ भर है पर अधिकांश धूसरित भारतीयता के लिए धूर्जटी(शिव) रूप है। हिम की शुभ्रता, तेजस्विता आदि हमारी पवित्रता पर निर्भर है।*”[1]
>
> – नरेश मेहता

भारतीय जीवन एवं संस्कृति के रूपायन में हिमालय का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। हिमालय ने सम्पूर्ण भारतीय चिंतन और मनीषा को प्रभावित किया है और उन्हें चेतना से संयुक्त किया है। इसलिए हिमालय की महिमा का गुणगान संस्कृत से लेकर सभी भारतीय भाषाओं में मिलता है। इसकी विराटता का जिक्र हिन्दी भाषा के मनीषियों ने भी खूब किया है। हम देख सकते हैं हिन्दी भाषा के अनेकानेक कवियों ने अपनी-अपनी दृष्टि से हिमालय का यशोगान किया है। संस्कृत साहित्य से लेकर समकालीन समय तक की रचनाओं में हिमालय की उपस्थिति हम देख सकते हैं। नरेश मेहता का नाम इस संदर्भ में बड़े आदर के साथ लिया जाता है। नरेश मेहता ने हिमालय की विशालता का वर्णन खूब किया है। उनके द्वारा लिखित ‘महाप्रस्थान’ खंडकाव्य की पृष्ठभूमि हिमालय है।

महाप्रस्थान की कथा महाभारत की उत्तर कथा का एक अंश है, जो ‘महाकाव्य महाभारत’ का एक अंश मात्र है। युधिष्ठिर महाभारत के युद्ध के पश्चात् स्वर्गारोहण हेतु भाइयों और द्रौपदी सहित हिमालय में जाकर गल जाते हैं। इतनी संक्षिप्त कथा को लेकर ही कवि ने कथानक के कलेवर की रचना की है। अतः कथावस्तु खंडकाव्य के अनुकूल है। युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, द्रौपदी और अश्वत्थामा जैसे पात्र ही कथानक में आये हैं। हिमालय के हिमावृत वातावरण को पृष्ठभूमि में प्रस्तुत कर कवि ने सूक्ष्म कथानक का विस्तार किया है।

कथानक तीन सर्गों में गठित है। तीनों सर्ग के कथानक एक श्रृंखला में होने के कारण प्रबन्धात्मकता का निर्वाह हुआ है। कवि ने वस्तु-वर्णन के रूप में अनुभूति पूर्ण प्रसंगों का मार्मिक चित्रण किया है। हिमालय के निर्वेद पूर्ण आकाश, हिम से घिरी हुई द्रौपदी की रक्षा के लिए पुकार, अर्जुन की विवशता, अर्जुन, भीम, नकुल,

1. सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, कुसाट, केरल।

सहदेव, अर्जुन और द्रौपदी का हिम में विलीन होना आदि ऐसे ही अनुभूति पूर्ण प्रसंग हैं। दूसरे सर्ग में अर्जुन और युधिष्ठिर के संवाद में मानव मुक्ति के प्रतीक युधिष्ठिर के द्वारा युद्ध और राज्य व्यवस्था को नकारा गया है। यह लम्बा संवाद वैचारिकता से बोझिल हो गया है। परन्तु इसका विस्तार आलोच्य काव्य के उद्देश्य की सिद्धि के लिए आवश्यक था। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, आलोच्य काव्य की कथा महाभारत के पश्चात् पाण्डवों के हिमालय में गलने के प्रसंग पर आधारित है। अतः यह पौराणिक-ऐतिहासिक है। पाण्डवता को कवि ने प्रतीक रूप में भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया। पाँच पाण्डव पंचतत्व के एकीभूत होते हुए भी प्रयोजन सिद्धि के लिए अलग-अलग नामधारी हैं। प्रयोजन की सिद्धि के पश्चात् वे पंचतत्व में ही विलीन हो जाते हैं। द्रौपदी पांडवों की सांसारिकता है। प्रज्ञा और बुद्धि के प्रतीक युधिष्ठिर के अर्जुन वैचारिकसखा हैं। भीम पांडवों की वज्रता के प्रतीक, नकुल सहदेव पांडवता के स्वरूप और ज्ञाता हैं। उपर्युक्त पौराणिक कथानक में वैचारिकता आधुनिक सन्दर्भ में है। युधिष्ठिर में उदात्त प्रज्ञा बुद्धि है युद्ध और राज व्यवस्था को नकारकर मानव-मुक्ति का सन्देश देते हैं।

आज का विश्व, युद्ध और वर्तमान राज्य व्यवस्था से त्रस्त है। इन दोनों प्रश्नों ने मानव मुक्ति पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है। नरेश मेहता ने युधिष्ठिर के माध्यम से इन दोनों प्रश्नों को सामने लाकर मानव मुक्ति का संदेश दिया है। 'प्रस्थान-पूर्व' में नरेश मेहता ने 'महाप्रस्थान' के प्रणयन का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा है : "जातीय मिथकों तथा जातीय कथाओं की सार्थकता हमारे आज के जीवन- संघर्ष के सन्दर्भ में भी है। 'संशय की एक रात' में युद्ध की अनुपादेयता को केन्द्र बनाकर राम के प्रज्ञा व्यक्तित्व को प्रस्तुत करने की चेष्टा की थी। प्रस्तुत काव्य में राज्य व्यवस्था और उस व्यवस्था के दर्शन की अमानवीय प्रवृत्ति को स्पष्ट करना चाहा है। इसीलिए मैंने कथा और कथा-पुरुषों की निर्वेद स्थिति एवं मनःस्थिति को हो अपने दोनों काव्यों में चुना। क्योंकि निर्वेद की स्थिति में ही मानवीय प्रज्ञात्मकता अपने विवेक रूप में होती है। यह अनासक्त मनःस्थिति होती है। अतः अत्यन्त स्पष्ट रूप में समस्याओं के उनके सूत्र को विरोधी गतिविधियों को देख सकती है- बिना इसके हम जीवन को परिभाषित नहीं कर सकते।"[2] (पृ. 24)

महाप्रस्थान के नायक युधिष्ठिर सम्पूर्ण रूप से सांसारिक सम्बन्धों से निःसंग होकर निर्वेद की उस भूमिका में पहुँच चुके हैं, जहाँ मानवीय प्रज्ञात्मकता अपने विवेक रूप में होती है। वे अपनी अनासक्त मनःस्थिति से राज्य, राज्य व्यवस्था और उस व्यवस्था के दर्शन की अमानवीय प्रकृति एवं प्रवृत्ति पर स्पष्ट एवं सुलभे हुए विचार व्यक्त करते हैं। यहाँ पीछे चल रहे पार्थ युधिष्ठिर के वैचारिक सखा हैं।

'महाप्रस्थान' शान्त रस प्रधान काव्य है। प्रज्ञा, बुद्धि और मानव-मुक्ति के प्रतीक युधिष्ठिर बन्धुओं और प्रिया द्रौपदी सहित हिमालय में उत्तर दिशा की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं। उनके निर्वेद की पृष्ठभूमि बनकर हिमालय की हिममय विराट् प्रकृति उपस्थित हुई है। अतः पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति को अधिक स्थान मिला है। हिमालय और हिम प्रदेश के कवि ने बहुत संश्लिष्ट बिम्ब भी प्रस्तुत किये हैं। कथानक के प्रारम्भ में ही कवि हिम प्रदेश की निर्वेद से ओतप्रोत पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है। चारों ओर हिम-ही-हिम है, हिमालय में शिव का ही रूप है। हिम का अंबार ही उमड़ पड़ा है। कहीं हंसवाणियाँ सुनाई पड़ती हैं तो कहीं परवान मैं सूर्य प्रियाएँ मानस जल पीने आती हैं। शीत हवा कन्दराओं में टकराकर ऐसी लगती हैं मानों किसी कन्दरा में बैठा हुआ हिमालय धर्म-ग्रंथ पढ़ रहा हो। यहाँ प्रकृति का कितना विराट सुरम्य और निवेदय पवित्र वातावरण स्थिति है। कवि हिमालय का मानवीकरण भी करता है :

"हिम केवल हिम-
अपने शिवः रूप में हिम ही हिम अब। शिव की गौर प्रलम्ब भुजाओं सी
पर्वत मालाएं

नभ के नील पटल पर, पृथ्वी सूक्त लिख रहीं ।
यहीं कहीं,
कहते हैं हंस वाणियाँ सुन पड़ती हैं,
यहीं कहीं तो धूप-यान में
सूर्य-प्रियायें मानस जल पीने आती हैं। कानों में बजती उन शीत हवाओं में
क्यों लगता
जैसे कोई किसी कन्दरा में बैठा हिमालय धर्म-ग्रन्थ का पाठ कर रहा।"

हिमालय के निचले भागों में पक्षियों के कूजन से युक्त उपत्यकाओं का निम्न चित्र दृष्टव्य है :

"नाना वर्ण-गन्ध के फूलों वाली
उपत्यकाएँ
देव अप्सराओं के परिधान सरीखी ।
रंग-बिरंगे डैनों वाले वे पाखीदल
और सांझ का देवदार वन वाला उनका
वह आकुल आरण्यक कूजन, जैसे आश्रम कन्याओं की गोपन बातें।"[3]

कवि बारम्बार केवल हिम-ही-हिम कहकर हिम प्रदेश का सजीव दृश्य प्रस्तुत कर देता है। हवा में उड़ता हुआ नदी का शब्द, चीड़ों के वन में भरते हुए करने सूर्योदय बहती हुई नदियों का कोलाहल घाटी या नदी के किनारे जाने वाल डण्डियों का यथार्थ चित्र सामने आ जाता है। कृष्णा कविताओं को घंटो का स्वर, विरल बस्ती से उठता हुत्रा बुआ, नदियों के कगारों का टूट-टूट कर गिरना, हिम- मितियों और हिमनद का नग्न सौन्दर्य हमारे सामने आ जाता है। तो हुई हिम पर चाँदनी अपनी अनुपम छटा बिखेरती है। उपत्यकाओं और बाटी का सूनापन वशीकरण का मन्त्र-सा फूंकता है :

"हिम, वल हिम
मृगवर्णाएं धूप
देव कन्याओं सी हिम फिसल रही है,
चांदनियों की पारदर्शिका मलमल में
लावण्यमयी एकान्त श्रेणियाँ, अंग चुरातीं ।
एकाकी उपत्यकाओं का वह निर्मम सूनापन
वशीकरण के मन्त्र-सरीखा जादू करता।"[4]

चारों ओर हिम-ही-हिम है। शब्दहीन अन्धकार सघन हो रहा है। उजाड़ दुर्दम्य, पाथरी ऐकान्तिकता में हिम पर पतली पिपीलिका-रेखा-सा पाण्डव द नतशिर बन्दी सा चल रहा है :

"कालपक्ष सा लीन हो गया अन्धकार में
शब्द-हीन ! अब केवल हिम की
उजाड़, दुर्दम्य, पाथरी ऐकान्तिकता
जिस पर
पतली पिपीलिका रेखा-सा चलता"[5]

इस प्रकार हिमालय की प्रारम्भ में कथानक की विस्तृत पृष्ठभूमि प्रस्तुत हो गई है। 'महाप्रस्थान' काव्य

में सन्ध्या, ऊषा, रात्रि, अन्धकार और हिमपात के आकर्षक चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। डूबते हुए सूर्य और हिमपात के प्रारम्भ होने का निम्न चित्र दृष्टव्य है :

"घाटी में जो
अस्तकाल की अन्तिम लाली शेष बची थी सहसा डूब गई वह दिशा पार
जैसे दुकूल
और किसी ने
स्मरण सरीखा खींच लिया उसको हठात्
चौंके सुदूर में कहीं चीड़ स्तम्भित देवदारु
तथा ओ त्रिशूल शिखरों पर
लगा उतरने पट छाया-सा, अन्धकार। शुरू हो गया था हिमपात-
द्रौपदी अर्थतन्द्र में, टिकी हुई थी भोजपत्र से,
जैसे अपना वृक्ष खोजती कोई वल्लरी। वर्षापरान्त निस्तब्ध हवा में
हिम के ठण्डे फूल चतुर्दिक बरस रहे थे।"[6]

यहाँ प्रकृति पृष्ठभूमि नग्न माधुरी एवं अलंकृत रूप में एक साथ उपस्थित है। मीलों लम्बी उजाड़ हिम की सपाटता में भीषण हिमनद और निम्न चित्र दृष्टव्य है।

"मीलों लम्बी
यह उजाड़, निर्मम सपाटता हिम की- शिखर, रपट, उपत्यका रचती
चिकनी बिछी हुई थी।
व्याघ्र सरीखे चौकन्ने हिमनद सतर्क हो रेंग रहे थे सन्नाटे में
कृष्णा भोल सरीसे डुबी पी
अपने ही जल में।"[7]

आलोच्य कप में प्रकृति का का निमन्त्रण देती देखी जाती है। बुधिष्ठिर द्रोपदी से कहते हैं कि यह आकाश प्रभु के नीले नेत्रों-सा तथा योगियों के असंग मन जैसा हिमालय ब्रह्म का आमन्त्रण दे रहा है :

'प्रभु के नील नेत्रों जैसा यह सारंग आकाश और योगियों के असंग मन जैसा निवेद
प्रशान्त यह हिमालय -
ये तुम्हें कोई आमन्त्रण नहीं देते कृष्णा ।[8]

तृतीय सर्ग में प्रकृति की विराट सत्ता का रूप प्रस्तुत किया गया है। युधिष्ठिर तृतीय प्रहर के आकाश को सम्बोधन करते हुए कहते हैं :

"जो तृतीय प्रहर के रात्रि के आकाश !
व्योमकेश
सावित्री-पतियों और नक्षत्र फूलों वाले/बरवत्य तुम्हीं हो।
जब तुम पृथ्वी पर नदियों के श्लोक लिखते हो,
तब तुम्हारी करुणा हिमालय हो जाती है,
कपिला दूध सी

यह धूप धूप का नाम ही यह कैसा उत्सव है-

जो पशुओं की पीठों को चमक

और हमारे मुखों की रात्रि पोंछकर दीपित कर जाता है।
माँ !
स्वीकारो !
मेरी प्रज्ञा अग्नि का यह स्तवन आकाश में सामगान प्रारम्भ हो रहा है,
ब्रह्म मुहूर्त का तेजस्वी आकाश
मंहत हो उठा है
है वह मुहूर्त!
आकाश के पूर्व शिखरों पर बड़ा
दक्षिणावर्त शेख फूंक रहा है।[9]

भारतीय संस्कृति की विशेषता और उसमें हिमालय की महत्ता को स्पष्ट करते हुए कवि भूमिका में लिखते हैं- "हिमालय जड़ भी है और चेतन भी वह गमलाई वनस्पति के पोषकों के लिए हिमालय पहाड़ भर है पर अधिकांश धूसरित भारतीयता के लिए धूर्जटी(शिव) रूप है। हिम की शुभ्रता, तेजस्विता आदि हमारी पवित्रता पर निर्भर है। धर्म दृष्टि बदल जाने से गंगा और गंदले जल में कोई अंतर नहीं रह जाता। भारतीयता शेष मानवता से इसी अर्थ में भिन्न है कि हमारी विकास यात्रा हिंसा से अहिंसा की ओर रही है जबकि शेष मानवता की यात्रा हिंसा से घोर हिंसा की और भारतीयता ने जड़ को भी चेतन बना दिया; जबकि शेष ने मनुष्य को जड़ बना देने का उपक्रम किया है। 'महाप्रस्थान' के सम्बन्ध में मीरा श्रीवास्तव लिखती हैं- "आधुनिकता के बासीपन में यह काव्य 'हिमालय व्यक्तित्व' की ताजी हवा का झोंका लेकर आता है, आधुनिकता की पश्चिमी या विज्ञानवादी मनोवृत्तियों से ग्रस्त हमारे व्यक्तित्व को झकझोर कर रख देता है और हमारे भारतीय अस्मिता के झरोखों को उखाड़ता हुआ हमारे व्यक्तित्व के जड़ पत्रों को चीरता चला जाता है।"

निष्कर्ष : उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'महाप्रस्थान' काव्य की पृष्ठभूमि ही हिमालय है। हिमालय के सांस्कृतिक स्वरूप के साथ प्रकृति की रमणीय स्थली के रूप में भी प्रस्तुत किया है। प्रकृति अपनी नग्न माधुरी के साथ ही पृष्ठभूमि, अलंकृत एवं ईश्वरीय सत्ता के रूप में सामने आई है। हिम-प्रदेश का संश्लिष्ट चित्र सामने आ जाता है। प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से भी आलोच्य काव्य सुन्दर बन पड़ा है।

सन्दर्भ

1. नरेश मेहता, महाप्रस्थान, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012, भूमिका से।
2. नरेश मेहता, महाप्रस्थान, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012, प्रस्थान् पर्व, पृ. 24
3. वही, पृ. 35.
4. वही, पृ. 42.
5. वही, पृ. 52.
6. वही, पृ. 64.
7. वही, पृ. 76.
8. वही, पृ. 81.
9. वही, पृ. 128.
10. वही, भूमिका।
11. मीरा श्रीवास्तव, आधुनिकता के आगे नरेश मेहता, भूमिका, इलाहाबाद, 1989

❑❑❑

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविताओं में पारिस्थितिकी संकट

❍ श्री कृष्ण यादव[1]
❍ प्रो. डॉ. सुधारानी सिंह[2]

संक्षिप्ति :

प्रकृति के विभिन्न घटकों की क्रियाशीलता से उत्पन्न संपूर्ण संतुलित व्यवस्था को पारिस्थितिकी तंत्र कहते हैं। औद्योगीकरण की आंधी ने ना ही पर्यावरण को नुकसान पहुंचाया बल्कि हर प्रकार के पारिस्थितिकी तंत्र को संकट में डाल दिया है। महानगरों में डैने फैलाई फैक्ट्रियों की चिमनियां कार्बन डाइऑक्साइड से वायुमंडल को प्रदूषित कर रहीं है जिसके चलते ओजोन परत का क्षरण बहुत तेजी से हो रहा है। शहरों और फैक्ट्रियों से निकले गंदे नाले नदियों में मिलकर जलीय जीवों के पारिस्थितिकी तंत्र में घातक सिद्ध हो रहे हैं। जहाज, रेलगाड़ियों, मोटर गाड़ियों के शोर शराबे से ना ही मनुष्य बल्कि पशु पक्षियों को भी नुकसान पहुंच रहा है। वनों की अंधाधुंध तो कटाई, पहाड़ों के तोड़े जाने से जंगल खत्म हो रहा है और आदिवासियों को बेघर किया जा रहा है। यह सब 21वीं सादी की हिंदी कविता में दिखाई पड़ता है। कृत्रिम पारिस्थितिकी तंत्र से जहाँ लोग अपनी सुविधाओं के लिए लाभ ले रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ संपूर्ण धरती पर इसका दुष्प्रभाव छोड़ रहे हैं। तालाबों का अस्तित्व खत्म हो गया है और जलस्तर घटता चला जा रहा है। अनियमित वर्षा, बाढ़ और सूखे के रूप में प्रकृति अपना रंग समय-समय पर दिखाती रहती है। सूचना क्रांति के इस युग में लघु तरंगों की वजह से पक्षियाँ विलुप्त होती चली जा रही हैं। पेड़ों की अंधा-धुंध कटाई से जंगल खत्म हो रहा है और बहुत से जंगली जानवर विलुप्त होने के कगार पर हैं। सामाजिक पारिस्थितिकी की धज्जियाँ उड़ा दी गई हैं और पारिस्थितिकी लोकतंत्र का अस्तित्व अब खत्म हो चुका है। अतः रचनाकार अपनी कविताओं में ना ही उसे दिखाते हैं बल्कि आगामी संकट को आगाह करते चलते हैं और पर्यावरण की रक्षा के लिए मार्ग भी दिखलाते हैं।

बीज शब्द : पारिस्थितिकी, पर्यावरणीय विमर्श, ग्रीन हाउस प्रभाव, ग्लोबल वार्मिंग, हिंदी कविता, बाजारवाद, शहरीकरण, प्रकृति चेतना, औद्योगिक संस्कृति।

प्रकृति के विभिन्न घटकों की क्रियाशीलता से उत्पन्न संपूर्ण संतुलित व्यवस्था को पारिस्थितिकी तंत्र कहते हैं। दुनिया के सभी जीवों और वनस्पतियों का जीवन पारिस्थितिकी तंत्र पर निर्भर करता है। लेकिन जैसे-जैसे

---

1. शोध छात्र, हिंदी विभाग, शहीद मंगल पांडे राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय माधोपुरम, मेरठ।
2. शोध पर्यवेक्षक, हिंदी विभाग, शहीद मंगल पांडे राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय माधोपुरम, मेरठ।

तकनीकी और सूचना क्रांति का विकास होता गया वैसे-वैसे पर्यावरण पर खतरा मंडराता गया और हमारा पारिस्थितिकी तंत्र बिगड़ना शुरू हो गया। यह सब हमारे इसी समाज में घटित हो रहा था जिसमें हम जी रहे हैं और यहाँ के संवेदनशील रचनाकार न केवल पारिस्थितिकी तंत्र को अपनी कविताओं में दिखाते हैं बल्कि उसे सुधारने की दृष्टि भी देते चलते हैं। 21वीं शादी के कवि अपने समय को संपूर्णता के साथ रचना बद्ध करने का प्रयास करते हैं तथा वे वनों की अंधाधुंध कटाई, औद्योगिक फैक्ट्री के बढ़ने से वायु प्रदूषण, रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से मृदा प्रदूषण एवं फैक्ट्री के नाले को नदियों में गिरने से नदी संकट तथा वायु प्रदूषण से ओजोन क्षरण आदि को ही नहीं दिखाते बल्कि आने वाले संकट को आभाषित भी कराते हैं। इस शोध आलेख में बसंत त्रिपाठी का कविता संग्रह 'नागरिक समाज', वीरेन डंगवाल की 'प्रतिनिधि कविताएँ', रूपम मिश्र का 'एक जीवन अलग से', जंसिता केरकेट्टा का 'ईश्वर और बाजार', आलोकधन्वा का 'दुनिया रोज बनती है', जावेद आलम खान का 'स्याह वक्त की इबारतें' आदि कविता संग्रह को आधार बनाया गया है।

विविध प्रकार के वातावरण में भिन्न-भिन्न प्रकार के जीव पाए जाते हैं। सभी जीव, अपने चारों ओर के वातावरण से प्रभावित होते हैं। सभी जीव अपने वातावरण के साथ एक विशिष्ट तंत्र का निर्माण करते हैं, जिसे पारिस्थितिकी तंत्र कहते हैं। जीवों और वातावरण के इस संबंध को पारिस्थितिकी कहा जाता है। "पारिस्थितिकी शब्द से अभिप्राय एक ऐसे जाल से है जहाँ भौतिक और जैविक व्यवस्थाएँ तथा प्रक्रियाएँ घटित होती हैं और मनुष्य भी इसका एक अंग होता है। पर्वत तथा नदियां, मैदान तथा सागर और जीव जंतु यह सब पारिस्थितिकी के अंग हैं।"[1] एक पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem) एक निश्चित स्थान और उसमें रहने वाले सभी जीवित प्राणियों द्वारा गठित एक समूह है। इस कारण हम कह सकते हैं कि वे भौतिक वातावरण और उसमें पाए जाने वाले जीवों से बनते हैं। जो जीवित जीवों के समुदायों और जिस वातावरण में वे रहते हैं (निवास या बायोटोप) के बीच मौजूद होते हैं। किसी स्थान की पारिस्थितिकी पर वहाँ के भूगोल तथा जलमंडल की अंत: क्रियाओं का भी प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए मरुस्थलीय प्रदेशों में रहने वाले जीव जंतु अपने आप को वहाँ की परिस्थितियों के अनुरूप; जैसे, कम वर्षा, पथरीली अथवा रेतीली मिट्टी तथा अत्यधिक तापमान में अपने आप को ढाल लेते हैं। इसी प्रकार पारिस्थितिकी कारक इस बात का निर्धारण करते हैं कि किसी स्थान विशेष पर लोग कैसे रहेंगे।

21वीं सादी की हिंदी कविताएँ न केवल समय की विद्रूपताओं को दिखाती हैं बल्कि आने वाले संकट के लिए सचेत भी करती हैं। हमारा इकोसिस्टम जल थल और वायुमंडल ऐसे तंत्र में बंधा है कि किसी एक का संतुलन बिगड़ा और पूरी दुनिया धाराशाही। "पर्यावरण का मतलब कुछ सुहावनी प्राकृतिक चीजों का संरक्षण नहीं है वह एक विस्तृत फैला हुआ ऐसा संसाधन है जिस पर उनकी रोजमर्रा की आर्थिक जिंदगी सामाजिक उन्नति और आध्यात्मिक प्रेरणा टिकी हुई है"[2] मनुष्य और प्रकृति का विकास सहचर की तरह हुआ है अब मनुष्य पर प्रकृति का सहजीवन नष्ट हो रहा है जीने का यह सह अस्तित्व जीव-जंतुओं, वृक्ष, वनस्पतियों सब में परस्पर एक दूसरे के सहयोग पर टिका हुआ है। आधुनिकता की बाजार में जो मुख्य धारा की नवीन संस्कृत फल फूल रही है वह अतिस्वार्थ और अहम पर केंद्रित है। आधुनिक समाज के जीवन मूल्य प्रतिस्पर्धा और संघर्ष से प्रेरित हैं "औद्योगिक विकास के साथ बदलती जलवायु के कारण कई प्रजातियाँ विलुप्त हो गई हैं या विलोप के कगार पर हैं।"[3] औद्योगीकरण और महानगरीय संस्कृति ने पूरे वायुमंडल को अस्त्र-व्यस्त कर कर दिया है। फैक्ट्री की चिमनियों से निकलने वाले धुएं और कार्बन के कण न हीं हमारे पर्यावरण को बिगाड़ रहे हैं बल्कि ग्लोबल वार्मिंग की वृद्धि में तेजी से सहयोग कर रहे हैं। वीरेन डंगवाल एक कविता में लिखते हैं "पूरे शहर पर जैसे एक पतली सी परत चढ़ी है धूल की/ लाल इमली एल्गिन म्योर ऐलेन कपूर-/ यह उन मिलों के नाम हैं/जिनकी चिमनियों ने आहें भरना भी बंद कर दिया है।/ इनसे निकले कोयले के कणों को/ कभी बुहारना पड़ता

था/ गर्मियों की रात में/ छतों पर छिड़काव के बाद विस्तरे बिछाने से पहले।"[4]

इस भूमंडलीय दौर में आदमी सिर्फ मशीन बन कर रहा है और रेलगाड़ी सा पटरी पर भाग रहा है। वह वाहनों से निकलने वाले धुएं, फैक्ट्री से निकलने वाले कार्बन और वाहनों के शोर शराबे के बीच रहने की अपनी पारिस्थितिकी तंत्र डेवलप कर लिया है। अतिस्वार्थ में डूबा मनुष्य ए.सी., फ्रिज एवं अन्य उपकरणों से मानव निर्मित पारिस्थितिकी में गुजारा कर रहा है और इन सब के दुष्प्रभाव से संपूर्ण पृथ्वी पर होने वाले नुकसान से उसका कोई नाता नहीं है। जावेद आलम खान 'अभिशप्त' कविता में लिखते हैं "अजीब है कि आदमी अपने खटराग में व्यस्त है/ प्रकृति से अभिशप्त है।"[5]

यूरेनियम खनन, नाभिकीय ऊर्जा उत्पादन, परमाणु बम एवं विकिरण युक्त कचरा के आदिवासी इलाकों में डंपिंग यूरेनियम विकिरण से जुड़े यह प्रश्न जिनका आदिवासी जीवन पर पड़ने वाले कुप्रभाव, पर्यावरण विध्वंस एवं परमाणु निशस्त्रीकरण आदि मुद्दे की पड़ताल किए जाने की आवश्यकता ही मुख्य धारा ने महसूस नहीं की, जिसकी वजह से संपूर्ण धरती खतरे में पड़ गई है। धरती का खतरे में पडने का मतलब है संपूर्ण मानवता का खतरे में पड़ना। "संपूर्ण दलित और आदिवासी लेखन अपने देश काल पारिस्थितिकी के संरक्षण के लिए लगा हुआ है।"[6]

ग्लोबल वार्मिंग और ग्रीनहाउस प्रभाव से जानलेवा बीमारियों का प्रकोप बहुत तेजी से बढ़ रहा है, ग्लेशियर पिघल रहे हैं और कई देशों के समुद्र में डूबने एवं उनके अस्तित्व को खत्म होने का खतरा है। प्रकृति का अपना लोकतंत्र है "प्रकृति के साथ मनुष्य का रिश्ता ग्राहक विक्रेता का हो या उसके नियंत्रण का हो उसके संरक्षण का हो या नाशक का यह सारे सवाल परिस्थितिकीय लोकतंत्र के तहत ही आते हैं।"[7] लेकिन जैसे-जैसे मनुष्य विकास करता गया वह प्रकृति को दास बनाता चला गया। सामाजिक पर्यावरण का उद्‌भव जैव भौतिक पारिस्थितिकी तथा मनुष्य के हस्तक्षेप की अंत: क्रिया के द्वारा होता है। यह दो तरफा प्रक्रिया है। "जिस प्रकार प्रकृति समाज को आकार देती है ठीक उसी प्रकार समाज भी प्रकृति को आकार देता है।"[8] हम शहर में बसते गए और सामाजिक पर्यावरण का संतुलन बिगड़ता गया। आलोकधन्वा 'सफेद रात' कविता में गांव को याद करते हैं, "शहर में इस तरह बसे/ की परिवार का टूटना ही उसकी बुनियाद हो जैसे/ न पुरखे के साथ आए न गांव न जंगल न जानवर/ शहर में बसाने का क्या मतलब है"[9] बाजारवाद की आंधी जंगलों पहाड़ों और गांव में बहुत तेजी से पहुंच गई है और इन सब पर संकट मंडरा रहा है। जंसिता केरकेट्टा लिखती हैं, "मां, गांव की स्त्रियां/ नदी, पहाड़, जंगल/ सब एक दिन टंग जाएंगे/ किसी बड़ी दीवार के बड़े से कैनवास पर/ कोई खरीद ले जाएगा करोड़ों में।"[10]

आज के बिसलेरीयुगीन दौर में जहाँ ग्लेशियर पिघलने के कारण कई देशों का अस्तित्व संकट में है, वहीं मैदानी इलाकों में पीने के लिए पानी नहीं मिल रहा है "दुखी और टूटे हुए हृदय में/ सिर्फ पानी की रात है/ वहीं है आशा और वहीं है दुनिया में फिर से लौट आने की अकेली राह।"[11] महानगर के कवियों ने फैक्ट्री से निकलने वाले गंदे नाले से प्रदूषित होती नदी पर दुख व्यक्त किया तो वही आदिवासी रचनाकारों ने उसे प्रदूषित जल से पीकर बीमार पड़ने वाले आदिवासियों का चित्र खींचा। किसी विशेष स्थान पर सूखा किसी विशेष स्थान पर बाढ़ यह प्रकृति पर मनुष्य के अत्याचार का परिणाम है। मनुष्य ने बांध बनाकर नदियों के अपवाह तंत्र को बदल दिया है, "और सड़कों ने छीन ली है/ क्यों नदियों की शक्ल उनके देह से।"[12] कितनी सभ्यताएँ बाढ़ सूखों से नष्ट हुई उनका अस्तित्व अब पुरातत्व विभाग में है। जंसिता केरकेट्टा उस प्रलय की ओर इशारा करती हैं, "नदिया ही जानती हैं/ उनके मरने के बाद आती है/ सभ्यताओं के मरने की बारी।"[13]

'पेड़ लगाओ, धरती बचाओ' का नारा लोग लगाते रहे और पेड़ काटते रहे। किसी के घर उजड़ते रहे। धरती

की मृदा कटती गई, अनियमित वर्ष होनी शुरू हो गई, जलस्तर गिर गया। आदिवासियों की आत्मा मरती गई, किसी ने आदिवासियों से कुछ नहीं पूछा, पेड़ों से कुछ नहीं पूछा। आखिर पेड़ क्या चाहते हैं। जंसिता लिखती हैं, "पेड़ों ने तुमसे/ पेड़ लगाने को नहीं कहा/ बस अपने हिस्से की जमीन छोड़ने को कहा/ जहाँ अपने तरीके से उग सके।"[14] भूमंडलीय संस्कृति ने मनुष्य और प्रकृति के राग का खात्मा कर दिया। सूचना और क्रांति के इस दौर में प्रकृति से प्रेम सिर्फ मोबाइल में सुंदर-सुंदर चित्रों के माध्यम से रह गया है। पेड़, पक्षियों और जानवरों से प्रेम के उदाहरण अभी भी जंगलों में देखने को मिलते हैं जिस पर मुख्य धारा के लोगों की नजर टिकी है "पेड़ जब गुजर रहा हो/ सारी रात प्रसव पीड़ा से/ बताओ, कैसे डाल दिला दे जोर से?/ बोलो, कैसे तोड़ ले हम/ जबरन महुआ किसी पेड़ से?"[15]

इस बदलते पर्यावरण में आज हम सुरक्षा कर्मियों के बीच सुरक्षित नहीं है। अक्सर अखबारों से शहर में रेप की घटनाएं सुनने को मिलती हैं। वहीं दूसरी तरफ वह जंगल है जहां स्त्रियां बेखौफ आजाद घूमती हैं, "जंगल पहाड़ हमें/ साफ पानी साफ हवा/ पोषण भर भोजन देते हैं/ स्त्रियों को बेखौफ जंगल में घूमने की आजादी देते हैं/ पुरुषों को स्त्रियों की तरह थोड़ा लजाना सीखाते हैं।"[16]

प्रेम पारिस्थितिकी संकट भी इस दौर में देखने को मिलता है। वास्तविक सौंदर्यता के बजाय कृत्रिम सौंदर्यता का विकास किया जा रहा है। इस समय में एक इंसान की पहचान फोन नंबर से की जाती है। उचित पर्यावरण न मिलने के कारण प्रेम की सारी कलाएँ विलुप्त हो गई हैं। इसी समय में जंसिता प्रेम के लिए पहाड़ को याद करती है "पहाड़ सीखाता है हमें/ प्यार में डूब कर जीना/ और जरूरत पड़ने पर/ इस प्रेम के लिए मर जाना।"[17]

भारत के भौगोलिक नक्शे में पहाड़ रक्षक की तरह है। पहाड़ को काटकर रास्ते बनाए जा रहे हैं एवं उनके अस्तित्व को खत्म किया जा रहा है, न ही इस पर रहने वालों की जिंदगियों पर खतरा है बल्कि संपूर्ण पृथ्वी पर खतरा है। डायनामाइट लगाकर पत्थरों को उड़ाने से ना ही वहाँ के जानवरों को खतरा है बल्कि पक्षियों के विलुप्त होने का खतरा है। पहाड़ों पर रहने वाले जनजातियों को बेघर कर विकास की सड़क बनाई जाती है। इस प्रकृति के दोहन को आदिवासी चुपचाप सहन नहीं करते बल्कि वह हथियार भी उठाते हैं। 'पहाड़ और हथियार' कविता में जंसिता केरकेट्टा लिखती हैं, "इसलिए पहाड़ की स्त्रियों ने फूलों की जगह/ अपने बालों में चाकू खोंस लिया है/ और पुरुषों ने अपने कंधे पर टांग लिया है टांगी/ कि हथियार सिर्फ हत्या करने का जरिया नहीं है/ यह बचाव का जन्मजात अधिकार है/ यह प्यार है जीवन का श्रृंगार है।"[18]

वन की अधिक मात्रा में काटना, पहाड़ों के कटाव से अनियमित वर्षा का होना मरुस्थल के बढ़ने का कारण बनता चला जा रहा है। अब तालाब लगभग खत्म हो चुके हैं। अधिक फसल उगाने हेतु रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक दवा के इस्तेमाल से मृदा प्रदूषण बढ़ता जा रहा है यह सब धरती में पाए जाने वाले कीट पतंगो के लिए खतरा का विषय है और इससे उगाए गए अनाज से मनुष्य के स्वास्थ्य का खतरा है। खाद्य पदार्थों का वास्तविक स्वाद खत्म हो गया है "जीभ पर रखते ही बैगन की सब्जी/ टीस सी उठती है/ और याद आता है दश साल पुराना बिछड़ चुका स्वाद/ वह भी इस सदी को समझने का एक पैमाना है।"[19]

अब कृत्रिम पारिस्थितिकी तंत्र विकसित किया जा रहा है। इंसान अपने रहने के अनुकूल एक निर्मित पर्यावरण का निर्माण कर रहा है जो प्रकृति के लिए खतरनाक है। खाद्य पदार्थों में हाइब्रीडाइजेशन, सब्जियाँ उगाने के लिए अनुकूल पारिस्थितिकी। अब तो पेड़ पौधे और फूल गमले में आ गए हैं उनकी सुगंध उनके मीठे रस सब खत्म हो गए हैं। फूलों पर गुंजन करने वाले, उनके रस से अपना जीवन निर्वहन करने वाले भंवरे और तितलियों का जीवन अब संकट में है। "तुम जानते हो/ फूलों का एक त्यौहार होता है फुलेली- डोली/ अक्टूबर के आखिरी दिनों में आता था/ फूलों को प्यार न करने वालों ने इसे भुला दिया है/.... प्रेम व रहन की रीति

को प्रकृति से सीखना था हमें।"[20]

जलवायु परिवर्तन का सबसे ज्यादा असर आदिवासियों पर पड़ता है। रोस्के मार्टिनेज इसे मानवाधिकार का मुद्दा कहते हैं। वे धरती को पारिस्थितिकी संकट से बचने की लड़ाई लड़ रहे हैं। कहते हैं "हमारी प्रिय धरती हमें आवाज दे रही है कि अपने साहस की आजमाइश के लिए हम उठ खड़े हों, अपने आविष्कारों से, अपनी सृजनात्मकता से, अपने जुनून से एक नई दुनिया रचें, इस दुनिया को आगे ले जाएं।"[21] अत: 21वीं शादी की हिंदी कविता में न ही पारिस्थितिकी संकट प्रतिबिम्बित होता है बल्कि स्वस्थ पारिस्थितिकी निर्माण के लिए राह भी दिखाई देता है।

निष्कर्ष

अत: सभी जीव-जंतु अपने पर्यावरण के साथ जिस तंत्र का निर्माण करते हैं उसे पारिस्थितिकी तंत्र कहते हैं। औद्योगिकीकरण ने पारिस्थितिकी तंत्र को संकट में डाल दिया है। औद्योगिक फैक्ट्री से निकलने वाले काले धुएं इन्ही फैक्ट्रीयों से निकलने वाले काले नाले वायु और जल को प्रदूषित कर दिए हैं। जल प्रदूषण से न केवल जलीय जीवों का जीवन संकट में है बल्कि मनुष्य भी उससे प्रभावित है। मोटर वाहनों, कंपनियां, परमाणु परीक्षण आदि से उत्पन्न कार्बन डाइऑक्साइड ओजोन परत को नुकसान पहुंचा रही है और ग्लोबल वार्मिंग को बढ़ा रही। ग्रीन हाउस प्रभाव के नियंत्रण बढ़ने से जानलेवा बीमारियों का खतरा मंडरा रहा है। धरती के ऊपर यह खतरा किसी भी संवेदनशील व्यक्ति से सहन नहीं हो सकता, 21वीं सादी की हिंदी कविताओं में इसकी अभिव्यक्ति हुई है। जंसिता केरकेट्टा की कविताओं में पहाड़ों के अंधाधुंध कटाई, जंगलों को नष्ट करने एवं प्रकृति से मनुष्य के राग का खत्म होने जाने का चित्रण मिलता है। रूपम मिश्र अपनी कविताओं में प्रेम व रहन की रीति प्रकृति से सीखना चाहती हैं। अत: पारिस्थितिकी के लोकतंत्र को खत्म कर मनुष्य अपने विजय का नगाड़ा पीट रहा है।

संदर्भ :

1. समाज का बोध, एनसीईआरटी, कक्षा 12, रेशनलाइज्ड 2023- 24, पृ. 52
2. डॉ अनीता का आलेख 'पारिस्थितिकी संकट की त्रासदी झेलती वंतिका नदी', पारिस्थितिक संकट और समकालीन रचनाकार, संपादक उषा नायर, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2019, पृ. 30
3. डॉ कर्मानंद आर्य, आलेख ग्लोबल वार्मिंग की दुनिया बनाम आदिवासी जीवन, आदिवासी अस्मिता, संपादक अनुज लुगुन, अन्य प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2015, पृ. 103
4. वीरेन डंगवाल, प्रतिनिधि कविताएं, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2022, पृ. 116
5. जावेद आलम खान, स्याह वक्त की ईबारतें, बोधि प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2023, पृ. 50
6. डॉ कर्मानंद आर्य, आलेख ग्लोबल वार्मिंग की दुनिया बनाम आदिवासी जीवन, आदिवासी अस्मिता, संपादक अनुज लुगुन, अन्य प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2015, पृ. 100
7. विजय प्रताप, वैकल्पिक भूमंडलीकरण की ओर, भारत का भूमंडलीकरण, संपादक अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, संस्करण, 2017, पृ. 369
8. समाज का बोध, एनसीईआरटी, कक्षा 12, रेशनलाइज्ड 2023-24, पृ. 53
9. आलोकधन्वा, दुनिया रोज बनती है, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2022, पृ. 92
10. जंसिता केरकेट्टा, ईश्वर और बाजार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 2022, पृ. 75
11. आलोकधन्वा, दुनिया रोज बनती है, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2022, पृ. 55
12. रूपम मिश्र, एक जीवन अलग से, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृ. 46
13. जंसिता केरकेट्टा, ईश्वर और बाजार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 2022, पृ. 36
14. वही, पृ. 144

15. वही, पृ. 141
16. वही, पृ. 168
17. वही, पृ. 168
18. वही, पृ. 171
19. बसंत त्रिपाठी, नागरिक समाज, सेतु प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृ. 13
20. रूपम मिश्र, एक जीवन अलग से, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृ. 111
21. वंदना टेटे, आदिवासी दर्शन एवं साहित्य, नेशन प्रेस, प्रथम संस्करण, 2021, पृ. 17

❑❑❑

वीर सावरकर एवं राष्ट्रभाषा हिंदी

❍ अभिनय शुक्ल[1]

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम जैसे-जैसे अपनी पराकाष्ठा की ओर अग्रसर हो रहा था, वैसे-वैसे ही उसके फलक विस्तृत होते जा रहे थे। अंग्रेजों से मुक्ति को लेकर आरंभ हुए इस महासंग्राम में अंग्रेजियत से मुक्ति भी सम्मिलित होती चली गई। स्वदेशी भाषा, स्वदेशी वस्तु, स्वदेशी राज्य तथा स्वदेशी तंत्र आदि की मांग इसी प्रक्रिया के प्रतिफलन के रूप में सामने आती है। राष्ट्रीय जागरण धीरे-धीरे सांकृतिक तथा सामाजिक जागरण में परिवर्तित हो रहा था। ऐसे में इस बहुफलकीय जागरण में भाषा का महत्त्व उस समय के राजनेताओं तथा मनीषियों की दृष्टि से कैसे अछूता रह सकता था। भाषा का प्रश्न एक साथ राष्ट्रीय, सांस्कृतिक तथा सामाजिक जागरण तीनों के लिए समान रूप से महत्त्व का विषय था। ऐसी स्थिति में राष्ट्रभाषा का प्रश्न समाज निर्माताओं के समक्ष महत्वपूर्ण रूप से उपस्थित हुआ।

सुखद आश्चर्य का विषय है कि जिस प्रकार विनायक दामोदर सावरकर पहले क्रांतिकारी राजनेता थे जिन्होंने विदेशी वस्त्रों की होली जलाई, उसी प्रकार संभवतः वे पहले राजनेता थे जिन्होंने बिना किसी लागलपेट के हिंदी को राष्ट्रभाषा तथा नागरी को राष्ट्रलिपि बनाने का उद्‌घोष किया। हिंदी के प्रति विनायक दामोदर सावरकर का लगाव उनके क्रांतिकारी जीवन के आरंभिक दिनों से ही हो गया था। अपनी आत्मकथा में वे लिखते हैं कि- "सन् 1906 से हम हिंदी को राष्ट्रीय भाषा के रूप में सम्मान दिलाने तथा यथासंभव उपायों से उसका प्रचार करने के लिए सतत प्रयत्नरत थे। जब हम इंग्लैंड में थे तब अभिनव भारत के सदस्य हर रात सोने से पहले संगठित रूप में तथा एक स्वर में अपना जो राष्ट्रीय संकल्प का पाठ करते उसमें 'हिंदुस्थान को स्वतंत्र करना, हिंदुस्थान को एक राष्ट्र करना, हिंदुस्थान में प्रजातंत्र की स्थापना करना'- इन सूत्रों के साथ ही चौथा सूत्र घोषित किया जाता 'हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाना, नागरी को राष्ट्रलिपि बनाना।"[1]

अभिनव भारत (1904) की स्थापना से लेकर अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक श्री सावरकर हिंदी सेवा के प्रति समर्पित रहे। सार्वजनिक जीवन में प्रवेश के साथ ही सावरकर ने भाषा को एकीकरण के एक माध्यम के रूप में देखा। भाषिक एकता के द्वारा वे सामाजिक तथा सांस्कृतिक एकता स्थापित करना चाहते थे। श्री सावरकर की मान्यता थी कि भाषा राष्ट्रीय एकता के लिए एक उपयोगी माध्यम है। विनायक का तर्क था कि "कोई व्यक्ति अपनी भाषा से प्यार कर उसकी धरोहर को संजोए रख सकता है परंतु भारत की विविधता

1. शोधप्रज्ञ, पटना विश्वविद्यालय, पटना

को सूत्रबद्ध करने वाली श्रृंखला की जरूरत है।"[2] सूत्रबद्ध करने वाली इस श्रृंखला की उनकी खोज हिंदी पर पहुंच कर खत्म होती है। इसके मूल्य स्वरूप उन्हें स्वयं अपनी मातृभाषा के मोह का त्याग भी करना पड़ा और उस भाषा का दामन पकड़ना पड़ा जो इस एकीकरण के द्वारा सभी भारतीयों को एकता के सूत्र में बांध सकती थी। यही कारण था कि स्वयं एक मराठी भाषी होने के बाद भी वे इंग्लैंड के अपने प्रवास में वार्तालाप के लिए हिंदी का ही प्रयोग करते थे। डेविड गार्नेट नामक एक आयरिश क्रांतिकारी ने एक घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "मेरे पहुँचते ही हम डायनिंग रूम में पहुंचे और सावरकर अपने साथी से हिंदी में बात कर खड़े हुए और उन्होंने जोर से पढ़ना शुरू किया।"[3]

जिस समय सावरकर ने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का संकल्प लिया था उस समय यह विचार ही लोगों को हास्यास्पद लगता था। सावरकर लिखते हैं, "उस समय यह धारणा इतनी संकुचित थी कि हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाया जाए, कि इस कल्पना को बड़े-बड़े नेता भी बचपने की बात समझते थे। साधारण लोगों के लिए तो यह अपरिचित ही थी उस समय केवल नागरिक प्रचारिणी सभा और आर्य समाज के चंद लोग ही विशेषता इस आंदोलन के समर्थक थे।"[4]

अभी सावरकर को हिंदी की स्वतंत्र परिक्षेत्र में सेवा करते हुए करते हुए मात्र 4 वर्ष ही हुए थे कि दुर्भाग्यवश उन्हें दो जन्मों के आजीवन कारावास का दंड अंग्रेज सरकार के द्वारा दे दिया जाता है। लेकिन सावरकर की हिंदी सेवा काले पानी के कठोर कारावास में भी रुकती नहीं, बल्कि अनवरत जारी रहती है। काले पानी की सजा प्राप्त सावरकर जब अंडमान पहुंचते हैं तो उनका कार्य क्षेत्र कारागार के छोटे से परिक्षेत्र में सिमट कर रह जाता है। लेकिन ऐसी स्थिति में भी उन्होंने हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के माध्यम से देश सेवा करने का एक भी अवसर हाथ से जाने नहीं दिया। सावरकर ने जब हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रण लिया उस समय तक यह प्रश्न व्यापक जनसमूह तक नहीं पहुंचा था इसीलिए उनका यह कार्य अंडमान जैसी जगह में आसान बिल्कुल नहीं रहा। विनायक लिखते हैं कि, "जब हम सन् 1911 से सभी भारतीय राजबंदियों तथा साधारण बंदियों से हिंदी सीखने का अनुरोध करने लगे तब हमें इस तथ्य से ही विवाद करना पड़ता की हिंदी भाषा है भी या नहीं? महाराष्ट्र तथा अन्य दक्षिण के लोगों को 'हिंदी भाषा' शब्द भी नया सा प्रतीत होता। . ....उत्तर के बंदी जानते थे कि यह हिंदुओं की ही भाषा है और 8 करोड़ हिंदू-मुसलमान आज भी मातृभाषा के रूप में उसका प्रयोग करते हैं।"[5] स्पष्ट है कि श्री सावरकर ने जब हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का भगीरथ प्रयास आरंभ किया, उस समय तक यह व्यापक रूप से राष्ट्रीय महत्व का प्रश्न नहीं था। यहां हमें उनकी दूर दृष्टि की भी एक झलक मिलती है।

कारागार में उन दिनों अनेक बंदी ऐसे थे जिन्होंने अपने जीवन में शायद ही कभी औपचारिक शिक्षा ग्रहण की हो। इसके अतिरिक्त भारत के लगभग हर प्रांत से विभिन्न भाषा-भाषी बंदी भी कारागार में आते रहते थे। ऐसे में विचारों के आदान-प्रदान तथा राष्ट्रीय चेतना के प्रचार में बहुभाषिकता और अशिक्षा के कारण बाधा पहुंचती थी। एक अन्य बात जो स्मरण रखने योग्य है वह यह की कारागार के प्रथम दिवस से ही श्री सावरकर इस बात को लेकर चिंतित रहते थे कि अब उनका वह व्रत कैसे पूर्ण होगा जो उन्होंने अपनी कुलदेवी के समक्ष लिया था। वह व्रत था राष्ट्रीय सेवा का। सावरकर ने मात्र 15 वर्ष की अल्पायु में अपनी कुलदेवी के सम्मुख यह व्रत लिया था कि "वह अपने जीवन को मातृभूमि को आजाद कराने हेतु सशस्त्र क्रांति को समर्पित करते हैं।"[6] इन अनेक समस्याओं के समाधान हेतु उन्होंने कारागार में ही बंदियों को शिक्षित करने का उपक्रम आरंभ किया। शिक्षा के माध्यम से बंदियों के मध्य एकता का निर्माण तथा स्वतंत्रता की चेतना का प्रचार उनके लिए राष्ट्र सेवा का ही एक रूप था। इस तरह उन्होंने सर्वप्रथम बंदियों के शिक्षण कार्य को हाथ में लेने का निश्चय किया। इस शिक्षण कार्य में हिंदी भाषा के शिक्षण पर सावरकर का विशेष जोर रहता था। यद्यपि यह कार्य अनेक

विघ्न बधाओ से भरा पड़ा था; लेकिन उन्होंने यह कार्य कभी छोड़ा नहीं क्योंकि वह कहते थे कि "यह हमारा राष्ट्रीय कर्तव्य है।"[7] उन्होंने बंदियों के भाषिक शिक्षण के लिए- "प्रथमत: मातृभाषा, फिर तुरंत हिंदी और उसके पश्चात् अन्य प्रांतीय हिंदू भाषा- इस तरह का क्रम रखा था।"[8] उन्होंने "इसके लिए हिंदी के उत्तमोत्तम श्रेष्ठ प्राचीन ग्रंथ मंगवाए।"[9] प्रताप, सरस्वती, आदि कुछ प्रमुख हिंदी पत्रिकाओं का भी प्रबंध उन्होंने कारावास में किया। ये सारे जोखिम भरे कार्य उन्होंने हिंदी के प्रति अपने प्रेम के लिए किया। यह उनके राष्ट्रऋण चुकाने का ही एक मार्ग था।

अंडमान की सेल्यूलर जेल में ऐसा कोई भी कार्य नियम विरुद्ध था। ऐसे में पकड़े जाने पर कठोर यातना भोगने के लिए भी तैयार रहना पड़ता। आरंभ में इसी भय से बहुत सारे बंदी सावरकर के शिक्षण कार्य से दूर भागते थे। ऐसे बंदियों को श्री सावरकर तथा उनके सहयोगियों ने नाना प्रकार के उपायों द्वारा शिक्षण कार्य में सम्मिलित किया। श्री सावरकर लिखते हैं कि- "अ, आ, क, ख, पढ़ने के लिए देते अथवा घर, कर, आदि शब्द इन निपट अनाड़ी बंदियों को चोरी छिपे पढ़ाना और उलटे उनकी चिरौरी भी करना। कभी कभी तो मुफ्त मिली हुई स्लेटें- पुस्तकें रखने को भी वे तैयार नही होते पढ़ने के भय से वे बात करना भी छोड़ देते।"[10]

इसके अतिरिक्त एक अन्य समस्या जिसका सामना उन्हें करना पड़ा, वह थी हिंदी के महत्व को अहिन्दी भाषियों के मन में बैठाना। जेल में प्राय: सावरकर के ऊपर हिंदी के लिए पक्षपाती होने का आरोप लगाया जाता था। अनेक बंदियों को यह लगता था कि सावरकर "राष्ट्रीय भाषा का चिकना चुपड़ा ढोंग करके बंगला, पंजाबी आदि भाषाओं को खत्म करना चाहता है।"[11] सावरकर को जब इस आक्षेप का उत्तर देना पड़ता तो वह कहते कि- "हिंदी को हिन्दू जगत की राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने का यह अर्थ नहीं कि प्रांतीय भाषाओं से कोई अन्यायपूर्ण भेदभाव किया जा रहा है या उन्हें कोई नीचा दिखाया जा रहा है। हम सब अपनी प्रांतीय भाषाओं से उसी तरह जुड़े हुए हैं जैसे हिंदी से...।"[12] श्री सावरकर स्वयं अहिन्दी भाषी ही थे। उनकी मातृभाषा मराठी थी और वह उसे अपनी माँ के समान ही स्नेह करते थे लेकिन भाषिक स्तर पर राष्ट्र के एकीकरण में उन्होंने इसे कभी बाधक नही बनने दिया। वे जेल के अन्य बंदियों को समझाया करते थे कि "राष्ट्रीय हित के सामने अपने प्रादेशिक अभिमान का बलिदान देना ही होगा।"[13] उल्लेखनीय है कि यह बलिदान पहले उन्होंने स्वयं दिया। उसके पश्चात अन्य बंदियों को इसके लिए प्रोत्साहित किया। यह खोखला उपदेश मात्र नहीं था।

सावरकर जब काले पानी का दंड भुगत रहे थे उस समय वहाँ के सारे विभागीय मुंशियों की कामकाजी भाषा उर्दू थी। इसका कारण था कार्यालयों में उर्दू भाषी नौकरों की बहुतायत। नौकरी के लोभ के कारण पाठशालाओं में अध्यापन के माध्यम की भाषा से लेकर बंदियों द्वारा भेजे जाने वाले पत्रों तक कि भाषा उर्दू ही होती थी। अंडमान में कारागार से बाहर कैदियों की एक बस्ती स्थापित हो गयी थी। वहाँ के लोगों के द्वारा विवाह आदि शुभ कर्म के लिए जो निमंत्रण पत्र छपवाए जाते थे उसकी भाषा भी उर्दू ही रहती थी। जबकि दूसरी तरफ "अंडमान में विभिन्न प्रांतीय लोगों के एकत्रित होने के बाद उनके बोलचाल की भाषा स्वत: हिंदी ही होती।"[14] थी। ऐसे में इस विसंगति कि ओर भी श्री सावरकर का ध्यान गया। उन्हें यह व्यवस्था उचित नहीं प्रतीत हुई। उनका मत था कि जब सामान्य बोलचाल की भाषा हिंदी है तो कार्यालयों में भी उसी का प्रयोग होना चाहिए।

इसके लिए उन्होंने सर्वप्रथम पाठशालाओं के विद्यार्थियों और उनके परिजनों को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वे हिंदी के व्यवस्थित शिक्षण व्यवस्था की मांग करें। वे लिखते हैं- "मैं उन्हें प्रेरित करता कि यदि तुम लोग सरकार के पास सामूहिक आवेदन पत्र भेज कर हिंदी के अध्ययन को आवश्यक करने की मांग करोगे तो सरकार विद्यालयों में हिंदी सीखने की व्यवस्था अवश्य करेगी।"[15] उन्होंने अंडमान में रहते हुए ही यह आंदोलन छेड़ा कि "प्रत्येक पाठशाला में हिंदी भाषा तथा नागरी लिपि शिक्षा का अनिवार्य माध्यम हो और जिस

मुसलमान बच्चे अथवा अन्य लोगों को उर्दू लिपि या भाषा सीखनी है, उन्हें वह भाषा के रूप में विशेष विषय के रूप में पढ़ाई जाए।"[16]

पाठशालाओं में हिंदी के प्रवेश का आंदोलन चलाने के बाद अब हिंदी के कार्यालयी प्रवेश का प्रश्न शेष रह गया था। कार्यालयों में उर्दू का प्रयोग हिंदी के पाठशालाई शिक्षण के लिए भी परोक्ष रूप से बाधक था। सावरकर यह समझ चुके थे कि "जब तक सरकारी दफ्तर की भाषा उर्दू है तब तक बच्चों की रुचि साधारणत: उर्दू सीखने की ओर ही अधिक होगी।"[17] ऐसे में हिंदी का कार्यालयी प्रवेश और आवश्यक हो गया। अंडमान के कार्यालयों में उर्दू के प्रयोग का कोई नियम नहीं था। बात बस इतनी सी थी कि कार्यालयों में मुंशी उर्दू भाषी थे इसीलिए उर्दू का प्रयोग होता चला आ रहा था। सावरकर के अंडमान प्रवास से पहले वहाँ के कैदियों द्वारा 90 प्रतिशत पत्र उर्दू में लिखे जाते थे। अत: सावरकर ने योजना के तहत बन्दियों को हिंदी भाषा या अपनी-अपनी प्रांतीय भाषा में पत्र लिखने के लिए प्रेरित किया। धीरे-धीरे उनके प्रयास तथा प्रोत्साहन से 90 प्रतिशत पत्र हिंदी या अन्य देशी भाषाओं में लिखे जाने लगे। जिसका परिणाम यह हुआ कि उच्च कार्यालयों में अंग्रेजों को हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषा जानने वाले मुंशी नियुक्त करने पड़े। इसका कारण यह था कि अंडमान में बिना जांच के कोई पत्र बाहर नहीं भेजा जाता था। अत: कार्यालय में यह देखने के लिए कि वह पत्र नियमानुसार लिखे गए हैं कि नहीं, ऐसे मुंशी नियुक्त किए जाते थे जो पत्रों की भाषा से परिचित हों। ऐसे में जब पत्रों की भाषा अधिकांशत: हिंदी होने लगी तो "उच्च कार्यालयों में यह देखने के लिए कि वह पत्र नियमानुसार लिखे गए हैं कि नहीं, ऐसे मुंशी नियुक्त किये गए जो हिंदी तथा अन्य देशी भाषा जानते थे।"[18] हालांकि सावरकर ने स्वयं अंडमान में रहते हुए कभी हिंदी में पत्र नहीं लिखा क्योंकि राजबंदियों को पत्र अनिवार्य रूप से अंग्रेजी में ही लिखना पड़ता था। ऐसा नियम इसलिए था क्योंकि उनके पत्र सीधे अंग्रेज अधिकारियों के द्वारा जाँचे जाते थे।

स्पष्ट है कि सावरकर ने अंडमान में रहते हुए बड़ी ही सूझबूझ और चतुराई के साथ हिंदी को सरकारी कार्यालयों में प्रवेश दिलाया साथ ही उसके व्यवस्थित शिक्षण के लिए भी आंदोलन छेड़ा और सफल भी रहे।

अंडमान में प्रवेश के साथ शुरू हुआ हिंदी सेवा का यह प्रण उनकी मुक्ति के आखिरी दिन तक जारी रहा। विक्रम संपत लिखते हैं कि- "एक मंत्र दोहराते हुए उन्होंने अन्य को भी उच्चारित करने को कहा, और विनायक ने उस कोठरी को विदा दी जो एक दशक तक उनका घर थी:

एक ईश्वर, एक राष्ट्र, एक आशा,
एक जाति, एक जीवन, एक भाषा।"[19]

सन् 1921 में सावरकर को अंडमान से भारत की जेल में भेजा जाता है। जहाँ 1924 में उन्हें दो शर्तों के साथ रिहा किया जाता है। पहली शर्त के अनुसार वे रत्नागिरी से बाहर नहीं जा सकते थे और दूसरी शर्त के अनुसार किसी राजनीतिक राष्ट्रवादी गतिविधि में भाग नहीं ले सकते थे। ये दोनों पाबंदियाँ उनके ऊपर सन् 1936 तक रहीं। जिसका सीधा सा अर्थ था कि इस पूरे कालखंड में वे राजनीतिक तथा राष्ट्रवादी गतिविधियों में भाग नहीं ले सकते थे। ऐसी स्थिति में उन्होंने अपने लिए सामाजिक तथा भाषिक आंदोलनों का चयन किया और अंडमान में चल रही अपनी हिंदी सेवा को अनवरत जारी रखा।

कारावास के बाहर आने पर सावरकर की हिंदी सेवा का न सिर्फ कार्यक्षेत्र विस्तृत हुआ बल्कि उसका विषय क्षेत्र भी व्यापक हुआ। 1924 में जब सावरकर की सशर्त रिहाई होती है उस समय तक राष्ट्रभाषा तथा राष्ट्रलिपि का प्रश्न राजनीति के प्रमुख प्रश्नों में शामिल हो चुका होता है।

नजरबंदी के कालखंड में ही सावरकर ने 'भाषा शुद्धिकरण' तथा 'लेखन सुधार' नामक दो पुस्तकें लिखीं। "इस पर उनका पहला लेख 21 अप्रैल 1925 को केसरी में प्रकाशित हुआ था।"[20] भाषाई शुद्धिकरण के संबंध

में उनकी प्रमुख मान्यताएं निम्नवत हैं-

1. "द्रविड़ भाषाओं सहित सभी भाषाओं में पुराने संस्कृतनिष्ठ शब्दों का इस्तेमाल हो।
2. देसी भाषाओं के ऐसे सभी शब्दों का राष्ट्रीय संग्रह बने और अंग्रेजी, अरबी, फारसी और उर्दू जैसी विदेशी भाषाओं के शब्दों को त्यागा जाए।
3. यदि ऐसे विदेशी भाषाओं के शब्द हमारे भाषिक प्रयोग में इसलिए आ गए हैं क्योंकि वह वस्तुएँ हमारे यहाँ पहले नही थीं (उदाहरणार्थ- कोट, सूट, जैकेट, टेनिस आदि) तो हमें उनको अपने राष्ट्रीय भाषिक निकाय में सहयोजित करना चाहिए।
4. यदि किसी विदेशी भाषा का तरीका और इस्तेमाल सहज और रोचक लगे तो उसे अपनाने में कोई हर्ज नही होना चाहिए।"[21]

स्पष्ट है कि भाषा शुद्धि के संदर्भ में श्री सावरकर का मत एकदम स्पष्ट था कि "हमें कर्तव्य निष्ठुर होकर आवश्यक अरबी और अंग्रेजी शब्दों का बहिष्कार करना चाहिए।"[22] और "सब हिंदी लेखकों को सभी नए व्यावहारिक या पारिभाषिक शब्द संस्कृत से ही बनाने चाहिए।"[23] लेकिन "जो वस्तुएँ ही विदेशी हैं और उनके नाम यदि अपने पास न मिल सकें तो उन्हीं के नाम विदेशी ग्रहण करें। उनसे हमारी शब्द संपत्ति बढ़ेगी।"[24] यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि वे सिर्फ ऐसे शब्दों के बहिष्कार करने की बात कर रहे हैं जो अनावश्यक रूप से हमारी भाषा में आ गए हैं। सारे विदेशी शब्दों को बाहर कर देने के पक्ष में वे कदापि नहीं हैं क्योंकि वे स्वयं बहुभाषी थे। साथ ही वे अंग्रेजी के ज्ञान को सभी के लिए आवयश्क मानते थे। वे कहते हैं- "हम अंग्रेजी या किसी भाषा के विरोधी या विरोधक नहीं हैं। हमारा तो यह मत है कि अंग्रेजी का अध्ययन भी किया जाय। जो कि एक अनिवार्य आवश्यकता है क्योंकि दुनिया के विशाल साहित्य का दरवाजा अंग्रेजी के अध्ययन से खुलता है।"[25] "परन्तु हम अपनी देशी भाषाओं मे विदेशी भाषाओं के बढ़ते हुए प्रवाह को बिना आवश्यकता और बिना रोकटोक के नहीं होने देंगे।"[26]

श्री सावरकर भाषा शुद्धि का सिद्धांत निरूपण मात्र नहीं करते बल्कि व्यावहारिक प्रयोग के द्वारा मार्गदर्शन भी करते हैं। सावरकर संभवत: देश के एक मात्र राजनेता हैं जिन्होंने "दैनंदिन के इस्तेमाल के लिए वैकल्पिक तौर पर इस्तेमाल किये जाने वाले नए शब्दों का शब्दकोश तैयार किया।"[27] इन्होंने इस शब्दकोश को कई श्रेणियों में वर्गीकृत किया है; जैसे- शिक्षा, व्यापार, वाणिज्य, कानून आदि। उनके द्वारा निर्मित अनेक शब्द आज भी प्रयोग किये जाते हैं। इनमें से महापौर, दूरदर्शन, छायाचित्र, दिग्दर्शन, डाक, पंजी, वेशभूषा आदि प्रमुख हैं।

वीर सावरकर ने सन् 1927 से ही लिपि के प्रश्न और परिशोधन परियोजना को अपने प्रमुख भाषाई एजेंडे में शामिल कर लिया था। राष्ट्रभाषा के समान राष्ट्रलिपि के प्रश्न पर भी उनके विचार एकदम स्पष्ट थे। वह कहते थे कि- "मैं अत्यंत समर्थता से- नागरी लिपि को हमारे देश की राष्ट्रलिपि मानी जाय- इस मत का समर्थन करता हूँ।"[28] नागरी लिपि के सुधार का प्रश्न उनकी दृष्टि में मुद्रण सुलभता से जुड़ा हुआ प्रश्न था। उनका मानना था कि- "टाइपराइटर, लिनोटाइप, मोनोटाइप, टंक लेखक, पंक्तिटंकक, एकटंकक की अनिवार्यता सामने आ गयी है। अत: नागरी को उसके अनुकूल भी बनाना पड़ेगा।"[29] उनकी दृष्टि में "रोमन लिपि के साथ देवनागरी की जो स्पर्धा है, उसमें सर्वप्रथम उसका मुद्रण सुलभ होना अत्यंत अनिवार्य है।"[30] इसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु उन्होंने 'अ' की बारह खड़ी का निर्माण किया जिसका प्रयोग श्री गाँधी ने अपने पत्र 'हरिजन' में भी किया था।

मार्च 1934 ई. में दिल्ली में हुए हिंदी साहित्य सम्मेलन के बाद काका कालेलकर की अध्यक्षता में 7 सदस्यीय लिपि सुधार समिति का गठन किया गया। सम्मिलित सदस्य थे- "श्री वीरेंद्र वर्मा, डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी, डॉ. सरकार, श्री विनायक दामोदर सावरकर, पं. गौरीशंकर ओझा, मि. ध्रुव और सत्यनारायण।"[31] इतने

ख्यातिलब्ध भाषाविदों के साथ श्री सावरकर का नाम उनकी उसी हिंदी सेवा और नागरी सेवा का फल था जो उन्होंने 'अभिनव भारत' के दिनों से आरम्भ किया था। साथ ही इससे यह भी स्वत: स्पष्ट हो जाता है कि भाषा और लिपि के विषय में उनकी समझ कितनी गहरी, दूरदर्शी, वैज्ञानिक तथा व्यापक थी।

1944 में जब देश में स्वतंत्रता प्राप्ति का संयोग बनता दिखाई देने लगा था। उसी समय हिन्दू महासभा एक महत्वपूर्ण परियोजना पर कार्य आरंभ करती है। इस परियोजना के अंतर्गत एक समिति बनी थी जिसका कार्य था भारत के भावी संविधान का निर्माण करना। इस समिति की बैठक की अध्यक्षता तथा सम्बोधन श्री सावरकर ने ही किया था। भारत के भावी संविधान के स्वरूप एवं विभिन्न पक्षों पर विचार व्यक्त करने के बाद वे स्वतंत्र भारत की राजभाषा के प्रश्न पर पहुंचे। उन्होंने स्पष्ट रूप से अपना मत रखा और कहा कि – "स्वतंत्र भारत की राजभाषा हिंदी होगी।"[32]

हिंदी के प्रति उनका लगाव स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी दिखाई देता है। जब स्वतंत्र भारत के लिए संविधान का निर्माण किया जा रहा था तो सावरकर संविधान सभा के अध्यक्ष को एक पत्र भेजते हैं। 5 अगस्त को भेजे इस संदेश में सावरकर ने "हिंदी को राजभाषा तथा नागरी को राष्ट्रीय लिपि अपनाने की सलाह दी"[33] है।

यह सावरकर का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति उनकी निष्ठा और सेवा को उनके राजनीतिक व्यक्तित्व के आगे प्राय: विशेष महत्व नहीं प्रदान किया गया। राष्ट्रभाषा तथा लिपि के संदर्भ में उनके विचार न केवल तत्कालीन समय में प्रासंगिक थे बल्कि आज भी हम उन्हें संवैधानिक प्रावधानों आदि में जस का तस स्वीकृत पाते हैं। निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि राष्ट्रसेवा के एक माध्यम के रूप में जब से श्री सावरकर ने हिंदी भाषा की सेवा को चुना तब से अपने जीवन के अंतिम सक्रिय दिनों तक वे इस पुनीत कार्य में संलग्न रहे। राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन में सक्रिय रहते हुए भी उन्होंने हिंदी की सेवा करने का अवसर सदैव निकाल ही लिया। वे आजन्म इस प्रयास में लगे रहे कि हिंदी को राष्ट्रभाषा तथा नागरी को राष्ट्रलिपि का दर्जा मिले स्वतंत्र भारत में हिंदी को प्राप्त गौरवमयी स्थान श्री विनायक दामोदर सावरकर के शुभ प्रयत्नों का ही परिणाम कहा जाना चाहिए

सन्दर्भ :

1. मेरा आजीवन कारावास, विनायक दामोदर सावरकर, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 412
2. सावरकर: एक भूले-बिसरे अतीत की गूंज, विक्रम संपत, हिंद पॉकेट बुक्स, 2021, पृ. 354
3. वही, पृ. 134
4. मेरा आजीवन कारावास, विनायक दामोदर सावरकर, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली, 2009, पृ. 412
5. वही, पृ. 413
6. सावरकर: एक भूले बिसरे अतीत की गूंज, विक्रम संपत, हिंद पॉकेट बुक्स, 2021, पृ. 35
7. मेरा आजीवन कारावास, विनायक दामोदर सावरकर, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली, 2009, पृ. 230
8. वही, पृ. 416
9. वही, पृ. 413
10. वही, पृ. 230
11. वही, पृ. 414
12. पाकिस्तान या भारत का विभाजन- डॉ. बी. आर. अम्बेडकर, बुद्धम पुब्लिशर्स जयपुर, 2023, पृ. 95)
13. मेरा आजीवन कारावास, विनायक दामोदर सावरकर, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली, 2009 पृ. 415
14. वही, पृ. 416
15. गांधी और सावरकर, राकेश कुमार आर्य, डायमंड बुक्स, नई दिल्ली, 2016, पृ. 26 (अमेजन किंडल लाइब्रेरी)
16. मेरा आजीवन कारावास, विनायक दामोदर सावरकर, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली, 2009, पृ. 417

17. वही, पृ. 418
18. वही, पृ. 419
19. सावरकर: एक भूले बिसरे अतीत की गूंज, विक्रम संपत, हिंद पॉकेट बुक्स, 2021, पृ. 371
20. सावरकर: एक विवादित विरासत, विक्रम संपत, हिंद पॉकेट बुक्स, 2022, पृ. 153
21. वही, पृ. 153
22. देवनागरी लिपि: स्वरूप, विकास और समस्याएँ, सं. न. चिं. जोगलेकर, हिंदी साहित्य भंडार, लखनऊ, 1962, पृ. 456
23. राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि, विनायक दामोदर सावरकर, आर्यमित्र पत्रिका, जनवरी 1936
24. राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि, विनायक दामोदर सावरकर, आर्यमित्र पत्रिका, जनवरी 1936
25. देवनागरी लिपि: स्वरूप, विकास और समस्याएँ, सं. न. चिं. जोगलेकर, हिंदी साहित्य भंडार, लखनऊ, 1962 पृ. 456
26. हमारी समस्याएँ, विनायक दामोदर सावरकर, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली, पृ. 32
27. सावरकर: एक विवादित विरासत, विक्रम संपत, हिंद पॉकेट बुक्स, 2022, पृ. 154
28. देवनागरी लिपि: स्वरूप, विकास और समस्याएं- सं. न. चिं. जोगलेकर, हिंदी साहित्य भंडार, लखनऊ, 1962, पृ. 457
29. वही, पृ. 460
30. वही, पृ. 460
31. हमारी समस्याएँ, विनायक दामोदर सावरकर, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली, पृ. 72
32. सावरकर: एक भूले-बिसरे अतीत की गूंज, विक्रम संपत, हिंद पॉकेट बुक्स, 2021, पृ. 203)
33. सावरकर: एक विवादित विरासत, विक्रम संपत, हिन्द पॉकेट बुक्स, 2022, पृ. 467

❑❑❑

भारत में मुद्रा योजना के अंतर्गत कुल लोन खातों व स्वीकृत धनराशि का विश्लेषण

❍ डॉ. महेन्द्र त्रिपाठी[1]

संक्षिप्ति :

वर्ष 2015 से प्रारम्भ प्रधानमंत्री मुद्रा ऋण योजना का प्रमुख उद्देश्य एमएसएमई सैक्टर के विकास के साथ ही समाज के पिछड़े वर्गो, अनुसूचित जाति, अनु जनजाति तथा महिलाओं को जो अपना स्वयं का व्यवसाय प्रारम्भ करना चाहते हैं उन्हें बिना गारंटी के ऋण प्रदान कर उनके अंदर उद्यमिता का संवर्धन करना है। फर्म ब्यूटी पार्लर, छोटे उद्योग, सिलाई केन्द्र, फूड प्रोसेसिंग यूनिट तथा टयूशन सेंटर या अन्य ग्रामोद्योग आदि प्रारम्भ करने के लिए विजनेश लोन के रूप में 50 हजार से 10 लाख रुपये तक का ऋण प्रदान किया जा रहा है। समय-समय पर प्रधानमंत्री मुद्रा योजना की समीक्षा कर इसके कवरेज को लगातार बढ़ाया जा रहा है। वित्तीय वर्ष 2016-17 से कृषि से जुड़ी गतिविधियों यथा-मत्स्य पालन, शहद हेतु मधुमक्खी पालन, मुर्गी पालन, पशुधन पालन, ग्रेडिंग, छटाईं, कृषि व्यवसाओं के एकत्रीकरण, डेयरी, एग्रीक्लीनिक व एग्रीबिजनेस, खाद्य एवं कृषि प्रशंस्करण (जिसमें फसल ऋण, नहरें, सिचाई और कुओं के माध्यम से भूमि सुधार सम्मिलित हैं) और इनको सशक्त करने वाली सेवाएँ जो लोगों की जीविका और आय को संवर्धित करती हैं, इन सभी को प्रध. ानमंत्री मुद्रा योजना में सम्मिलित कर लिया गया है।

वर्ष 2015-16 में मुद्रा लोन के कुल खाताधारकों में महिला उद्यमियों की संख्या 79.2 प्रतिशत थी जो 2016-17 में कम होकर 73.4 प्रतिशत हो गयी और वर्ष 2018-19 में यह और घट कर 61.9 प्रतिशत तक हो गयी। यद्यपि वर्ष 2019-20 से थोड़ा सकारात्मक सुधार हुआ है और यह सहभागिता 2020-21 और 2021-22 में बढ़ती हुयी क्रमशः 65.64 और 71.43% हो गयी है जो महिला उद्यमिता के संवर्धन एवं सशक्तीकरण के लिए एक अच्छा संकेत है। वर्ष 2021-22 में मुद्रा लोन की सबसे अधिक धनराशि स्वीकृत करने वाला देश का शीर्षस्थ राज्य पश्चिम बंगाल है जबकि विगत वर्ष 2020-21 में कर्नाटक शीर्ष पर था। उत्तर प्रदेश के प्रदर्शन में बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है कि यह राज्य 2019-20 की भाँति वर्ष 2021-22 में पुनः दूसरे पायदान पर आ गया जो 2020-21 में तीसरे स्थान पर था।विगत लगभग 8 वर्षों (2015-16 से 2022-23) में मुद्रा लोन की मांग में 78.63% की वृद्धि हुई जबकि स्वीकृत व प्रदान किये गये मुद्रा ऋणों

1. असिस्टेंट प्रोफेसर (अर्थशास्त्र), काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय ज्ञानपुर, भदोही

की मात्रा में क्रमशः 232% एवं 238% की वृद्धि हुई है। स्पष्ट है कि इस योजना से समाज के विकास से वंचित वर्गों विशेष रूप से महिलाओं,अन्य पिछड़ा वर्ग एवं अनुसूचित जतियों / अनुसूचित जन-जतियों के अंदर भी उद्यमिता की भावना का विकास हो रहा है।

बीज शब्द : मुद्रा लोन, उद्यमिता, एमएसएमई सैक्टर, वित्तीय समावेशन, महिला सहभागिता।

भारत सरकार द्वारा उद्यमिता को गति एवं दिशा देने के लिए अनेक योजनाओं के संचालन के साथ ही कमजोर वर्ग के लोगों (गैर-कॉर्पोरेट, गैर-कृषि लघु /सूक्ष्म उद्यमों को) छोटी विनिर्माण ईकाइयों, दुकानदारी, फल व सब्जी विक्रेताओं, ट्रक और टैक्सी ड्राइवरों, बाद्य सेवा ईकाइयों, मशीन आपरेटर तथा उत्पादकों को नियमित आय प्राप्ति हेतु प्रधानमंत्री मुद्रा योजना की शुरुआत 8 अप्रैल 2015 को की गई। यह योजना एक बिजनेस लोन योजना है। मुद्रा का पूरा नाम माइक्रो यूनिट डेवलपमेंट रीफाइनेंस एजेंसी (MUDRA & Micro Units Development & Refinance Agency) है।

मुद्रा योजना के प्रमुख उद्देश्य एवं विशेषताएँ-

मुद्रा योजना के दो प्रमुख उद्देश्य निम्नांकित हैं-

1. स्वरोजगार हेतु आसानी से ऋण प्रदान करना तथा
2. छोटे उद्यमियों के माध्यम से आय व रोजगार सृजित करना।

मुद्रा योजना (PMMY) के तहत ऋणों को MUDRA Loan (मुद्रा ऋण) के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। ये ऋण वाणिज्यिक बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, लघु वित्त बैंक, सूक्ष्म वित्त संस्थाओं तथा गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों द्वारा प्रदान किये जाते हैं। केंद्र सरकार के लघु, सूक्ष्म एवं मध्यम उद्यम (MSME) मंत्रालय द्वारा चलाई जा रही मुद्रा लोन योजना का लक्ष्य देश में अधिक से अधिक उद्योग शुरू करना और पुराने उद्योगों को बढ़ावा देना है। इसीलिए तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है।

- शिशु लोन - इस श्रेणी में लाभार्थी को 50 हजार तक का बिजनेस ऋण प्रदान किया जाता है।
- किशोर लोन - किशोर श्रेणी के अन्तर्गत कारोबारियों को 50 हजार से 5 लाख तक बिजनेस लोन (ऋण) प्रदान किया जाता है।
- तरुण लोन - तरुण लोन श्रेणी में कारोबारियों को 5 से 10 लाख तक का बिजनेस ऋण प्रदान किया जाता है।
- मुद्रा लोन का लाभ हर किसी को मिल सकता है शर्त सिर्फ इतनी होती है कि मुद्रा लोन की रकम का उपयोग एमएसएमई बिजनेस के लिए करना होता है।
- इस सरकारी लोन योजना में एमएसएमएमई कारोबारियों को तीन कैटेगरी में 10 लाख रुपये तक का बिजनेस लोन, बिना कुछ गिरवी रखे मिलता है।
- मुद्रा योजना में महिला आवेदकों को प्रमुखता के आधार पर मुद्रा लोन प्रदान किया जाता है।
- पीएम मुद्रा लोन योजना की खासियत यह है कि इस योजना के तहत अगर 4 लोगों को बिजनेस लोन दिया गया तो उन 4 लोगों में से 3 महिलाएँ शामिल हैं।
- मुद्रा लोन जब से लांच हुई है तब से ही इस योजना में महिलाओं को बिजनेस लोन देने पर जोर दिया जा रहा है।
- मुद्रा लोन सरकारी बैंको, प्राइवेट बैंको क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों, सहकारी बैंको माइक्रो फाइनेस संस्थानों व गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के माध्यम से प्राप्त होता है।

- इस ऋण योजना के अंतर्गत कारोबार की प्रकृति व उससे जुड़े जोखिम के आधार पर अलग-अलग बैंकों में ब्याज दरें अलग-अलग हो सकती हैं।

मुद्रा लोन का प्रोसेस पूरा होने में दो सप्ताह का समय लगता है। मुद्रा लोन लेने के लिए ऑनलाइन व ऑफलाइन दोनों तरीके से आवेदन किया जा सकता हैं। मुद्रा कंपनी को 100% पूंजी का योगदान के साथ 'भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक' (Small Industries Development bank of India& SIDBI) के पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनी के रूप में स्थापित किया गया है। वर्तमान में मुद्रा कंपनी की अधिकृत पूंजी 1000 करोड़ है और भुगतान की गई पूंजी (Paid Up Capital) 750 करोड़ है।

मुद्रा लोन की बेसिक पात्रता निम्न है:

- मुद्रा लोन के लिए अप्लाई करने वाला कारोबारी की नागरिकता भारतीय हो।
- मुद्रा लोन का उपयोग गैर-कृषि कारोबार के लिए किया जाना हो।
- जिस भी कारोबार के लिए मुद्रा लोन लेना हो, वह कॉरपोरेट संस्था नहीं होनी चाहिए।
- बिजनेसमैन के पास मुद्रा लोन का उपयोग करने का प्रोजेक्ट तैयार हो।

मुद्रा लोन इस तरह के बिजनेस को मिल सकता है:

- प्रोपराइटरशिप फर्म
- पार्टनरशिप फर्म
- छोटी मैन्युफैक्चरिंग यूनिट
- सर्विस सेक्टर कंपनी
- दुकानदार
- फल-सब्जी विक्रेता
- ट्रक/कार ड्राईवर
- होटल मालिक
- रिपेयर शॉप
- मशीन ऑपरेटर
- छोटे उद्योग
- फूड प्रोसेसिंग यूनिट
- ग्रामीण एवं शहरी इलाके का कोई अन्य ग्रामोद्योग

इसके अन्तर्गत समाज के पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जाति, अनु जनजाति तथा महिलाओं को जो अपना स्वयं का व्यवसाय प्रारम्भ करना चाहते हैं उन्हें बिना गारंटी के ऋण प्रदान करके उनके अंदर उद्यमिता का संवर्धन करना है। फर्म ब्यूटी पार्लर, छोटे उद्योग, सिलाई केन्द्र, फूड प्रोसेसिंग यूनिट तथा टयूशन सेंटर या अन्य ग्रामोद्योग आदि प्रारम्भ करने के लिए विजनेश लोन के रूप में 50 हजार से 10 लाख रुपये तक का ऋण प्रदान किया जाता है।

महिला उद्यमिता के संवर्धन में मुद्रा योजना की प्रासंगिकता :

प्रधानमंत्री मुद्रा योजना के व्यापक प्रचार-प्रसार व प्रभावी क्रियान्वयन के द्वारा ग्रामीण विकास व महिला सशक्तिकरण के लक्ष्य को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है ।इस मुद्रा ऋण योजना के फलस्वरूप कई महत्वपूर्ण परिणाम अपेक्षित रूप से प्राप्त हो सकते है यथा-

1. मुद्रा योजना से महिलाओं व समाज के पिछड़े समूहों में वित्तीय साक्षरता व वित्तीय समावेशन की

अधिकाधिक पहुँच सुनिश्चित होगी।

2 मुद्रा योजना के प्रसार व जागरूकता से रोजगार में वृद्धि होगी और उनकी बढ़ी हुई आय स्तर के फलस्वरूप उनके जीवन शैली में भी बदलाव आयेगा।

3 उद्यमी महिलायें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने की ओर अग्रसर होंगी ।

4 मुद्रा योजना जैसे ऋण सुविधा की रियायती दर पर सहज प्राप्ति से लाभार्थियों में उद्यमिता की भावना तीव्र होगी।

5 ग्रामीण क्षेत्रों में उद्यमिता के प्रसार के कारण स्थानीय स्तर पर ही विकास की दृष्टि से पिछड़े वर्ग विशेष रूप से महिलाए रोजगार से लाभान्वित होगी।

6 उद्यमी महिलाएं व समाज के पिछड़े वर्ग अपनी आय, बचत, व्यय व निवेश के निर्णयन में आत्मनिर्भर होगी।

7 उद्यमों में नियोजित महिलाएं अपने स्वास्थ्य के साथ ही परिवार के अन्य सदस्यों के स्वास्थ्य के प्रति भी जागरूक होगी।

शोध साहित्य की समीक्षा -

मुद्रा योजना (PMMY) एक नई तरह की योजना है जिससे समाज के पिछड़े वर्ग के लोगों को उद्यम स्थापित करने हेतु मुद्रा ऋण प्रदान किया जा रहा है। इसका प्रमुख उद्देश्य स्थानीय लोगों को स्वावलम्बी बनाते हुए उन्हें विकास की मुख्य भाग में लाना है। मुद्रा योजना (PMMY) से समावेशी विकास तो सुनिश्चित होगा ही साथ ही उद्यमिता संवर्धन से MSME व विनिर्माण क्षेत्र को प्रोत्साहन भी मिलेगा। लघु उद्योगों के तीव्र प्रसार से अर्थव्यवस्था में विनिर्माण क्षेत्र सशक्त होगा तथा आत्मनिर्भरता के लक्ष्य की प्राप्ति भी सुनिश्चित हो सकती है। अर्थात उद्यमिता संवर्द्धन के माध्यम से अर्थव्यवस्था में आय, रोजगार व कल्याण का प्रोत्साहित करने वाली नीतियाँ और ज्यादा सशक्त हो सकेंगी।मुद्रा योजना से संबन्धित कुछ महत्वपूर्ण अध्ययन निष्कर्ष निम्नलिखित हैं–

Mehar, L. (2014) अपने निष्कर्ष में यह तथ्य बताते हैं कि भारत में मोबाइल बैंकिंग, छोटे–छोटे बैंकिंग शाखाओं जैसे नवाचार से वित्तीय समावेशन विगत कुछ वर्षों में तीव्रता से बढ़ा है। इसी संदर्भ में राय, अनूप कुमार (Roy, Anup Kumar - 2016) का मत है कि लघु व्यवसाय आर्थिक विकास के आधार स्तम्भ होते हैं और विगत कुछ वर्षों में सरकार द्वारा इस दिशा में कई महत्वपूर्ण प्रयास शुरू किए गये हैं।

J. Venkatesh & R. Lavanya Kamari (2017) मुद्रा बैंक के अपने एक अध्ययन में इस महत्वपूर्ण तथ्य से अवगत कराते हैं कि यद्यपि यह योजना नवप्रवर्तन के माध्यम से एमएसएमई क्षेत्र के समग्र विकास हेतु प्रारम्भ की गयी थी तथापि यह लघु उद्योगों में संलग्न लोगों के कल्याण स्तर के वृद्धि में भी सहायक बन रही है जो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को प्रगति हेतु सकारात्मक रूप से प्रभावित करेगा।

Verma S. (2015) अपने अध्ययन में यह उद्धृत करते हैं कि मुद्रा योजना न केवल एमएसएमई की वित्तीय समस्या को दूर करेगा अपितु बड़ी संख्या में युवा आबादी को नवप्रवर्तक (साहसी) बनने हेतु प्रेरित भी करेगा।

Rudrawar, M.A.A. & Uttarwar, V. R. (2016) का मानना है कि यदि प्रधानमंत्री मुद्रा योजना को बुनियादी स्तर से प्रभावी ढंग से लागू किया जाय तो यह गेम चेंजर की भाँति भारतीय अर्थव्यवस्था को समृद्ध करने वाला होगा। आने वाले कुछ वर्षों में मुद्रा योजना नवप्रवर्तन के विकास के साथ ही जीडीपी और रोजगार सृजन में निर्णायक भूमिका निभाएगा।

रूपा, आर. (2017) ने तमिलनाडु के एक अध्ययन में पाया कि मुद्रा योजना बहुत सफल हो रही है और इस योजना में लोन खातों की वृद्धि में सर्वाधिक योगदान सूक्ष्म वित्तीय संस्थानों (MFI) का है।

बग्लादेश के एक अध्ययन (दास, संजय क्रांति- 2012)से ज्ञात हुआ कि ग्रामीण बैंक से जुड़ी महिलाएँ अपने परिवार में ज्यादा आर्थिक भूमिका का बहन करती है तथा ऋण सुविधा से उनका सशक्तीकरण भी होता है।

महाराष्ट्र व आन्ध्रप्रदेश में किए अध्ययन में (Schuler.S.R, Hashemi, S.M. & Rilley, A.P.1994) यह उद्धृत करते हैं कि जिन परिवारों में महिलाएँ आर्थिक रूप से सशक्त होती है, उनके बच्चों को ज्यादा बेहतर पौष्टिक आहार प्राप्त होता है। सिंह, एस. पाल (2008) के मतानुसार लघु ऋण कार्यक्रम निर्धनता उन्मूलन में एक महत्त्वपूर्ण हथियार है।

सेन (1997) के अनुसार सशक्तीकरण एक प्रक्रिया है जिसमें आर्थिक, शारीरिक व मानवीय संसाधनों पर नियंत्रण के साथ ही विश्वास मूल्यों व अभिवृत्ति में भी बदलाव होता है।

आन्ध्रप्रदेश के सर्वेक्षण निष्कर्ष में यह तथ्य प्राप्त हुआ कि किन्ही उत्पादों के निर्माण कौशल से जुड़ी महिलाओं ने उन महिलाओं की तुलना में आय प्राप्ति शिक्षा व स्वास्थ्य सुविधा के साथ स्वतंत्रता का ज्यादा अनुभव किया जो जागरूक और उत्पादन कौशल योजनाओं से नहीं जुड़ी थी। नरसिम्हन शकुन्तला (1997)

अध्ययन के उद्देश्य एवं शोध प्रविधि -

प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्न है-

(i) वर्ष 2015 से संचालित राष्ट्रीय स्तर पर और राज्यों के स्तर पर मुद्रा लोन योजना के प्रदर्शन का अवलोकन करना।

(ii) विगत 8 वर्षो में मुद्रा योजना के अन्तर्गत कुल खाता धारकों की संख्या, स्वीकृत तथा संवितरित धनराशि का विश्लेषण करना।

(iii) मुद्रा योजना में महिलाओं, पिछड़े वर्गों तथा अनु.जा./अनु.ज.जाति की भागीदारी का भी अध्ययन करना।

भारत सरकार द्वारा प्रारम्भ मुद्रा योजना में लोन हेतु खाता धारकों की संख्या, उनमें भी महिलाओं की भागीदारी कितनी है? शिशु लोन, किशोर लोन तथा तरुण लोन के अंतर्गत विगत लगभग 8 वर्षों में कितनी मुद्रा राशि स्वीकृत हुयी तथा संवितरित धनराशि की मात्रा कितनी है और उसका समाज व अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा है इसे ज्ञात करने के लिए द्वितीयक आकड़ों के रूप में सरकार द्वारा उपलब्ध आंकड़ों, मुद्रा योजना की आधिकारिक वैबसाइट व अन्य प्रकाशित प्रतिवेदनों को आधार बनाकर विश्लेषण किया गया है।

सारिणी 1: मुद्रा योजना की लक्ष्य एवं उपलब्धि का विवरण

क्रम	वर्ष	लक्ष्य (लाख करोड़ में)	प्राप्ति/उपलब्धि (लाख करोड़ में)	लक्ष्य के प्रति उपलब्धि की प्रतिशतता
1	2015-16	1.22	1.37	112.30%
2	2016-17	1.8	1.8	100%
3	2017-18	2.44	2.53	103%
4	2018-19	3	3.21	107%
5	2019-20	3.25	3.37	103.60%
6	2020-21	3.5	3.21	91.71%

*(**Source:** Six year of Pradhan Mantri Mudra Yojana, Annual Report : 2020-21,Page No- 05)*

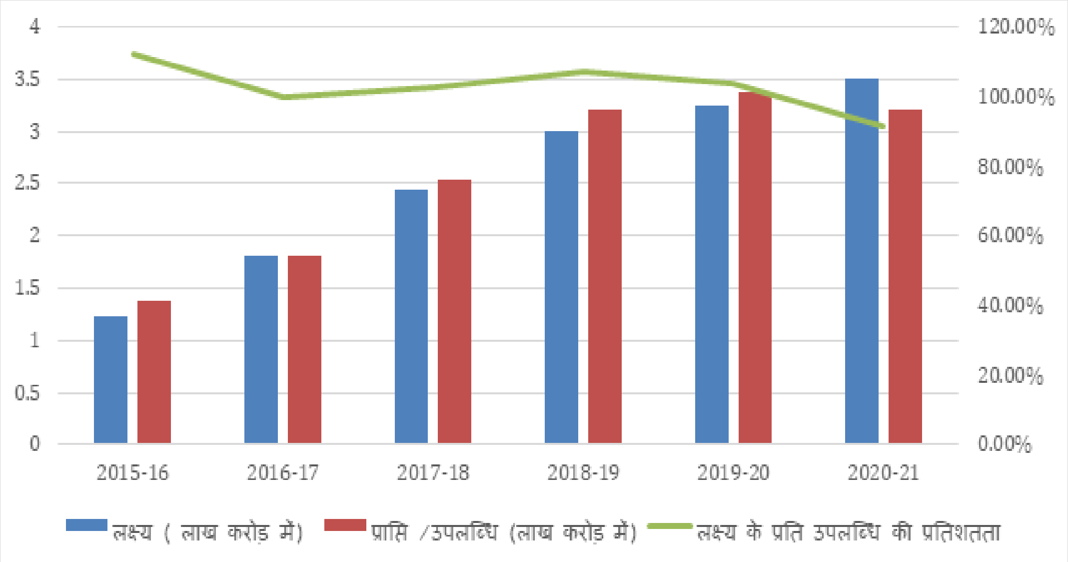

सिडबी द्वारा प्रकाशित प्रधानमंत्री मुद्रा योजना के अंतर्गत उपरोक्त समयावधि मे प्रधानमंत्री मुद्रा लोन खाताधारकों को स्वीकृत धनराशि का संस्थावार अवलोकन करें तो निम्न तथ्य प्राप्त होते हैं –

Category	लक्ष्य (2020-21) (रु. करोड़ में)	स्वीकृत धनराशि (2020-21) (रु. करोड़ में)	स्वीकृत धनराशि (2019-20) (रु. करोड़ में)	वृद्धि
Public Sector **Banks** (Incl. Regional Rural Banks)	128500	129915 (101%)	117729	10%
Private Sector **Banks** (Incl. Regional Foreign Banks)	91700	93613.20 (102%)	91780	2%
Small Finance Banks	29800	19646.68 (66%)	29501	33%
Micro Finance Institutions	59200	46601.40 (79%)	57967	20%
Non-Banking Finance Companies	40800	31983.17 (78%)	40518	21%
Total	350000	321759 (92%)	337495	5%

सरिणी 2 :

राष्ट्रीय स्तर पर मुद्रा योजना के अन्तर्गत मुद्रा लोन खाता, स्वीकृत व संवितरित धनराशि की स्थिति-

क्रम	वित्तीय वर्ष	प्रधानमंत्री मुद्रा लोन की स्वीकृत संख्या	स्वीकृत धनराशि (करोड़ रुपये में)	संवितरित धनराशि (करोड़ रुपये मे)
1	2015-2016	34880924	137449.27	132954.73 (96.73%)
2	2016-2017	39701047	180528.54	175312.13 (97.11%)
3	2017-2018	481130593	253677.10	246437.40 (97.14%)
4	2018-2019	59870318	321722.97	311811.38 (96.91%)
5	2019-2020	62247606	337495.53	329715.03 (97.69%)
6	2020-2021	50735046	321759.25	311754.47 (96.89%)
7	2021-2022	53795526	339110.35	331402.20 (97.72%)
8	2022-2023	62310598	456537.98	450423.66 (98.66%)

(Source: www.mudra.org.in)

वर्ष 2015-16 से 2022-23 के 7 वर्षों के अन्तर्गत देश भर में मुद्रा लोन खातों की कुल संख्या और इनके अन्तर्गत कुल स्वीकृत धनराशि की मात्रा के सम्बंध को निम्न रेखाचित्र से आसानी से समझा जा सकता है -

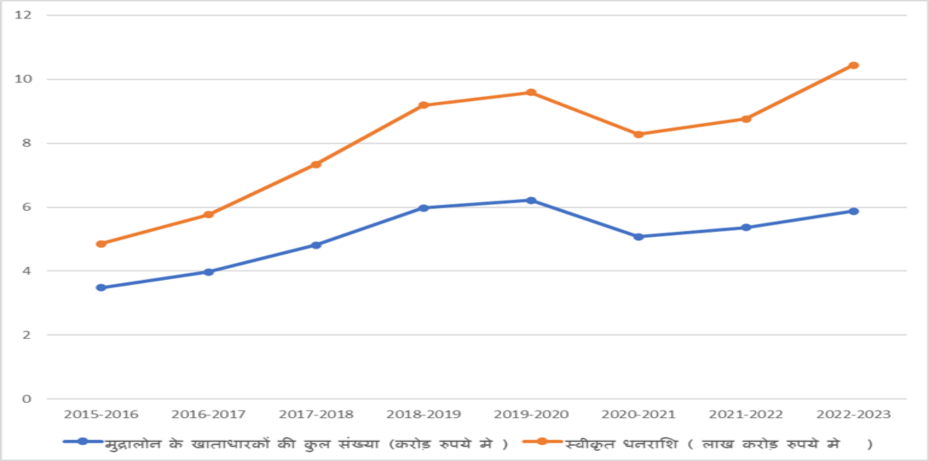

सारणी–2 से स्पष्ट है कि इस योजना के अंतर्गत प्रारम्भ से लेकर आगामी वर्षों मे स्वीकृत की जाने वाली लोन की संख्या तथा दी गयी ऋण की मात्रा भी लगातार बढ़ती हुई है। स्वीकृत मुद्रा लोन में संवितरण (व्यय) की प्रतिशतता भी लगभग 97% प्रतिवर्ष है। अर्थात स्वीकृत की जाने वाली मुद्रालोन की धनराशि लगभग पूर्णरूपेण व्यय हो रही है। वर्ष 2015–16 में इस योजना में कुल 3 करोड़ 48 लाख लोग मुद्रा लोन हेतु खाताधारक थे, पाँच वर्ष पश्चात (वर्ष 2020–21 में) इनकी संख्या बढ़कर 5 करोड़ 7 लाख पहुंच गयी। ऋणों की उपलब्ध करायी गयी मात्रा 3 लाख 21 हजार करोड़ रुपये थी।पुनश्च वित्तीय वर्ष 2021–22 और 2022–23 में मुद्रा लोन हेतु खाताधारकों की संख्या क्रमशः 5,37,95526 और 6,23,10598 हो गयी। अर्थात विगत लगभग 8 वर्षों (2015–16 से 2022–23)में मुद्रा लोन की मांग में 78.63% की वृद्धि हुई जबकि स्वीकृत व प्रदान किये गये मुद्रा ऋणों की मात्रा में क्रमशः 232% एवं 238% की वृद्धि हुई है।

सारिणी –3: भारत में कुल मुद्रा ऋण खाताधारकों की श्रेणीवार संख्या–

क्रम	श्रेणी	वर्ष 2015-16	वर्ष 2016-17	वर्ष 2017-18	वर्ष 2018-19	वर्ष 2019-20	वर्ष 2020-21	वर्ष 2021-22
1	सामान्य	16479425	17200853	21906479	31735223	32497506	258646999	25994139
2	अनु. जाति (SC)	6114737	7135624	8506161	9452519	10281553	8398417	9364702
3	अनु. ज.जा. (ST)	1678346	1792502	2539307	3341329	3889696	3123282	3518084
4	अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC)	10608416	13572068	15178646	15341247	15578851	13348648	14918601
5	**कुल**	**34880924**	**39701047**	**48130519**	**59870318**	**62247606**	**50735046**	**53795526**

(स्रोत: www.mudra.org.in)

सारिणी 3b: मुद्रा योजना में ऋण प्राप्त करने वालें लाभार्थियों की श्रेणीवार स्थिति –

मुद्रा खाता की कुल संख्या (वित्तीय वर्ष २०२१-२२)					मुद्रा खाता की कुल संख्या (वित्तीय वर्ष २०१५-१६)			
श्रेणी	शिशु	किशोर	तरुण	कुल	शिशु	किशोर	तरुण	कुल
सामान्य	19185749	5977398	830992	25994139	14680840	1458346	340239	16479425
अनु. जाति	7858637	1480309	25756	3364702	5952482	143357	18898	6114732
अनु. जनजाति	2938831	562237	17016	3518084	1606484	62869	8993	1678346
अ. पिछड़ा वर्ग	11737937	3068262	112402	14918601	10161240	404889	42287	10608416
योग	41721154	11088206	986165	53795526	32401046	2069461	410417	34880924
महिला उद्यमियों की संख्या	30441921	7892778	94560	38429259	27103118	473536	51611	27628265

(स्त्रोत :www.mudra.org.in)

सारिणी –3 व 3इसे स्पष्ट है कि प्रधानमंत्री मुद्रा योजना के अन्तर्गत प्रत्येक वर्ष मुद्रा लोन प्राप्त करने हेतु आवेदक खाताधारकों की संख्या लगातार बढ़ रही है। वर्ष 2015–16 के सापेक्ष वर्ष 2021–22 में कुल खाताधारकों की संख्या 3,48,80,924 से बढ़कर 5,37,95526 हो गयी। साथ ही साथ इनमें श्रेणीवार विभिन्न जातियों के आवेदकों की संख्या भी सापेक्षिक रूप से बढ़ती हुई है जिसे निम्न दण्डचित्रों से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

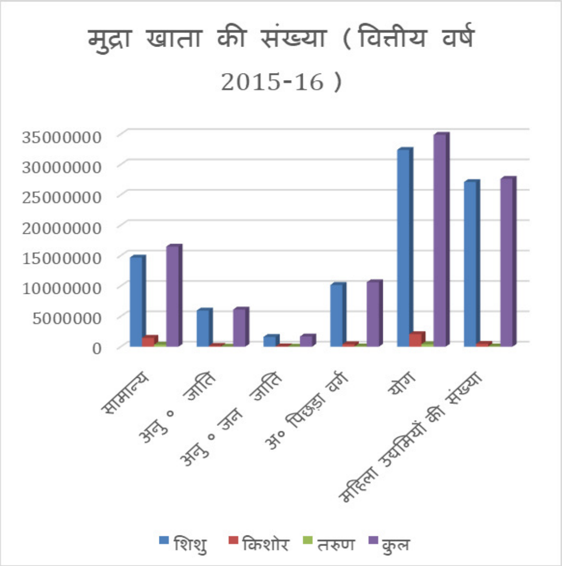

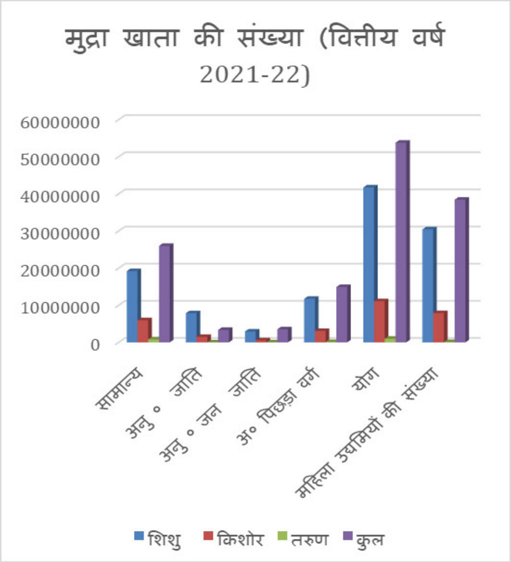

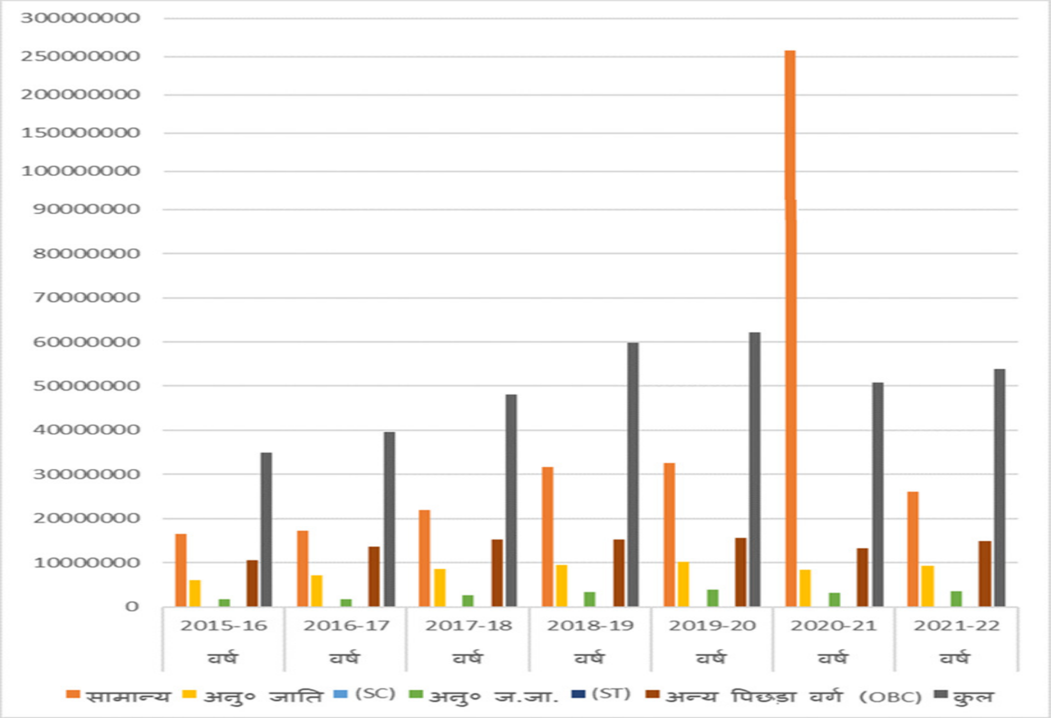

आकड़ों के अनुसार सामान्य श्रेणी, अनुसूचित जाति, अनु० जनजाति व अन्य पिछड़ा वर्ग खाताधारकों की संख्या में विगत पाँच वर्षों में क्रमशः 197 प्रतिशत, 168 प्रतिशत, 239 प्रतिशत व 147 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। यह इस योजना की एक सकारात्मक उपलब्धि है कि अनुसूचित जनजाति के वर्गों में मुद्रा लोन योजना के प्रति रुझान अन्य वर्गो के सापेक्ष ज्यादा है।

प्रधानमंत्री मुद्रा योजना में महिला उद्यमियों की कितनी प्रतिभागिता रही या कुल मुद्रा लोन खाताधारकों में महिलाओं की प्रतिशतता कितनी रही है इसके परीक्षण हेतु निम्न सारिणी–3 का अवलोकन आवश्यक है।

सारिणी–4: प्रधानमंत्री मुद्रा योजना में महिला उद्यमियों की सहभागिता की स्थिति –

क्रमांक	वित्तीय वर्ष	मुद्रालोन के खाताधारकों की कुल संख्या	महिला उद्यमियों की कुल संख्या
1	2015–16	34880924	27628265 (79.2%)
2	2016–17	39701047	29146894 (73.47%)
3	2017–18	48130519	33558238 (69.7%)
4	2018–19	59870318	370 62562 (61.9%)
5	2019–20	62247606	39103349 (62.8%)
6	2020–21	50735046	33303604 (65.64%)
7	2021–22	53795526	38429259 (71.43%)

(स्रोत : www.mudra.org)

सारिणी –4 के आँकड़े स्पष्ट करते हैं कि राष्ट्रीय स्तर पर वर्ष 2015–16 से 2021–22 के मध्य विभिन्न वर्षों में मुद्रा योजना में महिला उद्यमियों की संख्या (वर्ष 2020–21 को छोडकर) निरपेक्ष रूप से प्रायः बढ़ती जा रही है परन्तु कुल खाताधारकों के सापेक्ष विश्लेषण में यह महत्वपूर्ण निकर्ष प्राप्त हो रहा है कि इन पाँच वर्षों में मुद्रा लोन खाताधारकों की कुल संख्या में महिला उद्यमियों की प्रतिशतता में तेजी से गिरावट भी आयी है। वर्ष 2015–16 में मुद्रा लोन के कुल खाताधारकों में महिला उद्यमियों की संख्या 79.2 प्रतिशत थी जो 2016–17 में कम होकर 73.4 प्रतिशत हो गयी और वर्ष 2018–19 में यह और घट कर 61.9 प्रतिशत तक हो गयी। यद्यपि वर्ष 2019–20 से थोड़ा सकारात्मक सुधार हुआ है और यह सहभागिता 2020–21 और 2021–22 में बढ़ती हुयी क्रमशः 65.64 और 71.43% हो गयी है जो महिला उद्यमिता के संवर्धन एवं सशक्तिकरण के लिए एक अच्छा संकेतक है।

भारत में वित्तीय वर्ष 2019–20, 2020–21 एवं 2022–23 (25 नवम्बर 2022 तक) के अन्तर्गत कुल मुद्रा खाताधारकों की संख्या एवं उनमें महिला उद्यमियों की सहभागिता की राज्यवार स्थिति का विश्लेषण करने पर एक व्यापक दृष्टिकोण निर्मित होता है ।लोक सभा के पटल पर पुछे गए एक अतारांकित प्रश्न के जवाब में देश के अंदर विभिन्न राज्यों में प्रधानमंत्री मुद्रा योजना के अंतर्गत सृजित मुद्रा लोन में महिला सहभागिता की स्थिति को निम्न सारिणी से समझा जा सकता है।

सारिणी- 5: भारत में वित्तीय वर्ष 2019-20, 2020-21 एवं 2022-23 (25.11. 2022 तक) के अन्तर्गत कुल मुद्रा खाताधारकों की संख्या एवं उनमें महिला उद्यमियों की सहभागिता की राज्यवार स्थिति-

		FY 2019-20		FY 2020-21		FY 2021-22		FY 2022-23 (As on 25.11.2022)	
		Total	Women Entrepreneurs (Out of Total)	Total	Women Entrepreneurs (Out of Total)	Total	Women Entrepreneurs (Out of Total)	Total	Women Entrepreneurs (Out of Total)
S.N.	State/UT	NO. of Loan A/Cs	NO. of Loan A/Cs	NO. of Loan A/Cs	NO. of Loan A/Cs	NO. of Loan A/Cs	NO. of Loan A/Cs	NO. of Loan A/Cs	NO. of Loan A/Cs
1	Andaman & Nicobar Island	1733	312	5468	1459	1901	4	1915	479
2	Andhra Pradesh	844501	174094	1152152	435429	1117922	614391	666009	338092
3	Arunachal Pradesh	23288	684	6159	1888	5705	3596	8922	5163
4	Assam	1668347	779736	1189829	853482	682889	651561	129674	59189
5	Bihar	6712494	4197683	5306694	3262994	6678155	4705150	157376	2520963
6	UT of Chandigarh	24313	9288	20925	7243	14926	1763	10358	1444
7	Chhattisgarh	1261018	673430	1027266	633209	970396	729217	461421	327564
8	Dadra & Nagar Haveli and Daman Diu	3665	1979	4927	33109	4397	3532	1321	199
9	Delhi	568596	455907	330497	161462	194835	113585	116393	50347
10	Goa	39040	16825	37520	17931	35950	16610	20290	10880
11	Gujrat	2096393	1255370	1430956	914455	1590960	1036032	806868	489689
12	Haryana	1155917	763565	1005453	643639	1057963	593037	606015	337541
13	Himachal Pradesh	107865	41758	130494	40754	107556	26301	86370	21106
14	Jharkhand	1720485	1222813	1668281	1252260	1777882	1468060	1027249	83858
15	Karnataka	573127	3337300	4645196	3103875	4298481	2988512	2689198	1944461
16	Kerala	2176889	1422951	1586258	1105155	1620168	1166805	943562	538533
17	Lakshadweep	796	217	1799	506	725	130	794	289
18	Madhya Pradesh	3557948	2241666	3249158	2099143	3231804	2316849	1617429	1130365
19	Maharashtra	4769888	3478991	3754163	2957673	4158052	3589300	2539134	2105151
20	Manipur	90175	25579	69906	27806	74138	22323	18273	13053
21	Meghalaya	44416	16997	40478	28334	16892	12452	10188	4422
22	Mizoram	20435	6418	12716	7658	11396	8689	10958	7458
23	Nagaland	15082	10220	19787	14286	15191	10954	5967	2443
24	Odisha	3715335	2743233	3634998	2730228	3670907	2897689	1738418	1468835
25	Puducherry	139444	104096	108775	77157	131525	87320	62572	38509
26	Punjab	1281307	686067	1094143	582580	1109810	621930	622662	324867
27	Rajasthan	2994534	1793764	2481296	1653540	2667998	1770874	1356536	920454
28	Sikkim	19862	4999	15356	7641	11059	6827	4658	1687
29	Tamil Nadu	7117666	4312369	4947732	3036978	5625146	370452	3292228	2403110
30	Telangana	1435626	905309	66219	282466	533545	352999	225304	122107
31	Tripura	397094	243950	326855	208478	357304	286215	117484	75285
32	Uttar Pradesh	**5861422**	**3280280**	**4738452**	**2673110**	**5787982**	**372650**	**3383847**	**2239655**

Source: As per data uploaded by Member Lending Institutions on Mudra Portal (Anneñure as referred to in Part (b) of Lok Sabha Unstarred Que- No-734 for reply on 12th December 2022)

उपरोक्त सारिणी से स्पष्ट है कि प्रधानमंत्री मुद्रा योजना के अंतर्गत वित्तीय वर्ष 2019-20 में राष्ट्रिय स्तर पर कुल खाताधारकों कि संख्या 6,22,37,981 थी जिसमें महिलाओं की कुल सहभागिता 3,91,03,349 (62.83%)थी। वर्ष 2020-21 में यह प्रतिशतता 65.45% और 2021-22 में 71.4% हो गयी।2022-23 में कुल मुद्रा खाताधारकों की संख्या 2,82,44,245 हो गयी जिसमें महिलाओं की प्रतिशतता बढ़कर 71.23% हो गयी।

यदि उत्तर प्रदेश के परिप्रेक्ष्य में देखें तो ज्ञात होता है कि वित्तीय वर्ष 2019-20 में प्रदेश में कुल मुद्रा लोन खाता धारकों की संख्या 58,61,42 (कुल राष्ट्रीय स्तर का 9.41%) थी जो वर्ष 2020-21 में 47,38,452, वर्ष 2021-22 में 57,87,982 तथा 2022-23 में 33,83,847 हो गयी थी।इन कुल मुद्रा खाता धारकों में उत्तर प्रदेश की महिलाओं की वर्ष 2019-20 से 2022-23 तक सहभागिता क्रमशः 55.96%, 56.41%, 64.38%, तथा 66.18% हो गयी है।

सारिणी- 6: विगत तीन वर्षों में मुद्रा योजना के अन्तर्गत दस शीर्ष राज्यों का प्रदर्शन-

क्र.सं.	राज्य	स्वीकृत धनराशि (रु. करोड़ में) वर्ष 2021-22	स्वीकृत धनराशि (रु.करोड़ में) वर्ष 2020-21	स्वीकृत धनराशि (रु.करोड़ में) वर्ष 2019-20
1	पश्चिम बंगाल	34893.2	29335.98	26790
2	उत्तर प्रदेश	32850.8	29231.35	30949
3	तमिलनाडु	32477.55	28967.97	35017
4	बिहार	32096.95	25589.31	27442
5	कर्नाटक	28695.24	30199.18	30188
6	महाराष्ट्र	25797.74	25208.63	27903
7	राजस्थान	18999.2	18571.38	19662
8	मध्य प्रदेश	18814.95	18474.24	19060
9	ओडिसा	16900	15328.63	15419
10	आंध्र प्रदेश	11829.82	12028.33	10439.93

(Source: Annual Report 2020-21 & 2021-22 from Mudra Portal)

उपरोक्त सारिणी से स्पष्ट है कि वर्ष 2021-22 में मुद्रा लोन की सबसे अधिक धनराशि स्वीकृत करने वाला देश का शीर्षस्थ राज्य पश्चिम बंगाल है जबकि विगत वर्ष 2020-21 में कर्नाटक शीर्ष पर था। उत्तर प्रदेश के प्रदर्शन में बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है कि यह राज्य 2019-20 की भाँति वर्ष 2021-22 में पुनः दूसरे पायदान पर आ गया जो 2020-21 में तीसरे स्थान पर था।

लोकसभा में एक प्रश्न के उत्तर में वित्त मंत्रालय के राज्य मंत्री डॉ. भगवत कराड़ द्वारा 6 फरवरी 2023 को अतारांकित प्रश्न संख्या-545 के उत्तर द्वारा यह भी स्पष्ट किया गया कि श्रम एवं रोजगार मंत्रालय द्वारा राष्ट्रिय स्तर पर PMMY के कारण सृजित रोजगार के सर्वे परिणाम बहुत सकारात्मक रहे। वर्ष 2015 से तीन वर्ष पश्चात 2018 में देश में कुल 1.12 करोड़ रोजगार सृजित हुआ। समय-समय पर प्रधानमंत्री मुद्रा योजना की समीक्षा कर इसके कवरेज को लगातार बढ़ाया जा रहा है। वित्तीय वर्ष 2016-17 से कृषि से जुड़ी गतिविधियों यथा-मत्स्य पालन, शहद हेतु मधुमक्खी पालन, मुर्गी पालन, पशुधन पालन, ग्रेडिंग, छटाई, कृषि

व्यवसाओं के एकत्रीकरण, डेयरी, एग्रीक्लीनिक व एग्रीबिजनेस, खाद्य एवं कृषि प्रशंस्करण (जिसमें फसल ऋण, नहरें, सिचाई और कुओं के माध्यम से भूमि सुधार सम्मिलित हैं) और इनको सशक्त करने वाली सेवाएँ जो लोगों की जीविका और आय को संवर्धित करती हैं, इन सभी को प्रधानमंत्री मुद्रा योजना (PMMY) में सम्मिलित कर लिया गया है।

वित्तीय वर्ष 2017-18 से ट्रैक्टर और पावर टिलर (POWER TILLER) हेतु लोन की स्वीकृति को जिसकी कुल धनराशि 10 लाख से अधिक न हो, को PMMY के अंतर्गत शामिल कर लिया गया है। यही नहीं वित्तीय वर्ष 2018-19 और उसके बाद से वाणिज्यिक उद्देश्य से व्यक्तिगत रूप से दो पहिया वाहनों पर लोन स्वीकृति को भी इस योजना में सम्मिलित कर लिया गया है। मुद्रा योजना के 8 वीं वर्षगांठ पर वित्तमंत्री निर्मला सीतारमण ने अपने सम्बोधन में बताया (दैनिक जागरण, प्रयागराज, 9 अप्रैल 2023 पृ. 17) कि इस योजना से जमीनी स्तर पर बड़ी संख्या में रोजगार अवसर के सृजन में मदद मिली है। उन्होनें कहा कि मुद्रा योजना से वंचितों को फंड उपलब्ध कराया जा रहा है जो वित्तीय समावेशन का महत्वपूर्ण स्तम्भ है। मुद्रा योजना के अन्तर्गत कुल लोन खातों में 68% लोन खातें महिला उद्यमियों के हैं एवं 51% लोन खातें एससी-एसटी और ओबीसी श्रेणियों के उद्यमियों के हैं। ये आंकड़े इस बात को दर्शातें हैं कि देश के नवोदित उद्यमियों को आसानी से लोन की उपलब्धता से नवाचार और प्रति व्यक्ति आय में सतत वृद्धि हुई है।

निष्कर्षत: पीएम मुद्रा योजना के विगत आठ वर्षो का यदि सूक्ष्मता से आंकलन करें तो यह कहा जा सकता है कि मुद्रा योजना से देश भर में सूक्ष्म उद्यमियों की लोन तक पहुँच आसान हुई है जिससे उन्हें अपने व्यवसाय को आरम्भ करने एवं विस्तार करने में मदद मिल रही है। इस योजना के अंतर्गत प्रारम्भ से लेकर आगामी वर्षो में स्वीकृत की जाने वाली लोन की संख्या तथा दी गयी ऋण की मात्रा भी लगातार बढ़ती हुई है। स्वीकृत मुद्रा लोन में संवितरण (व्यय) की प्रतिशतता भी लगभग 97% प्रतिवर्ष है। वर्ष 2015-16 में इस योजना में कुल 3 करोड़ 48 लाख लोग मुद्रा लोन हेतु खाताधारक थे, वर्ष 2020-21 में इनकी संख्या बढ़कर 5 करोड़ 7 लाख पहुंच गयी। पुनश्च वित्तीय वर्ष 2021-22 और 2022-23 में मुद्रा लोन हेतु खाताधारकों की संख्या क्रमश: 5,37,95526 और 6,23,10598 हो गयी। अर्थात विगत लगभग 8 वर्षो (2015-16 से 2022-23)में मुद्रा लोन की मांग में 78.63% की वृद्धि हुई जबकि स्वीकृत व प्रदान किये गये मुद्रा ऋणों की मात्रा में क्रमश: 232% एवं 238% की वृद्धि हुई है। स्पष्ट है कि इस योजना से समाज के विकास से वंचित वर्गो विशेष रूप से महिलाओं, अन्य पिछड़ा वर्ग एवं अनुसूचित जतियों / अनुसूचित जन-जतियों के अंदर भी उद्यमिता की भावना का विकास हो रहा है। इस योजना से वित्तीय समावेशन का भी लक्ष्य पूर्ण हो रहा है और लाखों एमएसएमई औपचारिक अर्थव्यवस्था का हिस्सा बनते जा रहे हैं। मुद्रा योजना ना केवल अर्थव्यवस्था में रोजगार सृजन हेतु उपयोगी है अपितु इससे उद्यमिता को भी तीव्र प्रोत्साहन प्राप्त होगा जो कालान्तर में विनिर्माण क्षेत्र को सशक्त करेगा।

सन्दर्भ :

1. एस. के. (2002). 'विमेन इंटरप्रिन्योरशिप: अपार्चुनिटीज परफार्मस एण्ड प्राब्लम्स दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
2. भंडारी, आर (2010), 'इंटरप्रिन्योरशिप एण्ड वुमेन एम्पावरमेन्ट', नई दिल्ली, अल्फा पब्लिकेशन ।
3. चौधरी, एस. (2013), 'एम्पावरिंग रुरल विमेन इंटरप्रिन्योरशिप इन इण्डिया', एमएसडीएन पब्लिकेशन।
4. द्विवेदी, एच. (2012), 'विमन इंटरप्रिन्योरशिप', जयपुर प्वाइटर पब्लिशर्स।
5. कुमार, ए. (2007), 'विमेन इंटरप्रिन्योरशिप इन इण्डिया', नई दिल्ली रीगल पब्लिकेशन।
6. प्रवीण के (2014), 'डेवलपमेन्ट ऑफ रूरल विमेन इंटरप्रिन्योरशिप थ्रू वर्कशाप ट्रेनिंग', रिसर्च जर्नल ऑफ

मैनेजमेन्ट साइन्सेस 3 (2) 15–18

7. एनुअल रिपोर्ट (2014–15), मिनिस्ट्री आफ विमेन एण्ड चाइल्ड डेवलपमेन्ट गर्वनमेन्ट आफ इण्डिया।
8. हाशमी, सईद एम० शुलर एसआर (1994), 'क्रेडिट प्रोग्राम्स, विमेन्स इम्पावरमेन्ट एण्ड कान्ट्रमेष्टिव इन रूरल बंग्लादेश स्टडीज इन फैमिली प्लानिंग', Vol-25, pp- 635-653
9. हेलन, टोड (1996), 'वीमेन एट द सेन्टरः ग्रामीण बैंक बारोबर्स आफ्टर वन डीकेंड', आक्सफोर्ड वेस्टव्यू प्रेस, पृ. 43–46
10. 'मुद्रा योजना से रोजगार सृजन में मिली मदद' दैनिक जागरण, प्रयागराज, दिनांक –09 अप्रैल 2023, पृ. 17
11. सिक्स ईयर्स ऑफ प्रधान मंत्री मुद्रा योजना–कोंटीनुइंग दी सपोर्ट इन टफर टाइम्स फ्राम मुद्रा पोर्टल
12. मेहर,एल. (2014). फाईनेन्सियल इंक्लुजन इन इंडिया, राय, अनूप कुमार (2016),'मुद्रा योजना : ए स्ट्रटेजिक टूल फॉर स्माल बिजनस फाईनान्सिंग, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस रिसर्च इन कम्प्युटर साइन्स एंड मैनेजमेंट स्टडीज।
13. रूपा,आर.(2017), प्रोग्रैस ऑफ मुद्रा विथ द स्पेशल रिफरेन्स ऑफ तमिलनाडु, वेंकटेश,जे. एंड लावण्या, आर. कुमारी(2017) परफोरमेन्स ऑफ मुद्रा बैंकः ए स्टडी ऑन फाईनेन्सियल असीसटेन्स टु एमएसएमई सेक्टर
14. मेहर,एल. (2014). फाईनेन्सियल इंक्लुजन इन इंडिया, राय, अनूप कुमार (2016), 'मुद्रा योजना : ए स्ट्रटेजिक टूल फॉर स्माल बिजनस फाईनान्सिंग, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस रिसर्च इन कम्प्युटर साइन्स एंड मैनेजमेंट स्टडीज।
15. रुद्रवार,एम.ए. एंड उत्तरवर, वी.आर. (2016), एन एवाइलूटरी स्टडी ऑफ मुद्रा स्कीम, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीफेसेड एंड मल्टी लिंगुयल स्टडीस ।
16. www.mudra.org.in

❑❑❑

G20 में महिला सशक्तीकरण : नीतियाँ, प्रगति और चुनौतियों का प्रारंभिक अध्ययन

❍ डॉ. जी.एम.मोरे[1]

संक्षिप्ति :

यह व्यापक अध्ययन जी20 देशों के भीतर महिला सशक्तीकरण के गतिशील परिदृश्य की पड़ताल करता है, सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक परिदृश्य को आकार देने वाली नीतियों, प्रगति और चुनौतियों का विश्लेषण करता है। जी20 सदस्य देशों द्वारा की गई प्रतिबद्धताओं और पहलों की जांच करके, इस शोध का उद्देश्य लैंगिक समानता को बढ़ाने और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए बनाई गई मौजूदा नीतियों का एक सिंहावलोकन प्रदान करना है।

अध्ययन इन प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में शैक्षिक उपलब्धि, श्रम बल भागीदारी और महिलाओं द्वारा आयोजित नेतृत्व भूमिकाओं जैसे प्रगति संकेतकों की जांच करता है। सफलताओं और असफलताओं दोनों पर प्रकाश डालते हुए, अनुसंधान महिलाओं की उन्नति में बाधा डालने वाली सूक्ष्म चुनौतियों की पहचान करता है, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारक शामिल हैं, जो प्रभावी रणनीतियों और नीतियों को तैयार करने के लिए आवश्यक हैं।

चुनिंदा जी20 देशों में कार्यान्वित सफल कार्यक्रमों और पहलों से अंतर्दृष्टि प्राप्त करते हुए, अध्ययन सर्वोत्तम प्रथाओं और सफलता की कहानियों को प्रदर्शित करता है, संभावित रूप से अनुकरणीय रणनीतियों के लिए एक खाका प्रदान करता है। विश्लेषण मौजूदा असमानताओं को दूर करने और जी20 सदस्य देशों के भीतर महिलाओं के विकास के लिए अनुकूल माहौल बनाने के लिए टिकाऊ और समावेशी नीतियों की आवश्यकता पर जोर देता है।

बीज शब्द : महिला सशक्तिकरण, जी20 राष्ट्र, लैंगिक समानता- असमानताएँ, नीतियां, प्रगति संकेतक, सामाजिक-आर्थिक विकास, सांस्कृतिक।

महिलाओं का सशक्तीकरण दुनिया भर में सामाजिक प्रगति और आर्थिक विकास के लिए एक आवश्यक आधारशिला है। दुनिया के 80% से अधिक आर्थिक उत्पादन का प्रतिनिधित्व करने वाली प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं के समूह जी20 के संदर्भ में, महिला सशक्तीकरण की स्थिति का गहरा महत्व है। इस प्रारंभिक अध्ययन का उद्देश्य जी20 देशों के भीतर महिला सशक्तीकरण के बहुमुखी क्षेत्र में गहराई से जाना, नीतियों, प्रगति संकेतकों

---

1. सहयोगी प्राध्यापक, अध्यक्ष, वाणिज्य विभाग, कला वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, तळोदा. जिला, नंदुरबार।

और सामना की जाने वाली चुनौतियों की जांच करना, इन प्रभावशाली अर्थव्यवस्थाओं के भीतर लैंगिक समानता की गतिशीलता को समझने में एक मूलभूत अन्वेषण के रूप में कार्य करना है।

संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन, जर्मनी और जापान जैसे देशों सहित जी20 देश लैंगिक समानता को बढ़ावा देने और महिलाओं को सशक्त बनाने के उद्देश्य से नीतियां और प्रतिबद्धताएं तैयार करने में सक्रिय रूप से लगे हुए हैं। ये नीतियां शिक्षा और स्वास्थ्य सेवा से लेकर रोजगार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व तक विभिन्न क्षेत्रों तक फैली हुई हैं। इस शक्तिशाली आर्थिक संघ के भीतर महिला सशक्तिकरण के परिदृश्य को समझने के लिए इन विविध नीतिगत पहलों, उनके कार्यान्वयन और प्रभावशीलता की खोज करना महत्वपूर्ण है।

विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की प्रगति का आकलन करने के लिए जी20 देशों के भीतर प्रगति संकेतकों का विश्लेषण करना अनिवार्य है। शिक्षा, एक मूलभूत स्तंभ के रूप में, लैंगिक समानता का केंद्र बिंदु बनी हुई है। यह अध्ययन जी20 देशों में महिलाओं के बीच नामांकन दर, साक्षरता स्तर और शिक्षा तक पहुंच का पता लगाएगा। इसके अतिरिक्त, प्रगति और मौजूदा अंतराल का आकलन करने के लिए कार्यबल भागीदारी दर और नेतृत्व भूमिकाओं में महिलाओं के प्रतिनिधित्व का मूल्यांकन किया जाएगा।

इस प्रारंभिक अध्ययन का उद्देश्य चुनिंदा जी20 देशों के भीतर सफलता की कहानियों और सर्वोत्तम प्रथाओं को उजागर करना है, उन पहलों को रेखांकित करना है जिन्होंने महिलाओं को महत्वपूर्ण रूप से सशक्त बनाया है। केस स्टडीज और सफल रणनीतियों के माध्यम से, यह शोध उनकी सफलता में योगदान देने वाले प्रमुख कारकों की पहचान करने का प्रयास करेगा, अन्य देशों को उनके संदर्भ में इन रणनीतियों को अपनाने या अनुकूलित करने के लिए एक संभावित खाका पेश करेगा। अंत में, चुनौतियों का समाधान करने और जी20 देशों के भीतर महिलाओं को सशक्त बनाने में हुई प्रगति पर काम करने की तात्कालिकता को बढ़ा-चढ़ाकर नहीं कहा जा सकता। यह अध्ययन महिला सशक्तिकरण की व्यापक समझ के लिए आधार तैयार करता है, जो इस महत्वपूर्ण वैश्विक संघ के भीतर आगे की खोज और गहन विश्लेषण के लिए आधार बनाता है।

अध्ययन के उद्देश्य :

1. मौजूदा नीतियों का मूल्यांकन करना: लिंग समानता को बढ़ावा देने और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं को सशक्त बनाने के उद्देश्य से जी20 देशों के भीतर कार्यान्वित नीतियों की विविधता और प्रभावशीलता का आकलन और विश्लेषण करना है।
2. प्रगति संकेतकों की जांच करना: हुई प्रगति को समझने और सुधार के क्षेत्रों की पहचान करने के लिए जी20 देशों के भीतर शैक्षिक उपलब्धि, कार्यबल भागीदारी और नेतृत्व भूमिकाओं में महिलाओं के प्रतिनिधित्व जैसे प्रमुख संकेतकों की जांच करना है।
3. चुनौतियों को पहचानना: सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक बाधाओं सहित जी20 देशों के भीतर महिला सशक्तीकरण की पूर्ण प्राप्ति में बाधा डालने वाली बहुमुखी चुनौतियों की पहचान करें और उनका विश्लेषण करना है।
4. सफलता की कहानियों और सर्वोत्तम प्रथाओं पर प्रकाश डालना : चुनिंदा जी20 देशों में कार्यान्वित सफल कार्यक्रमों और पहलों को प्रदर्शित करना है, जिन्होंने महिला सशक्तीकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस मामले के अध्ययन और प्रतिकृति तत्वों को निकालने के लिए सफल रणनीतियों की गहराई से जांच करना शामिल है।
5. भविष्य की कार्रवाई के लिए सिफारिशें प्रदान करना : निष्कर्षों और विश्लेषण के आधार पर, जी20 देशों के भीतर महिला सशक्तिकरण को आगे बढ़ाने के लिए नीति निर्माताओं, हितधारकों और वैश्विक

संस्थाओं के लिए कार्रवाई योग्य सिफारिशें प्रस्तावित करना है।

अनुसंधान पद्धति :

यह अध्ययन जी20 देशों के भीतर महिला सशक्तिकरण की स्थिति का व्यापक विश्लेषण करने के लिए गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों तरीकों को शामिल करते हुए एक मिश्रित-विधि दृष्टिकोण अपनाएगा। मिश्रित-विधि दृष्टिकोण नीतियों, प्रगति और चुनौतियों की अधिक समग्र समझ प्रदान करेगा।

अ. डेटा संग्रहण:

1. मात्रात्मक डेटा : शिक्षा, कार्यबल भागीदारी, नेतृत्व भूमिका और अन्य प्रासंगिक संकेतकों से संबंधित मात्रात्मक डेटा इकट्ठा करने के लिए विश्व बैंक रिपोर्ट, संयुक्त राष्ट्र डेटाबेस, जी20 आधिकारिक प्रकाशन और राष्ट्रीय सांख्यिकीय एजेंसियों जैसे प्रतिष्ठित स्रोतों से मौजूदा सांख्यिकीय डेटा का उपयोग किया है।
2. गुणात्मक डेटा : जी20 देशों के भीतर महिला सशक्तिकरण से संबंधित नीतियों, चुनौतियों और सफलता की कहानियों की बारीकियों को समझने के लिए साहित्य समीक्षा, नीति दस्तावेजों की सामग्री विश्लेषण और केस अध्ययन जैसे गुणात्मक तरीकों को नियोजित करणा है।

ब. साहित्य की समीक्षा:

जी20 देशों में महिला सशक्तिकरण से संबंधित विद्वानों के लेखों, रिपोर्टों, नीति दस्तावेजों और पहलों का विश्लेषण करने के लिए एक व्यापक साहित्य समीक्षा आयोजित कि है। यह समीक्षा एक व्यापक पृष्ठभूमि और प्रासंगिक समझ प्रदान करेगी।

क. डेटा विश्लेषण:

जी20 देशों के बीच रुझान, पैटर्न और तुलना प्रस्तुत करने के लिए सांख्यिकीय उपकरणों का उपयोग करके मात्रात्मक डेटा का विश्लेषण किया जाएगा। प्रमुख विषयों, चुनौतियों और सफल रणनीतियों को निकालने के लिए गुणात्मक डेटा का विषयगत विश्लेषण किया जाएगा।

ड. मामले का अध्ययन:

महिलाओं को सशक्त बनाने के उद्देश्य से सफल कार्यक्रमों और पहलों की गहराई से जांच करने के लिए जी20 देशों से विशिष्ट केस अध्ययनों का चयन करें। सर्वोत्तम प्रथाओं और सफलता कारकों को निकालने के लिए इन केस अध्ययनों का विश्लेषण किया जाएगा।

इस प्रारंभिक अध्ययन की अनुसंधान पद्धति जी20 देशों में महिला सशक्तिकरण की मूलभूत समझ प्रदान करेगी, जो नीतियों, प्रगति और चुनौतियों का व्यापक अवलोकन प्रस्तुत करने के लिए गुणात्मक अंतर्दृष्टि के साथ मात्रात्मक डेटा विश्लेषण का संयोजन करेगी।

अध्ययन की सीमाएँ:

1. डेटा उपलब्धता और विश्वसनीयता: उपलब्ध सांख्यिकीय डेटा और रिपोर्ट पर अध्ययन की निर्भरता जी20 देशों में डेटा संग्रह पद्धतियों में भिन्नता के कारण सीमित हो सकती है, जो संभावित रूप से जानकारी की विश्वसनीयता और तुलनीयता को प्रभावित कर सकती है।
2. क्षेत्र और गहराई: अध्ययन की प्रारंभिक प्रकृति के कारण, विश्लेषण की गहराई बाधित हो सकती है। जी20 देशों के भीतर महिला सशक्तिकरण से संबंधित सभी पहलुओं की व्यापक समझ और गहन खोज सीमित हो सकती है।

3. सामान्यीकरण चुनौतियाँ: जी20 राष्ट्र संस्कृतियों, अर्थव्यवस्थाओं और सामाजिक संरचनाओं के व्यापक स्पेक्ट्रम को शामिल करते हैं। इसलिए, ऐसे विविध देशों में निष्कर्षों का सामान्यीकरण प्रत्येक राष्ट्र के भीतर मौजूद जटिल बारीकियों और विविधताओं को पूरी तरह से पकड़ नहीं सकता है।
5. पूर्वाग्रह और व्यक्तिपरकता: अध्ययन स्रोतों के चयन, डेटा की व्याख्या, या व्यक्तिगत दृष्टिकोण के कारण पूर्वाग्रहों का विषय हो सकता है। पूर्वाग्रह को कम करने के प्रयास किए जाएंगे, लेकिन प्रारंभिक अध्ययन में पूर्ण निष्पक्षता चुनौतीपूर्ण हो सकती है।
6. अधूरी नीति विश्लेषण: हर नीति को पूरी तरह से कवर करने में असमर्थता के कारण महिला सशक्तिकरण से संबंधित नीतियों का विश्लेषण बाधित हो सकता है। विस्तृत नीति मूल्यांकन के लिए अधिक गहन और लक्षित परीक्षण की आवश्यकता हो सकती है।
8. विषय की गतिशील प्रकृति: जी20 देशों के भीतर महिला सशक्तिकरण एक उभरता हुआ विषय है, और अध्ययन अपनी प्राथमिक प्रकृति के कारण नीतियों और प्रगति में नवीनतम विकास या परिवर्तनों को शामिल नहीं कर सकता है।

बहस :

जी20 देशों के भीतर महिला सशक्तिकरण पर प्रारंभिक अध्ययन ने इन प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में महिलाओं के सामने आने वाली नीतियों, प्रगति और चुनौतियों के बहुमुखी परिदृश्य पर प्रकाश डाला है। अध्ययन ने विभिन्न महत्वपूर्ण पहलुओं का खुलासा किया और मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान की जो लैंगिक समानता और महिला सशक्तीकरण पर व्यापक चर्चा में योगदान करती है

1. आर्थिक सशक्तीकरण के लिए वित्तीय समावेशन

पिछले दशक में दुनिया ने वित्तीय समावेशन पर पर्याप्त प्रगति की है। 2011–21 की अवधि के दौरान, वित्तीय संस्थान में खाता रखने वाले वयस्कों (15+) का प्रतिशत 51% से बढ़कर 74%1 हो गया। हालाँकि, केवल 29% वयस्कों ने औपचारिक संस्थान में बचत की, और वैश्विक स्तर पर केवल 28% वयस्कों ने औपचारिक वित्तीय संस्थान से उधार लिया। महिलाओं को भी प्रतिबंधात्मक सामाजिक मानदंडों, गतिशीलता की बाधाएं, सीमित वित्तीय और डिजिटल साक्षरता आदि जैसी बाधाओं का सामना करना पड़ता है। बुनियादी बैंकिंग सेवाएँ प्राप्त करने में। भारत की अध्यक्षता में बिजनेस 20 (जी 20) एंगेजमेंट ग्रुप ने संभावित तरीकों का सुझाव देने के लिए श्आर्थिक सशक्तिकरण के लिए वित्तीय समावेशनश पर एक टास्क फोर्स की स्थापना की, है। ईस टास्क फोर्स के उद्देश्य थे।

इसमें व्यक्तियों, छोटे उद्यमों, किसानों और महिलाओं के लिए बेहतर वित्तीय समावेशन और वित्तीय सेवाओं तक त्वरित पहुंच के लिए स्थितियां बनाना और आपूर्ति पक्ष पर समावेशी नीति डिजाइन और अभिनव व्यापार मॉडल के माध्यम से वित्तीय संस्थानों को मजबूत करना है।

2. वित्तीय उत्पाद करते समय लिंग एक प्रमुख घटक

वित्तीय उत्पादों को डिजाइन करते समय लिंग को एक प्रमुख घटक के रूप में मानें और महिलाओं और अन्य समूहों के लिए विभेदक मानदंडों को प्रोत्साहित करें, जिनके लिए वित्तीय प्रणाली तक पहुंच कठिन है (उदाहरण के लिए, समलैंगिक, समलैंगिक, उभयलिंगी, ट्रांसजेंडर, इंटरसेक्स, समलैंगिक/प्रश्न करने वाले, अलैंगिक (एलजीबीटीक्यूआईए+) और विकलांग लोगों को) वित्तीय सेवाओं तक न्यायसंगत और किफायती पहुंच प्रदान करना

3. एलडीसी, एमएसएमई में महिलाओं और युवाओं के लिए समावेशी व्यापार को बढ़ावा : वैश्विक व्यापार

में एलडीसी, एमएसएमई, महिलाओं और युवाओं की बढ़ी हुई भागीदारी के लिए परिवर्तनकारी अवसरों की पहचान करके समावेशी पारिस्थितिकी तंत्र का विकास करना। सलाह के माध्यम से संवर्धित जीवीसी भागीदारी के लिए परिवर्तनकारी अवसर पैदा करना। निवेश, और रणनीतिक साझेदारी जीवीसी में महिलाओं और युवाओं की भागीदारी को सक्षम करना है। उन्नत के लिए बुनियादी ढांचे के विकास और व्यापार वित्तपोषण को सक्षम करें एलडीसी, एमएसएमई, महिलाओं और युवाओं की जीवीसी भागीदारी, डिजिटल, भौतिक और वित्तीय बुनियादी ढांचे की स्थापना, डिजिटल साक्षरता को बढ़ाना, वित्तीय समावेशन और व्यापार वित्तीय पहुंच को बढ़ावा देना ,एक समावेशी मानक व्यवस्था को बढ़ावा देना, विश्व स्तर पर मान्यता प्राप्त प्रमाणपत्रों तक आसान पहुंच को सक्षम करना, डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देना, व्यावसायिक कौशल, और शिक्षा और प्रशिक्षण पाठ्यक्रम की व्यवस्था करना ।

4. विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग और गणित (एसटीईएम) में महिलाओं के लिए अवसरों को बढ़ाने और महिलाओं के नेतृत्व वाले स्टार्ट-अप की फंडिंग को प्राथमिकता देना : विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग और गणित (एसटीईएम) में महिलाओं के लिए अवसरों को बढ़ाने और महिलाओं के नेतृत्व वाले स्टार्ट-अप की फंडिंग को प्राथमिकता देने के लिए जी.20 स्तरीय कार्यक्रम बनाना है। जिसमे प्रमुख संस्थानों में अनुसंधान करने के लिए महिला वैज्ञानिकों, इंजीनियरों और प्रौद्योगिकीविदों को अवसर प्रदान करने के लिए मेंटरशिप कार्यक्रम शुरू करना, विशेष रूप से एसटीईएम शिक्षा हासिल करने वाली मेधावी महिलाओं के लिए लक्षित छात्रवृत्ति और अनुदान कार्यक्रम लागू करना । महिलाओं के लिए सहयोगात्मक खुले नवाचार के अवसर पैदा करने के लिए तकनीकी कंपनियों के साथ उद्योग साझेदारी के माध्यम से पुल कार्यक्रम बनाना है

5. महिलाओं के एसएचजी (SHG) पारिस्थितिकी तंत्र के प्रबंधन और देखरेख के लिए एक नियामक ढांचा स्थापित करना : जी20 देशों के वित्तीय सेवा नियामक उपभोक्ता संरक्षण, शासन, ऋण संवितरण, दंड आदि पर दिशानिर्देशों के साथ एक नियामक ढांचा विकसित करेंगे। स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) स्तर पर समग्र निरीक्षण को सक्षम करने के लिए, 2 वर्षों के भीतर जी20 राष्ट्र 3 वर्षों के भीतर औपचारिक पूंजी तक उनकी पहुंच में सुधार करने के लिए एसएचजी के लिए एक विशिष्ट डिजिटल पहचान प्रदान करने के लिए दिशानिर्देश बनाना ।

6. आर्थिक विकास लिए एसएमई, स्टार्टअप और महिला नेतृत्व वाले उद्यमों को सशक्त बनाना : आर्थिक विकास को आगे बढ़ाने के लिए एसएमई, स्टार्टअप और महिला नेतृत्व वाले उद्यमों को सशक्त बनाएं आर्थिक विकास और रोजगार सृजन के लिए एसएमई और स्टार्टअप का समर्थन करना है। सरकारें वित्तीय और विकास सहायता प्रदान हैं, नियामक बोझ को कम कर रही हैं, सलाह, बुनियादी ढांचे तक पहुंच प्रदान कर रही हैं और आर्थिक झटकों के दौरान स्टार्टअप की रक्षा कर रही हैं। महिलाओं के नेतृत्व वाले उद्यमों और वेब-आधारित समुदायों को बढ़ावा देने से लैंगिक असमानताओं को दूर किया जा सकता है और समावेशी आर्थिक विकास को बढ़ावा जी20 कें पॉलिसी में दिया जा रहा है।

तालिका क्र.1. में दिये हुए लिंगभेद और महिलाओं का कार्य में हिस्सा बता हुआ है। इससे यह समझने में आता है की,जी20 राष्ट्र में आज भी पुरुष और में सभी देशो में फरक नजर आता है

तालिका क्र.1. में दिये हुए लिंगभेद और महिलाओं का कार्य में हिस्सा बता हुआ है। इससे यह समझने में आता है की, जी20 राष्ट्र में आज भी पुरुष और में सभी देशो में फरक नजर आता है।

शोध पत्र के निष्कर्ष:

1. नीतियाँ और पहल:

अ. शिक्षा: जी20 देशों ने महिलाओं की शिक्षा तक पहुंच में सुधार के लिए नीतियां लागू की हैं, फिर भी असमानताएं बनी हुई हैं, खासकर कुछ क्षेत्रों में।

ब. कार्यबल भागीदारी: प्रयासों से कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है, लेकिन रोजगार के अवसरों में लैंगिक अंतर और वेतन असमानताएं प्रचलित हैं।

क. नेतृत्व भूमिकाएँ: नेतृत्व पदों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व ऊपर की ओर बढ़ रहा है, लेकिन कॉर्पोरेट और राजनीतिक नेतृत्व भूमिकाओं में महत्वपूर्ण असमानताएँ अभी भी मौजूद हैं।

2. प्रगति संकेतक:

अ. शिक्षा: लड़कियों के लिए नामांकन दर में सुधार हुआ है, लेकिन उच्च शिक्षा तक पहुंच और अवध ारण दर कुछ जी20 देशों में चिंता का विषय बनी हुई है।

ब. कार्यबल भागीदारी: जबकि महिलाओं के लिए रोजगार दरों में प्रगति हुई है, उन्हें अक्सर उच्च–रैंकिंग पदों तक पहुंचने में चुनौतियों का सामना करना पड़ता है और कम वेतन वाली नौकरियों में उनका अनुपातहीन प्रतिनिधित्व होता है।

क. नेतृत्व भूमिकाएँ: शीर्ष नेतृत्व भूमिकाओं में महिलाओं का प्रतिनिधित्व, हालांकि बढ़ रहा है, फिर भी कई जी20 देशों में कॉर्पोरेट और राजनीतिक क्षेत्रों में पुरुषों से काफी पीछे है।

3. चुनौती:

अ. सांस्कृतिक और सामाजिक मानदंड: गहरे पैठे सांस्कृतिक और सामाजिक मानदंड जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के अवसरों को प्रभावित और प्रतिबंधित करते रहे हैं।

ब. आर्थिक असमानताएँ: आर्थिक असमानताएँ बनी रहती हैं, जिससे महिलाओं की अवसरों, संसाधनों और निर्णय लेने की भूमिकाओं तक पहुँच प्रभावित होती है।

क. लिंग आधारित हिंसा: जी20 देशों में महिलाओं को लिंग आधारित हिंसा और भेदभाव की चुनौती का सामना करना पड़ता है, जिससे उनकी स्वतंत्रता और अवसर सीमित हो जाते हैं।

4. सफलता की कहानियाँ और सर्वोत्तम प्रथाएँ: कई जी20 देशों ने शिक्षा, कार्यबल और नेतृत्व में महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने वाले सफल कार्यक्रमों और पहलों को लागू किया है, ऐसे मॉडल प्रदर्शित किए हैं जिन्हें अन्य संदर्भों में दोहराया या अनुकूलित किया जा सकता है।

5. निरंतर प्रयासों का आह्वान: जी20 देशों के भीतर महिला सशक्तीकरण में बाधक बनी लगातार असमानताओं और चुनौतियों को दूर करने के लिए निरंतर और ठोस प्रयासों की आवश्यकता पर जोर देता है। यह अधिक समावेशी और न्यायसंगत समाज को बढ़ावा देने के लिए निरंतर नीतिगत हस्तक्षेप और सामुदायिक भागीदारी की आवश्यकता पर प्रकाश डालता है।

शोध पत्र का निष्कर्ष –

जी20 देशों के भीतर महिला सशक्तीकरण पर प्रारंभिक अध्ययन ने इन प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में महिलाओं के सामने आने वाली नीतियों, प्रगति और चुनौतियों के बहुमुखी परिदृश्य पर प्रकाश डाला है। अध्ययन ने विभिन्न महत्वपूर्ण पहलुओं का खुलासा किया और मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान की जो लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण पर व्यापक चर्चा में योगदान करती है। यहां वह निष्कर्ष है जो मुख्य निष्कर्षों और निहितार्थों को समाहित करता है जी20 देशों में महिलाओं को सशक्त बनाने पर यह प्रारंभिक अध्ययन लैंगिक समानता प्राप्त करने में महत्वपूर्ण प्रगति और शेष चुनौतियों को रेखांकित करता है। इन प्रभावशाली अर्थव्यवस्थाओं द्वारा की

गई नीतियों और पहलों की जांच करने पर, यह स्पष्ट है कि शिक्षा से लेकर कार्यबल भागीदारी और नेतृत्व भूमिकाओं तक विभिन्न क्षेत्रों में महिला सशक्तीकरण को आगे बढ़ाने के प्रयास किए गए हैं। हालाँकि, अध्ययन लैंगिक समानता की पूर्ण प्राप्ति में बाधा डालने वाली चुनौतियों की एक श्रृंखला को भी उजागर करता है। शैक्षिक पहुंच और कार्यबल भागीदारी में प्रगति के बावजूद, असमानताएं बनी हुई हैं, और महिलाओं को नेतृत्व भूमिकाओं में समान प्रतिनिधित्व प्राप्त करने में बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है। सांस्कृतिक मानदंड, सामाजिक अपेक्षाएँ, आर्थिक असमानताएँ और लिंग आधारित हिंसा विकट बाधाएँ उत्पन्न करती हैं जिन पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है। इस अध्ययन में चयनित जी20 देशों के भीतर सफलता की कहानियों और सर्वोत्तम प्रथाओं की जांच व्यवहार्य रणनीतियों को दर्शाती है जिन्होंने महिला सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इन सफलता की कहानियों के हस्तांतरणीय तत्व आशाजनक मॉडल पेश करते हैं जिन्हें लैंगिक समानता को आगे बढ़ाने के लिए अन्य संदर्भों में दोहराया या अनुकूलित किया जा सकता है।

चूंकि यह प्रारंभिक अध्ययन एक मूलभूत अन्वेषण के रूप में कार्य करता है, इसलिए विशिष्ट बारीकियों को समझने और सामने आने वाली सीमाओं को संबोधित करने के लिए आगे के गहन शोध की आवश्यकता है। सार्थक परिवर्तन लाने और एक समावेशी वातावरण बनाने के लिए निरंतर अनुसंधान और नीतिगत प्रयास आवश्यक हैं जहां जी20 देशों में महिलाओं को आगे बढ़ने के समान अवसर मिलें।

संदर्भ :

1. G20 India: RAISE Policy Recommendations to the G20. B20_Communique.pdf Confederation of Indian Industry (CII) The Mantosh Sondhi Centre; 23, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi 110003, India , https://www.mea.gov.in/Portal/ForeignRelation/G20_Brief_for_website_-_27.10__1___1_.pdf
2. Moving Ahead for Women Empowerment in G20,G20 DIGEST, Artical, Beena Pandey, Research Associate, RIS.
3. G-20 Report On Strong, Sustainable, Balanced, And Inclusive Growth , Prepared by Staff of the international monitory fund. IMF, 2022, World Economic Outlook, October
4. G20 financial inclusion , https://databankfiles.worldbank.org/public/ddpext_download/g20fidata/G20_Financial_Inclusion_Indicators.pdf
5. GPFI_FIAP_2023, Financial Inclusion Action Plan July 2023, https://www.g20.org/content/dam/gtwenty/gtwenty_new/document/G20_GPFI_FIAP_2023.pdf
6. Women at Work in G20 countries: Progress and policy action Paper prepared under Japan's G20 Presidency (2019), https://www.oecd.org/g20/summits/osaka/G20-Women-at-Work.pdf
7. THE GROUP OF TWENTY: A HISTORY http://www.g20.utoronto.ca/docs/g20history.pdf
8. INDIA & The WORLD India's G20 Journey Scaling A New Summit https://www.g20.org/content/dam/gtwenty/gtwenty_new/document/review-docs/IW-G20-summit-edition.pdf
9. G20 MINISTERIAL CONFERENCE ON WOMEN EMPOWERMENT Gandhinagar, 2-4 August 2023 https://www.g20.org/content/dam/gtwenty/gtwenty_ new/document/G20_Chair's_Statement_Women's_Ministerial.pdf

❑❑❑

भारत की G20 अध्यक्षता : चुनौतियाँ और अवसर

❍ प्रो. (डॉ.) संतोष शिवकुमार खत्री[1]

प्रस्तावना

1 दिसंबर, 2022 से 30 नवंबर, 2023 तक भारत जी 20 की अध्यक्षता की। इस अवधि के दौरान देश भर में इस फोरम के अंतर्गत 200 बैठकों की मेजबानी की गई। हर राज्य की राजधानी में कम से कम एक बैठक ली गई। इसी दौरान भारत के विदेश मंत्रालय ने कहा कि जी 20 की अध्यक्षता भारत को अंतरराष्ट्रीय महत्व संबंधों के महत्वपूर्ण मुद्दों पर वैश्विक एजेंडे में योगदान करने का एक अनूठा अवसर प्रदान करती है। भारतने विश्व मामलों में एक महत्वपूर्ण मोड़ जी 20 की अध्यक्षता शुरू की। ष्एक परिवार, एक पृथ्वी, एक भविष्यष, वित्तीय, स्वास्थ्य, शिक्षा क्षेत्र, व्यापार क्षेत्र पर काम करने के लिए दुनिया को एक साथ लाना है और षथिंक 20, रीजन 20ष जी 20 की अध्यक्षता के दौरान भारत के लक्ष्यों को प्राप्त करने का सारांश प्रस्तुत करता है। जी 20 भारतीय विदेश नीति और कूटनीति के इतिहास में एक महत्वपूर्ण क्षण था। भारत के जी-20 की अध्यक्षता भारत के लिए एक चुनौती तो थी ही परंतु उसके साथ-साथ अनेक चुनौतियाँ एवं अवसर प्रदान करने वाली थी। जिसकी चर्चा प्रस्तुत शोधपत्र में की गई है। जिसके तहत निम्न उद्देश निर्धारीत किए गये हैं।

शोधपत्र के उद्देश्य :

1. जी-20 की उत्पत्ति को समझना।
2. जी-20 के उद्देशों का अध्ययन करना।
3. जी-20 की अध्यक्षता करते समय भारत के सामने चुनौतियाँ का अध्ययन करना।
4. जी-20 की अध्यक्षता करते हुए भारत के समक्ष कौनसे अवसर है, इसकी जाँच करना।

विश्लेषण

जी20 की अध्यक्षता के दौरान, भारत के पास वैश्विक शासन के लिए एक सफल बहुपक्षीय मंच का नेतृत्व करने का अवसर था। भारत परंपरागत रूप से विकासशील देशों को अपने साझा भविष्य का निर्णय लेने में बड़ी भूमिका निभाने की वकालत करता रहा है। भारत ने वैश्विक दक्षिण के देशों को अपने विचार, चिंताएं और सुझाव व्यक्त करने के लिए एक मंच देने के अलावा, दुनिया के इस क्षेत्र के साथ सहयोग बढ़ाने और लोगों की भलाई के लिए अपने अनुभव साझा करने का वादा किया है। जी-20 नेतृत्व को देखते हुए, भारत ने ग्लोबल साउथ के ऐसे देशों को मंच प्रदान किया है, जिनका प्रमुख वैश्विक संगठनों में कम प्रतिनिधित्व है।

---

1. प्रो. डॉ. संतोष शिवकुमार खत्री, राजनीति विज्ञान विभागाध्यक्ष, विद्यावर्धिनी महाविद्यालय, धुलिया, महाराष्ट

वैश्विक भूराजनीति और आर्थिक परिदृश्य से देखें तो हमेशा अनियमित परिवर्तनने गरीब देशों को नुकसान पहुंचाया हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हमेशा से ही मुख्य रूप से एकतरफा बिजली वितरण रहा है, अमीर देश केवल अपने हितों पर ध्यान देते हैं और उभरते देशों की उपेक्षा करते हैं। पश्चिमी दुनिया ने अधिकांश अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों और संगठनों के नेतृत्व और नियंत्रण पर अपना आधिपत्य जमा लिया है। हालाँकि, एक प्रमुख शक्ति के रूप में भारत का उद्भव इन हठधर्मी पश्चिम-केंद्रित दृष्टिकोणों का एक आश्चर्यजनक खंडन प्रस्तुत करता है। भारतने निरंतर दक्षिण राष्ट्रों का नेतृत्त्व किया है तथा उनकी आवाज अंतरराष्ट्रीय मंच पर उठाई है उसीका परिणाम जी-7 तथा जी-77 का एक मध्यमार्ग जी-20 है। इसीलिए भारत की जी-20 की अध्यक्षता के समक्ष चुनौतियाँ एवं अवसर को समझने से पहले जी-20 की उत्पत्ति को समझना होगा।

जी-20 की उत्पत्ति

1990 के दशक में दुनिया भर में महत्वपूर्ण ऋण संकट देखा गया। 1989 में भारत भी आर्थिक संकट से झूझ रहा था इसके साथ मैक्सिकन पेसो संकट (1993-94), एशियाई वित्तीय संकट (1997-98) और 1998 का रूसी वित्तीय संकट। इसी इसी दौरान वैश्वीकरण का दौर भी सुरू हो चुका था। वैश्वीकरण के इस दौर में, यह महसूस किया गया कि जी-7 और ब्रेटन वुड्स दुनिया को आवश्यक वित्तीय स्थिरता प्रदान करने में असमर्थ थे। इस प्रकार, विकासशील और विकसित देश दोनों दुनिया की बड़ी अर्थव्यवस्थाओं को एक साथ लाने के लिए, जी-7 की पहल पर 1999 में जी-20 (20 देशों का समुह) की स्थापना की गई थी। जी-20, दुनिया की प्रमुख विकसित और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं का एक अंतरसरकारी मंच है। इसमें भारत, ऑस्ट्रेलिया, अर्जेंटीना, ब्राजील, कनाडा, चीन, फ्रांस, जर्मनी, इंडोनेशिया, इटली, जापान, कोरिया गणराज्य, मैक्सिको, रशिया, सऊदी अरब, दक्षिण अफ्रीका, तुर्की, ब्रिटेन, अमेरिका और यूरोपीय संघ शामिल हैं।

जी-20 का विकास

मूल रूप से जी-20 की कल्पना सदस्य अर्थव्यवस्थाओं के वित्त मंत्रियों और केंद्रीय बैंक गवर्नरों के एक मंच के रूप में की गई थी, जो वित्तीय और व्यापक आर्थिक मुद्दों पर चर्चा करने के लिए मिलेंगे। 2008 के वित्तीय संकट की पृष्ठभूमि में, सदस्य देशों के प्रमुखों को शामिल करने के लिए जी-20 का दर्जा बढ़ाया गया था, और 2009 में, इसे श्अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग के लिए प्रमुख मंचश के रूप में नामित किया गया था। वर्तमान में, जी-20 के एजेंडे में स्वास्थ्य, कृषि, पर्यावरण, जलवायु परिवर्तन, ऊर्जा, व्यापार और सतत विकास सहित अन्य चीजें शामिल को शामिल किया गया है।

जी-20 ते तीन कार्यप्रवाह

जी-20 संगठन को चलाने के लिए ती कार्यप्रवाह हैं। 1) शेरपा कार्यप्रवाह, वित्त कार्यप्रवाह और सहभागिता समूहों।

शेरपा कार्यप्रवाह/मार्ग

शेरपा कार्यप्रवाह के माध्यम से, कई कार्य समूह और पहलकर्ता कृषि, शिक्षा, रोजगार, संस्कृति, पर्यटन आदि क्षेत्रों में विभिन्न विकासों पर चर्चा करने के लिए समय सीमा के तहत मिलते रहते हैं। ये कार्य समूह जी-20 की प्राथमिकताओं पर चर्चा करते हैं और सिफारिशें करते हैं। कार्य समूहों के प्रतिनिधियों में संबंधि त मंत्रालयों के अधिकारी और संबंधीत क्षेत्र के विशेषज्ञ शामिल होते हैं।

वित्त कार्यप्रवाह

वित्त मंत्रियों, केंद्रीय बैंक के गवर्नरों और उनके प्रतिनिधियों की बैठकों के माध्यम से वैश्विक आर्थिक दृष्टिकोण, जोखिमों, सुधारों, वित्तीय बुनियादी ढांचे, कराधान आदि पर चर्चा की जाती है।

सहभागिता समूह

सहभागिता समूहों में सदस्य राष्ट्रों के गैर-सरकारी अर्थव्यवस्थाओं प्रतिभागी शामिल होते हैं। ये समूह जी-20 नेताओं को सिफारिशें भी प्रदान करते हैं और नीति निर्माण में योगदान देते हैं। सहभागिता समूहों के कार्यक्षेत्रों में बिजनेस-20, नागरी-20, स्टार्टअप-20, एसएआई-20 आदि शामिल होते हैं।

इन तीन कार्यप्रवाहों के अलावा, जी-20 शिखर सम्मेलन में राष्ट्राध्यक्ष भाग लेकर अन्य आर्थिक और राजनीतिक मुद्दों पर चर्चा कर समाधान निकालने का प्रयास करतें हैं।

जी-20 का उद्देश

1) जी-20 का मुख्य उद्देश्य हमेशा दुनिया भर के प्रमुख विकसित देशों और उभरती अर्थव्यवस्थाओं के बीच सामूहिक कार्रवाई और समावेशी सहयोग के महत्व को पहचानना।
2) एक अग्रणी बहुपक्षीय मंच के रूप में, यह भविष्य की वैश्विक आर्थिक वृद्धि और समृद्धि को सुरक्षित करने में एक रणनीतिक भूमिका निभाना, क्योंकि इसके सदस्य वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद का 85 प्रतिशत, वैश्विक व्यापार का 75 प्रतिशत और दुनिया की दो-तिहाई आबादी का प्रतिनिधित्व करते हैं।

भारत की अध्यक्षता

हर वर्ष जी-20 के सदस्य देशों में से किसी एक को जी-20 का अध्यक्ष नामित किया जाता है। राष्ट्र का प्रमुख जी-20 के शिखर सम्मेलन और अन्य बैठकों की मेजबानी करता है, और जी-20 एजेंडे को एक साथ लाने के लिए भी जिम्मेदार होता है। जी-20 समूह का कोई स्थायी सचिवालय नहीं है। निरंतरता सुनिश्चित करने के लिए, अध्यक्ष पद को ट्रोइका (तिकड़ी) द्वारा समर्थित किया जाता है, जो वर्तमान मेजबान, पिछले मेजबान और अगले मेजबान से बनता है। वर्तमान ट्रोइका (तिकड़ी) में इंडोनेशिया (2022), भारत (2023) और ब्राजील (2024) शामिल हैं। यह पहली बार हुआ है कि भारतने जी-20 का अध्यक्षता की और शिखर सम्मेलन की मेजबानी की। जबकि अध्यक्ष पद भारत के लिए खुद को वैश्विक स्तर पर प्रस्तुत करने और एक प्रमुख विश्व समूह के एजेंडे को आकार देने के नए अवसर लाया, कई मोर्चों पर विभाजित दुनिया में भारत को कुछ चुनौतियों का सामना करना पड़ा तथा उन चुनौतियों पर खरा भी उतरा है।

भारत जब जी-20 की अध्यक्षता कर रहा था तब दुनिया का मौहोल संघर्षरत था एक ओर रशिया-युक्रेन युध्द तो दुसरी ओर आर्थिक संकट से झूजती अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था तथा कोविड-19 से उभरती दुनिया थी। इसलिये भारत की अध्यक्षता के सामने अनेकों चुनौतियाँ थी जिस पार कर नये अवसरों की तलाश करने की कशमकश थी। साथ-साथ खुद को दुनियाँ के सामने एक नेतृत्त्व को दिखाने तथा वैश्विक कुटुंबकम का दर्जा हासिल करने का अवसर था। अर्थात भारत के सामने कौनसी चुनौतियां एवं अवसर थे इसका विश्लेषण निम्न प्रकार से करने का प्रयास शोधकर्ता ने किया है।

भारत के सामने चुनौतियां

1. जी-20 अध्यक्ष के रूप में भारत के सामने आने वाली प्राथमिक चुनौतियों में से एक ब्व्टप्क-19 महामारी के बाद वैश्विक आर्थिक सुधार का नेतृत्व करना था। महामारी ने दुनिया भर की अर्थव्यवस्थाओं को गंभीर रूप से प्रभावित किया था, जिससे नौकरियां चली गई थी, व्यवसाय बंद हो गए था और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में व्यवधान उत्पन्न हुआ था। कोविड-19 ने विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं में भी व्यवधान पैदा किया था और उनके स्वास्थ्य बुनियादी ढांचे में अंतराल को उजागर किया था। भारत वैश्विक दक्षिण के हितों का प्रतिनिधित्व करने का दावा करता है और इस प्रकार, राजकोषीय नीतियों, ऋण स्थिरता और सभी देशों के लिए एक मजबूत और समावेशी वसूली

सुनिश्चित करने के लिए समन्वित प्रयासों पर जटिल चर्चाओं को नेविगेट करना भारत के सामने एक बड़ी चुनौती थी।

2. अठारह महिनों से अधिक समय बीत जाने के बाद भी यूक्रेन संकट अनसुलझा रहा और है। कच्चे तेल के साथ-साथ यह क्षेत्र पूरी दुनिया के लिए उर्वरक संबंधी रसायनों का भी प्रमुख आपूर्तिकर्ता है। इस प्रकार, युद्ध का दुनिया की खाद्य और ऊर्जा सुरक्षा पर गंभीर प्रभाव पड़ा। पिछले साल बाली शिखर सम्मेलन में युद्ध से संबंधित चर्चा कठिन साबित हुई थी और भारत कूटनीतिक रूप से स्थिति को संभालने में कितना सक्षम है, यह उसके नेतृत्व की परीक्षा थी। स्वाभाविक तौर पर रशिया का भारत पुराना मित्र होने के कारण पश्चिमी देशों का भारत पर दबाव था कि रशिया-युक्रेन युध्द के संबंध में भी शिखर सम्मेलन में चर्चा हो और भारत अपनी गुटनिरपेक्षता छोड़कर इस युध्द के संबंध रशिया के विरोध में जी-20 ठोस वक्तव्य करे।
3. भारत की जी-20 अध्यक्षता के लिए एक और महत्वपूर्ण चुनौती जलवायु परिवर्तन को संबोधित करना और सतत विकास को बढ़ावा देना थी। जलवायु परिवर्तन को अपनी प्राथमिकताओं में शामिल करने के लिए जी-20 का दायरा बढ़ गया था। और सबसे बड़े कार्बन उत्सर्जकों में से एक, जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील देश और वैश्विक दक्षिण की आवाज के रूप में, भारत वैश्विक जलवायु नीतियों को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जबकि जी-20 ने 2050 तक कार्बन तटस्थता हासिल करने की प्रतिबद्धता जताई थी, लेकिन जमीनी स्तर पर बदलाव की योजना बनाना आसान नहीं था।
4. बढ़ते संरक्षणवाद और व्यापार तनाव के बीच भारत को एक निष्पक्ष और समावेशी वैश्विक व्यापार प्रणाली की वकालत करने की चुनौती थी।
5. विकसित और विकासशील देशों के हितों को संतुलित करने, व्यापार असंतुलन को दूर करने और नियम-आधारित अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था को बढ़ावा देने के लिए कूटनीतिक चालाकी और बातचीत यह भी एक चुनौती भारत के समक्ष थी।
6. भारत जी-20 के अध्यक्षों की तिकड़ी के केंद्र में भी है - क्रमशः इंडोनेशिया, भारत और ब्राजील - ये सभी उभरती अर्थव्यवस्थाएँ हैं, इस प्रकार, एक बहुत ही महत्वपूर्ण मोड़ पर 'ग्लोबल साउथ' की चिंताओं को सुनने के लिए एक बड़ी आवाज प्रदान करना एक बड़ी चुनौती थी।

भारत के लिए अवसर

1. चुनौतियों से भरा होने के बावजूद, जी-20 की अध्यक्षता भारत के लिए कई अवसर भी प्रस्तुत किये। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, यह पहली बार है कि भारतने जी-20 शिखर सम्मेलन की अध्यक्षका की। भारत ने वसुधैव कुटुंबकम - एक पृथ्वी, एक परिवार, एक भविष्य - की थीम को अपनाया था। जबकि जी-20 का अध्यक्षपद ने भारत के एजेंडे और उसके सहयोगियों के हितों को आगे बढ़ाने का अवसर दिया, स्थानिक और अस्थायी रूप से ट्रैक 1 और ट्रैक 2 बैठकें भी भारत की ब्रांड जागरूकता बढ़ाने का अवसर प्रदान किए।
2. सूचना प्रौद्योगिकी और नवाचार में भारत की प्रगति डिजिटल अर्थव्यवस्था द्वारा प्रस्तुत अवसरों का दोहन करने में सक्षम रहा। जी-20 अध्यक्ष के रूप में, भारत डिजिटल साक्षरता, वित्तीय समावेशन, ई-गवर्नेंस, स्वास्थ्य देखभाल प्रदान करने और सतत विकास के लिए प्रौद्योगिकी का लाभ उठाने के तरीकों की खोज को बढ़ावा दिया। जबकि यूपीआई विभिन्न सरकारी और गैर-सरकारी मंचों के माध्यम से एक बड़ी घरेलू सफलता रही, भारत के बढ़ते दबदबे के अनुरूप, इस मंच को वैश्विक

स्तर पर आगे बढ़ाने का अवसर प्रदान किया।

3. भारत की जी-20 की अध्यक्षता वैश्विक स्वास्थ्य प्रणालियों को प्राथमिकता देने और महामारी के बाद अंतर्राष्ट्रीय सहयोग बढ़ाने का एक अनूठा अवसर मिला। भारत, जेनेरिक दवाओं का एक प्रमुख आपूर्तिकर्ता और वैक्सीन उत्पादन का केंद्र होने के नाते, स्वास्थ्य देखभाल तक समान पहुंच, स्वास्थ्य बुनियादी ढांचे को मजबूत करने और भविष्य के स्वास्थ्य संकटों के खिलाफ लचीलापन बनाने पर चर्चा में महत्वपूर्ण योगदान देने की पहल की और सफलता प्राप्त की। जिससे वैश्विक स्वास्थ्य सेवा के साथ-साथ, इस मुद्दे पर किसी भी प्रगति से भारतीय अर्थव्यवस्था को मदद प्राप्त होगी।
4. विश्व सकल घरेलू उत्पाद में पर्यटन की हिस्सेदारी लगभग 6.1% है। और यद्यपि भारत दुनिया के सबसे विविध देशों में से एक है, फिर भी विभिन्न वैश्विक पर्यटन रैंकिंग में भारत का स्थान बहुत नीचे है। जी-20 भारत के लिए खुद को एक प्रमुख पर्यटन स्थल के रूप में प्रचारित करने का अवसर मिला। अपने आकर्षणों को बढ़ावा देकर, साझेदारियों को सुविधाजनक बनाकर, आवश्यक बुनियादी ढांचे के विकास की वकालत करके और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा देकर, भारत पर्यटन में अपनी वास्तविक क्षमता बढ़ावा दिया और जी-20 का इस संबंध में योग्य उपयोग किया।
5. भारत ने दिसंबर में जी-20 की अध्यक्षता संभाली और आश्चर्य की बात नहीं है कि चल रहे यूक्रेन संघर्ष, कोविड -19 रिकवरी और वैश्विक आर्थिक स्थिरता सभी 2023 के प्रमुख घोषणापत्र का हिस्सा बनाया। हालांकि, मंच की प्राथमिकताओं को तैयार करने के शीर्ष पर रहते हुए, नई दिल्लीने प्रमुख अंतरराष्ट्रीय आर्थिक मुद्दों पर वैश्विक वास्तुकला और शासन को आकार देने और मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
6. भू-राजनीतिक परिप्रेक्ष्य से, इसका मतलब है कि भारत रूस के साथ अपने ऐतिहासिक और सौहार्दपूर्ण संबंधों का लाभ उठाने का अवसर था। और भारत की अध्यक्षता 200 से अधिक जी-20 बैठकों की चर्चा और कूटनीति गोलमेज में एक और अलग-थलग मॉस्को ला सकता थी। जी-20 मंच का उपयोग यूक्रेन संघर्ष को संबोधित करने, शांति के लिए रणनीति बनाने और यथासंभव सुलह की दिशा में मार्ग प्रशस्त करने के लिए हो सकता है। आखिरकार, जी-20 की विज्ञप्ति कि 'आज का युग युद्ध का नहीं होना चाहिए' कुछ महीने पहले ही रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन को प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी के संदेश की प्रतिध्वनि थी।
7. हालांकी यह माना जाता है कि जी-20 आवश्यक रूप से सुरक्षा मुद्दों को हल करने का मंच नहीं है, यह आर्थिक सहयोग के लिए एक अग्रणी मंच के रूप में विकसित हुआ है। ऐसे मामलों का अभी भी वैश्विक अर्थव्यवस्था पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ रहा है। इसलिए, इन मुद्दों को यथासंभव संबोधित करना जी-20 पर निर्भर करता था और है, खासकर जब संयुक्त राष्ट्र और अन्य द्विपक्षीय हस्तक्षेप संघर्ष को फैलाने में विफल रहे हैं। ऐसे में पश्चिमी देश सुरक्षा के मामलों को उठाने का दबाब बना रहा मगर भारत ने रशिया और पश्चिमी देशों के बीच सामजस्य बनाए रखा और विश्व का नेतृत्त्व कैसे किया जाता है यह दिखाने की कोशिश की।
8. इस बहुपक्षीय मंच को और अधिक प्रासंगिक कैसे बनाया जाए। भले ही यूक्रेन संघर्ष, एक मुखर चीन के उदय के कारण बढ़ते भू-राजनीतिक तनाव को साथ मिलकर, भारत के नेतृत्व और बहुपक्षवाद के गिरते युग में जी-20 की विश्वसनीयता को पुनर्जीवित करने की क्षमता का परीक्षण था, नई दिल्ली एक ऐसे अध्यक्ष पद की आकांक्षा रखती थी जो 'समावेशी, महत्वाकांक्षी, निर्णायक और कार्य-उन्मुख हो।' जिस भारत की कुटनीति और कुशल नेतृत्त्व ने पूरा करके दिखाया।

निष्कर्ष

भारत जी–20 की अध्यक्षता संभालते हुए अविकसित, गरीब और गुटनिरपेक्ष राष्ट्र की अपनी पिछली छवि को न त्यागते हुए वैश्विक नेतृत्व की भूमिका निभाई। इस जी–20 के अध्यक्षता से ऐसा नेतृत्त्व प्रदान किया जिस पर दुनियाने भरोसा किया, जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका एक वैश्विक पुलिसकर्मी के रूप में दूर रहना चाहता है, कोई भी देश चीन और रूस जैसे सत्तावादी शासन पर भरोसा नहीं करना चाहता है। ऐसे में ऐसा प्रतीत होता है कि दुनिया के पास भारत से बेहतर कोई विकल्प नहीं है।

जी–20 की अध्यक्षता में, भारत ने पूर्व–पश्चिम संघर्ष को पाटने के लिए दोनों पक्षों के पक्षपातपूर्ण दबावों पर काबू पाते हुए एक नाजुक संतुलन बनाया। और इसे अपने स्वयं के रणनीतिक स्वार्थों के साथ–साथ वैश्विक समुदाय के केंद्रीय मुद्दों से सावधानीपूर्वक निपटाया तथा अगले साल जी–20 के लिए ठोस वार्ता, कार्यान्वियन और परिणाम के लिए एक आदर्श तैयार किया, जिसका समापन एक नेता के शिखर सम्मेलन के साथ किया। 'वसुधैव कुटुंबकम' – दुनिया एक परिवार है – के गुण को अपने जी–20 थीम के रूप में बढ़ावा देते हुए, भारत को आने वाले वर्ष में इस अव्यवस्थित परिवार को कुशलतापूर्वक प्रबंधित किया है। और इस नेतृत्वकारी भूमिका के माध्यम से, इसे एक तेज, अधिक लचीले और समावेशी वैश्विक आर्थिक सुधार का खाका तैयार करते हुए विकासात्मक एजेंडे को प्राथमिकता दी।

संदर्भ

1. https://politicsforindia.com/indias-g20-presidency-challenges-and-opportunities/
2. https://www.g20.org/content/dam/gtwenty/gtwenty_new/about_g20/G20_Background_Brief.pdf
3. https://moes.gov.in/g20-india-2023/moes-g20?language_content_entity=en
4. https://www.politico.eu/article/opportunities-and-challenges-of-india-pm-narendra-modi-g20-presidency/
5. https://indianexpress.com/article/opinion/columns/g20-grouping-challenges-g20-summit-diplomatic-success-global-financial-crisis-8943131/
6. https://www.idos-research.de/en/briefing-paper/article/the-g20-its-role-and-challenges/
7. https://www.g20.org/en/about-g20/

❑❑❑

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ग्रुप ट्वेंटी (जी 20) शिखर परिषद् एवं महात्मा गाँधी

❍ छोटू एन. मावची[1]
❍ प्रो. डॉ. विजय तुंटे[2]

परिचयः

आज बढ़ती वैश्विक हिंसा, आतंकवादी हमले, राजनीतिक समस्याएँ, भ्रष्टाचार, राष्ट्रीय हित के हथियार, विनाशकारी अहंकारी प्रतिस्पर्धा और असहिष्णुता से प्रेरित हिंसक प्रवृत्तियों ने दुनिया को युद्ध की ओर आकर्षित किया है। (जैसे रूस-यूक्रेन युद्ध[1], इस्रायल-हमास युद्ध[2] आदि) मानव सभ्यता की रक्षा करें।और उनके लिए शांति आवश्यक है। इन चुनौतियों के समाधान के लिए शायद आज दुनिया को गांधी जी की विचारधारा की जरूरत है। संयुक्त राष्ट्र (यूएनओ) एक अंतरराष्ट्रीय मंच है जो दुनिया भर के देशों को शांति स्थापित करने और विकास के लिए काम करने और दुनिया के देशों को एक साथ लाने में मदद करता है। बेशक, यह उनके बीच संबंधों और सहयोग को मजबूत करने के लिए अस्तित्व में आया है। इनमें से कुछ संगठनों का दायरा वैश्विक है। यानी ये अंतरराष्ट्रीय हैं और कुछ क्षेत्रीय स्तर पर हैं। (उदागुटनिरपेक्ष आंदोलन (NAM), दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (SAARC), यूरोपीय संघ आदि) कुछ इसी तरह से प्रस्तुत लघु शोध निबंध में शोध कर्ताओं ने वैश्विक स्तरपर G-20 संघठन के अंतर्गत महात्मा गाँधीजी की अंतर्राष्ट्रीय राजनीती के तत्व एवं ग्रुप ऑफ ट्वेंटी संबंधी जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया है।

बीज शब्द : महात्मा गाँधीजी, अंतर्राष्ट्रीय राजनीती, G-20, वैश्विक, अहिंसा, अभिजनवर्ग

अनुसंधान का हेतु: 1. G-20 का अध्ययन करना। 2. गाँधीजी अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की विचारप्रणाली का अध्ययन करना।

अनुसंधान की परिकल्पना : 1. वैश्विक स्तरपर G-20 संघठन महत्वपूर्ण हैं। 2. वैश्विक शांति के लिए आज भी गाँधीजी की अंतर्राष्ट्रीय राजनीती की विचारप्रणाली की आवशकता महसूस होती हैं।

अनुसंधान की व्याप्ति : प्रस्तुत लघु शोध निबंध में शोधकर्ताओं ने वैश्विक स्तरपर G-20 संघठन के अंतर्गत महात्मा गाँधीजी की अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के तत्व संबंधी जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया है।

अनुसंधान की पद्धतिः प्रस्तुत लघु शोध निबंध में द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है।

---

1. शोधछात्र, प्रताप कॉलेज, अमलनेर, क.ब.चौ.उ.म.वि.जलगांव

2. पथप्रदर्शक, प्रताप कॉलेज, अमलनेर, जलगांव

तथ्यों का विश्लेषण:

जी20 एवं गांधीजी के वैश्विक विचारधारा:

गांधीजी ने कहा कि हमने अंग्रेजों के खिलाफ शांति भंग नहीं होने दी। एक व्यक्ति ने गांधीजी से पूछा कि हमें केवल अंग्रेजों के साथ शांति से रहना चाहिए?, या हम में भी? इस पर गांधीजी ने उत्तर दिया कि शांति, सहयोग, मानव कल्याण, सबके प्रति सहानुभूति और सहिष्णुता स्थापित करना आवश्यक है।शांति भी सूक्ष्म वीर्य है और इसका संचय करने वाला भी परिपक्व ब्रह्मचारी है।जिस प्रकार भौतिक सुख के लिए शारीरिक ब्रह्मचर्य आवश्यक है उसी प्रकार आध्यात्मिक ब्रह्मचर्य भी आवश्यक है।गांधीजी ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध कहा था कि यदि हमने अपने सभी विरोधियों के साथ तन, मन और शांति, नम्रता और विचारपूर्वक अच्छा व्यवहार किया होता तो अब तक सारी शक्ति हमारे हाथ में होती।[3]

आज विश्व स्तर पर प्रत्येक देश अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए विभिन्न तकनीकी एवं अनैतिक राजनीति के माध्यम से अपने लक्ष्यों को पूरा करता हुआ पाया जाता है।लेकिन गांधी जी को यह मंजूर नहीं था. गांधी के अनुसार, अभिजात वर्ग को राष्ट्र के सुचारु और कल्याणकारी, मानवीय गुणों को विकसित करने और स्वतंत्रता, भाईचारे और सामाजिक समानता को प्रशिक्षित करने के लिए नैतिक दृष्टिकोण के साथ एक आध्यात्मिक, अनुशासित राजनीति होनी चाहिए। तभी संपूर्ण विश्व में शांति स्थापित की जा सकती है।[4] गांधी एक नैतिक राजनीतिज्ञ थे। इसलिए उन्होंने नि:संदेह गांधीजी ने वैश्विक स्तर पर अंतर्राष्ट्रीय सहकारी राजनीति को और सामाजिक जीवन को नैतिक दृष्टि से देखा तथा राजनीति में सत्य और अहिंसा के मूल्यों को भी महत्वपूर्ण माना। सामान्यत: राजनीति छल, कपट, हिंसा आदि का षड्यंत्र क्षेत्र है, परन्तु गाँधीजी राजनीति और समाज में कुप्रवृत्तियों को स्वीकार नहीं करते। वे सदाचारी राजनीति चाहते थे।[5]

आज वैश्विक स्तर पर शांति स्थापित करने के लिए गांधीजी के सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों की अधिक आवश्यकता महसूस हुई होगी। शायद इन विचारधाराओं को मध्य नजर रखते हुए जी20 का दूसरा दिन भारत के प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी ने विश्व नेताओं के साथ 10 सितंबर, 2023 को नई दिल्ली में जी20 शिखर सम्मेलन के मौके पर राज घाट पर महात्मा गांधी स्मारक पर श्रद्धांजलि अर्पित की। की। नेता स्मारक के चारों ओर रखे गए पुष्पांजलि के सामने खड़े थे, जिसमें अखंड ज्योति समाहित थी। वह नारंगी और पीले गेंदे की मालाओं से भी लिपटा हुआ था।[6] एक हिंदू भक्ति गीत की प्रस्तुति के बाद, गांधी की स्मृति में अखंड ज्योति वाले संगमरमर के चबूतरे पर पुष्पांजलि अर्पित करने से पहले सभी गणमान्य व्यक्ति कुछ क्षण के लिए मौन खड़े हुए।[7] प्रत्येक को खादी से बना एक शॉल उपहार दिया। एक हाथ से बुना हुआ कपड़ा जिसे गांधीजी ने अंग्रेजों के खिलाफ भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान प्रचारित किया था। कुछ नेता- जिनमें ब्रिटिश प्रधान मंत्री ऋषि सुनक और पिछले साल के G20 मेजबान इंडोनेशिया के राष्ट्रपति जोको विडोडो शामिल थे- आतिथ्य दिखाने के लिए स्मारक पर नंगे पैर(बिना जूतों) गए। अमेरिकी राष्ट्रपति जो बिडेन और अन्य लोग भारी बारिश के कारण पोखरों से गुजरते समय चप्पल पहने हुए थे।[8]

कोविड महामारी ने यह स्पष्ट कर दिया है कि जब तक हम अपने मतभेदों को दूर रखते हैं और एक जिम्मेदार राष्ट्र के रूप में लोगों के सामान्य हित के लिए सहयोग करते हैं, अब एक बेहतर दुनिया के लिए एक साथ आने का सही समय है। बेशक, इसके बिना वैश्विक स्तर पर समस्याओं का समाधान करना मुश्किल है। बुद्ध और महात्मा गांधी की भूमि से शांति और सद्भाव का मजबूत संदेश देने की खूबसूरत शुरुआत के लिए इससे बेहतर जगह नहीं हो सकती।हालाँकि, सभी के लिए विकास, न्याय, समानता और सद्भाव और महात्मा गांधी (राष्ट्रपिता) के समान मूल्यों को बढ़ावा देने के लिए G20-2023 और COP28 के मंच का उपयोग करना आवश्यक है।[9] 'वन पृथ्वी' सत्र में जापान सहित कई जी20 सदस्य संयुक्त राष्ट्र चार्टर के पालन और

यूक्रेन पर रूस की आक्रामकता के जवाब में न्याय और स्थायी शांति की स्थापना पर जोर दिया।[10] प्रतिष्ठित राजघाट पर, जी20 परिवार ने शांति, सेवा, करुणा और अहिंसा के प्रतीक महात्मा गांधी को श्रद्धांजलि अर्पित की। जैसे-जैसे विविध राष्ट्र एक साथ आते हैं, गांधी के शाश्वत आदर्श सामंजस्यापूर्ण, समावेशी और समृद्ध वैश्विक भविष्य के लिए हमारी सामूहिक दृष्टि का मार्गदर्शन करते हैं।" प्रधान मंत्री इस प्रकार पोस्ट करेंगे।[11]

शांति और समृद्धि के लिए

1. दुनिया भर में युद्धों और संघर्षों के कारण मानव समुदाय को होने वाली पीड़ा को चिंता का विषय माना गया।
2. संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुसार, सभी राज्यों को किसी भी राज्य की क्षेत्रीय अखंडता और संप्रभुता या राजनीतिक स्वतंत्रता के खिलाफ क्षेत्रीय अधिग्रहण प्राप्त करने के लिए बल के खतरे या उपयोग से बचना चाहिए।
3. परमाणु हथियारों का उपयोग या उपयोग की धमकी अस्वीकार्य है।
4. जी20 द्वारा गंभीर चिंता व्यक्त की गई कि बढ़ती सामाजिक-आर्थिक असुरक्षा और असुरक्षा के कारण मौजूदा नागरिकों की सुरक्षा को लेकर संघर्ष मानवीय प्रतिक्रिया में बाधा बन रहे हैं।
5. इसने सभी राज्यों से क्षेत्रीय अखंडता और संप्रभुता, अंतर्राष्ट्रीय मानवीय कानून, शांति और स्थिरता की रक्षा करने वाली बहुपक्षीय प्रणाली सहित अंतरराष्ट्रीय कानून के सिद्धांतों को बनाए रखने का आह्वान किया।
6. संघर्षों के शांतिपूर्ण समाधान और संकटों को हल करने के प्रयासों के साथ-साथ कूटनीति और संवाद को महत्वपूर्ण दिखाया गया।
7. 'एक पृथ्वी, एक परिवार, एक भविष्य' की भावना ने राष्ट्रों के बीच शांतिपूर्ण, मैत्रीपूर्ण संबंधों को बढ़ावा देने का भी प्रयास किया।[12]

G20 के अब तक हुए सभी शिखर सम्मेलनों की सूची निम्नलिखित 2023-2008

18वाँ शिखर सम्मेलन नई दिल्ली 2023; 17वाँ शिखर सम्मेलन बाली(इंडोनेशिया)शिखर सम्मेलन 2022, 16वाँ शिखर सम्मेलन रोमा शिखर सम्मेलन (अक्टूबर 2021); 15वाँ शिखर सम्मेलन रियाद शिखर सम्मेलन (नवंबर 2020); 14वाँ शिखर सम्मेलन ओसाका शिखर सम्मेलन (जून 2019); 13वाँ शिखर सम्मेलन ब्यूनस आयर्स शिखर सम्मेलन (नवंबर 2018); 12वाँ शिखर सम्मेलन हैम्बर्ग शिखर सम्मेलन (जुलाई 2017); 11वाँ शिखर सम्मेलन हांग्जो शिखर सम्मेलन (सितंबर 2016); 10वाँ शिखर सम्मेलन अंताल्या शिखर सम्मेलन (नवंबर 2015); 9वाँ शिखर सम्मेलन ब्रिस्बेन शिखर सम्मेलन (नवंबर 2014); 8वाँ सेंट-पीटर्सबर्ग शिखर सम्मेलन (सितंबर 2013); 7वाँ शिखर सम्मेलन लॉस काबोस शिखर सम्मेलन (जून 2012); 6वाँ शिखर सम्मेलन कान्स शिखर सम्मेलन (नवंबर 2011), 5वाँ शिखर सम्मेलन सियोल शिखर सम्मेलन (नवंबर 2010), चौथा शिखर सम्मेलन टोरंटो शिखर सम्मेलन (जून 2010), तीसरा शिखर सम्मेलन पिट्सबर्ग शिखर सम्मेलन (सितंबर 2009), दूसरा शिखर सम्मेलन लंदन शिखर सम्मेलन (अप्रैल 2009), प्रथम शिखर सम्मेलन वाशिंगटन डीसी शिखर सम्मेलन (नवंबर 2008)[13]

नई दिल्ली में 2023 के जी20 के शिखर सम्मेलन में शामिल अतिथि राष्ट्रों की सूची :

अर्जेंटिना (अध्यक्ष: अल्बर्टो फर्नांडिस), ऑस्ट्रेलिया पंतप्रधान-अँथनी अल्बानीज), ब्राझील (राष्ट्रपति-लुईझ इनासिओ), कॅनडा(पंतप्रधान-जस्टिनट्रुडो), चीन(लीच्यांग), फ्रान्स(राष्ट्राध्यक्ष-इमॅन्युएल-मॅक्रॉन),

जर्मनी(चांसलर-ओलाफ स्कॉल्झ), भारत(पंतप्रधान-नरेंद्र मोदी), इंडोनेशिया(प्रजासत्ताकाचे अध्यक्ष-जोको विडोडो), इटली(पंतप्रधान-जॉर्जिया मेलोनी), जपान(पंतप्रधान-फ्युमिओ किशिदा), दक्षिण कोरिया(अध्यक्ष -यून सुक येओल), मेक्सिको(अध्यक्ष-आंद्रेस मॅन्युएल), रशिया(परराष्ट्र व्यवहार मंत्री-सेर्गेई लाव्रोव्ह), सौदी अरेबिया(क्राउन प्रिन्स-मोहम्मद बिन सलमान), दक्षिण आफ्रिका(अध्यक्ष-सिरिल रामाफोसा), तुर्की(अध्यक्ष-आरसी एर्दोगन), युनायटेड किंगडम(पंतप्रधान -ऋषी सुनक), युनायटेड स्टेट्स(अध्यक्ष-जो बिडेन)आणि युरोपियन युनियन (युरोपियन कौन्सिलचे अध्यक्ष -चार्ल्स मायकेल)

2023 G20 शिखर सम्मेलन नई दिल्ली में समय-सारिणी:

Event	**G20 Summit 2023 Schedule**	**G20 Summit City**
Finance Deputies Meeting	5th and 6th September 2023	New Delhi
Joint Sherpas and Finance Deputies Meeting	6th September 2023	New Delhi
G20 Summit	9th and 10th September 2023	New Delhi
4th Sustainable Finance Working Group Meeting	13, 14 September 2023	Varanasi
4th Meeting for the Global Partnership for financial Inclusion	14, 15, 16 September 2023	Mumbai
4th Framework Working Group Meeting	18, 19 September 2023	Raipur
4th International Financial Architecture Working Group Meeting	20, 21, 22 September 2023	Seoul, Republic of Korea

Source: https://www.nalandaopenuniversity.com/g20-summit-2023-schedule-venue-dates(14)

विश्व नेताओं के लिए दो दिवसीय कार्यक्रम की रूपरेखा:

पहला दिन: (सितंबर 9, 2023)

अ) सुबह 9.30 बजे से 10.30 बजे तक: भारत मंडपम में नेताओं और प्रतिनिधिमंडलों के प्रमुखों के आगमन के साथ कार्यक्रम। उसके बाद, प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी ट्री ऑफ लाइफ फोयर के साथ विश्व नेताओं के साथ तस्वीरें लेने वाले थे। इसके बाद नेता भारत मंडपम में लीडर्स लाउंज में एकत्र हुए।

ब) सुबह 10:30 से दोपहर 1:30 के बीच: 'वन अर्थ' विषय के तहत पहला सत्र भारत मंडपम के शिखर सम्मेलन हॉल में आयोजित किया गया, उसके बाद दोपहर के भोजन का आयोजन किया गया।

क) दोपहर 1:30 बजे से 3:30 बजे के बीच: विभिन्न द्विपक्षीय बैठकें।

ड) दोपहर 3:30 बजे से शाम 4:45 बजे तक: दूसरे सत्र में 'एक परिवार' पर एक कार्यक्रम आयोजित किया जाएगा। सम्मेलन के समापन के बाद नेता अपने होटल लौट जायेंगे.

प) शाम 7 से 8 बजे के बीच: नेता और प्रतिनिधिमंडल के प्रमुख रात्रिभोज में भाग लेते हैं और आगमन

पर स्वागत फोटो के साथ शुरुआत करते हैं।

फ) रात 8 से 9 बजे: नेता रात्रि भोज पर बातचीत में संलग्न होते हैं।

ब) 9 से 9:45 बजे: नेता और प्रतिनिधिमंडल के प्रमुख बाद में भारत मंडपम में लीडर्स लाउंज में इकट्ठे हुए और अपने होटल लौट आए।

दूसरा दिन: (सितंबर 10, 2023)

ए) सुबह 8:15 से 9 बजे तक: नेता और प्रतिनिधिमंडल के प्रमुख अलग-अलग मोटरकारों से राजघाट पहुंचे।

बी) सुबह 9:00 बजे से 9:20 बजे तक: इसके बाद नेता ने महात्मा गांधी की समाधि पर पुष्पांजलि अर्पित की. साथ ही, महात्मा गांधी के पसंदीदा भक्ति गीतों का लाइव प्रदर्शन भी किया जाएगा।

ग) सुबह 9:20 बजे: इसके बाद नेता और प्रतिनिधिमंडल के प्रमुख भारत मंडपम के लीडर्स लाउंज के लिए रवाना हुए।

घ) सुबह 9:40 से 10:15 बजे तक: भारत मंडपम में नेताओं और प्रतिनिधिमंडल के प्रमुखों का आगमन

ई) सुबह 10:15 से 10:30 बजे तक: भारत मंडपम के साउथ प्लाजा में वृक्षारोपण समारोह आयोजित किया गया।

च) सुबह 10:30 से दोपहर 12:30 तक: शिखर सम्मेलन का तीसरा सत्र 'वन फ्यूचर' शीर्षक से इस स्थान पर आयोजित किया गया था। इसके बाद नई दिल्ली के नेताओं का ऐलान मान लिया गया।[15] भारत 9 और 10 सितंबर को राजधानी नई दिल्ली में दो दिवसीय जी20 शिखर सम्मेलन आयोजित किया गया था। जिसमें दुनिया के सबसे अमीर और ताकतवर देशों के नेता मौजूद थे। मंच ने अंतर्राष्ट्रीय ऋण संरचना में सुधार, जलवायु परिवर्तन के प्रभाव और खाद्य सुरक्षा पर भूराजनीतिक अशांति के प्रभाव पर चर्चा की।

G20 क्या है: दुनिया के 20 प्रमुख देशों ने 1999 में एशियाई वित्तीय संकट के बाद एक आर्थिक गुट का गठन किया, यह महसूस करते हुए कि ऐसे संकटों को अब राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर नहीं रोका जा सकता है और इसके लिए बेहतर अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग की आवश्यकता है।यह समूह वर्तमान में वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 85%, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का 75% और दुनिया की आबादी का 2/3 हिस्सा रखता है। हालाँकि शुरुआती वर्षों में केवल ट्रेजरी प्रमुख ही मिलते थे, 2008 के वित्तीय संकट के बाद सभी सदस्य देशों के प्रमुखों ने नेताओं के शिखर सम्मेलन के लिए साल में एक बार मिलने का फैसला किया।

G20 का उद्देश्य: यह संघठन वैश्विक अर्थव्यवस्था से संबंधित प्रमुख मुद्दों का हल निकालने के लिए गठित किया गया है. जिसमें अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय स्थिरता, जलवायु परिवर्तन शमन और सतत विकास जैसे मुद्दे शामिल है। साथ ही यह ग्रुप प्रमुख अंतरराष्ट्रीय आर्थिक मुद्दों पर वैश्विक नेतृत्व को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाए।

प्राथमिकताएँ:

सर्वसमावेशक, न्यायसंगत और सतत् विकास, जीवन (पर्यावरण के लिये जीवन शैली), महिला सशक्तीकरण, स्वास्थ्य, कृषि और शिक्षा से लेकर वाणिज्य तक के क्षेत्रों में डिजिटल सार्वजनिक अवसंरचना एवं तकनीक-सक्षम विकास, कौशल-मानचित्रण, संस्कृति और पर्यटन,जलवायु वित्तपोषण; चक्रीय अर्थव्यवस्था, वैश्विक खाद्य सुरक्षा, ऊर्जा सुरक्षा, ग्रीन हाइड्रोजन, आपदा जोखिम में कमी तथा अनुकूलन, विकासात्मक

सहयोग; आर्थिक अपराध के विरुद्ध लड़ाई,और बहुपक्षीय सुधार।

G20 का विस्तार: ब्लूमबर्ग न्यूज ने मामले से परिचित लोगों का हवाला देते हुए गुरुवार को कहा कि जी20 अफ्रीकी संघ को स्थायी सदस्यता देने पर सहमत हो गया है। यह निर्णय 55 सदस्य देशों के एक महाद्वीपीय निकाय, अफ्रीकी संघ को 'आमंत्रित अंतर्राष्ट्रीय संगठन' के वर्तमान पदनाम से यूरोपीय संघ के समान दर्जा देगा।

अन्य देशों की भागीदारी(अतिथि देश): सम्मेलन में नौ गैर-सदस्य देशों को आमंत्रित किया गया था, जिनमें संयुक्त अरब अमीरात (यूएई), ओमान, मिस्र, नीदरलैंड, बांग्लादेश, सिंगापुर, स्पेन, मॉरीशस और नाइजीरिया शामिल थे। इसके अलावा संयुक्त राष्ट्र, विश्व स्वास्थ्य संगठन, विश्व बैंक और अंतरराष्ट्रीय संगठन शामिल थे.

इसके अलावा शिखर सम्मेलन अन्य अंतरराष्ट्रीय संगठनों को अतिथि के रूप:

भारत ने तीन क्षेत्रीय और तीन अन्य अंतरराष्ट्रीय संगठनों को अतिथि के रूप में आमंत्रित किया है। क्षेत्रीय संगठनों में अफ्रीकी संघ (एयू), अफ्रीकी संघ विकास एजेंसी-अफ्रीका के विकास के लिए नई साझेदारी (एयूडीए-एनईपीएडी), और दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्र संघ (आसियान) शामिल हैं। अंतर्राष्ट्रीय संगठन अंतर्राष्ट्रीय सौर गठबंधन (आईएसए),आपदा प्रतिरोधी बुनियादी ढांचे के लिए गठबंधन (सीडीआरआई),और एशियाई विकास बैंक (एडीबी) हैं।

शिखर परिषदेची थीम: भारत की G20 थीम संस्कृत के वाक्यांश 'वसुधैव कुटुंबकम' से ली गई है जिसका अनुवाद 'दुनिया एक परिवार है' है।[16]

G20 की आलोचना: 20 शिखर सम्मेलन का वार्षिक समूह विश्व नेताओं को एक ऊंचे लक्ष्य को आगे बढ़ाने के लिए एक साथ लाता है: वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए एक समन्वित रणनीति। लेकिन G20 ने अपनी महत्वाकांक्षाओं की दिशा में कितनी प्रगति की है? और इस साल (यानी 2023) भारत में शनिवार और रविवार को आयोजित किया गयानई दिल्ली में बैठक के एजेंडे में जलवायु परिवर्तन, आर्थिक विकास और कम आय वाले देशों में कर्ज का बोझ, साथ ही यूक्रेन में रूस के युद्ध से बढ़ी मुद्रास्फीति भी शामिल थी। यदि सदस्य इनमें से किसी एक या सभी मुद्दों पर सहमत हो सकते हैं, तो वे अंतत: एक आधिकारिक संयुक्त घोषणा प्रस्तुत करेंगे। तो क्या हुआ अधिक बार, जब वास्तविक दुनिया के परिणामों की बात आती है तो अधिक नहीं।

1999 में अपनी स्थापना के बाद से समूह के अधिकांश संयुक्त बयानों में गैस के धुएं जैसे ठोस प्रस्तावों का वर्चस्व रहा है, जब राष्ट्रों ने खराब प्रदर्शन किया है तो कोई स्पष्ट परिणाम नहीं हुए हैं। एक उदाहरण: रोम में 2021 शिखर सम्मेलन में, जी20 नेताओं ने कहा कि वे 'सार्थक और प्रभावी कार्रवाई' के साथ ग्लोबल वार्मिंग को सीमित करेंगे, विदेशी कोयला बिजली संयंत्रों के वित्तपोषण को समाप्त करने की प्रतिज्ञा पर प्रकाश डाला। लेकिन घरेलू कोयला निवेश को बातचीत से बाहर रखा गया। और अंतर्राष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी के अनुसार, 2022 में, दुनिया भर में कोयला आधारित बिजली उत्पादन एक नई ऊंचाई पर पहुंच गया।इस वर्ष, कोयले में निवेश 10 प्रतिशत बढ़कर 150 बिलियन डॉलर हो जाएगा- जी20 के बयानों और वैज्ञानिक सहमति के बावजूद कि कोयले का उपयोग तुरंत बंद होना चाहिए।

G20 के सकारात्मक अहमियत

1. 1990 के दशक के अंत में बड़े पैमाने पर मुद्रा अवमूल्यन की लहर के बाद वित्त मंत्रियों की एक बैठक के साथ ग्रुप ऑफ ट्वेंटी की शुरुआत हुई।
2. वैश्विक वित्तीय संकट के बाद विश्व नेताओं की वार्षिक बैठक आयोजित की गई
3. वरिष्ठ अधिकारियों (मुख्य रूप से जर्मन, कनाडाई और अमेरिकी) ने इसे पश्चिमी नेतृत्व वाले 7 देशों के समूह या जी7 की तुलना में अधिक लचीले, समावेशी मंच के रूप में देखा।

4. उनका मानना था कि स्थापित और उभरती दोनों शक्तियों को एकीकृत करने से वैश्विक अर्थव्यवस्था की बेहतर सुरक्षा होगी, और शुरुआती सबूत बताते हैं कि वह सही थे।
5. कई विशेषज्ञों ने 2008 और 2009 में 4 ट्रिलियन डॉलर के उपाय खर्च करने और विश्वास के पुनर्निर्माण के लिए बैंक सुधारों को शुरू करने पर सहमति देकर वित्तीय प्रणाली को स्थिर करने के लिए समूह की प्रशंसा की।
6. तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा और चीनी नेता शी जिनपिंग ने घोषणा की कि उनके देश पेरिस जलवायु समझौते पर हस्ताक्षर करेंगे।
7. सितंबर 2016 के हांग्जो शिखर सम्मेलन (चीन) में भी नेताओं को एक साथ लाने की इच्छा दिखाई गई।
8. 2021 में, G20 ने एक बड़े कर सुधार का समर्थन किया जिसमें प्रत्येक देश के लिए कम से कम 15 प्रतिशत का वैश्विक न्यूनतम कर शामिल था। यह नए नियमों का भी समर्थन करता है जिसके लिए अमेजॅन जैसे बड़े वैश्विक व्यवसायों को उन देशों में करों का भुगतान करना होगा जहाँ उनके उत्पाद बेचे जाते हैं, भले ही उनके पास कार्यालय न हों।
9. यह योजना सरकारी राजस्व में अरबों डॉलर जोड़ने और टैक्स हेवेन को निगमों के लिए प्रेरक शक्ति से कम करने का वादा करती है। लेकिन, कई G20 वक्तव्यों की तरह, अनुवर्ती कार्रवाई कमजोर रही है।
10. अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने इस वर्ष घोषणा की, 'वैश्विक कर संधि सही दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है' लेकिन यह अभी तक चालू नहीं हुई है।

G20 का संघर्ष:

1. कुछ आलोचकों का तर्क है कि G20 शुरू से ही त्रुटिपूर्ण था। जिसमें पश्चिमी वित्त अधिकारियों और केंद्रीय बैंकरों की इच्छा पर आधारित सदस्यता रोस्टर था।
2. रॉबर्ट वेड (लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में राजनीतिक अर्थव्यवस्था के प्रोफेसर) के अनुसार, जर्मन और अमेरिकी अधिकारी 'देशों की सूची में नीचे चले गए, जिसमें कनाडा शामिल है, पुर्तगाल बाहर है, दक्षिण अफ्रीका, नाइजीरिया और मिस्र बाहर हैं, आदि। 'उदाहरण के लिए, अर्जेंटीना न तो एक उभरती हुई अर्थव्यवस्था है और न ही जी20 की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। कई लोग कहते हैं कि यह G20 का सदस्य है, क्योंकि इसके पूर्व वित्त मंत्री, डोमिंगो कैवलो, 1999 से 2001 तक अमेरिकी ट्रेजरी सचिव लैरी समर्स के हार्वर्ड रूममेट थे।
3. जब जी20 की शुरुआत हुई, तो इस बात पर अधिक सहमति थी कि दुनिया को एक साथ कैसे रखा जाए। मुक्त व्यापार बढ़ रहा था; एक बड़ा सत्ता संघर्ष भी हुआ।
4. मार्क अब्रामसन (क्रेडिट न्यूयॉर्क टाइम्स) के अनुसार, वैश्वीकरण और मुक्त व्यापार पर असंतोष ने जी20 सदस्यों के लिए दुनिया को एक साथ रखने के तरीके पर सहमत होना मुश्किल बना दिया है।वे उम्मीदें अभी भी मौजूद हैं और अन्यत्र फली-फूली हैं (दक्षिण अफ्रीका में ब्रिक्स शिखर सम्मेलन इसका एक उदाहरण है। लेकिन संघर्षों ने जी20 टीम के प्रयासों का स्थान ले लिया है।
5. अमेरिका और चीन कट्टर प्रतिद्वंद्वी बन गये हैं. राष्ट्रवाद बढ़ रहा है क्योंकि कोविड-19 (महामारी) महामारी और यूक्रेन में युद्ध के बाद नेटवर्क अर्थव्यवस्था अधिक खतरनाक दिखाई दे रही है। इससे अग्रिम पंक्ति से दूर देशों के लिए भोजन और ऊर्जा की कीमतें बढ़ गई हैं।

6. स्टीवर्ट पैट्रिक (कार्नेगी एंडोमेंट फॉर इंटरनेशनल पीस में ग्लोबल ऑर्डर एंड इंस्टीट्यूशंस प्रोग्राम के निदेशक) के अनुसार, "अति-वैश्वीकरण, मुक्त व्यापार और मुक्त पूंजी को लेकर बहुत असंतोष है।"

वैश्विक स्तर पर G20 की आवश्यकता: चीनी के राष्ट्रपति शी जिनपिंग और रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर वी. पुतिन भी नई दिल्ली में 2023 जी20 शिखर सम्मेलन में उपस्थित नहीं रहे। अगर दुनिया के बड़े राष्ट्रों के अभिजन वर्ग उपस्थित न रहे तो यह G20 के सदस्य राष्ट्रों के लिए एक सोचनीय बात हो शक्ति हैं। कई विदेश नीति विशेषज्ञों का तर्क है कि G20 की विफलताएँ केवल अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों में आधुनिकीकरण की आवश्यकता की ओर इशारा करती हैं। डैनी रॉड्रिक और स्टीफन एम. जैसा कि वॉल्ट ने पिछले साल फॉरेन अफेयर्स में लिखा था: 'यह स्पष्ट होता जा रहा है कि मौजूदा, पश्चिमी-केंद्रित दृष्टिकोण अब अंतरराष्ट्रीय शक्ति संबंधों को नियंत्रित करने वाली कई ताकतों को संबोधित करने के लिए पर्याप्त नहीं है।' उन्होंने कम समझौते वाले भविष्य की कल्पना की, जिसमें 'पश्चिमी नीति प्राथमिकताएं कम हो जाएंगी' और 'प्रत्येक देश को अपनी अर्थव्यवस्था, समाज और राजनीतिक व्यवस्था के प्रबंधन के लिए अधिक छूट देनी होगी।

'प्रोफेसर वेड ने एक सुधारित जी20 का आह्वान किया है, जिसमें आर्थिक शक्तियों का केंद्र छोटे राष्ट्रों के घूर्णन समूह द्वारा पूरक हो। श्री पैट्रिक ने कहा कि जी20 'नवउदारीकरण के बाद' आदेश में एक अग्रणी भूमिका निभा सकता है, इस बात पर चर्चा करते हुए कि व्यापार के लाभों को मुक्त-बाजार प्रणाली के अतिरेक के जोखिम से कैसे अलग किया जाए, जिसे बचाने के लिए संगठन को डिजाइन किया गया था, उन्होंने कहा, ष्क्या नियम हैं शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व को जी20 अधिक उदारवादी वैश्वीकरण में साझा कर सकता है?' यह पता लगाने के लिए एक स्वाभाविक जगह होगी कि इसके लिए क्या अनुमति है। "साथ ही ष्यह एक सकारात्मक एजेंडा होगा।"[17]

निष्कर्ष: वर्तमान परिस्थिति में गांधीजी के विचार अव्यावहारिक और पुराने हो सकते हैं। लेकिन आज कोरोना महामारी, आतंकवाद, पर्यावरण, यूक्रेन और रूस, फिलिस्तीन-इजरायल पर हमास के हमले जैसी समस्याओं ने पूरी दुनिया को खतरे में डाल दिया है। इन स्थितियों से बाहर निकलने के लिए गांधीजी के विचारों, कार्यों, विचारों और सिद्धांतों को ध्यान में रखना बहुत जरूरी है। इसीलिए जी-20 को गांधी जी के आदर्शवादी तत्व याद रहे होंगे। बेशक, सार्वभौमिक शांति को बढ़ावा देने के लिए गांधीजी के विचारों को बढ़ावा देना आवश्यक है। साथ ही साथ वसुधैव कुटुंबकम, जिसका अनुवाद 'एक पृथ्वी, एक परिवार, एक भविष्य' है, एक प्राचीन संस्कृत पाठ महा उपनिषद से प्रेरित है। यह वैश्विक स्तर के लिए आदर्श है G20 अफ्रीकी संघ को स्थायी सदस्यता देने पर सहमत हो गया है। यह फैसला यूरोपीय संघ को बराबरी का दर्जा देगा. यह एक महत्वपूर्ण बात है। और G20 समिति भारत को मुक्त व्यापार समझौते, व्यापार करने में आसानी में मदद करेगी। ये सभी महत्वपूर्ण हैं लेकिन इन सभी निर्णयों को लागू करना भी आवश्यक है।

संदर्भ :

1. Russia-Ukraine war at a glance: what we know on day 604 of the invasion,Published on Fri 20 Oct 2023 00.38 BST https://www.theguardian.com/world/2023/oct/20/russia-ukraine-war-at-a-glance-what-we-know-on-day-604-of-the-invasion
2. Israel-Hamas War, The New York Times, Update 20 October 2023,10:50 pmET2 https://www.nytimes.com/live/2023/10/20/world/israel-hamas-war-gaza-news
3. संपादक- मोहनदास करमचंद गांधी, स्वराज्य की व्याख्या - हिंदी नवजीवन ,अहमदाबाद भद्रपद कृष्णा वन सावंत -1978, शुक्रवार, तारीख 19 अगस्त 1921, अंक-1, पृ. 1 -2
4. संदर्भ सिंह गुर्जर राजेंद्र, गांधी का अहिंसा सिद्धांत, संस्करण 2011, पृ. 84
5. डोळे ना. य., राजकिय विचारांचा इतिहास, कॉन्टिनेंटल पब्लिकेशन्स पुणे, संस्करण 1976, पृ. 817,820,833

6. G20 leaders pay respects at Gandhi memorial as they wrap up Indian summit and hand over to Brazil, Published:Sep.10, 2023 13:17 https://gulfnews.com/world/asia/india/g20-leaders-pay-respects-at-gandhi-memorial-as-they-wrap-up-indian-summit-and-hand-over-to-brazil-1.98029909
7. 10/09/2023-15:29https://www.france24.com/en/asia-pacific/20230910-g20-summit-closes-with-russia-brazil-and-india-boasting-success
8. G20 leaders pay respects at Gandhi memorial as they wrap up Indian summit and hand over to Brazil, Published: September 10, 2023 13:17
https://gulfnews.com/world/asia/india/g20-leaders-pay-respects-at-gandhi-memorial-as-they-wrap-up-indian-summit-and-hand-over-to-brazil-1.98029909
9. Sudhir Sunjay , Ambassador of India to the UAE,G20 summit: Call for one earth,one family,one future,Published:August 15,2023 10:2
https://gulfnews.com/amp/world/asia/india/g20-summit-call-for-one-earth-one-family-one-future-1.1692081264827
10. Ministry of Foreign Affairs of Japan 10 Sep. 2023 p.1www.mofa.go.jp/ecm/ec/page1e_000768.html
11. https://www.g20.org/en/media-resources/press-releases/september-2023/raj-ghat
12. भारत 2023 INDIA,ONE EARTH,ONE FAMILY,ONE FUTUTRE, G20 New Delhi Leaders Declaration, New Delhi ,India 9-10 Sep.2023 P.2-3
13. https://www.mofa.go.jp/policy/economy/g20_summit/index.html (Ministry of Foreign Affairs of Japan) " जुलाई 2021 को प्रकाशित
14. https://www.nalandaopenuniversity.com/g20-summit-2023-schedule-venue-dates कृष्णा अय्यर द्वारा प्रकाशित सप्टेंबर 20, 2023. P.3
15. https://economictimes.indiatimes.com/news/india/g20-summit-kicks off-in-delhi-list-of-events-lined-up-for-the-world leaders/articleshow/103525849.cms?from=mdr * updated on 9 september, 2023; 7:04 PM.
16. Abraham Alex, (Senior Associate Editor), What's in store at the G20 summit in India?, Published: September 07, 2023 19:22, https://gulfnews.com/amp/special-reports/whats-in-store-at-the-g20-summit-in-india-1.97973354
17. By Damien Cave Damien Cave often writes about the evolving global order.,Why the G20 Keeps Failing, and Still Matters, Sept. 6, 2023(The New York Times) https://www.nytimes.com/2023/09/06/world/asia/g20-summit-india.html

❑❑❑

महिला सशक्तीकरण में स्वयं सहायता समूह की भूमिका

❍ प्रा. सुनीता संतोष पवार[1]

संक्षिप्ति :

स्त्री को सृजन की शक्ति माना गया है, स्त्री से ही मानव जाति का अस्तित्व निर्भर है इसी सृजन शक्ति को विकसित करके उसे सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक न्याय विचार की स्वतंत्रता अवसर की समानता प्रदान करना ही महिला सशक्तीकरण है। उनकी सामाजिक व आर्थिक स्थिति में सुधार लाना है जिससे उन्हें रोजगार और शिक्षा के समान अवसर मिले महिलाएं देश की आधी आबादी होकर भी उनका प्रतिनिधित्व लोकसभा और विधानसभा में नहीं के बराबर हैं देश में लैंगिक समानता स्थापित करना आवश्यक है जब तक महिला और पुरुष को अलग-अलग मनुष्य के रूप में देखा जाएगा तब तक उन्हें बराबरी का अधिकार नहीं मिल पाएगा। हमारे देश की आबादी का लगभग आधा हिस्सा महिलाओं का है परंतु उन्हें आर्थिक और सामाजिक गतिविधियों में निर्णय लेने के अधिकार से दूर रखा गया। महिलाएं औपचारिक अर्थव्यवस्था में शामिल नहीं है क्योंकि हमारे समाज की सामाजिक सांस्कृतिक पारंपरिक बंधन व जटिलताओं के कारण औपचारिक रूप से नौकरी तक नहीं पहुंच पाई है। उनमें व्यवसाय करने की क्षमता होती है, परंतु वित्त नहीं होता है स्वयं सहायता समूह महिलाओं का ऐसा समूह होता है जो वित्तीय सहायता प्रदान करता। महिलाओं के लिए सामाजिक आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण साधन स्वयं सहायता समूह हैं, इसके माध्यम से महिलाएं एक साथ जुड़ती है। उनमें बचत की भावना का विकास होता है बचत के साथ ही साथ वे अपनी समस्याओं और उसके समाधान के बारे में चर्चा करने लगी है। समूह में काम करने से उनमें आत्मनिर्भरता बढी है परिणाम स्वरूप महिलाओं की कार्य क्षमता में बढ़ोतरी होती है फिर भी हमारे देश में महिलाओं को अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक राजनीतिक व आर्थिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

बीज शब्द : महिला सशक्तीकरण, स्वयं सहायता समूह।

महिला सशक्तीकरण का अर्थ ऐसी क्षमता का विकास करना जिससे महिलाएं जीवन से जुड़े सभी फैसले स्वयं ले सके। यह ऐसा सामाजिक एवं आर्थिक आंदोलन है जो महिलाओं को जीवन में सक्षम बनाने का उद्देश्य रखता है। इसका मुख्य उद्देश्य है महिलाओं को उनकी असली पहचान से जोड़कर उन्हें समाज के समस्याओं के सामने खड़ा होने में मदद करना। महिलाओं को सशक्त करने से समाज में समानता की भावना बढ़ती है

1. प्रा. सुनीता संतोष पवार, समाजशास्त्र विभाग, कला व वाणिज्य महाविद्यालय, अक्कलकुवा, जिला, नंदुरबार

जो समाज के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। महिला सशक्तिकरण के लिए विभिन्न कार्यक्रम और योजनाएं चलाई जा रही हैं। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण कार्यक्रम निम्नलिखित हैं-

1. स्वास्थ्य सेवाएं स्वस्थ और तंदुरुस्त महिलाएं समाज में सक्रिय भूमिका निभाती हैं। इसलिए, महिलाओं को स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान की जाती हैं ताकि वे समाज के लिए अधिक सक्रिय हो सकें।
2. आर्थिक सशक्तिकरण महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वतंत्र बनाने के लिए कई योजनाएं चलाई जा रही हैं। इनमें बैंक ऋण, स्वनिधि योजना, मुद्रा योजना और कई अन्य शामिल हैं।
3. महिला सशक्तिकरण केंद्र महिलाओं को समाज में स्थान देने और उन्हें सक्षम बनाने के लिए महिला सशक्तिकरण केंद्र स्थापित किए गए हैं। इन केंद्रों में महिलाओं को विभिन्न कौशल सिखाए जाते हैं, जैसे कि कंप्यूटर इनपुट और आउटपुट, अंग्रेजी बोलना और लिखना, अधिकारों की जानकारी आदि।
4. महिला सशक्तिकरण कानून महिला सशक्तिकरण के लिए कई कानूनों को लागू किया है। इनमें महिलाओं के अधिकारों के लिए कानून, दहेज उत्पीड़न, बलात्कार, छेड़छाड़, और अन्य विषय शामिल हैं।

अर्थव्यवस्था में महिलाओं का योगदान :

श्रम शक्ति का 29 प्रतिशत प्रतिनिधित्व महिलाएं करती हैं। औपचारिक रूप से अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी सबसे कम है। जीडीपी में महिलाओं का योगदान 18 प्रतिशत है। भारत में आधे से अधिक काम महिलाएं बिना वेतन के अनौपचारिक रूप से करती हैं। भारत में 60 प्रतिशत महिलाओं के पास ना ही कोई मूल्यवान संपत्ति है ना ही बैंक में उनके बचत खाते हैं। भारत में महिलाएं शारीरिक रूप से भी और असुरक्षित है। उनके खिलाफ अपराधों की दर 53.9 प्रतिशत है।

महिला सशक्तीकरण और स्व सहायता समूह : महिला सशक्तीकरण का मुख्य लक्ष्य महिलाओं को समाज में स्थान देना होता है और उन्हें सक्षम बनाना होता है ताकि वे अपनी खुद की ताकत और निर्णय क्षमता का उपयोग कर सकें। इससे न केवल महिलाओं को समाज में स्थान मिलता है बल्कि समाज के विकास में भी यह बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

महिला सशक्तिकरण और स्व-सहायता समूह दो अलग-अलग लेकिन संबद्ध विषय हैं। महिला सशक्तीकरण एक संघर्षपूर्ण प्रक्रिया है जिसमें महिलाएं अपनी स्वतंत्रता और समानता की लड़ाई लड़ती हैं। स्व-सहायता समूह एक ऐसा संगठन है जो महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने में मदद करता है। स्व-सहायता समूह महिलाओं के सामूहिक विकास एवं स्वतंत्रता को बढ़ावा देने के लिए एक प्रभावी माध्यम है। इन समूहों में समान रूप से रुचि रखने वाली महिलाएं एक साथ मिलकर संसाधनों का उपयोग करती हैं।

स्वयं सहायता समूह क्या हैं?

स्वयं सहायता समूह किसी भी सामाजिक या आर्थिक उद्देश्य के लिए गठित इलाके में 10-20 लोगों के समूह होते हैं। अधिकांश स्वयं सहायता समूह अपने सदस्यों के बीच बेहतर वित्तीय सुरक्षा के उद्देश्य से बनाए जाते हैं। स्वयं सहायता समूह पंजीकरण के साथ या बिना मौजूद हो सकते हैं।

स्वयं सहायता समूह और उनकी उत्पत्ति

1. भारतीय माइक्रोफाइनेंस मॉडल। 1992 में शुरू किया गया नाबार्ड और आरबीआई द्वारा दिशा निर्देशों के तहत। सभी समस्याओं को अकेले हल नहीं किया जा सकता है।
2. स्वयं सहायता समूह एक ऐसा समूह है, जो सामूहिक बैंकों की भूमिका का पालन करते हैं। वे सदस्यों से बचत इकट्ठा करते हैं लेन और देन दोनो का कार्य करते हैं।
3. कर्ज देने के लिए, स्वयं सहायता समूह बैंकों के साथ लिंक करता है। एसएचजी-बैंक लिंकेज।

4. स्वयं सहायता समूह कंपनियों के साथ भी जुड़ते हैं।
5. स्वयं सहायता समूह के लिए, सरकार ब्याज सबवेंशन योजना प्रदान कर रही है।
6. स्वयं सहायता समूह का महत्व सामूहिक रूप से समूह के माध्यम से गरीबों की आय में वृद्धि करना।

स्वयं सहायता समूहों की भूमिका

1. गरीबी दूर करने के लिए आय सृजित करना।
2. बैंक का व्यवहार आसान करना जिससे अशिक्षित व कम पढ़ी-लिखी महिलाएं अपना काम आसानी से कर पाए
3. ग्राम पंचायतों में नेतृत्व के लिए महिलाओं को प्रोत्साहित करना।
4. सामाजिक कुप्रथा के प्रति जागरूक करना।
5. पीड़ित महिलाओं के उत्थान के लिए प्रयत्न करना।

ग्रामीण विकास में स्वयं सहायता समूह की आवश्यकता क्यों है?

1. गरीबी दूर करने के लिए यदि कोई व्यक्ति अकेला प्रयत्न करेगा तो वह गरीबी की बेड़ियों को नहीं तोड़ सकेगा परंतु यदि वह सामूहिक रूप से प्रयत्न करेगा तो निश्चित ही गरीबी को दूर करने में उसे सहायता मिलेगी।
2. गरीबों को अपना स्वयं का व्यवसाय शुरू करने के लिए धन की आवश्यकता होती है क्योंकि उसके पास कोई संपत्ति नहीं होती है इसलिए उसे बैंक ऋण नहीं देते हैं।
3. बैंक किसी भी गरीब को ऋण नहीं देता है, क्योंकि जमानत के लिए उसके पास कोई संपत्ति नहीं होती है जब वह स्वयं सहायता समूह से जुड़ता है तो उसे समूह के माध्यम से ऋण उपलब्ध होता है।

स्वयं सहायता समूह के नियम व शर्तें

1. शुरुआत में स्व सहायता समूह का काम 6 महिने से सक्रीय रूप से शुरू रहना चाहिए।
2. सदस्यों द्वारा समूह में बचत उसके स्वयं के संसाधनों से जमा की हो।
3. सदस्यों को ऋण समूह द्वारा की गई बचत राशि से दिया गया हो।
4. समूह द्वारा किए गए कार्य का हिसाब किताब बचत व ऋण का लेखा-जोखा रजिस्टर में दर्ज किया जाना चाहिए।
5. समूह द्वारा की जाने वाली मासिक या सप्ताहिक बैठक का विवरण रजिस्टर में दर्ज होना चाहिए।
6. समूह का कार्य लोकतांत्रिक तरीके से किया जाना चाहिए जिसमें सभी सदस्यों की सहभागिता आवश्यक है।
7. एक दूसरे की मदद करना व स्वरोजगार समूह का उद्देश्य होना चाहिए ना की केवल बैंक से लोन लेने तक सीमित नहीं होना चाहिए।
8. जब बैंक अधिकारी इस बात से संतुष्ट होते हैं कि समूह का उद्देश्य एक दूसरे की मदद करना और स्वरोजगार करना है तभी बैंक लोन देने के लिए तैयार होता है।
9. समूह के सभी सदस्य एक ही सामाजिक व आर्थिक पृष्ठभूमि से होने चाहिए।ग्रुप के सदस्य एक ही प्रकार के व्यवसाय से संबंधित होने चाहिए।

समूह की नियमित बैठक

1. सदस्यों को कितनी राशि हर सप्ताह जमा करनी होगी यह निश्चित करना।

2. समूह की बैठक के लिए समय व स्थान निर्धारित करना।
3. समूह को संगठित करके समूह कार्य करने में मदद करना।
4. समूह की बैठक में मिलजुल कर निर्णय लेना और उस पर अमल करना।

समूह के संचालन हेतु पदाधिकारी की नियुक्ति

समूह बनने के बाद के संचालन के लिए समूह सदस्यों में से तीन पदाधिकारियों का चुनाव किया जाता है। जिसमें से एक अध्यक्ष दूसरा कोषाध्यक्ष और तीसरा सचिव होता है। अध्यक्ष समूह का संचालन करता है सचिव के द्वारा समूह के कार्यों का विवरण रखा जाता है और कोषाध्यक्ष का कार्य समूह के लेनदेन का हिसाब रखना होता है।

स्वयं सहायता समूह का महिलाओं के जीवन पर प्रभाव

स्व-सहायता समूह लोगों को सामूहिक रूप से अधिक सक्षम बनाता है। समूह के सदस्यों के बीच आदर, सहयोग, और विश्वास का वातावरण बनता है जो उन्हें स्वयं के अभिवृद्धि और समूह की उन्नति में सहायता करता है। महिलाओं में स्व-सहायता समूह के माध्यम से निम्नलिखित क्षमताओं का विकास होता हैं-

1. समूह सदस्यों की सशक्तिकरण - स्वसहायता समूह सदस्यों को अपनी समस्याओं के साथ निपटने के लिए सक्षम बनाता है। समूह के सदस्यों का एकमत होकर अपनी समस्याओं का समाधान करना संभव होता है।
2. वित्तीय समृद्धि - स्व सहायता समूह सदस्य एक दूसरे के सहयोग से वित्तीय समृद्धि हासिल कर सकते हैं। समूह में नियमित रूप से सदस्यों के द्वारा योजनाएं चलाकर उन्हें आर्थिक रूप से स्वस्थ बनाया जा सकता है।
3. समूह भावना- स्व सहायता समूह सदस्यों के बीच समूह भावना का विकास करता है। समूह के सदस्यों के बीच आदर, सहयोग और विश्वास का वातावरण बनता है, जो उन्हें अपनी समस्याओं को समाधान करने के लिए संगठित होने में सक्षम बनाता है।
4. स्वावलंबी - स्व सहायता समूह सदस्य स्वावलंबी होते हैं और अपनी समस्याओं को समाधान करने के लिए सक्षम होते हैं। समूह सदस्यों का आर्थिक स्वयं प्रबंध के विकास में भी सक्रिय भूमिका होती है, जो उन्हें स्वतंत्र बनाती है।
5. ज्ञान-संसाधन साझा करना- स्व सहायता समूह सदस्यों के बीच ज्ञान-संसाधन साझा करने की अनुमति होती है। इससे समूह सदस्यों का ज्ञान और कौशल विकसित होता है और वे अपने समस्याओं के लिए समाधान खोजने में सक्षम होते हैं।
6. स्थानीय समस्याओं का समाधान- स्व सहायता समूह स्थानीय समस्याओं के समाधान में भी मदद करता है। समूह के सदस्य स्थानीय समस्याओं के साथ जुड़े रहते हैं और इन्हें समाधान करने के लिए उन्हें संगठित होने में सक्षम बनाते हैं।
7. सामाजिक परिवर्तन - स्व सहायता समूह सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण साधन होता है। समूह के सदस्य स्थानीय समस्याओं के साथ जुड़े रहते हैं और उन्हें समाधान करने के लिए उन्हें संगठित होने में सक्षम बनाते हैं। इससे सामाजिक और आर्थिक रूप से निर्बल लोगों की स्थिति में सुधार होता है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. स्वयं सहायता समूह के सदस्यों के सामाजिक आर्थिक स्थिति का अध्ययन।

2. महिलाओं के सशक्तिकरण पर स्वयं सहायता समूह के प्रभाव का अध्ययन करना।

साहित्य समीक्षा

डॉ. उमा जोशी और कंचन पाण्डेय के अनुसार स्वयं सहायता समूह महिलाओं को सशक्त बनाने में मदद करते हैं। महिलाओं को कैसे सशक्तीकृत किया जा सकता है और उन्हें स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से उनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति में सुधार कैसे किया जा सकता है। इस लेख में, वे उन समस्याओं पर भी बात करते हैं जो महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों में शामिल होने में आ सकती है। विमला देवी के लेख ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण में स्वयं सहायता समूह का योगदान समूह का राजनीतिक महत्व एक अत्यंत महत्वपूर्ण लेख है जो समूहों के महत्व और स्त्रियों के सशक्तिकरण पर ध्यान केंद्रित करता है। स्वयं सहायता समूह ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियों के सशक्तिकरण के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण उपकरण है। ये समूह न केवल स्त्रियों को वित्तीय रूप से स्वावलंबी बनाते हैं, बल्कि उन्हें समाज में आवाज देने और उनके अधिकारों को मान्यता दिलाने में भी मदद करते हैं।

पूजा रानी द्वारा लिखित ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति एक समाजशास्त्रीय अध्ययन एक महत्वपूर्ण अध्ययन है जो भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति पर ध्यान केंद्रित करता है। इस अध्ययन में ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं की सामाजिक आर्थिक स्थिति के संबंध में विस्तृत जानकारी दी गई है। लेखक ने इस अध्ययन में ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं के सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति के कुछ मुख्य कारणों पर ध्यान केंद्रित किया है, जैसे कि उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य एवं रोजगार आदि। लेखक ने उनके जीवन में सामाजिक और आर्थिक स्तर पर कई बाधाओं का भी जिक्र किया है जो उन्हें प्रगति नहीं करने देती हैं।

लोकेश 2009 के अनुसार स्वयं सहायता समूह के माध्यम से महिलाओं की सामाजिक आर्थिक स्थिति में परिवर्तन हुआ है। स्वयं सहायता समूह के माध्यम से देश में सामाजिक व आर्थिक कांति हो सकती है।

कुमारन के.पी. (2002) के अनुसार माइक्रो क्रेडिट के माध्यम से माइक्रो उद्यमों को बढ़ावा देने में स्व सहायता समूहों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। लेखक ने अध्ययन का उपयोग करके माइक्रो क्रेडिट की भूमिका और माइक्रो उद्यमों को बढ़ावा देने में स्वयं सहायता समूह के प्रभाव का विश्लेषण करते हुए डेटा का संकलन किया।

स्व सहायता समूह की चुनौतियाँ

पितृसत्तात्मक मानसिकता, स्थिरता, ग्रामीण बैंकिंग सुविधाओं की कमी, सुरक्षा की कमी और ज्ञान की कमी जैसी चुनौतियाँ समाज पर स्वयं सहायता समूहों के सकारात्मक प्रभाव को रोकती हैं।

1. वित्तीय संचालन स्व सहायता समूहों के पास अक्सर संचालन के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन नहीं होते हैं। संगठन की शुरुआत में वित्तीय संचालन अधिक मुश्किल होता है, इसलिए संगठन के सदस्यों को इस समस्या के समाधान के लिए एक साथ काम करना होता है।
2. सदस्यों की अभावता एक समूह में सदस्यों की अभावता संगठन के लिए एक बड़ी चुनौती होती है। इस समस्या को समाधान करने के लिए, संगठन के सदस्यों को समुदाय से जोड़ा जाना चाहिए ताकि उन्हें संगठन में रुचि हो जाए और वे समूह के लिए उपलब्ध हों। समूह के सदस्यों के लिए संगठन के अनुभवी सदस्यों द्वारा प्रशिक्षण विकल्प प्रदान करना भी एक समाधान हो सकता है
3. संसाधन की कमी संगठन के लिए संसाधनों की कमी होना एक बड़ी चुनौती हो सकती है। संसाधनों में से विभिन्न तरह की समस्याएं हो सकती हैं, जैसे कि भूमि, पानी, ऊर्जा, संसाधन आदि। इस समस्या का समाधान करने के लिए, समूह के सदस्यों को संगठन में उपलब्ध संसाधनों के संभव उपयोग के बारे में जागरूक होना चाहिए। साथ ही, उन्हें समूह के लिए नए संसाधनों के उपलब्ध बनाने के तरीकों

का भी जानकारी होना चाहिए।

4. स्थानीय सामाजिक अभिवृद्धि स्थानीय सामाजिक अभिवृद्धि को सुनिश्चित करना समूह के लिए एक अन्य चुनौती हो सकती है।

निष्कर्ष

ग्रामीण महिलाओं को स्वावलंबी और आत्मनिर्भर बनाने में स्वयं सहायता समूह की भूमिका महत्वपूर्ण है। समूह के माध्यम से महिलाओं में आत्मविश्वास की भावना का विकास होता है। उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जानकारी मिलती है स्वयं सहायता समूह से जुड़ने के बाद महिलाओं की आय में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। जिससे कि उनका आर्थिक स्तर अच्छा हुआ है आर्थिक रूप से स्वावलंबी और आत्मनिर्भर बनाने में स्वयं सहायता समूह के उल्लेखनीय भूमिका है। आत्म निर्भर होने के कारण उनमें नेतृत्व की क्षमता का विकास हुआ है आज समाज के विभिन्न क्षेत्रों में नेतृत्व करने की क्षमता का विकास हुआ है उद्देश्य है कि महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक और सशक्त बने और आर्थिक निर्णय में उनकी भागीदारी बढ़ाई जाए । इस उद्देश्य की पूर्ति में स्वयं सहायता समूह की महत्वपूर्ण भूमिका रही है स्वयं सहायता समूह से जुड़ने के बाद अपने स्वास्थ्य के प्रति, बच्चों के शिक्षा के प्रति जागरूकता निर्माण हुई है। समूह के माध्यम से महिलाओं को छोटी–छोटी बचत करने की प्रेरणा मिलती है । यह छोटी–छोटी बचत संकटकाल में उन्हें काफी मददगार साबित होती हैं इस प्रकार महिला सशक्तिकरण के लिए स्वयं सहायता समूह आवश्यक है जिसके माध्यम से महिलाएं संगठित होकर आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में विकास कर सके। स्वयं सहायता समूह द्वारा महिला सशक्तिकरण में आशा जनक परिणाम मिलने के बाद भी उनकी प्रगति में बहुत से बाधक तत्व दिखाई देते हैं। सामाजिक प्रतिबंधों के कारण महिलाओं की गतिशीलता में व भागीदारी में उनके जीवन में मानसिक रूप से उनका विकास नहीं हो पाता है।

संदर्भ :

1. लोकेश 2009 ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु स्व सहायता समूह योजना का महत्व अध्याय–6
2. उमा जोशी,कंचन पांडे 2019 स्वयं सहायता समूह और महिला सशक्तीकरण Journal of Advances and Scholarly Research in Allied Education19, ISSN 2230-7540
3. पूजा रानी, ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं के सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति, VOLUME 10, ISSUE 9
4. विमला देवी 2020 ग्रामीण महिलाओं के सशक्त विकास में स्वयं सहायता समूह का योगदान व समूह का राजनेतिक महत्व PARIPEX-INDIAN JOURRNAL OF RESEARCH ISSN 2250-1991
5. सिंह, निशांत 2011,स्त्री सशक्तिकरण एक मूल्यांकन, खुशी पब्लिकेशन नई दिल्ली
6. मोतियानी पुष्पा 1998, महिला विकास की नई दिशाएं करनावटी पब्लिकेशन, अहमदाबाद
7. आहूजा राम, 1995 भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रावत पब्लिकेशन जयपुर एवं नई दिल्ली

❑❑❑

नंदुरबार के आदिवासी समुदाय की सामाजिक स्थिति का अध्ययन

(विशेष संदर्भ : पारधी समुदाय)

- गौरी सुखदेव सालुंके[1]
- प्रो. के.पी. देशमुख[2]

संक्षिप्ति :

आदिवासी समुदाय के जीवन शैली अन्य लोगों से पृथक है। तदनुसार यह संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिए भारतीय संविधान में आदिवासी समुदाय की सामाजिक संस्कृति, भाषा, लिपि से संबंधित प्रावधान है। इसी भांति महाराष्ट्र से खानदेश परिक्षेत्र में नंदूरबार, धुले, जलगांव इन तीनों जिलों में आदिवासी समुदाय का निवास है। इसमें मावची, पावरा, कोकणी, कोटली, ठाकुर, धानका, पारधी, बारेला जैसे समुदाय का समावेश होता है। इन तीनों जिलों में से नंदुरबार की पहचान आदिवासी समुदाय के जिला से होती है। इस क्षेत्र में आदिवासी समुदायों की समृद्ध एवं विशिष्टपूर्ण सुयोग संस्कृति है। इसमें धर्म, भाषाएँ, रीति-रिवाज, परंपराएं, त्योहार, पोशाक, लोकगीत, लोक कला, मूर्तिकला, वास्तुकला, संग्रहालय आदि शामिल है।

प्रस्तावना :

भारत को आजादी मिलने से पहले आदिवासी समुदाय की संस्कृति संबंधी विश्लेषण सिंधु तहजीब बनसजनतम में उल्लेख किया गया है। आदिवासियों के संदर्भ में अंग्रेजों द्वारा लिखे गए पत्र आधिकारिक प्रेस विज्ञप्ति में हैं। 5 मई, 1858 को खानदेश के मजिस्ट्रेट को लिखे एक पत्र में मेजर हैसलवुड ने कहा कि 'भील' स्वभाव से एक उदार और मानवतावादी है। 1931 में ब्रिटिश सरकार ने आदिवासियों की जनगणना की तभी आदिवासियों की पहचान पशुपूजक शब्द से हुई। इस समुदाय की तरक्की, न्यायोचित एवं सुरक्षित रखने के लिए भारतीय संविधान में आदिवासी समुदाय की संस्कृति, भाषा, लिपि से संबंधित प्रावधान है। इसी भांति महाराष्ट्र से खानदेश परिक्षेत्र में नंदूरबार, धुले, जलगांव इन तीनों जिलों में आदिवासी समुदाय का निवास है। इसमें विभिन्न समुदायों का समावेश होता है। इन तीनों जिलों में से नंदुरबार की पहचान आदिवासी समुदाय के जिला से होती

1. *Ms. Gauri Salunke, Research Scholar, Department of Economics, Shivaji University Kolhapur.*
2. *Prof. (Dr.) K.P. Deshmukh, Guide, Raja Shivchhatrapati College of Arts and Commerce Mahagaon, Gadhinglaj, Kolhapur*

है। इस प्रस्तुत लघुशोध निबंध में अनुसंधान कर्ताओं द्वारा खान्देश क्षेत्र के आदिवासि समुदायों की एक विशिष्टपूर्ण मनबहलाव संस्कृति से धर्म, भाषाएं, रीति-रिवाज, परंपराएं, त्योहार, पोशाक, लोकगीत, लोक कला, मूर्तिकला, वास्तुकला, संग्रहालय आदि जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया है।

बीज शब्द : न्यायोचित, अर्दली, कमोबेस, ओलापुजतला, निलपी पुजानु, डुडामुकाय, (बापदेव) वागदेव, नवाई, इंदल, तहजीब, न्यारा।

अनुसंधान का हेतु : नंदुरबार जिले के आदिवासी समाज का अध्ययन करना।

अनुसंधान की परिकल्पना : महाराष्ट्र के नंदुरबार जिले के आदिवासी समाज की संस्कृति में समानता है।

अनुसंधान की व्याप्तिः प्रस्तुत लघु शोध निबंध में शोधकर्ताओं ने महाराष्ट्र के खानदेश परिक्षेत्र के नंदुरबार के आदिवासी समुदाय की सामाजिक और सांस्कृतिक जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया है।

अनुसंधान की पद्धतिः प्रस्तुत लघु शोध निबंध में प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है।

तथ्यों का विश्लेषणः इस शोध पत्र में शोधकर्ता ने नंदुरबार जिले के आदिवासी समाज की जानकारी को समझने का प्रयास किया है।

संस्कृति का अभिप्रायः पश्चिमी मानवविज्ञानी और समाजशास्त्रियों में से एक, सर एडवर्ड बेनेट टायलर ने 1872 में अपनी पुस्तक आदिम संस्कृति के शुरुआती वाक्य में इस अवधारणा को समझाया। वे कहते हैं। i) 'व्यापक मानवशास्त्रीय-भौगोलिक दृष्टिकोण से, ज्ञान, धर्म, कला, नैतिकता, कानून, नैतिकता और उन सभी मूल्यों और आदतों की समग्र और सजातीय परिपक्वता जो मनुष्य ने समाज के सदस्यों के रूप में हासिल की है, वह है संस्कृति उर्फ सभ्यता। ii) 'संस्कृति व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से मनुष्य का आविष्कार है, जो जीवन का एक तरीका बनाती है और जीवन की सफलता के लिए खुद को और बाहरी दुनिया को विकसित करती है।[1]

समाज : यह एक रक्त संबंध पर आधारित समाज है, जो एक विशिष्ट क्षेत्र (एक दूरस्थ क्षेत्र में) में रहता है, एक भाषा बोलता है। उनका जीवन जीने का तरीका अलग है और समलैंगिकता का एक सजातीय समाज है। इस क्षेत्र में मिली-जुली भाषा बोली जाती है पोशाक तथा जीवन अर्दली कमोबेस पृथक है। सीमित उपकरण एवं समान धर्म है, यह सामाजिक विशेषता खानदेश की आदिवासी जनजातियों में नजर आती है। उन्हें प्रकृति से बड़ा लगाव है। प्रकृति की बेकाबू शक्तियों को नियंत्रित करने के लिए जादू पर भी विश्वास करते है। वे पैतृक पूजा, भूत पूजा, प्रकृति पूजा करते हैं।उनकी परिवार व्यवस्था मातृसत्तात्मक है।[2]

पार्श्वभूमिः क्रांतिवीर शमशेर सिंह भोसले पारधी आदिवासी पारधी समुदाय के पहले क्रांतिकारी थे।1857 की लड़ाई में आदिवासी पारधी समुदाय की रक्षा के लिए अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई का नेतृत्व किया। वाघेरी, वाघेर जनजाति द्वारका में ओखा द्वीप पर संस्था में रहती थी। इस संस्था के लिए गायकवाड़, अंग्रेजों और वाघेरे के बीच 1803 से 1858 तक संघर्ष चला। 1803 में द्वारका के ओखा नामक द्वीप पर युद्धप्रिय वाघेरे का शासन था। उन्होंने ब्रिटिश जहाजों को लूट लिया। उनके राजा नारायण मानेक को अंग्रेजों ने मार डाला। बाद में 1848 में जोधा मानेक ने फिर से ओखा द्वीप को अंग्रेजों और गायकवाड़ से मुक्त करा लिया लेकिन गायकवाड़ की सेना ने ब्रिटिश सैनिकों के साथ फिर से हमला किया और जोधा मानेक को मारकर ओखा किले पर कब्जा कर लिया। बाद में 1858 में वाघेर के लोगों ने अपने द्वारका ओखा द्वीप पर कब्जा करने के लिए समशेर सिंह के 300 से 350 सैनिकों (पारधियों) की मदद ली। तभी वाघरी और शमशेर सिंह पारधी की मुलाकात हुई।

उस बैठक में मानेक वाघेर, राजा गंगू बापू मकवाना, पारधी राजा समसेर सिंह पारधी, वाघरी सेनापति जो सोमनाथ के पास मीठापुर गांव के निवासी थे। वे पहली बार स्वराज्य के लिए मिले थे।

अंग्रेज इस समुदाय से वेथाबरी का काम अपने हाथ में ले लेते थे। साथ ही, अंग्रेजों ने इस समुदाय के जंगल में शिकार पर प्रतिबंध लगा दिया और एक विशेष कानून पारित करके इन्हें जन्मजात आपराधिक जनजाति का करार दे दिया। और ऐसे में ग्रामीण भारत में यह धारणा मुख्यधारा में नहीं आई, इसलिए इस वर्ग ने आजीविका के लिए अपराध का सहारा लिया। लेकिन भारत की आजादी के बाद जवाहरलाल नेहरू ने आदिवासी पारधी जनजाति को जन्म से ही अपराधी बनाने वाले कानूनों को खत्म कर दिया और उन्हें अनुसूचित जनजाति में शामिल कर दिया। महाराष्ट्र की आदिवासी पारधी जमात मुख्यत: खानदेश में पाई जाती है। गुजरात और मध्य प्रदेश राज्यों में भी उनकी थोड़ी आबादी है। 1971 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या 27,363 थी। इस जनजाति के दो मुख्य उपविभाग हैं। 'गांव पारधी' और 'फसे पारधी' और इनके भी कई उपविभाग हैं। परधान से पारधी की व्युत्पत्ति होती है। मध्य प्रदेश में पारधी बहेलिया, मीर शिकार, मोघिया, शिकारी, टंककार आदि। नाम से जाने जाते हैं। पारधी जनजाति मध्य प्रदेश राज्य के रायसेन और सीहोर में भी पाई जाती है। हो सकता है कि वे पहले उत्तर से गुजरात आए हों और वहां से महाराष्ट्र आए हों।

आदिवासी पारधी समाज संक्षेप में विवरण:आदिवासी 'पारधी' समाज जंगल में शिकार करके जीवन यापन करने वाला समाज है। 'पारधी' शब्द मराठी शब्द 'पारध' से बना है। जिसका अर्थ है 'शिकार करना' इस समूह का मुख्य व्यवसाय जानवरों और पक्षियों को फंसाना और उनका शिकार करना है।[3]

देवता-धर्म और पूजा : भगत को अपनी पंचायत और समग्र जनजाति में प्राथमिकता प्राप्त है।

गांव के पारधियों के बीच देवा का कार्यक्रम 3 से 6 दिनों तक चलता है। भगवान के कार्यक्रम के लिए लगाए गए तंबू को 'पाल' कहा जाता है, जबकि कार्यक्रम को 'जोहरान' कहा जाता है। प्रत्येक उपजाति का अपना देवघर होता है, जिसमें देवी-देवताओं की छवि वाले धातु के पत्र रखे जाते हैं। देवघर में ऐसे पत्र बांधे जाते हैं और पारधी भाषा में इसे 'तरंगड़' कहा जाता है। पूजा या नवरात्रि के समय उन पत्रों को उतारकर भक्तिभाव से पूजा की जाती है। प्रत्येक उपजाति में उनकी कुलदेवी के अनुसार एक या दो भगत होते हैं, जैसे देवघर। पारधी समुदाय में हम ज्यादातर भगतों को सिर पर सफेद पगड़ी बांधे हुए देखते हैं। ये भगत भगवान के उपासक हैं और जादू-टोने और झाड़-फूंक का विज्ञापन करने वाले अन्य भगतों की तरह कोई पाखंड नहीं करते।

भाषा: आदिवासी पारधी समुदाय में कुछ लोग गुजराती, मराठी, कन्नड़ अहिरानी और हमारी स्थानीय पारधी भाषा बोलते नजर आते हैं।

शिक्षा: इस वर्ग के लोग अक्सर अपने परिवार के भरण-पोषण और आजीविका के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रवास करते हैं क्योंकि उनके पास कोई बड़ा व्यवसाय नहीं है और शायद इसीलिए पारधी समुदाय में शिक्षा और साक्षरता का स्तर बहुत कम है।

पोशाक: अनुसूचित जनजाति में पारधी समुदाय की महिलाएं लुगड़ा, चोली या घाघरा पहनती हैं। महिलाएं आभूषणों की शौकीन होती हैं और टिन तथा पीतल के आभूषणों का प्रयोग करती हैं। गले में मोतियों की माला पहनी जाती है। जबकि आदमी लंगोटी या अपर्याप्त धोती पहनता है और शायद ही कभी पैगॉट पहनता है। पारधी काले रंग के, फुर्तीले और चतुर होते हैं। वे शिकार करते हैं। और इसके अलावा, कुछ मजदूरी, बढ़ईगीरी और खेती भी करते हैं।

मकान: अध्ययन के दौरान देखा जा सकता है कि इस एडविचिनचर समुदाय के घर मिट्टी और ढाबे से

बने होते हैं और एक-दूसरे से सटे होते हैं। इन्हें 'पाल' कहा जाता है। और इस बस्ती को 'परधवाड़ा' भी कहा जाता है।

विवाह: रसेल और हीरालाल के अनुसार, पारध्यों के बीच कई अंतर्विवाही समूह हैं: फेसे पारधी, लंगोटी पारधी और टंकणकर। इनमें कोई गोत्र या देवक नहीं है। राठौड़, चव्हाण, सोलंकी, पवार आदि कुल हैं। इस जनजाति में पितृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था है और विवाह में वधू मूल्य की प्रथा है। बालिग होने के बाद लड़के-लड़कियों की शादी हो जाती है। यदि कोई दूल्हा दुल्हन की कीमत का भुगतान नहीं कर सकता है, तो उसके लिए अपने भावी ससुर के लिए काम करना प्रथागत है। विवाह के रीति-रिवाज और टोटके हिंदुओं के समान ही हैं। मामा से विवाह की अनुमति है तथा मामा-मामी से विवाह वर्जित माना गया है। यदि रोटीबेटी किसी अन्य जनजाति से संबंध रखती है तो उस परिवार का बहिष्कार कर दिया जाता है। बहुविवाह का चलन है। कुछ परिस्थितियों में तलाक दोनों ही प्राप्त कर सकते हैं और विधवाएँ पुनर्विवाह कर सकती हैं। हालाँकि, एक विधवा अपने ससुर से शादी कर सकती है लेकिन मामा या मामा से नहीं। वह मृत पति के छोटे भाई से भी शादी कर सकती है लेकिन बड़े भाई से नहीं। विधवा विवाह कृष्ण पक्ष में मनाया जाता है।

शवगृह प्रणाली: पारधी समुदाय में मृतकों को दफनाया जाता है। और यदि किसी बच्चे पैदा करने वाली महिला या तीर्थयात्री की मृत्यु हो जाती है, तो उसका अंतिम संस्कार किया जाता है।[4]

पारधी समुदाय के विभिन्न समूह: पारधी समुदाय में ग्राम पारधी उपजाति के और भी उप-प्रकार हैं। इसके कोरब, खोडियार, चावंड, डाभी, पिपलाज, विसोट, हरखट जैसे उप-प्रकार हैं।

आदिवासी पारधी समुदाय के कुछ उपनाम इस प्रकार हैं।

1. सालुंके: वदारया, मावया, नवपुर्या, पालपुर्या, सच्चरन्या, कटक्या, वांडेरहिया, गोधाया, 2. दाभाड़े: दाभाड़े, शेल्या, उखया, ठेंगावाला, उमटावाला, 3. दबेराव: कुवारे, 4. पवार: कुमार्य, नवपुर्य, नेमालिया, भार्गल्य, कल्तिखाय, दुधाय, शेल्या, 5. पुरुष, शिसाव, शिसोडे: मालपुर्या, 6. शिंदे: मालपुर्या, 7. सूर्यवंशी: उखाय, 8. सोनावणे: भाले, सत्चरानेस, 9. चव्हाण: चामलास, पिंजरा, कथोक्य, मधलिया, बहत्तर महाल्या, कटकया, लेंढावाला, लिटिल बेबी, वाघलावाला, दुल्लावाला, बताफा दखन्या, कवला

इस समुदाय के मूल प्रकार इस प्रकार हैं: 1. अंबुस्कर, 2. महाले, 3. बोरसे, 4. माव्या (मावला), 5. कुमार्य, 6. शेल्या, 7. नवपुर्य, 8. नेमालय, 9. भार्गल्या, 10. कल्तिखाय, 11. दुध्याय।

पारधी समुदाय के तीर्थ/कुलदेवता: 1. इखाई माता: सिराजगढ़, 2. सप्तश्रृंगी माता: वाणीगड (नासिक के पास), 3. पावापति: पावागढ़ (गुजरात), 4. राग: मैलागढ़, 5. चोकटी: हिमालय पर्वत, 6. खोडियार माता: जूनागढ़ (गुजरात), 7. महेला: बीकानेर, 8. मवई साहब: अहमदाबाद, 9. मौली: दहेगांव, 10. खखत: देवमोगरा, 11. खोडियार देवी: औरंगाबाद 5. इस प्रकार आदिवासी पारधी समूह के मंदिर विशिष्ट हैं।

उपप्रजाति:

1. गोसाई पारधी - गोसाई पारधी गैरिक वस्त्र पहनते हैं और भगवा वस्त्र में साधु जैसे दिखते हैं। वे हिरण का शिकार करते हैं.

2. चीता पारधी - ये लोग कुछ सौ साल पहले तक चीता पालते थे, लेकिन अब चीता भारत की सीमा से विलुप्त हो गया है। अत: अब केवल चित्त पारधी नामक पारधी वर्ग ही बचा है। चीता पारधी पूरी दुनिया में मशहूर था। चिता पारधी मुगल सम्राट अकबर और अन्य सम्राटों के नियमित सेवक थे। जब भारत में चीते की खोज हुई तो चीता पारधी उसे पालते थे और शिकार करने के लिए प्रशिक्षित करते थे।

3. भील पारधी- ये बंदूक से शिकार करते थे।

4. लंगोटी पारधी- इस उपजाति में लंगोटी केवल कपड़े के नाम पर पहनी जाती है।

5. टंकार और तकिया पारधी- पारधी आमतौर पर शिकारी और कार चालक होते हैं।

6. बंदर वाला पारधी- बंदरों को नचाने वाला पारधी।

7. कुपी तेल के साथ पारधी- पारधी पुराने समय में मगरमच्छ का तेल निकालते थे।

8. फास पारधी- शिकार को जाल में फंसाने वाला।[6]

शिकार करना: शिकारी और शिकारी के बीच मुख्य अंतर यह है कि शिकारी गोली चलाने के लिए बंदूक का उपयोग करते हैं, जबकि शिकारी इसके बजाय जाल का उपयोग करते हैं। पारधियों द्वारा बंदूकों के स्थान पर जालों का प्रयोग कुछ धार्मिक मान्यताओं पर आधारित है। महादेव ने उन्हें जंगल के जानवरों को फंसाने की कला सिखाकर बंदूकों से जानवरों का शिकार करने के पाप से बचाया है। ऐसा उनका विश्वास है। भील पारधी भोपाल, रायसेन और सीहोर जिलों में पाए जाते हैं।

जनजाति: बहेली का एक उपवर्ग भी है, जिसे 'कारगर' कहा जाता है। वह केवल काले पक्षियों का ही शिकार करता है। इनके उपनाम राजपूत गोत्र से जुड़े हुए हैं, जैसे - सिदिया, सोलंकी, चौहान और राठौड़ आदि।

देवी : सभी पारधी देवी के उपासक हैं। लंगोटी पारधी चांदी की देवी की मूर्ति लेकर चलते हैं। यही कारण है कि लंगोटी पारधी महिलाएं कमर के चारों ओर चांदी के आभूषण नहीं पहनती हैं और न ही घुटने से नीचे धोती हैं।उनका मानना है कि ऐसा करने से उन्हें देवी के समान होने का एहसास होता है।[7]

निष्कर्ष:

आज के बदलते समय में पारंपरिक प्रथाओं और त्योहारों के बीच परिवर्तन हो रहा है। आदिवासी संस्कृति पर बाहरी सांस्कृतिक का प्रभाव हो राहा हैं लेकिन अन्य संस्कृतियों से इस समुदाय की अलग पहचान है। आनेवाली अगली पीढ़ियों के लिए हमारी संस्कृति को संरक्षित करना बहुत हि जरुरी बात है। प्रेम, सहयोग, त्याग, समानता, स्वतंत्रता के प्रति सम्मान, भाईचारा, वन संरक्षण जैसे महान मूल्य आदिवासी संस्कृति में गहराई से निहित हैं।वर्तमान में अगर अनुसूचित जनजातिओं की संस्कृति जतन करना चाहते है, तो शासन-प्रशासन द्वारा ठोस कदम उठाना जरूरी है. एवं स्वयं इस समुदाय का भी उत्तरदायित्व है।

संदर्भ :

1. https://vishwakosh.marathi.gov.in/33786
2. नाङगोंडे गुरुनाथ, भारतीय आदिवासी कॉन्टिनेंटल प्रकाशन, पुणे संस्करण 2012, पृ. 5-8
3. https://hi.wikipedia.org/wiki क्रांतीवीर; समशेरसिंग; पारधी
4. https://vishwakosh.marathi.gov.in/20743 परळीकर, नरेश, खंड 1
5. https://mr.wikipedia.org/wiki
6. https://bharatdiscovery.org/india
7. उपरोक्त (bharatdiscovery)

❑❑❑

आदिवासी पहचान और संस्कृति

❍ प्रा. सुनील एम. भोईर[1]

भूमिका

अपने जातीय रूप की खोज करना, अपनी जातीय संस्कृति की मूल्यवान विरासत को पहचान और उस पर गर्व करना तथा अपनी जातीय संस्कृति के विकास के लिए अपने राष्ट्र को संगठित करने का संघर्ष चलाना। यह सब मानव समाज में प्राचीन काल से रहा है। आदिवासी संस्कृति की पहचान और उसे प्रतिष्ठित करने का जो संघर्ष है वह निरंतर आगे बढ़ रहा है। आज सारी दुनिया में अस्तित्व के संघर्ष में हारी हुई जातियां अपनी अस्मिता को खोज रही है क्योंकि अपनी पहचान की खोज करने के लिए अपने अतीत को सर्वप्रथम खोजना जरूरी है आदिवासी की पहचान और संस्कृति से पहले आदिवासी कौन है? इस पर विचार करना आवश्यक पड़ता है।

आदिवासी शब्द दो शब्दों आदि+वासी से मिलकर बना है आदि का अर्थ प्राचीन (मूल) और इसका अर्थ मूल निवासी होता है। "भारत की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा आदिवासियों का है। पुरातन लेखों में आदिवासियों को अत्विका और वनवासी भी कहा गया है। संविधान में आदिवासियों के लिए अनुसूचित जनजाति पद का उपयोग किया गया है। भारत के प्रमुख आदिवासी समुदायों में संथाल, गोंड, मुंडा, खड़िया, हो, बोड़ो, मील, खासी, सहरिया, गरसिया, मीणा, उरांव, बिरहोर आदि है।" (सं. मीणा, गंगा सहाय, 2014, आदिवासी साहित्य विमर्श दिल्ली पृ.108) आमतौर पर आदिवासियों को भारत में जनजातीय लोगों के रूप में जाना जाता है। "आदिवासी मुख्य रूप से भारतीय राज्यों उड़ीसा, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, बिहार, झारखण्ड, पश्चिम बंगाल में अल्पसंख्यक हैं जबकि भारतीय पूर्वोत्तर राज्यों में यह बहुसंख्यक हैं जैसे मिजोरम। भारत सरकार ने इन्हें भारत के संविधान की पांचवी अनुसूची में 'अनुसूचित जनजातीयों' के रूप में मान्यता दी है।" (तलवार, वीर भारत 2008, झारखण्ड के आदिवासियों के बीच: एक एक्टीविस्ट के नोट्स, दिल्ली. पृ. 78)

"आदिवासियों का अपना धर्म है। ये प्रकृति पूजक हैं और जंगल, पहाड़, नदियों एवं सूर्य की आराधना करते हैं।" (गुप्ता, रमणिका, 2004 आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, दिल्ली, पृ. 121)। आधुनिक काल में जबरन बाह्य संपर्क में आने के फलस्वरूप इन्होंने हिंदू, ईसाई एवं इस्लाम धर्म को भी अपनाया है। अंग्रेजी राज के दौरान बड़ी संख्या में ये ईसाई बने तो आजादी के बाद इनके हिंदूकरण का प्रयास तेजी से हुआ है परन्तु आज ये स्वयं

---

1. प्रा. सुनील एम.भोईर, अभ्यंकर कुलकर्णी महाविद्यालय रत्नागिरी (महाराष्ट्र)

की धार्मिक पहचान के लिए संगठित हो रहे हैं और भारत सरकार से जनगणना में अपने लिए अलग से धार्मिक कोड की मांग कर रहे हैं।

आदिवासी समुदाय के संबंध में एक निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती। द्वारिका दास गोयल निष्कर्ष तक पहुंचने का प्रयास करते हुए लिखते हैं-

"वन्य जातियों से हमारा तात्पर्य ऐसे सामाजिक समूहों से है जो एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में रहते हुए समान संस्कृति का अनुशीलन करते हैं। अर्थात् जिनकी भाषा, धर्म, रीति-रिवाज आदि विशिष्टता लिए हुए परस्पर सामान्य हो।" (गोयल, द्वारिका दास, भारतीय सामाजिक संस्थाएं, पृ. 88)

आदिवासी संस्कृति पृथक संस्कृति रही है और इसको मानते हुए समाज वैज्ञानिक आदिवासी संस्कृति संरक्षण पर विशेष बल देते हैं पर यह निर्विवाद सत्य है कि बाह्य संसार में प्रवेश करने से शैन: शनै: इनकी संस्कृति का व्यापारीकरण होने लगेगा और वे समाज की व्यापक संस्कृति में मिल जायेंगे।

आदिवासी संस्कृति में 'आदिवासी-धर्म' की संकल्पना है उनका धर्म यानी प्रकृतिवाद। ये आदिवासी हिंदूधर्मिता के साथ हजारों सालों से रहते आए हैं लेकिन हिंदू धर्मियों ने उन्हें अपने में समा लेने का कोई प्रयत्न नहीं किया। इतना ही नहीं उन्हें हिंदू-धर्म तथा जाति-व्यवस्था की चौखट में आदिवासियों को बैठाना भी नहीं आया। उन्हें पराया समझकर दूर रखा गया। "आदिवासी संस्कृति में गीत, लोकोक्तियाँ, कहावतों तथा कहानियों जिनमें लोककथाएँ, अनुश्रुतियाँ तथा मिथक शामिल हैं। यह आदिवासियों के हर क्षेत्र में मिलते हैं।" (गुप्ता, रमणिका, 2004, आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, दिल्ली, पृ. 103)

भारतीय संस्कृति और सभ्यता में आदिवासी परंपराएँ और प्रथाएं छाई हुई हैं फिर भी, इस तथ्य की जानकारी आम लोगों में नहीं है। "भारतीय दर्शन शास्त्र, भाषा एवं रीतिरिवाज में आदिवासियों के योगदान के फैलाव और महत्व को अक्सर इतिहासकार और समाजशास्त्रियों के द्वारा कम करके आंका और भुला दिया जाता रहा है।" (तलवार, वीर भारत 2008, झारखण्ड के आदिवासियों के बीच: एक एक्टीविस्ट के नोट्स, दिल्ली. पृ. 178)

सभ्यता व भौतिक विकास के अनुरूप संस्कृति अपना स्वरूप ग्रहण करती चलती है। इस रूप में संस्कृति मानव निर्मित होती है लेकिन मनुष्य का जीवन अंतत: 'प्रकृति पर निर्भर होता है इसलिए प्रकृति तत्वों से संस्कृति का जुड़ाव अनिवार्य होना चाहिए। प्रकृति से लगाव और मानव सृजित होने की स्थिति के कारण संस्कृति का स्थान प्रकृति एवं कृत्रिमता के मध्य वहीं होता है। जिन मानव-समुदायों की संस्कृति का स्थान प्रकृति एवं कृत्रिमता के मध्य कहीं होता है। "मानव-समुदायों की संस्कृति प्रकृति से निकट का संबंध बनाकर विकसित होती है वे अधिक सौंदर्यबोधी, आनन्ददायक व कल्याणकारी होती है और जो संस्कृति प्रकृति से दूर हटती जाती है वे शास्त्रीय, व्याकरणीय औपचारिक, प्रतिमान आधारित, समाजवटी तथा नीरस बनती चली जाती है।" [यादव, अभिषेक कुमार, आदिवासी जीवन-संघर्ष और परिवर्तन की चुनौतियाँ (आलेख)]

लोक व भद्र समाज की संस्कृतियों का मूलत: आधारित रहती आयी है। इस पृष्ठभूमि में आदिवासी संस्कृति को ठीक प्रकार से समझा जा सकता है। विभिन्न संस्कृतियों के परस्पर संपर्क से पैदा होने वाला प्रभाव आदान-प्रदान की स्थिति लाता है। इस प्रक्रिया में एक-दूजे द्वारा सीखने का नजरिया संस्कृति को उन्नत करता है।

"आदिवासी पारम्परिक मेलों के अवसर पर इकट्ठा होते हैं, उनमें अविवाहित युवक-युवतियों की संख्या काफी होती है मेले के उत्सव-उमंग, नाच-गान व मौज-मस्ती में वे उल्लास के साथ भाग लेते हैं। इस दौरान जान-पहचान व दोस्ती होती है। विपरीत लिंगाकर्षण से उत्पन्न स्वाभाविक प्रीति भी पनपती है। जो युगल शादी करने का मानव बना लेते हैं वे मेला स्थल से भागकर ऊँची पहाड़ियों पर चढ़ जाते हैं और वहाँ से अपने 'एक हो जाने' का एलान करते हैं। संबंधित युवक-युवतियों के परिवार व संबंधियों में बुजुर्ग लोगों को यह पता चलता

है तो वे गोत आदि व पृष्ठभूमि की कोई वैमनस्यता की बाधा न होने पर शादी की स्वीकृति दे देते हैं और वहीं सगाई की रस्म निभा दी जाती है। किसी कारणवश शादी न हो पाए तो दोनों भागकर अपना घर बसा लेते हैं। दोनों की स्थितियों में मेला स्थल से भाग जाने की वजह से इस परम्परा को 'भगोरिया' नाम दिया गया है।" (मीणा, हरिराम, आदिवासी संस्कृति- वर्तमान चुनौतियाँ का उपलब्ध मोर्चा)

"छत्तीसगढ़ के मुड़िया और झारखण्ड के मुण्डा व अन्य आदिवासियों में 'घोटुल' की प्रथा को बाकायदा परम्परागत मान्यता दी हुई है। 'घोटुल' अर्थात् सामूहिक वास-स्थल। प्रथा का लक्ष्य सामूहिक जीवन शैली के संस्कार विकसित करना रहा है। इस बहुआयामी गतिविधि का एक पक्ष यह भी है कि स्थानीय आदिवासी युवक-युवतियां अपनी मनपसंद और सहमति के आधर पर 'घोटुल' में यौन-संबंध बनाते हैं और इसके बाद मनपसंद जोड़े बनाकर शादी के लिए सहमति देते हैं जिसे अन्यथा कोई कारण सामने न आये तो समाज स्वीकार करता है। मनपसन्दगी से प्रेम और विवाह की 'भगोरिया' व 'घोटुल' जैसी परंपराएं उदात्त सांस्कृतिक जीवन के उदाहरण हैं जिन्हें तथाकिथत सभ्य समाज उल्टे नजरियये से देखता है। उस तथाकथित सभ्य समाज के भीतर कितनी यौन विकृतियाँ एवं अपराध पनपते हैं, यह नहीं देखा जाता।" ((मीणा, हरिराम, आदिवासी संस्कृति- वर्तमान चुनौतियाँ का उपलब्ध मोर्चा.)

आदिवासी लोक गीत परंपरा में विषय-वस्तु (content) के स्तर पर वनोपज, कृषि-कर्म, श्रम, पालतू पशु-पक्षी, पर्व-उत्सव, शादी-ब्याह, जन्म-मृत्यु, पनघट, घरेलू औजार-पाती, पुरखे, मिथक, गणचिह्न, प्रकृति, ऋतुएं, मानवेतर अन्य प्राणी-जगत, प्रेम-प्रसंग, आत्म सम्मान के लिए विरोध-संघर्ष-बलिदान आदि तो रहते आये ही हैं, जमाने के बदलाव के साथ नयी बातें भी जुड़ती गयीं। आजादी के बाद प्रजातांत्रिक व्यवस्था लागू हुई। वोट देना नयी बात आयी जो पहले नहीं थी। उस पर भी गीतों का सृजन हुआ।

"वोट देवा चालेंगा जोड़ा सू जूती खोलेंगा..।"

(मीणा, हरिराम, आदिवासी संस्कृति- वर्तमान चुनौतियाँ का उपलब्ध मोर्चा.)

परम्परागत आदिवासी संस्कृति के संरक्षण का प्रश्न उठाया जाता है। यह भी कहा जाता है कि प्रगति व विकास की धारा में मौलिक संस्कृति में परिवर्तन होना अनिवार्य है। लोग यह भी कहते हैं कि मौलिकता को बचाने के चक्कर में विकास अवरुद्ध होता है। "आदिवासी जीवन दर्शन में निरन्तरता एवं गत्यात्मकता; कलदंउपेउद्ध रही है। यही वजह है कि इस संस्कृति के शास्त्रीय प्रतिमान नहीं बनाये जा सकते हैं।" (श्रीवास्तव, चन्दन, ग्लोबल गाँव और गायब होता 'देश', आलेख) परम्परा की धारा में कोन, क्या जोड़ता जा रहा है, यह अज्ञात रहता है। सृजनकर्ता पहचान के पीछे नहीं भागता। रचना सामूहिकता में रम जाती है। आदिवासी संस्कृति इतनी खुली रही है कि विकास के सुखदायक पहलुओं को आत्मसात् करती हुई समृद्ध होती जायेगी। इसलिए विकास के साथ इसका विरोध हो ही नहीं सकता।

आदिवासी भौतिक दृष्टि से सर्वाधिक पिछड़े और आदिम शैली का जीवन जीने वाले अण्डमान के आदिवासियों का दृष्टांत हम देख सकते हैं। "जारवा और सेंटेनली जैसी दो प्रजातियाँ हैं वहाँ अलग-थलग जंगलों में रहते हैं इन प्रजातियों के लोग। गैर आदिवासियों को वे शत्रु मानते हैं चूँकि उन्होंने बहुत सताया इतिहास में। सन् 1859 की अबेर्दीन की लड़ाई ताजा ऐतिहासिक वास्तविकता है। वे आदिवासी अभी भी पका हुआ खाना नहीं खाते, कपड़े नहीं पहनते, कृषि या बागवानी या कोई और कुटीर उद्योग ख्र उत्पादन नहीं करते, झोंपड़ी नहीं बनाते, संपत्ति की अवधारणा से कोसों दूर है।" (मीणा, हरिराम, आदिवासी संस्कृति- वर्तमान चुनौतियाँ का उपलब्ध मोर्चा) शिकार करके खाते हैं।

मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास के लम्बे दौर में मानवीय संबंधों में सामुदायिक मूल्य आधारित सामाजिक व्यवस्था वाला समाज अस्तित्व में आया, जो आदिम काल से आदिवासी समाज को विकसित, समृद्ध

करता आया है और बहुत हद तक आज भी कायम है।

प्रकृति प्रेम और मानव स्वभाव सभी आदिवासी समूहों में एक समान कारक मिलेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी भी अंचल के आदिवासी हों, उनका एक इतिहास भी सामने आना चाहिए।

आदिवासी संस्कृति की पहचान प्राचीन काल से रही है। इनको 'दूसरी दुनिया' की संज्ञा भी दी जाती रही है। इनके यहाँ स्त्री-पुरुष को बराबर का दर्जा और निर्णय लेने का अधिकार प्राप्त रहा है। इनकी प्रथाएँ बहुत प्राचीन और अलग रही हैं। शिकार में निपुण होते हैं। इनके यहाँ खान-पान, रहन-सहन से लेकर जीवन-जीने के तरीके बहुत अलग और आदिवासी संस्कृति में जीवन को महत्त्व अधिक है और जीवन से जुड़े रहने के साथ-साथ अपने नियम बहुत आसानी से स्वीकार करते हुए उस पर अमल करते चलते हैं। इस परंपरा को निरंतर जिंदा रखते हैं। आदिवासी में एक अपनेपन की संस्कृति देखी जाती है।

आदिवासी संस्कृति में प्रकृति-प्रेम, आदिम सौंदर्य-बोध, नृत्य-गीत, कलात्मकता, उत्सव-पर्व-मेले, धूमिल आस्थाएं, सामाजिक संस्कार, मिथक, गणचिन्ह, कथा-कहावत, पहेली-मुहावरे, खेल-कूद एवं मनोरंजन की अन्य क्रियाएँ भद्र संस्कृति की तरह फुरसत के क्षणों को भरने वाली चीजें न होकर संपूर्ण जीवन, यथा मनोविज्ञान, आचरण, सिद्धांत एवं परंपरा, सृजनात्मकता, मूल्य-व्यवस्था से गहरा संबंध रखने वाली क्रियाशील प्रयोजनधर्मी सहज एवं आत्मीय अभिव्यक्तियाँ हैं। सार्वभौमिक मूल्य बचे रहने चाहिए तभी सब कुछ सुरक्षित रह सकेगा।

संदर्भ :

1. डॉ. अमरनाथ. (2015), हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
2. सं. मीणा, गंगा सहाय. (2014), आदिवासी साहित्य विमर्श, दिल्ली: अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लिमिटेड।
3. जोशी, रामशरण (अनुवादक: अरुण प्रकाशन) (1967). आदिवासी समाज और शिक्षा. दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी।
4. सं. रणेन्द्र (2008). झारखण्ड एनसाइक्लोपीडिया मंदार की धमक और गुलईचि की खुशबू, दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
5. गुप्ता रमणिका (2004), आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी. दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
6. गुप्ता रमणिका (2008). आदिवासी साहित्य यात्रा. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
7. तलवार, वीर भारत (2008), झारखण्ड के आदिवासियों के बीच: एक एक्टीविस्ट के नोट्स. दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ.
8. डॉ. मुण्डा, रामदयाल. (2012). आदिवासी अस्तित्व और झारखण्डी अस्मिता के सवाल. प्रकाशन संस्थान.

पत्र पत्रिकाएँ

1. मीणा, गंगा सहाय, आदिवासी अस्मिता और साहित्य।
2. वरवाल, सुरजीत सिंह, आदिवासी विमर्श: एक शोचनीय बिन्दु, साहित्य कुंज पत्रिका।
3. श्रीवास्तव, चंदन, ग्लोबल गांव और गायब होता 'देश'।
4. यादव, अभिषेक कुमार. आदिवासी जीवन-संघर्ष और परिवर्तन की चुनौतियाँ।
5. विद्याभुसन, भारत में आदिवासी प्रश्न।

❑❑❑

डॉ. भीमराव आम्बेडकर के सामाजिक न्याय दर्शन का विश्लेषणात्मक अध्ययन

❍ डॉ. अनुभा श्रीवास्तव[1]

डॉ. अम्बेडकर एक विचारक, समाज सुधारक, संविधान के प्रमुख शिल्पकार, दलितों एवं शोषितों के मातहत, प्रख्यात अर्थ-दृष्टा, कुशाग्र विधिवेत्ता, प्रतिष्ठित समाजशास्त्री और एक अतुलनीय युग द्रष्टा के रूप में अनुपम हैं। इतने महत्वपूर्ण व्यक्ति होने के साथ ही वह सामाजिक न्याय के लिए सबसे ज्यादा जाने जाते हैं। दलितों और वंचितों को समाज में उनका सही स्थान दिलाने वाले डॉ भीमराव अंबेडकर ही थे। यद्यपि संकुचित अर्थों में कुछ विद्वान उन्हें एक वर्ग विशेष का मसीहा मानते हैं, जबकि ऐसा सोचना डॉ अंबेडकर जैसे महान व्यक्तित्व के लिए कतई उचित नहीं है। उन्हें समाज के किसी एक वर्ग विशेष के साथ जोड़कर देखना उनके व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों का अवमूल्यन करना है। वास्तविकता तो यह है कि डॉ अंबेडकर ने भारतीय समाज की संरचना को सर्वाधिक सही तरीके से समझा था और नितांत व्यावहारिक और वैज्ञानिक प्रणाली का अनुसरण करते हुए भारतीय समाज की स्थिति की संकल्पना प्रस्तुत की थी। उन्होंने इस तथ्य को खोज निकाला कि शोषणवादी भारतीय सामाजिक संरचना की अपरिवर्तनशीलता का एकमात्र कारण इसकी संरचना में अंतर्निहित श्रेणीबद्ध असमानता एवं धर्म शास्त्रीय नियमों के प्रति लोगों में अंधविश्वास जनित गहरी आस्था है। उन्होंने तार्किक आधार पर सामाजिक न्याय की एक रूपरेखा तैयार की। उन्होंने यह बताया कि भारतीय समाज एक विषमतामूलक समाज है जिसमें समाज का एक बड़ा वर्ग अपने समस्त प्रकार के अधिकारों सुविधाओं और प्रगति से कोसों दूर है और समाज में जब तक यह वर्ग उस स्थिति से बाहर नहीं आ जाता तब तक सामाजिक न्याय की बात करना बेमानी है और सामाजिक न्याय की स्थिरता के बिना किसी भी समाज की प्रगति की कल्पना नहीं की जा सकती है।

भारत में प्रजातांत्रिक व्यवस्था की सफलता को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि सामाजिक न्याय की स्थापना की जाए। डॉ अंबेडकर यह मानते थे कि वह प्रजातंत्र असफल हो जाएगा जो सामाजिक न्याय पर आधारित नहीं होगा। महात्मा बुद्ध से लेकर स्वतंत्रता की प्राप्ति तक भारत में अनेक समाज और धर्म सुधार संबंधी आंदोलन हुए किंतु उनमें से किसी का भी प्रभाव स्थायित्व ग्रहण नहीं कर सका तथा भारतीय सामाजिक संरचना एवं धार्मिक संरचना सदैव शोषणवादी बनी रही। दलित वर्ग एवं वंचित वर्ग अनवरत शोषित एवं प्रताड़ित होता रहा। इसी दलित वर्ग से अंबेडकर भी रहे जो उन सभी उपेक्षाओं एवं पीड़ाओं को अपने जीवन में भोगते रहे जिसे सभी दलित एवं निम्न वर्ग भोगता आ रहा था।

---

1. सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान, हेमवती नंदन बहुगुणा राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नैनी, प्रयागराज

भारतीय समाज विगत कई हजार वर्षों से वर्ग तथा जाति की कठोर व्यवस्था पर आधारित और संचालित है। वर्ण व्यवस्था के आधार पर समाज के एक बहुत बड़े भाग को उसके जीवन जीने के अधिकार से वंचित रखा गया। शुरू में यह व्यवस्था कार्यगत विशेषीकरण के वैज्ञानिक सिद्धांत पर तथा व्यक्तिगत नैतिक गुणों पर आधारित थी किंतु कालांतर में कठोरता और अपरिवर्तनीय जन्मगत जाति मूलक मान्यताओं पर केंद्रित हो गई जिसके दुष्परिणाम स्वरूप सामाजिक गतिशीलता पूर्णतया अवरुद्ध हो गई, उन्नति के सभी रास्ते बंद हो गए और समाज में उच्च तथा निम्न जातियों के बीच एक कभी न पट पाने वाली खाई पैदा हो गई। परिणामत: एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था अस्तित्व में आई जो पूर्णत: भेदभाव, अन्याय, शोषण दमन और जुल्म पर आधारित थी जिसमें मानवीय संवेदनाओं का कोई स्थान नहीं था इसलिए सामाजिक न्याय जैसी किसी भी बात को करना निरर्थक था। व्यक्ति को उसके जन्म के आधार पर ही विभाजित कर दिया जाता था, कर्म का स्थान समाप्त हो गया था और समाज में समाज को जोड़ने वाली कोई भी स्थिति नहीं थी। अत: सामाजिक न्याय पूर्णत: विलुप्त हो चुका था। डॉ अंबेडकर के चिंतन का दायरा बहुत व्यापक है मानवीय समाज के विविध पहलुओं पर समग्रता, व्यापकता, अगाध गहराई, औचित्य तथा समाधान की अन्वेषकता उनके चिंतन की विशेषताएँ हैं।

एक समतामूलक समाज की स्थापना के बिना अछूत उद्धार का अंबेडकर का मिशन अधूरा रह जाता है और ऐसे समाज की स्थापना के लिए अंबेडकर को कांग्रेस पार्टी तथा गांधी के निजी जीवन एवं व्यक्तित्व से काफी उम्मीद थी। इसी नाते वे गांधी और कांग्रेस दोनों के निकट आ गए परंतु यह नजदीकी भी बहुत दिनों तक कायम नहीं रह सकी। सहमति, असहमति, मतभेद और किसी हद तक टकराव की मन: स्थितियों के बीच मौन समझौते की प्रवृत्ति भी अंबेडकर के व्यक्तित्व व विचारों में देखी जा सकती है। खास तौर पर हरिजन उद्धार के गांधीवादी दर्शन की समीक्षा के मुद्दे पर गांधी जनभावनाओं को नैतिकता और करुणा जैसी मानवीय संवेदनाओं को जागृत करके छुआछूत का उन्मूलन तथा हरिजन उद्धार करने में विश्वास करते थे जबकि इसके लिए लंबे समय की दरकार थी और अंबेडकर इस पर लंबा समय न देकर कानूनी, राजनीतिक शक्ति के माध्यम से अछूत उद्धार में विश्वास रखते थे। उनकी मान्यता थी कि शासन के सभी अंगों और निकायों में निष्ठापूर्ण शूद्रों को आरक्षण दिए बिना अछूतों का उद्धार केवल कल्पना व सिद्धांत के रूप में ही रह जाएगा। डॉ. अंबेडकर न्यायपालिका समेत शासन के विभिन्न अंगों तथा सार्वजनिक एवं अन्य निकायों उपक्रमों में आरक्षण के प्रबल समर्थक थे क्योंकि उनका विश्वास था कि लगातार सदियों से अकारण वंश और जन्म को आधार मानकर वंचित किए गए लोगों को समानता बिना आरक्षण के उपलब्ध नहीं कराई जा सकती और जब तक समानता नहीं आएगी तब तक सामाजिक न्याय कैसे संभव होगा। साथ ही साथ सामाजिक सुधार और शूद्रों का उद्धार भी अर्थहीन होगा। अत: उन्होंने शिक्षित संगठित और संघर्षशील होने का नारा दिया। डॉ. अंबेडकर ने दलितों के वास्तविक उत्थान के लिए कार्य किया।

आधुनिक भारत में भारतीय पुनर्जागरण के काल से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक राष्ट्रीय आंदोलन में अनेक समाज सुधारक एवं राष्ट्रीय नेताओं ने सामाजिक न्याय के लिए आवाज उठाई तथा सामाजिक न्याय को दिलवाने का पूर्ण प्रयास भी किया इन समाज सुधारकों में राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, विवेकानंद जोतिबा फुले, रामास्वामी पेरियार, महात्मा गांधी आदि हैं जिन्होंने सामाजिक समता लाने के लिए अथक प्रयास भी किया किंतु इन सभी विद्वानों में डॉ. भीमराव अंबेडकर सामाजिक न्याय की दिशा में इन सबसे आगे निकल गए, सब से अलग हटकर उन्होंने यह सोचा कि समाज में सुधार केवल संघर्ष एवं जन आंदोलन से ही संभव नहीं है जब तक कि इसे कानूनी, राजनीतिक और राजसत्ता का नहीं मिलता है। शायद यही कारण था कि जब प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में डॉ. भीमराव अंबेडकर को भारतीय संविधान के निर्माण का अवसर मिला तो उन्होंने सामाजिक न्याय तथा समरूपता लाने के लिए भारतीय संविधान में तमाम ऐसे प्रावधान किये जैसे भारतीय संविधान के भाग 3 में मानव अधिकारों की विस्तृत व्यवस्था में अस्पृश्यता की समाप्ति एक अत्यंत महत्वपूर्ण

विषय है क्योंकि सामाजिक समता के मार्ग की यह सबसे बड़ी बाधा थी और अस्पृश्यता का दंश प्राचीन काल से ही भारतीय समाज की जड़ों को खोखला करता आया था समाज में दूरी बढ़ाने तथा लोगों के बीच के भाईचारे की भावना को खत्म करने का यह एक बहुत बड़ा कारण था। क्योंकि मानवीय सभ्यता एवं समानता का वास्तविक आधार समस्त मानवों का गरिमा और सम्मान के साथ जीवन जीने का अधिकार ही है। सामाजिक न्याय के लिए संविधान में यह सबसे बड़ा काम किया गया इसी प्रकार नीति निर्देशक तत्वों में भी इसकी पुष्टि होती है। प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में डॉ अंबेडकर ने कहा– "भारत के संविधान को केवल एक विधिक दस्तावेज के रूप में परिकल्पित नहीं किया जाना चाहिए वरन उसकी सामाजिक क्रांति एवं जनकल्याण तथा राष्ट्रीय उत्थान के ध्येय से भी पूरा अनुनयन होना चाहिए।"

वस्तुत: वर्ण व्यवस्था के दृढ़ स्वरूप, जातिवाद, जड़ नैतिकता तथा धर्मांधता के विरुद्ध उन्होंने संघर्ष किया; क्योंकि सामाजिक न्याय के लिए वे इन सबको बाधक मानते थे। समाज की खेद जनक स्थिति से मुक्ति पाने के लिए सरकार द्वारा एक विशेष व्यवस्था बनाए जाने पर बल देते हुए उन्होंने कहा कि आप जो व्यवस्था बनाई जाए उसमें इसकी रियायत होनी चाहिए जिससे दलित शोषित और प्रवंचित मानवता सामाजिक न्याय अवस्था पर आ सके। उसे नागरिकता के संपूर्ण अधिकार प्राप्त हो सके और उसके पतन का अन्त हो सके। वह जानते थे की कुछ लोग अछूत वर्ग की समस्या को समाप्त नहीं होने देना चाहते क्योंकि वह इस समस्या को अपने समाज की आंतरिक समस्या समझते हैं जिसका कि मूल कारण वह हिंदू धर्म में प्रचलित सामाजिक और धार्मिक मान्यताओं को मानते थे जो इतनी शक्तिशाली थी कि उन्हें अंग्रेजी शासन सत्ता भी खत्म नहीं कर सकी। यह डॉ अंबेडकर की बुद्धिमत्ता, कार्यकुशलता और उनके नेतृत्व की अद्भुत क्षमता ही थी कि उन्होंने सवर्ण वर्ग के शोषण का शिकार अस्पृश्य समाज की समस्या को देश का एक प्रमुख मुद्दा बना दिया।

डॉ अंबेडकर ने अपनी चर्चित पुस्तक एनीहिलेशन ऑफ कास्ट (जाति प्रथा का उन्मूलन) के अंतर्गत हिंदू वर्ग व्यवस्था का विस्तार से वर्णन किया और छुआछूत तथा अस्पृश्यता की प्रथा में निहित अन्याय पर प्रकाश डाला। उन्होंने यह अनुभव भी किया कि उच्च जातियों के कुछ संत महात्मा और समाज सुधारक दलित वर्गों के प्रति सहानुभूति तो रखते हैं और उनकी समानता पर बल भी देते परंतु वे सामाजिक न्याय की दिशा में कोई ठोस योगदान नहीं दे पाए। अछूतों के आत्म विकास के लिए स्वयं अछूतों को ही आगे आना पड़ा। डॉ. अंबेडकर ने दलित वर्ग की जातियों को आत्म सुधार के साथ-साथ उनके आचरण व्यवहार को भी सुधारा। उन्होंने इन जातियों को मदिरापान तथा गोमांस भक्षण जैसी आदत छोड़ने की सलाह दी क्योंकि ये आदतें उनकी स्थिति के साथ-साथ जुड़े हुए कलंक का भी मूल स्रोत थीं। उन्होंने दलितों के आत्म विकास व आत्म सुधार के लिए दलितों में शिक्षा पर विशेष जोर दिया, क्योंकि किसी भी समाज में चेतना तब तक नहीं आ सकती जब तक वहाँ शिक्षा का स्तर ऊँचा ना हो इसलिए दलित व शोषित वर्ग के उद्धार के लिए डॉ अंबेडकर ने उनकी शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया।

इसके अतिरिक्त उन्होंने शासन के संस्थानों में दलित वर्गों के उचित और पर्याप्त प्रतिनिधित्व पर बल देते हुए उनको अपने अधिकारों की रक्षा हेतु न्यायालय का सहारा लेने का संदेश दिया साथ ही उन्होंने हिंदू धर्म के भीतर सवर्ण हिंदुओं व निम्न जातियों के बीच समानता का आंदोलन चलाया जिससे दलित वर्ग उच्च वर्ग के बराबर आ सके और अपने अधिकारों को प्राप्त कर सके।

उन्होंने 'अंत्यज संघ' की भी स्थापना की जिसका उद्देश्य अछूतों की सेवा करना था। संघ चंदा लेकर अछूत विद्यार्थियों को वजीफा देकर उच्च शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करता था। संघ ने विद्यार्थियों के लिए वाचनालय, छात्रावास आदि स्थापित किया ताकि ज्यादा से ज्यादा अछूत विद्यार्थी इसका प्रयोग कर सके। डॉ. अंबेडकर के अछूत सुधार के कार्य देश के सभी प्रान्तों मे फैल चुके थे।

डॉ. अंबेडकर दलितो के लिए जंजीर बनी वर्ण व्यवस्था के समूल विनाश के पक्ष में थे क्योंकि जब तक

यह व्यवस्था समाज में रहेगी तब तक सामाजिक न्याय को प्राप्त करना सपने देखने के बराबर होगा; इसलिए उन्होंने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 17 में इस वर्ण व्यवस्था पर कठोर प्रहार करते हुए छुआछूत उन्मूलन का प्रावधान किया, जो डॉ अंबेडकर के सामाजिक न्याय की प्रासंगिकता को सदियों तक बनाए रखेगा। गांधी जी ने एक बार कहा था कि सामाजिक समानता वर्ण व्यवस्था रहते हुए भी आ सकती है जिसका डॉ अंबेडकर ने कड़े शब्दों में विरोध किया तथा सदैव वर्ण व्यवस्था को समाप्त करने का प्रयास किया।

डॉ. अंबेडकर ने दलितों की समस्याओं को प्रशासन व जनता तक पहुंचाने के लिए सन 1920 में मूकनायक साप्ताहिक पत्रिका शुरू किया। यही पत्रिका उनकी वाणी एवं विचारों का प्रमुख माध्यम बनी। मूकनायक के प्रथम अंक के संपादकीय आलेख में उन्होंने लिखा था भारत में सभी क्षेत्रों में विषमता व्याप्त है शिक्षा के बिना दलित समाज प्रगति नहीं कर सकता दरिद्रता, दुर्बलता, अज्ञान के कारण दलित वर्ग हाथ बल हुआ है। डॉ. अंबेडकर को जो स्वयं महार जाति से आते थे वर्ण व्यवस्था के काटी अनुभवों को झेलना पड़ा था। अतः अछूतोद्धार उनके जीवन का प्रमुख मिशन बन गया था। मूकनायक में अपने लिखे के माध्यम से उन्होंने हिंदू धर्म की बुराइयों को प्रकाशित किया। डॉ. अंबेडकर को जागरण में विश्वास था। उनका मानना था कि जब तक अछूतों में शिक्षा का प्रसार नहीं होगा तब तक उनकी स्थिति में सुधार नहीं होने वाला है। अतः अछूतों को शिक्षा का अवसर और सुविधाएँ प्रदान करने के लिए व्यवस्था को वह परम आवश्यक मानते थे। उन्होंने कहा है कि शिक्षा समस्त उत्थान का मूल तंत्र है। डॉ. अंबेडकर ने विद्या को अपना उपास्य देवता माना था उनका मंतव्य था कि भारत की उन्नति जनसाधारण में शिक्षा का प्रसार करके ही हो सकती है। शिक्षा कुछ ही लोगों के हाथ में नहीं होनी चाहिए बल्कि समाज के सभी वर्गो को शिक्षा का शुभ अवसर प्राप्त होना चाहिए। डॉ अंबेडकर ने कहा कि "हिंदू समाज के निम्न तपके में से आने के कारण शिक्षा के महत्व को मैं भली-भांति जानता हूँ पर यह गलत धारणा है। दलित समाज को रोटी, कपड़ा और मकान देकर परंपरानुसार उन्हें उच्च वर्ग की सेवा करने में लगाना सच्ची उन्नति नहीं है। निम्न वर्ग की प्रगति इससे रुक जाती है। उन्हें दूसरों का गुलाम बनना पड़ता है। स्वयं और राष्ट्र की दृष्टि से किस प्रकार दलितों का महत्व है इसका एहसास करा देना यही निम्न वर्ग का प्रश्न है। उच्च शिक्षा के प्रसार के बिना ये सब होने वाला नहीं है। हमारे सभी नागरिक बीमारियों का मेरी दृष्टि में यही एक रामबाण उपाय है।"

1924 में बहिष्कृत हितकारिणी संघ की स्थापना करके स्थाई एवं प्रभावित तौर पर कार्य आरंभ किया। वह अछूतों की समस्याओं को इसलिए ज्यादा अच्छी तरह समझते थे क्योंकि वह अछूतों की बात सोचते थे और अनुभव करते थे। वह किसी भी स्थिति में हिंदू सुधार के लिए परनिर्भर नहीं रहना चाहते थे। वस्तुतः इन परिस्थितियों को देखते हुए और झेलते हुए उनकी वाणी में अधिक वेदना व तड़प आ गई थी। वह जानते थे कि यह अछूत समस्या न सिर्फ अछूत वर्ग को ही नष्ट करेगी बल्कि संपूर्ण समाज व राष्ट्र की उन्नति में भी बाधक होगी। इस बहिष्कृत हितकारी सभा के द्वारा उन्होंने समाज में चेतना पैदा करने के लिए, समाज को जगाने के लिए तथा अपने अधिकारों के प्रति सजग करने के लिए बहिष्कृत समाज को आंदोलन किया और उसे संघर्षरत बनाया। उन्होंने समाज में यह चेतना पैदा की कि वह भारत के नागरिक हैं और उन्हें भी दूसरों की तरह जीवन की मूल सुविधाओं को प्राप्त करने का अधिकार है जो दूसरे नागरिकों को मिल रही है। सन 1925 में उन्होंने मुंबई में बहुत से सभाओं सम्मेलनों और गोष्ठियों में भाग लिया उन्होंने समाज को संगठित होकर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया, उनका आंदोलन अहिंसक था।

डॉ. अंबेडकर देश की स्थिति को भली भांति समझते थे वह यह जानते थे कि दलितों के लिए चलाए जा रहे विभिन्न प्रकार के आंदोलन से भी दलितों की स्थिति सुधरने वाली नहीं है जब तक की यह वर्ग स्वयं आंदोलन करने के लिए अपने आप को तैयार नहीं करता है। उन्होंने यह देखा की अनेकों आंदोलन के बाद भी दलितों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है तब उन्होंने आंदोलन को तेज करने का निर्णय दिया। 1927

में किए गए महार सत्याग्रह ने देश को चौंका दिया। यह एक ऐतिहासिक अवसर था जब डॉ अंबेडकर ने चाऊदार टैंक का पानी पिया और मनुस्मृति को सार्वजनिक रूप से जलाया। कलाराम मंदिर में प्रवेश की घटना भारतीय सुधार आंदोलन की महत्वपूर्ण कड़ी है। अंग्रेजी सरकार ने अछूतों के मंदिर प्रवेश से संबंधित बिल पर भारतीय समाज के विद्वानों का मत प्राप्त किया। उन मतों से यह निष्कर्ष निकला कि हिंदू समाज से अछूतों का अछूत पन समाप्त कर दिया गया तो हिंदू धर्म का आधार समाप्त हो जाएगा।

डॉ. अंबेडकर का कहना था कि सामाजिक समानता की प्राप्ति लोकतंत्र में ही संभव है; क्योंकि इसमें सबको समान अधिकार प्राप्त होते हैं तथा सबको आगे बढ़ने का एक समान अवसर मिलता है। अतः सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए लोकतंत्र व्यवस्था सबसे अच्छा वातावरण देती है। यह विचार डॉ. अंबेडकर के विचारों के महत्व पर प्रकाश डालता है। उनके अनुसार सही लोकतंत्र वह है जिसमें सभी लोग आपस में सारे सुख-दुख बाँटकर अपना जीवन यापन कर सकें। वह शक्तियों के विकेंद्रीकरण पर जोर देते थे, क्योंकि जब पंचायत तक शक्ति का बंटवारा रहेगा तो निम्न वर्ग के लोगों को अपनी शक्ति और अपने अधिकारों का पता चल सकेगा तथा यह व्यवस्था देश व समाज दोनों को जोड़कर रखने में अत्यधिक सहायक होगी। इसमें दलित वर्ग को भी राजनीति में आने का अवसर मिलता है जो कि सामाजिक न्याय लाने के लिए जरूरी है। डॉ. अंबेडकर ने सामाजिक, राजनीतिक समानता तथा कानून के समक्ष समानता स्थापित करके सभी को उनके अधिकारों के बारे में बताया। इस प्रकार सामाजिक न्याय की प्राप्ति में डॉ. अंबेडकर का महत्वपूर्ण योगदान है जो कि सदियों तक यूं ही बना रहेगा।

निष्कर्ष :

डॉ. अम्बेडकर दलितों के संघर्ष और समाज के संवेदन बिंदु थे। वह अछूतों के मसीहा थे। मानव कल्याण और मानव अधिकार ही उनका उद्देश्य था। दलित दुख निवृत्ति का आवाहन करते हुए डॉ. अंबेडकर ने कहा "धन्य है वह पुरुष जो उन लोगों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के कर्तव्य के प्रति सचेत है जिनमें वह पैदा हुए। सौभाग्यशाली है वह पुरुष जो अपने दिनों एवं रातों को देश के लिए विद्रोहपूर्ण आंदोलन की प्रगति हेतु न्यौछावर करते हैं। धन्य हैं वे लोग जो यह प्रतिज्ञा करते हैं कि वह उस समय तक दम नहीं लेंगे जब तक अछूत मानवता को प्राप्त नहीं कर लें। भले ही मार्ग में अच्छाई, बुराई, धूप, तूफान आदि आए, पर वह नहीं रुकेंगे।"

संदर्भ :

1. हर्ष हरदान, डॉ. बी.आर. अंबेडकर : जीवन तथा दर्शन, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, सन् 1993
2. मन, बसंत, डॉ. बी.आर. अंबेडकर, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 1991
3. कीर, धनंजय, डॉ. आंबेडकर लाइफ एंड मिशन, पप्युलर प्रकाशन, बम्बई, तृतीय संस्करण, 1962, पृ. 8
4. सहारे, एम.एस., डॉ भीमराव अंबेडकर है लाइफ एंड वर्क, नई दिल्ली, 1987, पृ. 29
5. गाबा, ओ.पी., राजनीतिक चिंतन की रूपरेखा, मयूर पेपर बॉक्स, नोएडा, 2005, पृ. 339
6. अंबेडकर, बी आर, एनीहिलेशन ऑफ कॉस्ट, थैकर एंड कंपनी, बॉम्बे, 1937, पृ. 48
7. सिंह, रामगोपाल, सामाजिक न्याय एवं दलित संघर्ष, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी जयपुर 1994, पृ. 95
8. पुजारी, विजय कुमार, डॉ अंबेडकर जीवन दर्शन, गौतम बुक सेंटर शाहदरा दिल्ली 2010, पृ. 123
9. पूरणमल, अस्पृश्यता एवं दलित चेतना, पोइंटर पब्लिकेशंस, जयपुर, 2007
10. भीमराव अंबेडकर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, समता प्रकाशन, जयपुर, 1991
11. अरविंद कुमार बिंदु एवं ताराचंद, डॉ अंबेडकर : एक क्रांतिकारी व्यक्तित्व, अंबेडकर प्रकाशन, जलालपुर, 1994

❑❑❑

राहुल सांकृत्यायन की तिब्बत यात्रा और बौद्ध संस्कृति का अन्वेषण

❍ कमलदीप सिंह[1]
❍ डॉ. रत्नेश कुमार यादव[2]

संक्षिप्ति :

राहुल सांकृत्यायन का यात्रा-साहित्य हिंदी साहित्य में एक धरोहर है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि उनका यात्रा-साहित्य हिंदी में यात्रा-साहित्य को साहित्यिक विधा की मान्यता दिलाता है। अपने यात्रा निबन्धों में राहुल सांकृत्यायन भारत एवं विदेश यात्रा के विवरण को प्रस्तुत करते हैं। उनके तिब्बत सम्बंधित यात्रा-वृतांतों में बौद्ध संस्कृति एवं सभ्यता के अन्वेषण की चर्चा है। उनकी इन यात्राओं का उद्देश्य उस सभ्यता-संस्कृति को जानना-समझना रहा है, जो बौद्ध धर्म के रूप में विश्व विख्यात है। इस सभ्यता-संस्कृति के संरक्षण का प्रयास राहुल जी करते हैं। प्रस्तुत आलेख उनके यात्रा-साहित्य में तिब्बत यात्रा और बौद्ध संस्कृति के अन्वेषण को समझने का प्रयास करता है।

बीज शब्द : यात्रा-वृतांत, घुमक्कड़ी, बौद्ध, संस्कृति।

हिंदी यात्रा-वृतांतों को साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में स्थापित करने का कार्य राहुल सांकृत्यायन के यात्रा-वृतांतों के माध्यम से हुआ। राहुल सांकृत्यायन ने यायावरी जीवन में 40 से अधिक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर उनके साहित्य का अध्ययन किया। ज्ञान प्राप्ति एवं अन्वेषण हेतु विभिन्न स्थानों की कठिन यात्राएँ कीं, जिसमें हिमालय के दुर्गम स्थलों की यात्राएँ एवं उनपर लिखे ग्रन्थ विशेष महत्व रखते हैं। 9 अप्रैल 1893 को जन्मे केदारनाथ पाण्डेय बाल्यकाल से ही घुमक्कड़ प्रवृत्ति के थे। 1907 और 1910 में उन्होंने बनारस और कलकते की यात्राएँ कीं। 1910 में हिमालय की यात्रा के साथ भारत के विभिन्न भागों की नियमित यात्राएँ प्रारम्भ की। 1923 से उन्होंने विदेशी यात्राएँ की। इसमें श्रीलंका, रूस, 4 बार तिब्बत की यात्राएँ की। इसके अतिरिक्त उन्होनें अन्य देशों की यात्राएँ भी की। भारत में उनकी हिमालयी क्षेत्रों में की गयी यात्राएँ प्रमुख रही। उनकी यह घुमक्कड़ी हिंदी में यात्रा-साहित्य को साहित्यिक विधा के रूप में स्थापित करती है, साथ ही घुमक्कड़ी को शास्त्र के समान रखते हुए राहुल सांकृत्यायन घुमक्कड़ शास्त्र जैसा ग्रंथ लिखते हैं। इसमें वे घुमक्कड़ी को एक ज्ञान के रूप में दिखाते हैं। वे घुमक्कड़ी को मानव विकास के रूप में देखते हैं।

1. पी.एच.डी. शोधार्थी, हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, जम्मू केन्द्रीय विश्वविद्यालय।
2. असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, जम्मू केन्द्रीय विश्वविद्यालय।

घुमक्कड़ी को समाज के लिए हितकारी बताते हुए वे स्वयं लिखते हैं- "मेरी समझ में दुनिया की सर्वश्रेष्ठ वस्तु हैं घुमक्कड़ी। घुमक्कड़ी से बढकर व्यक्ति और समाज का कोई हितकारी नहीं हो सकता।"[1]

घुमक्कड़ी सिद्धि को प्राप्त करने के लिए राहुल सांकृत्यायन ने त्याग और संयम को अनिवार्य माना है। घुमक्कड़ होना सरल नहीं होता उसके लिए व्यक्ति को संबंधों से मुक्त होना पड़ता है। यदि कोई वास्तव में घुमक्कड़ होना चाहता है तो इस दीक्षा हेतु राहुल सांकृत्यायन कुछ शर्तों को रखते हैं जो इनको पूरा करने का साहस करे वास्तव में वो ही सच्चा घुमक्कड़ धर्मी हो सकता है। इसके बिना घुमक्कड़ी धर्म का पालन नहीं किया जा सकता है। दरअसल वह घुमक्कड़ नहीं है जो पीछे छूट चुके का शोक करे। घुमक्कड़ तो चलता रहता है, उसे अति जुड़ाव से बचना चाहिए। पारिवारिक संबंधों को भी अपने घुमक्कड़ी धर्म के मार्ग में नहीं आने देना चाहिए। उसके जीवन का मंत्र चरैवेति-चरैवेति होना चाहिए। किसी भी प्रकार का मोह, संबंध उसकी घुमक्कड़ी के मार्ग में बाधा नहीं बननी चाहिए, "यह दीक्षा वही ले सकता है जिसमें बहुत भारी मात्रा में साहस है तो उसे किसी की बात नहीं सुननी चाहिए, न माता के आंसू बहने की परवाह करनी चाहिए, न पिता के भय और उदास होने की, न भूल से विवाह लायी अपनी पत्नी के रोने-धोने की फिक्र करनी चाहिएस"[2]

भारत के संदर्भ में 18-19वीं सदी धार्मिक सुधारों एवं पुनरुद्धार की भी सदी रही है। इस समय विभिन्न धर्मों में सुधार का कार्य हुआ। अनेक धार्मिक संस्थाओं का निर्माण भी हुआ। बौद्ध धर्म के सम्बन्ध में हमें 19वीं सदी में जो पुनरुद्धार देखने को मिलता है उनमें दो नाम विशेष महत्व रखते हैं। एक डॉ. भीमराव अंबेडकर, दूसरे राहुल सांकृत्यायन। डॉ. अम्बेडकर जहाँ जातीय समाज से मुक्ति के विचार के चलते बौद्ध विचार अपनाते हैं, वहीं हम देखते हैं कि राहुल सांकृत्यायन यायावरी प्रवृत्ति को समाज हितकारी बताते हैं। राहुल सांकृत्यायन अपनी अधिकांश यात्राओं का उद्देश्य बौद्ध धर्म-दर्शन का अन्वेषण बताते हैं। वे अपनी यात्राओं में बौद्ध चिंतन, संस्कृति और सभ्यता का अन्वेषण करते हुए दिखते हैं। धर्म-दृष्टि के अनुसार राहुल वैष्णव, शिव भक्त होते हुए। रामोदर स्वामी से 1915-1927 बीच 12 वर्ष आर्य समाजी रहे। उसके पश्चात बौद्ध धर्म में आकर्षण के चलते 1927 में राहुल सांकृत्यायन ने श्रीलंका की यात्रा की। 1930 में अपनी दूसरी श्रीलंका यात्रा में रामोदर साधू 'राहुल सांकृत्यायन' के नाम के साथ बौद्ध धर्म में दीक्षित हुए। बाद के वर्षों में वे कम्युनिस्ट विचारधारा की ओर भी झुकते हैं। इसके पश्चात भी राहुल सांकृत्यायन के जीवन में बौद्ध धर्म का बड़ा महत्व रहा है। बौद्ध धर्म के ग्रंथो के अध्ययन व उनके हिन्दी अनुवाद का कार्य उन्होंने कियास वे त्रिपिटकाचार्य भी हुए। बौद्ध धर्म को राहुल सांकृत्यायन ने जीवन के निकट माना। बौद्ध धर्म दर्शन के प्रति उसके हृदय में मोह सदैव ही बना रहा। वे जीवन के अंतिम समय तक बौद्ध जीवन दर्शन से प्रभावित रहे, भले ही वे बाद में कम्युनिस्ट ही हो गये हों। "बौद्ध धर्म राहुल को प्रकृति के अनुकूल लगा। इस दर्शन की अनात्मवादी और अनीश्वरवादी स्थापनाओं में उन्हें मार्क्सवाद की पूर्व ध्वनि सुनायी पड़ी। उन्होंने पाया कि वह जीवन-दृष्टि बौद्ध-दर्शन में पहले से मौजूद है।...बौद्ध धर्म का इनके द्वारा किया गया विश्लेषण साम्प्रदायिक मान्यताओं से मुक्त हैं।"[3] राहुल सांकृत्यायन महापंडित की उपाधि को चरितार्थ करते हैं। उन्होनें खोज, अन्वेषण द्वारा ज्ञान को उजागर करने हेतु यात्राएँ कीं, जिससे हिंदी यात्रा-साहित्य समृद्ध हुआ। उन्होंने दर्जन से अधिक यात्रा-साहित्य की पुस्तकें लिखीं। यात्रा-साहित्य में उनकी लिखी पुस्तकें इस प्रकार हैं- 1. मेरी तिब्बत यात्रा, यह वर्ष 1937 में प्रकाशित रचना है। इस पुस्तक में तत्कालीन तिब्बती समाज की जानकारियाँ मिलती हैं। वहाँ की संस्कृति, समाज व्यवस्था, बौद्ध प्रभाव आदि, 2. मेरी लद्दाख यात्रा, 3. मेरी यूरोप यात्रा, 4. लंका, 5. यात्रा के पन्ने, 6. जापान, 7. रूस में पच्चीस मास, 8. किन्नर देश में, 9. तिब्बत में सवा वर्ष, 10. घुमक्कड़ शास्त्र, 11. एशिया के दुर्गम भूखंड में, 12. चीन में क्या देखा। इसके अतिरिक्त उन्होंने हिमालय परिचय आदि में भी यात्रा-साहित्य लिखा है। कोई भी यायावरी उद्देश्यहीन नहीं होती अपितु यायावर के साथ उसका उद्देश्य भी यात्रा करता है। यायावर,

यायावरी करता है ताकि वह इस संसार को अधिक से अधिक देख सके, नवीन तरह के जीवनानुभवों को प्राप्त कर सके, राहुल सांकृत्यायन के यायावर जीवन में हमें इनसे इतर ज्ञान प्राप्ति की पिपासा भी देखने को मिलती है। उनकी यात्राओं में सबसे महत्वपूर्ण कार्य उनका तिब्बत में जाकर वहाँ से अमूल्य पुस्तकों को प्राप्त कर उनका अध्ययन करना रहा है। तिब्बत से बौद्ध ग्रंथों को प्राप्त करने के लिए राहुल जी ने बहुत संघर्ष किया था। इन पुस्तकों का अध्ययन करके उन्होंने उन पर टिप्पणी लिखी है, जिससे इस ज्ञान को वे आगे सर्वसुलभ करा सकें। इस तरह अपनी यात्राओं द्वारा प्राप्त ज्ञान को सर्व-सुलभ कराना उनकी यात्राओं का उद्देश्य रहा है। "सोलह वर्ष लगाकर जितना बौद्ध धर्म का ज्ञान मिला, मैंने एक दर्जन ग्रंथों को लिखकर ऐसा रास्ता बना दिया है कि दूसरे सोलह वर्षों में प्राप्त ज्ञान को तीन-चार वर्षों में अर्जित कर सकते हैं"[4]

राहुल सांकृत्यायन एक सच्चे यायावर थे। यह यायावरी प्रवृत्ति ही उन्हें हिंदी यात्रा-साहित्य विधा का प्रमुख चेहरा बनाती है। अपने जीवन को यात्राओं के नाम करने वाले राहुल सांकृत्यायन ने अपनी यात्राओं से हिंदी यात्रा साहित्य को समृद्ध किया। हिमालय के प्रति उनका विशेष अनुराग रहा है। साथ ही वहाँ के सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक आदि जीवन को वे अपने साहित्य में स्थान देते हैं। बौद्ध धर्म के प्रति झुकाव के चलते वे अपनी यात्रा के दौरान उनसे सम्बंधित ऐतिहासिक स्थानों, स्थापत्य कलाओं आदि का विश्लेषण करते हैं। स्थान विशेष में बौद्ध कालीन सभ्यता को देखना, उनके पदचिन्हों को तलाशना, जैसे कार्य उन्होंने अपनी यात्रा के समय किये हैं। बौद्ध धर्म से सम्बंधित ग्रंथों के अध्ययन हेतु उन्होंने तिब्बत की कठिन यात्रा पर जाना निश्चित किया। जहाँ से वे बौद्ध दर्शन से सम्बंधित अमूल्य ग्रंथों को प्राप्त आकर सकें। "मैंने देखा कि भारतीय दार्शनिकों के अनेक ग्रंथों के अनुवाद तथा भारतीय बौद्ध धर्म की बहुमूल्य ऐतिहासिक सामग्री मुझे तिब्बत जाने से ही मिल सकती है। मैंने निश्चय कर लिया कि पाली बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन समाप्त कर तिब्बत अवश्य जाऊंगा।"[5] बौद्ध धर्म के ग्रंथों की खोज हेतु उन्होंने 4 बार तिब्बत की दुर्गम यात्राएँ की जो स्वयं में बताता है कि राहुल सांकृत्यायन अपनी यात्राओं के उद्देश्य को लेकर कितने स्पष्ट थे। राहुल सांकृत्यायन ने अपनी यात्राओं का उद्देश्य बौद्ध धर्म से सम्बंधित सामग्री को संकलित करना बताया है। इस सामग्री संकलन के लिए उन्होंने तिब्बत आदि देशों की यात्राएँ कीं। अपनी तिब्बत यात्रा के सम्बन्ध में वे बताते हैं कि उनकी यात्रा भूगोल अन्वेषण और मनोरंजन के लिए नहीं बल्कि बौद्ध धर्म की सामग्री एकत्र करने हेतु है। बौद्ध संस्कृति, पाली ग्रंथों को वे तिब्बत से भारत लाए। जैसा कि वे स्वयं लिखते हैं "मेरी यह यात्रा भूगोल संबंधी अन्वेषण या मनोरंजन के लिए नहीं हुई है, बल्कि यह यहाँ के साहित्य के अच्छे प्रकार अध्ययन तथा उससे भारतीय एवं बौद्ध-धर्म संबंधी ऐतिहासिकता तथा धार्मिक सामग्री एकत्र करने के लिए हुई है।"[6] राहुल सांकृत्यायन बौद्ध धर्म के जिस अन्वेषण के लिए तिब्बत गये थे। वहाँ पर उन्होंने अपने अथक परिश्रम से बौद्ध ग्रंथों, स्थलों आदि का अन्वेषण किया। उनका मूल्यांकन किया साथ ही उनके संरक्षण हेतु वे चिंतित भी थे। जीर्ण होती बौद्ध स्थापत्य और नष्ट होती पुस्तकों को प्राप्त करने के सम्बन्ध में ही वे अपनी पुस्तक मेरी तिब्बत यात्रा में लिखते हैं- "...हस्तलिखित पुस्तकें ईटो की छल्ली की तरह रख दी गई हैं। जब पढ़ना ही नहीं, तो दूसरी तरह रखने की आवश्यकता क्या? आखिर कुछ समय बाद जीर्ण मंदिर के गिरने पर ये पुस्तकें भी नष्ट हो जाएँगी; किन्तु क्या दाम से भी यह लोग एक दो प्रतियाँ दे सकेंगे?"[7] राहुल सांकृत्यायन जैसे जीवन में घुमक्कड़ रहे वैसे ही वे विचार में भी घुमक्कड़ रहे। किसी भी विचार के बंधन में बंधने से पहले ही वे उससे आगे निकल गये जब तक कि साम्यवादी न हुए। उनके व्यक्तित्व की बौद्धिकता उन्हें धर्म के प्रति विवेकहीन दृष्टि नहीं देती तभी तो वे किसी अन्य धर्मावलम्बियों द्वारा किये गये सद्कार्य को प्रशंसा के योग्य मानते हैं, "वह जानते थे कि मैं बौद्ध हूँ; इसलिए पहिले बड़े उत्साह से कह रहे थे- पादरियों ने कुछ कोली-लोहार-घर ईसाई बना लिए थे जिन्हें हमनें फिर बौद्ध बना लिया और उनको उनकी जाति में मिला दिया। ...जब उन्हें मालूम हुआ कि मैं पक्षपातांध बौद्ध

नहीं हूँ, मैं मोरावियन पादरियों के शिक्षा-ज्ञान-शिल्प-प्रचार कार्यों का प्रशंसक हूँ, तो उन्होंने कहने के ढंग को बदल दिया और कभी-कभी तो वह भी उनके कार्यों और तपस्याओं पर विचार करते आर्द्र हो जाते।"[8] राहुल सांकृत्यायन अपनी यात्रा में जिस अन्वेषण के लिए गये उनमें भारत और तिब्बत की ऐतिहासिक विरासत को संजोने का कार्य किया। सनातन परम्परा में जन्मे राहुल विचार के स्तर पर बौद्ध हुए उसके बाद कम्युनिस्ट भी हुए पर उनके भीतर इस हिमालयी क्षेत्र की सांस्कृतिक सम्बन्ध का विशेष लगाव था। सांस्कृतिक एकता को वे एक व्यापक फलक पर देखते हैं। अपनी तिब्बत यात्रा के दौरान वे लिखते हैं- "हिन्दू, बौद्ध और जैन धर्म की विशाल कला कृति तथा हृदयों को इस प्रकार एक पंक्ति में एक स्थान में शताब्दियों अनुपम सहिष्णुता के साथ फूलते फलते देखना क्या आश्चर्य युक्त बात नहीं थी?"[9] राहुल सांकृत्यायन बौद्ध धर्म अन्वेषण के लिए जब तिब्बत गए। वहाँ वे अनमोल पुस्तकों की दुर्दशा पर व्यथित हो उठे...अंधविश्वास ने पुस्तकों को समाप्त करने का जैसे कार्य ठेके पर लिया हो। वे बीमारी और पाप मुक्ति के लिए पत्रों को धोकर पिलाते। ऐसे में आज तक न जाने कितने ग्रंथों को वे लुप्त कर चुके होंगें। राहुल सांकृत्यायन में उन ग्रथों के संग्रह सुरक्षा का कार्य किया। वे प्रतिलिपि तैयार करने, फोटो लेते, या हाथ से ही लिखते। राहुल सांकृत्यायन की तिब्बत यात्राएँ क्रमशः 1929, 1934, 1936, 1938 में संपन्न हुई। उन्होंने विदेश यात्राओं में तिब्बत की यात्रा सबसे अधिक बार की है। तिब्बत ने अपने पास बौद्ध धर्म, संस्कृति से सम्बंधित वस्तुओं, पुस्तकों आदि का संग्रह पाया जाता है। कई बौद्ध मठ वहाँ पाए जाते थे। राहुल जी तिब्बत यात्रा को याद करते हुए तिब्बत में आये सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन पर बात करते हैं। कैसे तिब्बत में परिवर्तन की बयार चली है, जो परिवर्तन सदियों में होना था वह बहुत ही कम समय में हो जाता है। ऐसे में तिब्बत के पास अपनी विरासत को संजोने एवं सुरक्षित रखने का कार्य भार आ जाता है। "मेरी चारों तिब्बत यात्रा को आज तेरह वर्ष हो चुके हैं, लेकिन तिब्बत ने जैसे अपने भीतर शताब्दियों को ताजा बनाये रखा, उसी तरह से इतिहास की दृष्टि से वह अब भी अचल सिद्ध होता, किन्तु अब वहाँ शताब्दियों का परिवर्तन वर्षों में होने लगा है। भारत और तिब्बत की जिन सांस्कृतिक अनमोल निधियों को मैं वहाँ के मठों में देख आया था, अब उनके गुणग्राहक वहाँ पैदा हो गये हैं...।"[10] जब वैदिक धर्म में कर्मकंडों की कठिनता आई तो समाज ने महात्मा बुध के विचारों के रूप में एक सहज जीवन मार्ग को अपनाया। राहुल सांकृत्यायन ने भी अपने जीवन में बौद्ध विचारों को अपनाया। जीवन में विचारधाराओं के पड़ावों के अंत में कम्युनिस्ट होने पर भी राहुल सांकृत्यायन बौद्ध दर्शन एवं उसके आकर्षण से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाते हैं। बौद्ध धर्म दर्शन सदैव ही उनके जीवन में स्थान रखता है; जैसा कि वे स्वयं लिखते हैं- "त्रिपिटक में कुछ अधिक प्रवेश करते ही वेद, ईश्वर और आर्य समाज ने साथ छोड़ दिया, मैं अनीश्वरवादी नास्तिक बन गया। बुद्ध और उनकी शिक्षाओं के प्रति मेरा अनुराग हो गया। उसके बाद तो कोई धर्म मुझे आकृष्ट नहीं कर सका। बुद्ध से अगली मंजिल पर मार्क्स मुझे मिले। भौतिकवाद मेरा दर्शन हो गया। पर बुद्ध के मधुर व्यक्तित्व का आकर्षण मेरे मन से कभी नहीं गया।"[11] राहुल जी का बौद्ध धर्म दर्शन के प्रति विशेष लगाव रहा है। इसलिए अपने जीवन अनुभव के आधार पर वे बौद्ध धर्म को रूढ़ियों और आडम्बरों से दूर पाते हैं। वे घुमक्कड़ के लिए बौद्ध धर्म को श्रेष्ठ मानते हुए उसको हीरा धर्म कहते हैं। चूँकि घुमक्कड़ को मानवीय दुर्बलताओं, आडम्बरों, छुआछूत धार्मिक कुरीतियों से दूर रहकर अपने को सबमें शामिल करना चाहिए इसलिए यहाँ राहुल संकृत्यायन की दृष्टि में बौद्ध धर्म सबसे श्रेष्ठ मालूम होता है। "सबसे हीरा धर्म घुमक्कड़ के लिए जो हो सकता है, वह है बौद्ध धर्म, जिसमें न छुआछूत की गुंजाइश है न जात-पात की। वह मंगोल चेहरे और भारतीय चेहरे, एशियाई रंग और यूरोपीय रंग, कोई भेदभाव उपस्थित नहीं कर सकते। जैसे नदियां अपने नाम-रूप को छोड़कर समुद्र में एक हो जाती हैं, उसी तरह यह बौद्ध है।"[12]

इस प्रकार राहुल सांकृत्यायन का यात्रा-साहित्य सामाजिक-सांस्कृतिक अन्वेषण की यात्राओं का

लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है। इनके यात्रा-वृत्तांतों में उनके अपने अनुभव हैं। जीवन के विभिन्न पहलुओं के साथ स्थान की सांस्कृतिक परंपराओं के रंग व्याप्त हैं। आजीवन घूमते रहने वाले इस यायावर ने जब भी लेखनी चलाई तो उसके पीछे प्रेरणा के रूप में भी उसकी यात्राएँ ही रही। यात्रा जिस साहस की मांग करती है राहुल जी में वह साहस स्वाभाविक रूप से विद्यमान था। इन यात्राओं को उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन दे दिया। कभी न थमने वाला यायावर जीवनभर घुमक्कड़ बना रहा। उनकी घुमक्कड़ी ने जीवन का उद्देश्य ज्ञान प्राप्ति बना लिया। तिब्बत के समाज को जानने-समझने का अद्भुत कार्य राहुल जी ने अपनी घुमक्कड़ी द्वारा किया। तिब्बत के संबंध में लिखे उनके यात्रा-साहित्य में हमें बौद्ध धर्म सम्बंधित उनके विचार जानने को मिलते हैं। शिवप्रसाद सिंह को उद्धरित करते हुए शशिशेखर तिवारी कहते है- "...सामने खड़े थे राहुल, सहज उन्मुक्त स्वप्नदर्शी जीवन के हिमायती राहुल, जिनकी आँखों में बौद्धकालीन गणराज्य और बाईसवीं सदी की रंगीन ग्राम्य संस्कृति को साकार करने के लिए आतुर-आकुल आकांक्षा का प्रकाश था।"[13] प्रत्येक यात्री केवल पर्यटक भर नहीं होता वह अन्वेषक भी हो सकता है। वह केवल भौतिक दर्शन के लिए यात्रा नहीं करता। उसके साथ-साथ वह सांस्कृतिक, सामाजिक दर्शन करने की भी जिज्ञासा रखता है। राहुल सांकृत्यायन की तिब्बत यात्राएँ भौतिक दर्शन एवं अनुभव से अधिक तिब्बत में बौद्ध धर्म के सांस्कृतिक सामाजिक इतिहास के ताने बाने का अन्वेषण करने वाली यात्राएँ हैं।

संदर्भ :

1. सांकृत्यायन, राहुल, घुमक्कड़ शास्त्र, किताब महल प्रकाशन, पुनर्मुद्रण 2020, पृ. 53
2. वही, पृ. 11
3. डॉ. कमला प्रसाद, सम्मलेन पत्रिका, राहुल सांकृत्यायन विशेषांक, पृ. 42
4. सांकृत्यायन, राहुल, घुमक्कड़ शास्त्र, किताब महल प्रकाशन, पुनर्मुद्रण 2020, पृ. 30
5. सांकृत्यायन, राहुल, तिब्बत में सवा बरस, शारदा मंदिर, नई दिल्ली, पृ. 2
6. सांकृत्यायन, राहुल, तिब्बत में सवा बरस, शारदा मंदिर, नई दिल्ली, पृ. 190
7. सांकृत्यायन, राहुल, मेरी तिब्बत यात्रा, छात्रहितकारी पुस्तकमाला प्रकाशन, दारागंज प्रयाग, पृ. 19
8. सांकृत्यायन, राहुल, किन्नर देश में,किताब महल, पृष्ठ 137
9. सांकृत्यायन, राहुल, तिब्बत में सवा बरस, शारदा मंदिर, नई दिल्ली, पृ. 7
10. सांकृत्यायन, राहुल, यात्रा के पन्ने, भारतीय प्रकाशन संस्थान, 2011, दो शब्द
11. कँवल, भारती, राहुल सांकृत्यायन और आंबेडकर, साहित्य उपक्रम, पृ. 19
12. सांकृत्यायन, राहुल. घुमक्कड़ शास्त्र, किताब महल प्रकाशन, पुनर्मुद्रण 2020, पृ. 59
13. तिवारी, शशिशेखर, हिंदी यात्रा-साहित्यः लोकभारती प्रकाशन, 2021, पृ. 79

❑❑❑

1857, वीर कुँवर सिंह : इतिहास बनाम लोकसंस्कृति

❍ अरविन्द[1]

1857 की क्रान्ति के बिहारी महानायक बाबू कुँवर सिंह भारतीय इतिहास के उन थोड़े से चिरस्मरणीय व्यक्तित्वों में से एक हैं, जिनकी ख्याति दिनों-दिन बढ़ती चली जा रही है। बिहार के भोजपुर जिला स्थित जगदीशपुर के बाबू कुँवर सिंह ने 80 वर्ष की उम्र में सन् 1857 के पहले स्वतंत्रता-संग्राम विस्फोट के दौरान अपने रक्त से भारत की गौरवशाली शौर्य-परम्परा में एक नया अध्याय जोड़ा। भोजपुरी भाषी जनता उन्हें मातृभूमि के लिये हंसते-हंसते अपने प्राण न्यौछावर कर देने वाले एक ऐसे वीर सेनानी के रूप में देखती है, जिसने जन-भावनाओं का सम्मान करते हुए अपराजेय माने जाने वाले अंग्रेजों के विरुद्ध अपने बुढ़ापे में तलवार उठाई थी और उन्हें बार-बार पराजित किया था। समस्त भोजपुरी भाषी क्षेत्र में उन्हें वही दर्जा और सम्मान हासिल है, जो राष्ट्रीय स्तर पर सरदार भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद और सुभाष चन्द्र बोस को हासिल है। 1857 के स्वाधीनता संग्राम के महानायकों में से एक वीर कुँवर सिंह भोजपुरी क्षेत्र की एक किंवदन्ती हैं। भोजपुरी समेत अनेक लोक भाषाओं में उनसे संबंधित तमाम जनश्रुतियाँ हैं। अस्तु यहाँ हमारा प्रयास है कि हम इस जन संघर्ष की तीव्रता, व्यापकता और सक्रियता को वीर कुँवर सिंह के विशेष सन्दर्भ में सुस्पष्ट करें, जिससे यह सिद्ध हो कि यह आन्दोलन भले ही कुछ सामंतों-जमींदारों के नेतृत्व में लड़ा गया था, मगर इसमें किसानों-मजदूरों की सक्रिय भागीदारी थी। इसीलिए निश्चित रूप से यह भारत का प्रथम स्वतंत्रता आन्दोलन था। जगदीशपुर (बिहार) के 'वृद्ध युवक' वीर कुँवर सिंह वास्तव में स्थानीय नेता नहीं रह गए थे। अपने जन समर्थित सैन्य संगठन को लेकर उन्होंने बिहार और बिहार के बाहर वर्तमान उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के विभिन्न स्थानों पर युद्ध का जो अभियान चलाया, वह निश्चित ही अपनी रियासत के विस्तार के लिए नहीं था।

इतिहास बनाम लोक स्मृति

'बाबू साहब' और 'तेगवा बहादुर' आदि नामों से लोक-प्रसिद्ध बड़ा बिहारी वीर बांकुड़ा कुँवर सिंह भारत की पहली आजादी की लड़ाई के ऐसे बिहारी सपूत हैं, जिनकी पहचान राष्ट्रीय स्तर पर बनी। कुँवर सिंह के पिता का नाम साहबजादा सिंह व माता का पंचरतन था, जो बलिया जिले में सहतवार कस्बे के आलेख राय की पुत्री थीं।

धार के राजा भोजराज परमार की 23वीं पीढ़ी में कुँवर सिंह का जन्म 1782 ई. (फासली सन् 1189) में माना जाता है। (*मथुरा प्रसाद दीक्षित,बाबू कुँअर सिंह, पृ. 20*) औपनिवेषिक-साम्राज्यवादी दस्तावेजों के आधार पर है इस बात का साक्ष्य है कि कुँवर सिंह का जन्म 1777 ई. में हुआ था और इस नाते अस्सी वर्ष

---

1. सहायक प्राध्यापक, इतिहास, राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, अरुणाचल प्रदेश।

की उम्र में वह युद्ध में शामिल हुए। महाभारत के उद्योग-पर्व में कृष्ण को ललकारते हुए कुन्ती ने अपने पुत्रों को जिस क्षत्रिय धर्म का स्मरण कराया था, बाबू कुँवर सिंह उसके मूर्तिमान रूप थे। 'मुहूर्तम ज्वलितं श्रेयो' के प्रतीक एवं 'यथा-नामो तथा गुण:' के मूर्तरूप 'बाबू कुँवर सिंह' परमार वंश में उत्पन्न हुए थे, जिसका अर्थ ही है -'पर-मार' (शत्रु को मार या शत्रु-मारक)। वृद्ध होते हुए भी उनके मुखमण्डल पर युवकों सा तेज विराजमान रहता था। बाबू कुँवर सिंह के विशाल शरीर और उस पर गलगुच्छा रखे हुए उनका आनन अत्यन्त प्रभावशाली था। शाहाबाद के शेर, बिहार के गौरव की शौर्य क्षमता का वर्णन करते हुए एक स्थानीय कवि द्वारा युद्ध के वर्णन की कुछ पंक्तियाँ निम्न हैं:-

"कैलस देश पर जुल्म जोर फिरंगिया
जुलुम कहानी सुनि तड़के कुँवर सिंह
बन के लुटेरा उतरल फौजी फिरंगिया
सुन सुन कुँवर के हिरदय लागल अगिया
पहली लड़इया कुँवर सिंह जीतले
दूसरी अमर सिंह भाई
अहे तीसर लड़इया सिपाही सब जीतले
उठे लाट घबराई
गिद्ध मड़राए स्वान, स्यार आनंद छाए
कहीं गिरे गोरा कहीं हाथी बिना सूंड़ के"

उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व के पीछे उनका किसानों की मालगुजारी माफ करना, किसानों को अकाल में सहायता देना, अनाज बाँटना आदि भी शामिल था। कुँवर सिंह जगदीशपुर के स्वामी बने तो पिता के समान ही उन्होंने लगान-माफी एवं दान-कार्य जारी रखा। बाबू कुँवर सिंह ने अपनी प्रेयसी धर्मन बीबी के लिए आरा में तथा जगदीशपुर में मस्जिद का निर्माण किया था। जगदीशपुर तथा अपनी छावनी (जितौरा) में तालाब, भवन, शिव मंदिर एवं मस्जिद आदि का निर्माण करवाया। शाक्यद्वीपीय ब्राह्मण आदित्य मिश्र कुँवर सिंह के पुरोहित थे तथा उनके आध्यात्मिक गुरु 'बसुरिया बाबा' ने उन्हें सम्मान से जीने का मंत्र दिया था। राम कवि ने 'कुँवर विलास' नामक ग्रंथ में जगदीशपुर का मनोहर चित्रण किया है:-

"कुँजड़ा, कसेरा, हलवाई, बनिया की ठाट
ऐसे हैं तमघेली जो रखैया पान वेस के।
पुण्य सुरसति की संचला की थिर लाई जहाँ
ऐसी राजधानी भूप कुँवर नरेस के।।"

ऐतरेय आरण्यक में 'कीकट नामक अनार्य प्रदेश' का वर्णन प्राप्त होता है तथा यह क्षेत्र प्राचीन मगध एवं कुरूष का ही विस्तृत भू-खण्ड है। खिलजी वंश के उत्कर्ष काल में अलाउद्दीन ने मालव (धार) शासक जय सिंह को पराजित कर धार की स्वतंत्र सत्ता नष्ट कर दी। मुस्लिम सत्ता के बढ़ते दबाव एवं धार का उद्धार संभव नहीं होते देख नये आश्रय की खोज में मुकुलदेव अपने छोटे भाई भोजराज द्वितीय के साथ कीकट देश चले आये जो आधुनिक काल में गया एवं शाहाबाद का क्षेत्र है। 1857 के संघर्ष में वीर कुँवर सिंह की भूमिका अनूठी एवं उत्कृष्ट दोनों थी फिर भी उनके योगदान को वह पहचान नहीं मिली है, जो मिलनी चाहिए थी। 1857 की लड़ाई अंग्रेजी राज के विरुद्ध खुली बगावत थी। दानापुर छावनी के बागी सिपाही जगदीशपुर के जागीरदार बाबू कुँवर सिंह से जा मिले। जगदीशपुर के जंगलों में आजादी की पहली गुरिल्ला लड़ाई की शुरुआत हुई थी। इस लड़ाई का नेतृत्व कुँवर सिंह ने किया था, तब उनकी उम्र अस्सी साल थी। भोजपुरी जनकाव्य

में वर्णित तथ्यों के आधार पर वीर कुँवर सिंह 1857 के जन आन्दोलन के क्षेत्रीय नायक थे। भोजपुरी रचित जन काव्य कुँवर सिंह द्वारा विद्रोही सिपाहियों के नेतृत्व और संघर्ष का सिर्फ यही अर्थ नहीं बताते।[8] अप्रैल को मंगल पाण्डेय और 3 जुलाई को पीर अली की फांसी के बाद भारतीय, खासकर शाहाबाद की जनता में बेचैनी फैल गयी, इस बेचैनी ने धीरे-धीरे ग्रामीण जनता और किसानों में अंग्रेजों के खिलाफ असंतोष फैलाया। यहाँ तक कि कुँवर सिंह जैसे जमींदार भी बेचैन हो उठे तथा उन्हें लगने लगा कि अंग्रेज सरकार ने यह ठीक नहीं किया, इसीलिए 1857 में जब अंग्रेजों प्रशासकों ने कुँवर सिंह को बुलाकर, उन्हें तरह-तरह का लालच देने का प्रयास किया तो जन-भावनाओं का समर्थन करते हुए उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि वे जनता के साथ है तथा अपना रास्ता नहीं बदल सकते-

कप्तान लिखे मिलअ कुँवर सिंह
आरा के सूबा बनाइब रे।
तोफा देबों, इनाम देबों,
तोहके राजा बनाइब रे।
कुँवर सिंह भेजले सनेसवा,
मोसे न चली चतुराई रे।
जब तक प्रान रहीं तन भीतर
मारग नहीं बदलाई रे। - श्रीधर मिश्र (भोजपुरी लोक-साहित्य)

आरा, बीबीगंज, दुलौर में विद्रोहियों ने जम कर लोहा लिया। बाद में बर्बर अंग्रेजी सेना ने जगदीशपुर को पूरी तरह ध्वस्त कर दिया। 12 अगस्त को अंग्रेजों ने कुँवर सिंह के महल व अन्य भवनों के साथ एक भव्य मंदिर को भी ढहा दिया, क्योंकि अंग्रेजों का विश्वास था कि वहाँ के ब्राह्मणों ने कुँवर सिंह को विद्रोह के लिये उकसाया। गांव के गांव जलाये गये कुँवर सिंह पर पच्चीस हजार रुपये के इनाम की घोषणा कर दी गई और उनकी पूरी सम्पत्ति जब्त कर ली गई। भयानक दमन और घात-प्रतिघात का सिलसिला लंबे समय तक चलता रहा, 1857 की क्रान्ति भारत की पवित्र भूमि से विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने का प्रयास थी। वर्षों की दबी हुई चिनगारी एकदम ज्वालामुखी बन गई।

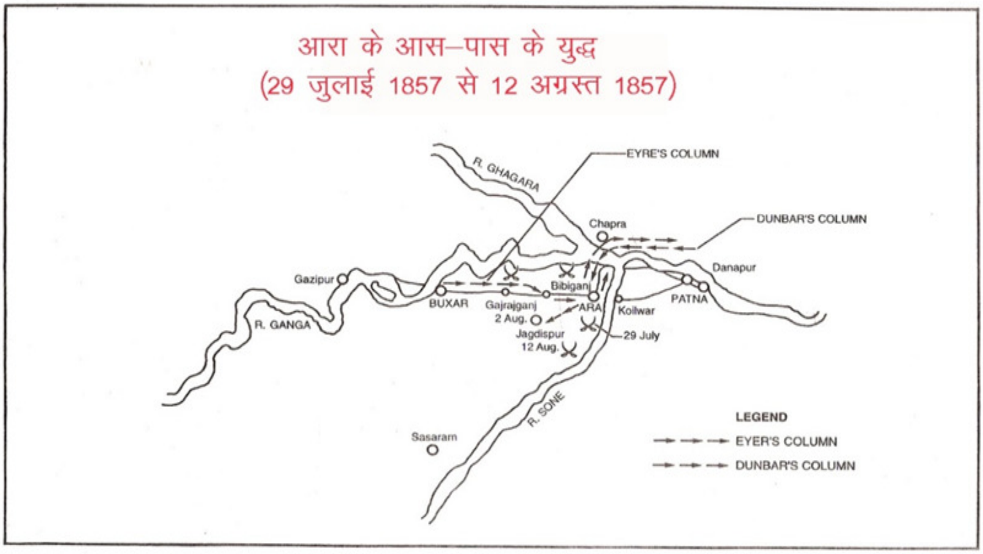

आरा के आस-पास के युद्ध
(29 जुलाई 1857 से 12 अग्रस्त 1857)

स्पष्टत: यह कविता बताती है कि कुँवर सिंह ने अचानक विद्रोही सिपाहियों का नेतृत्व नहीं स्वीकार किया, बल्कि उसके पूर्व अनेक ऐसी घटनाएं घटीं, जिन्होंने कुँवर सिंह के अंतर्मन को अंग्रेजों के खिलाफ भीषण संघर्ष के लिए तैयार कर दिया।

लिखि-लिखि पतिआ भेजले कुँवर सिंह,
सुन हो अमर सिंह भाई।
चमवा के टोटवा दाँत से कटावे, छतरी धरम नसाई।
बात के खातिर बाबू कुँवर सिंह,
लै लै फिरगिंया से रार हो भाई। - कर्मेंदु शिशिर

जनसमूह की स्मृति में कुँवर सिंह की छवि एक लोकप्रिय महानायक की है। इसके बरक्स कुँवर सिंह की दूसरी छवि है, जो इतिहास, खास तौर से 1857 से सम्बन्धित इतिहास में उभरती है। खास बात यह है कि दोनों ही स्त्रोतों में कुँवर सिंह का मूल्यांकन उनके जीवन के आखिरी डेढ़-दो वर्षों पर ही आधारित है।

1857 की क्रान्ति में शामिल होने की पृष्ठभूमि : परिवर्तन सृष्टि का शाश्वत सत्य है, इसे शायद ही किसी कवि की वाणी झुठला सके। बिहार की भूमि नेतृत्व परिवर्तन की भूमि रही है, जहाँ प्राचीन काल से ही नित्य नये-नये परिवर्तन होते रहे हैं। सन् 1826 ई. (संवत् 1883) आषाढ़ कृष्ण 7 बुधवार को अपने पिता (साहबजादा सिंह) की मृत्यु के पश्चात् कुँवर सिंह जगदीशपुर के स्वामी बने उस समय जमींदारी की आय 6 लाख रुपये थी उस आय से 1,60,000 रुपये सरकारी खजाने में जमा किया जाता था। इन सारी परिस्थितियों के बावजूद अतिशय व्यय एवं कुप्रबन्धन के कारण जमींदारी की स्थिति अच्छी नहीं थी। गिरते स्वास्थ्य के बावजूद, उन्होंने नृशंस फिरंगियों की दासता के विरुद्ध हथियार उठाया और 5 जुलाई 1857 को राष्ट्र की मुक्ति-चेतना से लबरेज दानापुर के कुछ चुनिंदा भारतीय बागी ब्रिटिश फौजियों का नेतृत्व किया और अपने जिले के मुख्यालय आरा पर कब्जा कर लिया।

डुमरांव राज के बाद कुँवर सिंह की सबसे बड़ी जमींदारी थी, जिसमें पीरो, ननौर, बिहियां, भोजपुर, सासाराम सहित कुल 1787 मौजे थे। वे एक उदार प्रकृति के जमींदार थे। उनकी माली हालत खराब थी, लेकिन जनहितकारी कार्यों के लिये धन देने में उन्होंने कंजूसी नहीं की। कुछ समझदार लोग तो शुरू से अंत तक अंग्रेजों के साथ रहे। लोक स्मृति में कुँवर सिंह की लड़ाई गुलामी के विरुद्ध तो थी ही, गरीबी और भुखमरी के विरुद्ध भी थी। लोक कवि कहता है-

बबुआ, दिल्ली पति भइलें कंगलवा हो ना।
बबुआ, मंगलों प मिले नाहीं भिखिया ना।
बबुआ, ओ ही दिन दादा ले लौं तरूअरिया हो ना।

जगदीशपुर और आरा में मस्जिदें बनवाई थीं। स्कूल खोले, तालाब खुदवाये। पटना इंडस्ट्रियल स्कूल के लिए 1100 रुपये का दान दिया। पीरो के नूर शाह को नमाज और मस्जिद के रख-रखाव के लिये पांच कट्ठा लगानमुक्त जमीन दान दी। इसके अलावा उन्होंने कई प्रशासनिक सुधार किये।

कुँवर सिंह ने 1854 में एक आवेदन सरकार को दिया था, जिसके अनुसार पेशवा के वंशधरों (अमृतराव एवं विनायक राव) से कर्ज लेने की बात कही थी, परन्तु ऋण न मिलने, महाजन, साहूकारों द्वारा शोषण आदि के कारण कुँवर सिंह पर 17 लाख ऋण हो गया; तभी सरकार ने उनकी जमींदारी से प्रबन्ध हटा लेने की चेतावनी दी। पुन: 25 जून 1857 को कुँवर सिंह ने सरकार को आवेदन पत्र लिखकर अपनी स्थिति स्पष्ट की, परन्तु एक माह पश्चात् 25 जुलाई को दानापुर छावनी के सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया, अभी उनका आवेदन

पत्र सरकार के विचाराधीन था, तभी नये अध्याय की शुरुआत हो गई। कुँवर सिंह की असली हैसियत क्या थी? इस संदर्भ को कर्मेन्दु शिशिर ने इस प्रकार रखा है, "वे किसी बड़ी रियासत के राजा नहीं थे, न ही उनका कोई राज्य था। उनकी एक जागीर जरूर थी, जिससे सटे डुमरांव में एक बड़े राजा थे। दरभंगा और रामगढ़ इन क्षेत्रों के तीनों बड़े राजा अंग्रेज समर्थक थे, लेकिन कुँवर सिंह की तहसील जगदीशपुर की प्रतिष्ठा बहुत थी। इसका सबसे बड़ा कारण तो यह था कि मुगल बादशाह शाहजहां ने इनको 'राजा' की उपाधि दी थी। दूसरी बात यह कि कुँवर सिंह के रिश्ते महाराष्ट्र के राजाओं से लेकर नाना साहब से अंतरंगता की हद तक थे। यह बात भी सही है कि वे भारी कर्ज में डूबे हुए थे और उनकी अपील रेवेन्यू बोर्ड में लंबित थी। पटना के कमिश्नर टेलर चाहते थे कि फैसला जल्दी हो और कुँवर सिंह के पक्ष में हो।" एक ऐसे जमींदार की लोकप्रियता के क्या कारण हो सकते हैं, जो खुद भारी कर्ज में डूबा हो? कुँवर सिंह का कोई भी इतिहास इस प्रश्न से आँख नहीं चुरा सकता। तत्कालीन कोई भी दस्तावेज यह नहीं बतलाता कि कुँवर सिंह अपनी प्रजा में अलोकप्रिय थे। शायद उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में एक राजपूत जमींदार से जो आशाएं एवं अपेक्षाएं जनता की हो सकती थीं; उसे वह पूरा करते होंगे। सामान्यत: यह कहा जाता रहा है कि ऋणग्रस्तता से मुक्ति दिलाने में आनाकानी करने के चलते ही कुँवर सिंह ने विद्रोह में भाग लिया। कुँवर सिंह की लड़ाई में जनता पूरी तरह उनके साथ थी, क्योंकि यह लड़ाई जनता के स्वाभिमान की लड़ाई थी। इस स्वाभिमान के लिए वीर कुँवर सिंह भोजपुरिया लाठी छोड़ कर तलवार उठा लेते हैं-

बबुआ, तजि देले लाठी भोजपुरिया हो ना।
बबुआ, ओ हे दिन दादा लै लौं तरूअरिया हो ना।

विद्रोह के दौरान के अनेक तथ्य ऐसे हैं, जो बतलाते हैं कि कुँवर सिंह के विद्रोह ने लोक युद्ध का रूप कितने गहरे स्तर पर ले लिया था। ग्वाला जाति के रंजीत राम सिपाही जो पहले 40वीं देशी पैदल पलटन का हवलदार था और बाद में बागी सिपाहियों का सेनानायक बनाया गया, का बयान था कि जिस समय कुँवर सिंह अयोध्या की ओर रवाना हुए उस समय उनके पास 2000 से 2500 तक आदमी थे। आजमगढ़ में ब्रिगेड मेजर देवकी दुबे के सेनापतित्व में 2000 से 2500 तक और भी आदमी इनके साथ हो गए। इसका सामाजिक, आर्थिक पटल इतना विस्तीर्ण था कि इसमें सभी वर्ग-जातियों-सम्प्रदायों का समावेश था। अत: स्वाभाविक था कि इसके नायक बाबू कुँवर सिंह किसी एक जाति अथवा एक वर्ग के नेता नहीं हो सकते थे, बल्कि उनका व्यक्तित्व इतना विराट था कि वे जननायक बन गए। असाधारण तेज, बल एवं ओज से सम्पन्न इस व्यक्ति ने अकेले जगदीशपुर से निकल नौ माह तक उत्तर भारत के विभिन्न प्रान्तों का दौरा करते हुए जन समर्थन प्राप्त किया था। आरा में कुँवर सिंह के आगमन पर उनके समर्थकों की संख्या लगभग 5 हजार थी परन्तु रीवां, बाँदा, कानपुर एंव लखनऊ होते हुए जब वे आजमगढ़ की ओर बढ़े, तब उनके समर्थकों की संख्या 18 हजार तक हो गई थी। नागाद, ग्वालियर, बाँदा और रीवां से आए लोग उनके साथ हो गए तथा उनके नेतृत्व में ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध संघर्ष किया। जन-चेतना का उत्कट-प्रवाह उनके साथ था। समस्त हिन्दी-भाषी क्षेत्र के लोग विशेष कर भोजपुरी-भाषी लोग उनके साथ प्राण-पण से थे। एक इतिहासकार पार्लियामेंट पेपर्स के हवाले से बताते हैं कि कुँवर सिंह द्वारा निर्मित मंदिर को इस कारण से नष्ट करवा दिया गया, क्योंकि यहाँ के ब्राह्मणों ने अंग्रेजों के विरुद्ध कुँवर सिंह का साथ दिया था। कुँवर सिंह के साथ बागी सिपाहियों का जुड़ना इस बात का प्रमाण है कि कुँवर सिंह का आंदोलन महज राजपूती मामला नहीं था। इस लड़ाई में जनता का उत्साह और साहस इतना बढ़ा चढ़ हुआ है कि साधनहीनता ही साधन बन जाती है, हँसिया जो खेती-बारी में प्रयुक्त होने वाला छोटा सा औजार है उसे पीट-पीट कर तलवार बना लिया जाता है-

बबुआ, हँसुआ गढ़इलें तरूअरिया हो ना।

किसानी के उपकरण का युद्ध के उपकरण में रूपान्तरण दरअसल एक रूपक है यह एक साधारण किसान का विद्रोही योद्धा में रूपान्तरण है और वीर कुँवर सिंह इस रूपान्तरण के कीमियागर हैं। सच्चा नायक ऐसा ही कीमियागर होता है, जो दुर्बल और साधनहीन में अन्याय के विरुद्ध संघर्ष का साहस भर देता है। साधारण किसानों में छापामार युद्धनीति से अंग्रेजी तोपों के छक्के छुड़ा देने का कौष्शल और साहस भर देना ऐसा ही काम है। कुँवर सिंह एक छोटे से समाज के बड़े से नायक बन जाते हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि गहरी और सरोकार बहुत बड़े हैं। वे अपने समाज की सारी अक्षमताओं को भेदकर उसकी साधारण किसानी वृत्ति और उसके उपकरणों को उसकी शक्ति में बदल देते हैं और उस शक्ति को उसी समाज की अन्याय से मुक्ति के वृहत् सरोकार का निमित्त बना देते हैं। कुँवर सिंह में साधारण की असाधारणता का अभिज्ञान और एक विराट कल्याण के लिये नियोजन दोनों समानान्तर हैं।

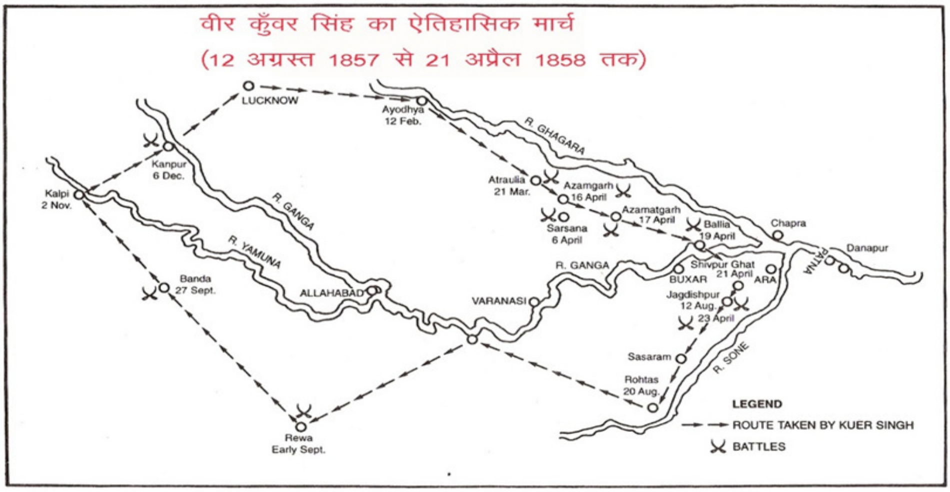

बिहार के बाहर –कुँवर सिंह पुरबियों के इतिहास और भाषा दोनों के नायक–संरक्षक के रूप में उभरते हैं। एक ओर कुँवर सिंह वर्तमान बिहार, उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश तीनों के बड़े भू–भाग के क्षेत्रीय इतिहास को प्रभावित करते हैं, तो दूसरी ओर अन्य देशों में बसे पुरबियों के इतिहास और भाषाई अस्मिता के आग्रह को भी। इन्हीं अर्थो में क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और कुछ हद तक अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर कुँवर सिंह का जीवन वृत्त प्रभाव डालता है। बाबू कुँवर सिंह के मध्य भारत के अभियान मार्ग को लेकर इतिहासकार एस.एन. सेन का अभिमत है कि रोहतास से निकलकर कुँवर सिंह मिर्जापुर की ओर बढ़े, जिससे मिर्जापुर, रीवा के कुछ भागों को खतरा पैदा हो गया। धीरे–धीरे उनके साथी उन्हें छोड़ते जा रहे थे और रीवा के राजा से लड़ने की स्थिति में नहीं थे। इसलिये वे बांदा चले गये, जहाँ उन्हें नाना साहब अथवा ग्वालियर रेजीमेंट या दोनों के ही आमंत्रण पर कानपुर के आक्रमण में शामिल होना था। अगर निशान सिंह की बात सही है, तो कानपुर की लड़ाई के वक्त कुँवर सिंह वहाँ मौजूद थे। तात्या टोपे की हार के बाद वे मराठा सरदारों के साथ कालपी नहीं गये, बल्कि लखनऊ गये। वहाँ वली ने उनका स्वागत किया और आजमगढ़ के लिये उन्हें फरमान दिया। इसके बाद मार्च 1858 में उन्होंने आजमगढ़ पर कब्जा कर लिया। लेकिन लखनऊ पर दोबारा कब्जा हो जाने के बाद अंग्रेजों का मनोबल बढ़ा हुआ था और उन्होंने आजमगढ़ पर फिर अधिकार कर लिया। जन समर्थन का एक बड़ा प्रमाण यह था कि गवर्नर जनरल भारत सरकार के सचिव जी.एफ. ऐडमान्स्टोन ने 12 अप्रैल 1858 को एक सूचना इलाहाबाद से जारी की, कि जो व्यक्ति जीवित या मृत कुंवर सिंह को सरकार के सामने उपस्थित करेगा, उसे 25 हजार रुपये प्रदान किया जायेगा, इसके अतिरिक्त पारितोषिक भी दिया जायेगा। परन्तु किसी भी व्यक्ति ने

इस उपहार के बदले भी कुँवर सिंह को गिरफ्तार नहीं कराया और न उनके उपस्थित होने की सूचना ही दी। अपने लोगों के मध्य बाबू कुंवर सिंह की लोकप्रियता का उदाहरण 21 अप्रैल को उनके गंगा पार करने के अवसर पर भी देखा जा सकता है। आजमगढ़ जिले के मजिस्ट्रेट आर. डेविस जो शिवपुर (बलिया) घाट पर ब्रिटिश सेना के साथ कैम्प कर रहा था; लिखा है कि "आरा मजिस्ट्रेट के कड़े आदेश के पश्चात् सारी नावें गंगा के किनारे से हटा ली गई थीं, इसके बावजूद कुँवर सिंह की सेना को पार कराने के लिए गंगा में नावें लहराने लगीं। कुँवर सिंह के समर्थकों और मित्रों ने उनकी सहायता की, जिससे उनके लोग गंगा नदी पार कर गये"। और अपने शौर्य का प्रदर्शन करते हुए बड़े-बड़े अंग्रेज सेनापतियों को उन्होंने धूल चटाई और पुनः शाहाबाद आकर अपनी जन्मभूमि पर स्वाधीनता का हरा झण्डा फहराया। यह उनके व्यक्तित्व का ऐसा तेजोमय पक्ष है, जो भारतीय इतिहास के पृष्ठों में सदा-सर्वदा के लिए अमर रहेगा। बाबू कुंवर सिंह में उदारता, मानवीयता एवं करुणा का ऐसा सम्मिश्रण था कि वह उनके व्यक्तित्व को देवोपम बना देता है। यह ऊँचाई न अवध की बेगम के उत्तराधिकारी विरजिस कादर में थी, न बूढ़े बहादुर शाह जफर में और ना ही नाना साहब में।[3] अगस्त को फिरंगियों ने द्विगुणित सैन्य-बल के साथ जब पुनः आरा पर कब्जा किया और उनकी रियासत जगदीशपुर को ध्वस्त कर दिया, तब अपराजेय योद्धा बाबू कुँवर सिंह ने लखनऊ पहुँचकर, सन् 1858 में आजमगढ़ पर कब्जा कर लिया। पर अपनी मातृभूमि के विध्वंस के प्रतिशोध की ज्वाला में धधकता यह क्रांतिवीर अपने गृह-नगर की मुक्ति की लालसा लिये पुनः जगदीशपुर की सीमा पर लौट आया और ब्रिटिश कैप्टेन ली-ग्रैण्ड को पछाड़, अपनी विजय-पताका लहरायी।

भोजपुरी सहित अनेक लोक भाषाओं में उनको लेकर जनश्रुतियाँ प्रचलित है, जिनके आधार पर अनेक साहित्यिक अभिव्यक्तियाँ मिलती हैं। दरअसल भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में 1857 का महत्व ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ प्रतिरोध और संघर्ष के रूप में दर्ज है। इस प्रतिरोध और उसके माध्यम से निर्मित राष्ट्रवाद की एक व्यापक संरचना जन साहित्य में भी मौजूद है। भोजपुरी काव्य और उसमें दर्ज कुँवर सिंह का जन-वृतांत प्रतिरोध और संघर्ष की संस्कृति के माध्यम से भारतीय राष्ट्रवाद का एक नया इतिहास रचता नजर आता है। इतिहास की यह धारा यह भी बताती है कि अस्सी वर्ष की उम्र में कुँवर सिंह 1857 में दानापुर के विद्रोही सिपाहियों का नेतृत्व संभालते हैं और ली ग्रांड जैसे अंग्रेज सेनापति को 23 अप्रैल 1858 को एक भारी लड़ाई में हराते हैं, केवल भारत के निवासी ही नहीं, अपितु इंग्लैण्ड के निवासी भी यह स्वीकार करते हैं कि सन् 1857 का विप्लव भारत की भूमि में अंग्रेजी राज्य के इतिहास की सबसे अधिक रोमांचकारी और महत्त्वपूर्ण घटना थी। सच माना जाये तो यह ऐसी भयानक रोमहर्षण घटना थी जिसकी प्रचण्ड लपटों में एक बार इस देश की वीर-भूमि में अंग्रेजी राज्य और अंग्रेजी जाति का अस्तित्व जलकर समाप्त सा मालूम होता था। इन लोकगीतों में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि कुँवर सिंह विजय का श्रेय खुद नहीं लेते थे, बल्कि सिपाहियों को देते थे -

पहिले लड़ाई कुँवर सिंह जितले
दोसर अमर सिंह भाई
तीसरि लड़ाई सब जितले
लाट गयो घबराई।

1857 में औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध सबसे पुरजोर प्रतिरोध भोजपुरी क्षेत्र के महानायक वीर कुँवर सिंह ने किया। फिरंगियों के हौसले परास्त करते हुए, विजयदीप्त बाबू कुँवर सिंह ने जगदीशपुर की ओर प्रस्थान करते हुए, युद्ध में बुरी तरह घायल अपनी भुजा काट कर गंगा मैया को अन्तिम भेंट स्वरूप अर्पित कर दी। उनकी विजय-यात्रा यही नहीं थमीं; 23 अप्रैल, 1858 को जगदीशपुर के पास हुए भीषण युद्ध में क्षत-विक्षत शरीर

एक भुजाधारी समर-वीर कुँवर सिंह दहाड़ते-जूझते रहे और ब्रिटिश सेना को पूर्णतः ध्वस्त कर दिया।

आजादी के इस नर-नाहर ने अपनी मातृभूमि पर स्वतंत्रता के ध्वज के नीचे मृत्यु को सुमृत्यु के रूप में वरण किया। यह सौभाग्य न तो झाँसी की रानी को प्राप्त हुआ, न बाहादुर शाह जफर को और न नाना साहब को। इसीलिए लोकगीतों के रूप में कोटि-कोटि कण्ठों से आज भी आवाज गूँजती है, जो समस्त भोजपुरी-भाषी जनता की आत्मा की आवाज है:-

"बाबू कुँवर सिंह तेगवा बहादुर, बँगला में उड़ेला अबीर"

(होली के अवसर पर गाया जाने वाला लोकप्रिय लोकगीत)

यह स्वतंत्रता का वह जयघोष है, इतिहास का वह भैरवी नाद है, जो आने वाली पीढ़ियों को संबल प्रदान करता रहेगा। 26 अप्रैल, 1858 ई. को बाबू कुंवर सिंह के स्वर्गारोहण के पश्चात् बाबू अमर सिंह ने स्वतंत्रता संघर्ष का नेतृत्व किया।

सावरकर ने इस वीरतापूर्ण सुमृत्यु के विषय में लिखा है कि क्या कोई इससे भी पावन मृत्यु है, जिसकी अपेक्षा कोई राजपूत करेगा? 'क्षत्रियाणं च विहितं संग्रामे निधनं विभो' की भाव-भूमि में यह मरण भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का तेजोमय मरण है। ऐसे महापुरुषों को धरती कभी-कभी पैदा करती है। देशप्रेमी, प्रजावत्सल, जनप्रिय बाबू कुँवर सिंह का इतिहास आज की भावी पीढ़ी के लिए मंगलमय पाथेय है। जिस अवस्था में लोग अशक्त हो जाते हैं तथा उनकी धमनियों में रक्त-प्रवाह नहीं रहता, उस अवस्था में इस महापुरुष ने शुभ्र वीरत्व का उदाहरण प्रस्तुत कर अपने वंश, जाति और राष्ट्र का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित कर दिया। फिर भी कुँवर सिंह जैसा महान नेता एवं सूझ-बूझ वाला व्यक्ति कोई और रहता, तो इतिहास की भाव-धारा कुछ दूसरी होती।

वीर कुँवर सिंह का ध्वज

वास्तव में 1857 के सेनानियों में कुँवर सिंह जैसे जनता से जुड़े सेनानी पर उस तरह से ध्यान नहीं दिया गया है जैसा कि होना चाहिए था। इस शोध-पत्र में मेरा प्रयास रहा है कि वो और उनकी वीरगाथा, जो आम ग्रामीण, गरीब और अनपढ़ लोगों के दिलों में जिन्दा है, उसे अकादमिक हलके में बहस केन्द्र में लाया जाए। जनस्रोतों में मैंने मुख्यत: जन-काव्य (लोकगीत) एवं जगदीशपुर के लोगों के मन में बसी कुँवर सिंह की छवि का उपयोग किया है। एक 80 साल के वृद्ध आदमी ने वर्षो तक अंग्रेजों के खिलाफ अपने जंग को जारी रखा। लखनऊ से आरा तक वो लड़ते रहे। उन्होंने कभी हथियार नहीं डाले। इसीलिए वे लोकगीतों और किंवदन्तियों में अमर हो गये हैं। 1857 में कुँवर सिंह के संघर्ष की वह राष्ट्रवादी छवि उभरकर आई, जो जनता के मन में है। जूलियस सीजर के बारे में कहा जाता है कि वह अपने जीवन काल में जितना शक्तिसम्पन्न था, उससे कहीं अधिक शक्तिसम्पन्न अपनी मृत्यु के बाद सिद्ध हुआ। ठीक यही बात कुँवर सिंह के बारे में कही जा सकती है। मृत्यु ने उनके नश्वर शरीर का अन्त तो कर दिया,पर उनकी ख्याति को कम न कर सकी! वे अमर हो गए। जैसे-जैसे लोगों को उनकी महान उपलब्धियों का बोध हुआ, वे कालजयी होते गए।

संदर्भ :

1. विनायक दामोदर सावरकर, 1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर, नई दिल्ली, 1993, पृ. 229
2. जी. डब्लू. फोरेस्टर-ए हिस्ट्री ऑफ द इंडियन म्युटिनी, लंदन, पृ. 465
3. के. के. दत्ता -बायोग्राफी ऑफ कुँवर सिंह एंड अमर सिंह, के.पी. शोध संस्थान, पटना, 1957, पृ. 4
4. डाक्टर सैयद अतहर अब्बास रिजवी, स्वतंत्र दिल्ली, हिन्दी समिति, सूचना विभाग उत्तर प्रदेश, लखनऊ, द्वितीय संस्करण, 1968, पृ. 5
5. मथुरा प्रसाद दीक्षित, बाबू कुँअर सिंह, पृ. 47
6. पी.जे.ओ. टेलर, ए स्टार शैल फाल रूइंडिया 1857, हारपर-कॉलिंनस, दिल्ली, 1993, पृ. 156
7. एस.वी. चौधरी, सिविल रिविलियन इन दि इण्डियन म्यूटिनी, कलकत्ता, 1930, पृ. 320
8. सी.आर.ओ. सीक्रेट लैटर्स फ्राम इण्डिया, भाग-164, नं. 581, पृ. 463
9. मजिस्ट्रेट, आर. डेविस के पत्र,शिवपुर कैम्प, 23, अप्रैल 1858 इलाहाबाद विदेश विभाग, सीक्रेट नं.-16 डी, 30 अप्रैल, 1858, 25बी
10. बेनी प्रसाद वाजपेयी, सन् 57 का विप्लव, आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, 492, मालवीय नगर, इलाहाबाद, अगस्त 1967, पृ. 9

❑❑❑

श्यामा प्रसाद मुखर्जी रूर्बन मिशन एवं जनजाति विकास : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❍ डॉ. पियुष कुमार सिंह[1]

Acknowledgement

[*"The scholar (Dr. Piyush Kumar Singh) is the awardee of ICSSR Post-Doctoral Fellowship. This paper is largely an outcome of the Post-Doctoral Fellowship sponsored by the Indian Council of Social Science Research (ICSSR). However, the responsibility for the facts stated, opinions expressed, and the conclusions drawn is entirely of the author"***.]**

संक्षिप्ति :

ऐतिहासिक असमानताओं को दूर करने और स्वदेशी समुदायों की भलाई को बढ़ाने के उद्देश्य से, विभिन्न देशों में जनजातीय विकास एक गंभीर चिंता के रूप में उभरा है। श्यामा प्रसाद मुखर्जी रूर्बन मिशन, भारत का एक प्रमुख कार्यक्रम, महत्वपूर्ण जनजातीय आबादी वाले ग्रामीण क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करके इस प्रयास का प्रतीक है। 2016 में भारत में लॉन्च किया गया श्यामा प्रसाद मुखर्जी रूर्बन मिशन, ग्रामीण जीवनशैली के साथ शहरी सुविधाओं को एकीकृत करके चयनित ग्रामीण समूहों को टिकाऊ और आत्मनिर्भर 'शहरी' क्षेत्रों में बदलने की संकल्पना निहित है। जनजाति समुदाय ऐतिहासिक रूप से अपर्याप्त बुनियादी ढांचे, बुनियादी सेवाओं तक सीमित पहुंच और आर्थिक कमजोरियों से संबंधित चुनौतियों का सामना करना आदि समस्याओं से जूझते रहे है। मिशन का उद्देश्य पारंपरिक मूल्यों और आधुनिक आकांक्षाओं दोनों को पूरा करने वाले समग्र विकास को बढ़ावा देकर इन अंतरों को पाटना है। श्यामा प्रसाद मुखर्जी रूर्बन मिशन व्यापक ग्रामीण परिवर्तन के ढांचे के भीतर जनजाति विकास को संबोधित करने के लिए एक उल्लेखनीय दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है। जनजातीय आबादी वाले ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी सुविधाओं को एकीकृत करके, मिशन का लक्ष्य सांस्कृतिक विविधता और पारिस्थितिक स्थिरता का सम्मान करते हुए समावेशी विकास को बढ़ावा देना है। हालाँकि इसमें चुनौतियाँ मौजूद हैं, बावजूद मिशन के संभावित सकारात्मक प्रभाव जनजाति समुदायों के जीवन को बेहतर बनाने

1. पोस्ट डॉक्ट्रेट फेलो, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

और समग्र विकास को बढ़ावा देने में इसके महत्व को रेखांकित करता हैं। यह शोध पत्र जनजाति विकास और श्यामा प्रसाद मुखर्जी रूर्बन मिशन के बीच अंतरसंबंध का एक सिंहावलोकन प्रदान करता है, जो इसके लक्ष्यों, रणनीतियों, चुनौतियों और संभावित प्रभावों पर जोर देता है।

बीज शब्द : श्यामा प्रसाद मुखर्जी रूर्बन मिशन, जनजाति विकास, सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन व निरंतरता

अद्वितीय सांस्कृतिक, भाषाई और सामाजिक पहचान रखने वाले जनजाति समुदाय दुनिया भर के समाजों का एक अभिन्न अंग हैं। हालाँकि, ऐतिहासिक रूप से देखने पर पाते है कि हाशिए और सामाजिक-आर्थिक असमानताओं ने अक्सर उनकी प्रगति में बाधा उत्पन्न की है (चलम: 2017)। इसके जवाब में, दुनिया भर की सरकारों ने जनजातीय विकास को बढ़ावा देने और उनके अधिकारों की सुरक्षा के उद्देश्य से नीतियां बनाई हैं। जनजातीय विकास को लक्षित करने वाली सरकारी नीतियों का प्राथमिक उद्देश्य असमानताओं को दूर करना, सांस्कृतिक संरक्षण सुनिश्चित करना, आजीविका के अवसरों को बढ़ाना और इन समुदायों को देश के विकास में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए सशक्त बनाना है। इन नीतियों में व्यापक आयाम शामिल है, जिसमें भूमि अधिकार मान्यता, शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल, रोजगार, बुनियादी ढांचा और सामाजिक कल्याण कार्यक्रम आदि हैं (पंकज: 2017, वैध: 2003, व्यास: 2014)। ये नीतियां प्रत्येक देश के अद्वितीय संदर्भ, आवश्यकताओं और कानूनी ढांचे के आधार पर भिन्न होती हैं। जनजातीय विकास की जटिलता के कारण चुनौतियाँ उत्पन्न होती हैं। सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करते हुए आधुनिकीकरण को संतुलित करने के लिए विचारशील नीति निर्माण की आवश्यकता महसूस होती रही है। निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में न्यायसंगत भागीदारी सुनिश्चित करना, विकास परियोजनाओं के कारण विस्थापन को कम करना और शोषण का मुकाबला करना सतत चुनौतियाँ हैं। इसके अतिरिक्त, जनजातीय समुदायों के भीतर विविधता के लिए ऐसी नीतियों की आवश्यकता होती है जो अंतर-सामुदायिक विविधताओं के प्रति संवेदनशील हों। जनजातीय विकास पर सरकारी नीतियों के परिणाम सकारात्मक और विवादास्पद दोनों रहे हैं (चौधरी, 2008)। सफल नीतियों के परिणामस्वरूप सामाजिक-आर्थिक संकेतकों में सुधार हुआ, गरीबी में कमी आई, शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि हुई और बुनियादी सेवाओं तक पहुंच में वृद्धि हुई। भूमि अधिकारों को मान्यता देकर और उनकी रक्षा करके, सरकारें जनजातियों को अपने पारंपरिक संसाधनों का निरंतर उपयोग करने के लिए सशक्त बना रही हैं। जनजातीय विकास और सरकारी नीति के बीच संबंध बहुआयामी है और समावेशिता, समानता और सांस्कृतिक संरक्षण को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण है। प्रभावी नीतियों के लिए ऐतिहासिक संदर्भ, स्थानीय गतिशीलता की समझ और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में जनजाति समुदायों को शामिल करने की प्रतिबद्धता की आवश्यकता होती है (सिंह: 2016, सेन: 2002)। सार्थक और सतत प्रगति सुनिश्चित करने के लिए सरकार भूमि अधिकार, सामाजिक-आर्थिक असमानताओं और सांस्कृतिक संरक्षण जैसी चुनौतियों का समाधान करने का अथक प्रयास करती रही है।

श्यामा प्रसाद मुखर्जी रूर्बन मिशन

श्यामा प्रसाद मुखर्जी रूर्बन मिशन (एसपीएमआरएम) भारत सरकार का एक प्रमुख कार्यक्रम है जिसका उद्देश्य ग्रामीण लोकाचार को बनाए रखते हुए ग्रामीण क्षेत्रों को ऐसे समूहों में बदलना है जिनमें शहरी क्षेत्रों की आर्थिक विशेषताएं हों। इस मिशन का नाम डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी के नाम पर रखा गया है, जो एक प्रमुख भारतीय राजनीतिज्ञ और स्वतंत्रता सेनानी थे, जिन्हें राष्ट्रीय विकास में उनके योगदान के लिए जाना जाता है। एसपीएमआरएम का प्राथमिक उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में बेहतर बुनियादी ढांचे, बुनियादी सेवाओं तक पहुंच में वृद्धि और आर्थिक अवसरों में वृद्धि करके ग्रामीण-शहरी विभाजन को पाटना है। मिशन पारंपरिक जीवन शैली के साथ बेहतर आवास, स्वच्छता, शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और कनेक्टिविटी जैसी आधुनिक सुविधाओं को

एकीकृत करके ग्रामीण निवासियों के जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाने का प्रयास करता है। श्यामा प्रसाद मुखर्जी रूर्बन मिशन की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं-

- क्लस्टर दृष्टिकोण : कार्यक्रम भौगोलिक निकटता और आर्थिक संबंधों के आधार पर गांवों के समूहों की पहचान करता है। फिर इन समूहों को इस तरह से विकसित किया जाता है कि वे ग्रामीण परिवेश को बरकरार रखते हुए सामूहिक रूप से शहरी क्षेत्रों की आर्थिक और सामाजिक विशेषताओं को धारण करते हैं।
- बुनियादी ढाँचा विकास : मिशन सड़कों, जल निकासी प्रणालियों, स्वच्छता सुविधाओं, बिजली और पानी की आपूर्ति सहित भौतिक बुनियादी ढांचे में सुधार पर केंद्रित है। लक्ष्य आर्थिक विकास और बेहतर जीवन स्थितियों के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण करते है।
- आर्थिक गतिविधियाँ : एसपीएमआरएम आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा देता है जो ग्रामीण निवासियों के लिए रोजगार और आय के अवसर पैदा करता है। इसमें कृषि, कृषि-प्रसंस्करण, कौशल विकास, लघु उद्योग और सेवाओं से संबंधित पहल शामिल हैं।
- कौशल संवर्धन : कौशल विकास और प्रशिक्षण कार्यक्रम मिशन का एक अभिन्न अंग हैं। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य ग्रामीण युवाओं को विभिन्न क्षेत्रों के लिए आवश्यक कौशल सीखना है, जिससे उनकी रोजगार क्षमता और आय क्षमता में वृद्धि हो।
- सामुदायिक भागीदारी : मिशन की सफलता सक्रिय सामुदायिक भागीदारी पर निर्भर करती है। स्थानीय निवासी और नेता क्लस्टर की जरूरतों और प्राथमिकताओं की पहचान करने और विकास परियोजनाओं को लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
- संस्कृति का संरक्षण : मिशन ग्रामीण समुदायों की सांस्कृतिक विरासत और पारंपरिक प्रथाओं को स्वीकार करता है। इसका उद्देश्य इन समुदायों की पहचान और मूल्यों को संरक्षित करते हुए जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाना है।
- अभिसरण : एसपीएमआरएम यह सुनिश्चित करने के लिए अन्य सरकारी योजनाओं और कार्यक्रमों के साथ अभिसरण को प्रोत्साहित करता है कि संसाधनों का इष्टतम उपयोग किया जाए और लाभ इच्छित लाभार्थियों तक पहुंचें।

श्यामा प्रसाद मुखर्जी रूर्बन मिशन सतत और समावेशी ग्रामीण विकास को बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार के व्यापक प्रयास का एक हिस्सा है। जनजातीय समुदायों सहित महत्वपूर्ण ग्रामीण आबादी वाले समूहों पर ध्यान केंद्रित करके, मिशन समाज के हाशिए पर रहने वाले वर्गों के उत्थान और एक अधिक न्यायसंगत और समृद्ध राष्ट्र बनाने की आवश्यकता को पूर्ण करने का प्रयास करता है।

श्यामा प्रसाद मुखर्जी रूर्बन मिशन व जनजाति विकास

श्यामा प्रसाद मुखर्जी रूर्बन मिशन की प्रमुख रणनीतियों में भौतिक बुनियादी ढांचे को बढ़ाना, आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा देना और रूर्बन क्षेत्रों में सामाजिक सुविधाओं में सुधार करना शामिल है। स्वच्छ पानी, स्वच्छता, स्वास्थ्य देखभाल, शिक्षा और परिवहन जैसी आवश्यक सुविधाएं प्रदान करके, मिशन का इरादा इन क्षेत्रों में रहने वाले जनजाति और अन्य हाशिए पर रहने वाले समुदायों के लिए जीवन की समग्र गुणवत्ता में सुधार करना है। इसके अतिरिक्त, मिशन आजीविका के अवसर पैदा करने के लिए टिकाऊ कृषि पद्धतियों और कौशल विकास पहलों को अपनाने को प्रोत्साहित करता है। सरकारी एजेंसियों, स्थानीय अधिकारियों और जनजाति नेताओं के बीच प्रभावी सहयोग यह सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण है कि मिशन के लाभ जनजाति

निवासियों की विशिष्ट आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के अनुरूप हों। जनजातीय विकास पर श्यामा प्रसाद मुखर्जी रूर्बन मिशन के संभावित प्रभाव महत्वपूर्ण हैं। आवश्यक सेवाओं और बुनियादी ढांचे तक बेहतर पहुंच से जनजातीय आबादी के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा और आर्थिक संभावनाओं में वृद्धि हो सकती है। सतत विकास पर मिशन का ध्यान जनजाति संस्कृतियों और पारिस्थितिक प्रथाओं के संरक्षण के साथ संरेखित है। जनजातीय समुदायों को बढ़ी हुई आत्मनिर्भरता और अवसरों के साथ सशक्त बनाकर, मिशन उनके समग्र सामाजिक-आर्थिक कल्याण में योगदान देता है और ग्रामीण-शहरी विभाजन को पाटने में मदद करता है। जनजाति विकास के संदर्भ में श्यामा प्रसाद मुखर्जी रूर्बन मिशन के निहितार्थ, चुनौतियों और संभावित परिणामों को इस प्रकार देखा जा सकता है-

सकारात्मक प्रभाव

बेहतर बुनियादी ढाँचा : सड़क, स्वच्छता और स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं सहित बुनियादी ढाँचे के विकास से मिशन द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले जनजाति समुदायों को महत्वपूर्ण रूप से लाभान्वित कर रहा है। इन सुविधाओं तक पहुंच से उनके जीवन की गुणवत्ता को बढ़ा रही है, बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान हो रही है और जनजाति द्वारा अक्सर सामना किए जाने वाले भौगोलिक अलगाव को कम होते हुए देखा जा सकता है।

- आर्थिक अवसर : मिशन द्वारा प्रचारित आर्थिक गतिविधियाँ, जैसे कृषि, कृषि-प्रसंस्करण और कौशल विकास, जनजाति आबादी को आजीविका के विकल्प प्रदान कर रहे हैं। इससे पारंपरिक निर्वाह कृषि पर निर्भरता कम करने में मदद मिल रही है और गरीबी कम करने में योगदान मिल रहा है।
- कौशल संवर्धन : मिशन के तहत कौशल विकास पहल जनजाति युवाओं को आधुनिक कौशल युक्त कर रहा है, जिससे वे विभिन्न क्षेत्रों में अधिक रोजगार योग्य बन रहे हैं। इससे न केवल उनकी कमाई की क्षमता बढ़ती है बल्कि उन्हें विविध आर्थिक गतिविधियों में शामिल होने का अधिकार भी मिल रहा है।
- सांस्कृतिक संरक्षण : ग्रामीण लोकाचार को संरक्षित करते हुए शहरी सुविधाओं को एकीकृत करने का मिशन का दृष्टिकोण जनजाति समुदायों के साथ प्रतिध्वनित हो रहा है, जो अक्सर अपनी सांस्कृतिक विरासत और जीवन के पारंपरिक तरीके को महत्व देते हैं। सांस्कृतिक संरक्षण के साथ आधुनिकीकरण को संतुलित करने से अधिक टिकाऊ विकास परिणाम प्राप्त हो रहे हैं।
- उन्नत आजीविका : एसपीएमआरएम में जनजातीय आजीविका में विविधता लाने की क्षमता है, जिससे वे बाहरी झटकों के प्रति कम संवेदनशील हो रहे है। इससे जनजातीय आबादी के बीच आय और आर्थिक लचीलापन बढ़ रहा है।
- सशक्तिकरण : बेहतर बुनियादी ढांचे, शिक्षा और कौशल विकास तक पहुंच जनजातीय समुदायों को निर्णय लेने की प्रक्रियाओं और स्थानीय शासन में अधिक सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए सशक्त बना रही है।
- असमानताओं में कमी : बुनियादी ढांचे और सेवाओं में अंतराल को संबोधित करके, मिशन जनजाति और गैर-जनजाति आबादी के बीच असमानताओं को कम करने में योगदान कर रहा है, जिससे अधिक समावेशी और न्यायसंगत विकास संभव है।
- सांस्कृतिक गौरव : विकास को बढ़ावा देते हुए सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने का मिशन का दृष्टिकोण जनजाति समुदायों के बीच गौरव और पहचान की भावना पैदा कर रहा है, जिससे उन्हें आधुनिकता को अपनाने के साथ-साथ अपनी परंपराओं को बनाए रखने में मदद मिल रही है।

चुनौतियाँ :

- सांस्कृतिक संवेदनशीलता : जनजातीय समुदायों में विशिष्ट सांस्कृतिक प्रथाएँ, भूमि स्वामित्व प्रणाली और सामाजिक गतिशीलता होती है। इन मतभेदों का सम्मान और समायोजन करते हुए मिशन की परियोजनाओं को लागू करने के लिए सावधानीपूर्वक योजना और सामुदायिक भागीदारी की आवश्यकता है।
- भूमि अधिकार : भूमि स्वामित्व और अधिकार जनजाति समुदायों के लिए महत्वपूर्ण मुद्दे हैं। यह सुनिश्चित करना कि विकास प्रक्रिया के दौरान भूमि अधिकारों को मान्यता दी जाए और उनका सम्मान किया जाए, संघर्षों और विस्थापन से बचने के लिए यह आवश्यक है।
- सामुदायिक सहभागिता : सफल कार्यान्वयन के लिए जनजातीय समुदायों की परियोजनाओं में सक्रिय भागीदारी और स्वामित्व की आवश्यकता है। मिशन की प्रभावशीलता के लिए योजना, निर्णय लेने और निष्पादन चरणों में उन्हें शामिल करना महत्वपूर्ण है।
- न्यायसंगत लाभ : यह सुनिश्चित करना कि मिशन के लाभ जनजातीय समुदायों के सभी सदस्यों तक पहुँचें, जिनमें उनके हाशिये पर मौजूद समूह भी शामिल हैं, एक चुनौती है। किसी भी बहिष्करण या लाभों के असमान वितरण को रोकने के लिए उपाय किए जाने चाहिए।

श्यामा प्रसाद मुखर्जी रूर्बन मिशन में ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले जनजाति समुदायों के सामने आने वाली महत्वपूर्ण चुनौतियों का समाधान करके जनजाति विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालने की क्षमता निहित है। हालाँकि, सफल कार्यान्वयन के लिए संदर्भ-संवेदनशील दृष्टिकोण, सक्रिय सामुदायिक सहभागिता और सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने की प्रतिबद्धता की आवश्यकता है। यदि सोच-समझकर क्रियान्वित किया जाए, तो यह मिशन जनजाति आबादी की विशिष्ट पहचान और आकांक्षाओं का सम्मान करते हुए उनके लिए अधिक समावेशी और समृद्ध भविष्य में योगदान दे सकता है।

निष्कर्ष :

श्यामा प्रसाद मुखर्जी रूर्बन मिशन जनजाति विकास के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण प्रयास है, जो जनजाति समुदायों की जरूरतों को प्राथमिकता देते हुए ग्रामीण और शहरी जीवन के बीच अंतर को पाटने के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण का प्रदर्शन करता है। पारंपरिक मूल्यों के साथ आधुनिक सुविधाओं को एकीकृत करने पर मिशन का जोर इन समुदायों के सामने आने वाली चुनौतियों और उनकी सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने के महत्व की गंभीरता को प्रदर्शित करता है। बुनियादी ढांचे, आर्थिक सशक्तीकरण और सामाजिक कल्याण पर अपने रणनीतिक फोकस के माध्यम से, मिशन में जनजाति आबादी के जीवन में परिवर्तनकारी बदलाव लाने की क्षमता है। स्वच्छ पानी, स्वच्छता, स्वास्थ्य देखभाल, शिक्षा और बेहतर कनेक्टिविटी तक पहुंच प्रदान करके, मिशन सेवा वितरण में महत्वपूर्ण अंतराल को संबोधित करता है जो लंबे समय से जनजाति समुदायों की प्रगति में बाधा बनी हुई है। हालाँकि, यह पहचानना आवश्यक है कि श्यामा प्रसाद मुखर्जी रूर्बन मिशन का सफल कार्यान्वयन प्रभावी सामुदायिक भागीदारी, स्थानीय संदर्भों के प्रति संवेदनशीलता और जनजाति नेताओं के साथ सहयोग पर निर्भर करता है। जनजातीय संस्कृतियों, भूमि स्वामित्व प्रणालियों और सामाजिक गतिशीलता की विशिष्टता के लिए ऐसे अनुरूप दृष्टिकोण की आवश्यकता है जो उनकी पहचान और स्वशासन का सम्मान करे। इसमें न केवल आर्थिक उत्थान शामिल है बल्कि स्वदेशी ज्ञान, प्रथाओं और जीवन के तरीकों का संरक्षण भी शामिल है जो इन समुदायों को पीढ़ियों से कायम रखे हुए हैं। जबकि भूमि अधिकार, सांस्कृतिक संवेदनशीलता और न्यायसंगत लाभ वितरण जैसी चुनौतियाँ बनी हुई हैं। इस मिशन में जनजातीय आबादी के लिए सामाजिक-

आर्थिक संकेतक, शैक्षिक उपलब्धि और जीवन की समग्र गुणवत्ता में सुधार करने की क्षमता है। इसके अलावा, यह यह सुनिश्चित करके राष्ट्रीय विकास के व्यापक लक्ष्य में योगदान देता है कि कोई भी समुदाय पीछे न छूटे। जनजातीय विकास के व्यापक संदर्भ में, श्यामा प्रसाद मुखर्जी रूर्बन मिशन अनुकूलनीय और समग्र नीतियों के महत्व को रेखांकित करता है जो सांस्कृतिक संरक्षण के साथ आधुनिकीकरण को संतुलित करते हैं। इसकी सफलता न केवल इसके द्वारा लाए गए ढांचागत परिवर्तनों में निहित है, बल्कि जनजाति समुदायों को अपने आवश्यक संसाधनों, अवसरों और एजेंसी के साथ सशक्त बनाने की क्षमता में भी निहित है। जनजातीय विकास पर मिशन का प्रभाव इसके तत्काल परिणामों से परे है, जो आने वाले वर्षों में सामाजिक न्याय, समावेशिता और न्यायसंगत विकास के प्रक्षेप पथ को समाहित करता है।

संदर्भ :

- चलम, के. एस. (2017), आर्थिक सुधार और सामाजिक परिवर्तन, नई दिल्लीः सेज भाषा।
- चौधरी, यू. एस. (2008), हाशिये की वैचारिकी, नई दिल्लीः अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.
- जमादार (2017), आदिवासी और दलित संस्कृति, नई दिल्लीः रूपा पब्लिकेशन।
- जोशी, आर. (1997), आदिवासी समाज और शिक्षा (अनु. प्रकाश ए.), नई दिल्लीः ग्रंथ शिल्पी।
- पंकज, ए. के. (2017), प्राथमिक आदिवासी विमर्श, रांचीः प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन।
- मजूमदार, डी. एन. और मदन, टी. एन. (2010), सामाजिक मानवशास्त्र परिचय (अनु. भारद्वाज. जी), नोयडाः मयूर पेपरबैक्स।
- मालिक, एफ. और मुखर्जी, बी. एम. (2015), आदिवासी अशांति, नई दिल्लीः के. के. पब्लिकेशन।
- मीणा, एच. (2012), साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक, दिल्लीः शिल्पायन।
- वैद्य, एन. के. (2003), जनजातीय विकाश, जयपुरः रावत पब्लिकेशन्स।
- व्यास, डी. (2014), सामाजिकख्रसांस्कृतिक निरंतरता एवं परिवर्तन, जयपुरः रावत पब्लिकेशन्स।
- सिंह, आर. (2016), आधुनिक भारत में जातियो एवं जनजातियों का बदलता स्वरूप, आगराः निखिल पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर।
- सेन, ए. (2002), अतीत का वर्तमान (अनु. मोहन, ए.), दिल्लीः ग्रंथ शिल्पी।
- भारत सरकार, ग्रामीण विकास मंत्रालय (2023, 21 फरवरी). श्यामा प्रसाद मुखर्जी रूबर्न मिशन From https://static.pib.gov.in/WriteReadData/specificdocs/documents/2023/feb/doc2023221161301.pdf retrieved on 02 July 2023.
- https://rdprd.gov.in/SPMRM/Spmrm-II%2027-10-2020.pdf
- https://rurban.gov.in/index.php/public_home/about_us#gsc.tab=0
- https://rurban.gov.in/index.php/public_home/about_us#gsc.tab=0
- https://rural.nic.in/sites/default/files/SPMRM_Guidelines_English.pdf

❑❑❑

भारतीय संस्कृति में रामकथा : मलयालम के संदर्भ में

❍ प्रो. प्रमोद कोवप्रत[1]

वाल्मीकि ने जब रामायण की रचना की, तब यह कल्पना नहीं की होगी कि रामचंद्रजी को किसी दिन भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार का भार भी वहन करना पड़ेगा। देश की राजनीतिक विशृंखलता, धार्मिक पतन, सांस्कृतिक विघटन और सामाजिक जर्जरता के काल में राम में मनुष्यत्व का आरोप करके उन्हें एक विशाल भूभाग की जनता के विमोचक तथा संरक्षक और उनकी संस्कृति के उद्धारक बनाने का कार्य ही तुलसी ने किया।"[1] भारतीय भाषाओं की रामकथा पर नजर डालेंगे तो पता चलेगा यह कथन पूर्ण रूप से सही है। राम कथा ने भारतीय संस्कृति का और भारतीय जनमानस को गहराई से प्रभावित किया है। भारतीय संस्कृति विविध ता से भरी है। उसी तरह रामकथा को प्रस्तुत करने का तरीका भी भारतीय भाषाओं में अलग-अलग है। लेकिन उसकी मूल प्रेरणा राम और सीता है, उनके चरित्र हैं। इसीलिए 'नाना भांति राम अवतारा रामायण सतकोटि अपारा' बताया गया है ।

वाल्मीकि रामायण को भारतीय परंपरा में आदि काव्य मानते हैं। राम कथा के मिथक की विभिन्न प्रकार से पुनर्रचना विदेशी भाषाओं सहित भारत की विभिन्न भाषाओं में देख सकते हैं। साहित्य की सभी विधाओं में राम कथा फैली हुई है। वाल्मीकि रामायण में राम महाविष्णु का अवतार तो है ,पर एक उत्तम आदर्श पुरुष के परे राम का चित्र वाल्मीकि ने नहीं किया। लेकिन जब भारतीय भाषाओं में इसका पुनर्जन्म हुआ तो नई तरह से उसकी प्रस्तुति हुई। वाल्मीकि ने पुत्र वत्सल पिता, पतिव्रता पत्नी, त्यागशील भाई, स्वामी भक्त सेवक आदि मनुष्य के आदर्श नमूने के रिश्तों के बीच राजा रामचंद्र को रखा है। गुण दोष युक्त मनुष्य स्वभाव एवं मनुष्य जीवन के चित्र को प्रस्तुत करने का प्रयास वाल्मीकिजी ने किया है। इसीलिए रामायण में मनुष्य कथा का गायन कहा गया है और यह कथा बीज जनमानस की गहराई तक पहुंच गया है।

अन्य भाषाओं की तरह मलयालम में रामकथा की लंबी परंपरा मिलती है। मगर मलयालम रामायणकार के रूप में विख्यात है तुंचत्तु रामानुजन एषुत्तच्चन। उनके बारे में बताया गया है- "ईश्वर को मनुष्य के रूप में देखने के लिए नहीं, मनुष्य को ईश्वर के रूप में उठाने का प्रयास अध्यात्म रामायणकार ने किया है। इसलिए वर्णन प्रधान वाल्मीकि रामायण को स्वीकार किए बिना, भक्ति और दर्शन को अत्यंत प्रमुखता देनेवाली अध्यात्म

---

1. प्रोफेसर, हिंदी विभाग, कालिकट विश्वविद्यालय, मलापुरम जिला, केरल; मो. 9447887384

रामायण को एषुत्तच्चन ने स्वीकारा है।"[2] मलयालम भाषा में सबसे पुरानी रामसाहित्य की कृति 'रामचरितम' है। इसकी रचना के समय के संबंध में वाद-विवाद है। कुछ लोग तेरहवीं सदी की रचना मानते हैं। कवि चीरामन इसके रचयिता हैं। सामान्य लोगों में भक्ति भावना पैदा करना इसका उद्देश्य रहा है। "रामचरित तो राम कथा गायन के लिए सज्जित आर्येतिहास के प्रभाव की सृष्टि ही नहीं, (मलयालम) भाषा में सीमित होती संस्कृत भाषा के प्रभाव को भी आत्मसात करनेवाली रचना है। वह इतना ही है कि यह अक्षरमाला की परिसीमा में ही आबद्ध मात्र है। संस्कृत के विभक्त्यंत पद तक अक्षर परिसीमा दिखाई देती है।"[3] मगर इसमें राम कथा पूर्ण रूप से नहीं आती। इस कृति का केंद्र रामायण का युद्ध तो है। यह भी बताया जाता है कि सेना की आवश्यकता के लिए यह कृति लिखी गई है और इसे पढ़ने वाले को ऐहिक ऐश्वर्य और मृत्युपरांत विष्णुपद की प्राप्ति होगी। यह एक विश्वास रहा है। इसलिए खाली युद्ध के लिए प्रेरित करने वाला काव्य मात्र इसे नहीं कह सकता। लोगों की रुचि का विषय रखा तो भी भक्ति का प्रचार ही इसका मुख्य उद्देश्य माना गया है। कवि ने वाल्मीकि रामायण से प्रेरणा अवश्य ग्रहण की है। इस काव्य के बारे में मलयालम आलोचक प्रो. इलमकुलम बताते हैं – "हिंदी में विद्यापति के काव्य का जो स्थान है वही मलयालम भाषा में रामचरित को दे सकते हैं।"[4]

'रामकथा पाट्टु' की रचना अय्यप्पिल्ला आशान ने की है। पाट्टु का अर्थ गीत है। इसके रचनाकाल पर भी मतभेद है। आमतौर पर 14 वीं सदी की रचना मानी जाती है। वास्तव में इसे संपूर्ण रामायण के रूप में ख्याति प्राप्त है। भारतीय भाषाओं में देखें तो यह एक वृहद रचना है। 279 भागों में 3169 पदों में यह कृति फैली हुई है। वाल्मीकि रामायण इस कृति के लिए आदर्श रहा। श्रीराम एक उत्तम मनुष्य है। इस कृति की लोकप्रियता अधिक है। साधारण लोगों के लिए सरल भाषा और शैली में इसकी रचना की गई है।

उसी प्रकार एक चर्चित कृति है 'कण्णश रामायण'। इसका रचनाकार निरणम कवि हैं। निरणम कवियों को कण्णशनमार कहा जाता। 'रामायण पाट्टु', 'भाषा भागवद् गीता' और 'भारत माला' मिलाकर 'कण्णशन पाट्टु' बताया जाता है। 'रामायण पाट्टु' 'कण्णश रामायण' नाम से भी विख्यात है। एक प्रकार से वाल्मीकि रामायण के संक्षिप्त रूप के रूप के रूप में इसे हम देख सकते हैं। यह कृति काव्य सौंदर्य की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। आलोचक प्रो. इलंकुलम ने कहा है कि "प्रशंसनीय शब्द सौकुमार्य, अर्थ चमत्कार से मलयालम भाषा में सबसे महत्वपूर्ण स्थान कण्णश रामायण को प्राप्त है।"[5] वास्तव में भक्ति आन्दोलन बाद में ऊँचाई पर पहुँचे तो उसका अंकुर कण्णश कृतियों में देख सकते हैं।

चंपू मलयालम का एक काव्यान्दोलन है। शुरू में इसमें श्रृंगार प्रधान रचनाएँ अधिक रही हैं, तो बाद में रमकथा से जुड़ी रचनाएँ भी मिलती हैं। इसमें पूनम नंपूतिरी द्वारा रचित 'रामायण चंपू' काफी चर्चित है। इसमें धीरोदात्त नायक के रूप में श्रीराम का चित्रण किया गया है। काव्य की शैली सरस एवं प्रौढ़ है। रावणोद्भव, रामावतार, ताड़कावध, अहल्या मोक्ष, सीता स्वयंवर, परशुराम विजय, विच्छिन्नभिषेक, खर वध, सुग्रीव सख्य, बालीवध, उद्यान प्रवेश, अंगुलीयांक, लंका प्रवेश, रावणवध, अग्निप्रवेश, अयोध्या प्रवेश, राज्याभिषेक, सीता परित्याग, अश्वमेध, स्वर्गारोहण आदि बीस भागों में रामकथा पूर्णरूप से यहाँ बतायी गयी है।

तुलसी को जो स्थान हिंदी में प्राप्त है, वही स्थान मलयालम में एषुत्तच्चन को प्राप्त है। वे मलयालम के रामायणकार हैं। उनके समय के संबंध में मतभेद है। कई लोग उन्हें 16 वीं शती के मानते हैं। रामन, रामानुजन आदि नाम भी है, पर तुंचत्तु एषुत्तच्चन नाम काफी मशहूर है। उनकी रचना श्अध्यात्म रामायण किलिप्पाट्टु सबसे महत्वपूर्ण रामायण है। अध्यात्म रामायण का मलयालम संस्करण उन्होंने तैयार किया। मगर वह संस्कृत अध्यात्म रामायण का अनुवाद नहीं है, एक स्वतंत्र काव्य है। 'श्रृगारिकता, सड़े गडे विश्वास, विलायतियों के प्रति शासक वर्ग की अनुकूल प्रतिक्रियाएँ और भाषा को अपने देश भाव के साथ जोड़कर काव्य को व्यक्ति के अंदर बनाने की प्रवृत्ति आदि को एषुत्तच्चन ने स्वीकार नहीं किया। उनकी दृष्टि भारतीय थी हिंदुत्व वैश्विक था। उन्होंने

अलौकिक आनंद की पंक्तियां सुना कर आत्माभिमान और निडरता से युक्त समाज की सृष्टि करने में ध्यान दिया। भाषा की समग्रता, परिपक्व शैली सरल प्रतिपादन, अनुभूति की सघनता 'भक्ति की शुद्धि' इतिहास परंपरा आदि ने एषुत्तच्चन को ध्रुव तारक को दर्शाने वाले कवि के रूप में प्रतिष्ठित किया।"[6]

भक्ति मार्ग का प्रचार समय की आवश्यकता थी। वही कवि का उद्देश्य था। इसीलिए श्रीराम को ईश्वरीयता प्राप्त होती है। मगर मूल से भिन्न होकर श्रीराम के उत्तम मनुष्य होने की छवि ओढी नहीं। वाल्मीकि के राम उत्तम मनुष्य और अध्यात्म रामायण के श्रीराम ईश्वर है, तो एषुत्तच्चन के राम मनुष्य के नजदीक खड़े होते हैं। इसीलिए महाकवि उल्लूर ने बताया है- "मूल के श्रेष्ठ भागों को छोड़े बिना नीरस भागों को छोड़कर जहाँ संक्षिप्तीकरण और विकास आवश्यक है, उसका पालन करते हुए कभी वाल्मीकि रामायण, रघुवंश, भोज चंपू, भाषा रामायण चंपू, कण्णश रामायण आदि पूर्व रचनाओं को उपजीव्य बनाकर कभी अपने मनोधर्म सागर से कल्पना रत्नों को स्वीकारते हुए, भक्ति की वृद्धि के लिए कहीं बाधारहित मार्ग का उद्घाटन करते हुए, वीर करुणा रसों को यथावश्यक ध्यान देते हुए, शृंगार हास्य रसों के गंभीर और एक दार्शनिक की पीठ पर बैठते हुए व्यंग्य मर्यादा में विचरते हुए एक स्वतंत्र काव्य का सृजन उस महात्मा ने किया है"[7]

एषुत्तच्चन की भाषा और शैली साधारण पाठक को आकर्षित करती हैं। चिड़िया द्वारा राम कथा गाने का तरीका बिल्कुल नया है। वही 'किलि पाट्टु' या 'चिड़िया गीत' शैली है। चिड़िया का तुतलाना सब पसंद करते हैं। कवि भक्ति के प्रचार में पूर्ण रूप से सफल हुए। केरल में मलयालम महीना कर्किटकम (बारिश का समय) में हर सांझ को दिए के सामने केरल के घरों में एषुत्तच्चन की 'अध्यात्म रामायण' का पारायण होता है , इसमें घर के बुजुर्ग अधिक शामिल होते हैं। अपनी भाषा के ओज और तेज की वजह से ही वे मलयालम भाषा के पिता माने जाते हैं। समकालीन समाज में इस कृति का प्रभाव अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। दार्शनिक अंदाज में उपदेश है, वह विशेष ध्यान देने योग्य है। 'खुद के निरंतर कर्मों का फल खुद को ही भोगना पड़ेगा', 'जब विपदा पास आते हैं तब सज्जनों के उपदेश सुशोभित नहीं होते' इस कृति के ऐसे सारोपदेश केरलीय समाज और मानस में आज भी मुखरित हैं।

एषुतच्चन की एक महत्वपूर्ण कृति है 'उत्तर रामायण किलि पाट्टु'। वाल्मीकि रामायण का उत्तरकांड इसका स्रोत है। अर्थात् इसमें विशेषकर उत्तर रामकथा कही गई है। 'भाषा रामायण चंपू' के अनुकरण पर लिखी रचना है '24 वृत्तम' या 'चौबीस छंद'। इसमें लोक छंदों में रामायण कथा को कहने का प्रयास किया है। वास्तव में रामकथा को विशेष आदर्श के रूप में हमारे सामने कई रचनाकारों ने रखा है। राम कभी मरते नहीं हैं। वह पुराण पुरुष नहीं, वह हमारी सद्वृत्ति और सद्चेतना है। मनुष्य का उदात्त गुण है। जहाँ राम नहीं है, वहां जीवन का विराम होता है। रामकथा के गहन अन्वेषक एवं विद्वान डॉ. फादर कामिल बुल्के ने सही बताया है- "भारत की समस्त आदर्श भावनाएँ रामकथा में, विशेषकर मर्यादा पुरुषोत्तम राम तथा पतिव्रता सीता के चरित्र चित्रण में केंद्रीभूत हो गई है। फलस्वरूप राम कथा भारतीय संस्कृति के आदर्शवाद का उज्जवलतम प्रतीक बन गई है।"[8]

केरल में तथा देश विदेश में कथकली नामक कला विख्यात रही है। इसमें रामकथा मुख्य रहा। इसलिए इस कला को 'रामनाट्टम' भी कहा गया। कहा जाता है कि कोटारक्करा तंपुरान ने रामकथा के आधार पर 'आट्टकथा' का सृजन किया। रामायण पुत्रकामेष्टी, सीता स्वयंवर, विच्छिन्नाभिषेकम, खर वधम, बाली वधम तोरण युद्धम, सेतुबंधन, युद्धम आदि प्रमुख रामनाट्टम हैं। कोटारत्तिल शंकुण्णी ,पन्निशेरी नाणुपिल्ला, पुणरतम तिरुनाल, किरिकाटु अय्यप्पन पिल्ला, वी कृष्णन नंबि, वल्लत्तोल आदि का योगदान आट्टकथा साहित्य में विशेष महत्वपूर्ण है।

मलयालम के तुल्लल कथा साहित्य के प्रणेता कुंचन नंबियार ने रामकथा को तुल्लल का विषय बनाया। इसमें हास्य व्यंग्य की प्रधानता है। अहल्या मोक्ष, सीता स्वयंवर, लंका मर्दन, रावणोदभव, कुंभकर्ण वध आदि

नंबियार की रामकथा केन्द्रित तुल्लल कथाएँ काफी प्रसिद्ध हैं। राम कथा को आधार बनाकर बाद में अनेक रचनाएं मलयालम में लिखी गई। उनमें किर्तन, गीत, नाटक, अनुवाद आदि मिलते हैं। इसके अलावा आधुनिक संदर्भ में रामकथा के प्रसंगों को लेकर कवियों ने मिथकीय प्रस्तुति भी की है। वल्लत्तोल ने वाल्मीकि रामायण का अनुवाद मलयालम में किया है। वशिष्ठ रामायण, अगस्त्य रामायण, अद्‌भुत रामायण, कंब रामायण, रामचरितमानस आदि का अनुवाद भी मलयालम में पाठकों को मिलता है।

अनेक लोकगीतों में राम कथा केरल में प्रचलित है। उनमें 'रामायण कुरत्ती पाट्टु', 'उत्तर रामायण कुरत्ति पाट्टु', 'सीता विलापम अम्मान पाट्टु', 'रघु संभवम', 'रामायणम पाना' आदि प्रमुख हैं। 'किलि पाट्टु' में कई रचनाएँ मिलती हैं। श्रीराम और सीता की स्तुति करने वाले कई कीर्तन मिलते हैं। रामकथा संबंधी कई महाकाव्यों, नाटकों का अनुवाद भी मलयालम में काफी मात्रा में उपलब्ध है।

रामायण की कथा के विविध प्रसंगों को मिथक के रूप में स्वीकार करते हुए कई कवियों ने रचनाएं की हैं। कुमारन आशान की 'चिंताविष्टयाया सीता' इसमें प्रमुख है । उण्णिकृष्णन का 'लक्ष्मण विलापम', वल्लत्तोल का 'किलि कोंचल', बालामणि अम्मा का 'विभीषण', इडशेरी गोविंदन नायर का 'लवणासुर वधत्तिले हनुमान' आदि मशहूर एवं महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं।

वास्तव में रामकथा भारतीय जनता केलिए हमेशा प्रेरक रही है। उसका आदर्श, मूल्य सकल्पना एवं सीख महत्वपूर्ण है। राम त्याग की मूर्ति एवं एक प्रज्ञा पुरुष के रूप में सामने आते हैं और जनजन को प्रेरित एवं प्रभावित करते रहते हैं। इस संदर्भ में मशहूर आलोचक सी. के. मुस्सत का कथन अत्यंत महत्वपूर्ण लग रहा है- "पिता के सत्य के पालन के लिए देश छोड़कर चौदह साल के लिए वनवास को स्वीकार करना राम का पहला त्याग है। जिस भरत के लिए देश छोड़ा है वह भारत अयोध्यावासियों सहित जंगल में आकर पूरा देश अपने पैरों पर रखकर सत्य पालन के लिए उसे न स्वीकार करना राम का दूसरा त्याग है। जिस सीता के लिए राम ने सुग्रीव सख्य, बाली वध, सेतु बंधन, रावण वध आदि कई महा साहस सहकर सीता को गर्भावस्था में लोकापवाद की वजह जंगल में छोड़ा है, यह उस वीर हृदय का तीसरा महात्याग है। किसी भी आपदा में साथ देनेवाले लक्ष्मण को मुनि वेषधारी यम से करनेवाले शपथ केलिए परित्याग करना पड़ा तो उसके लिए भी तैयार होना अंतिम दुष्कर त्याग है। इस प्रकार असामान्य त्यागो से भरा जीवन है श्री राम का। इसके अलावा एक पत्नीव्रत, चारित्र्य निष्ठा, सहोदर स्नेह, आश्रित वाल्सल्य, विपक्ष सम्मान आदि गुणों केलिए भी राम उत्तम निदर्शन है।"[9] वास्तव में रामकथा युग युगों तक जनमानस को अवश्य प्रेरित एवं प्रभावित करती रहेगी ।

संदर्भ :

1. सं. एस. महलिंगम, र.शौरी राजन, भारतीय भाषाओं में रामकाव्य (प्रथम भाग), तुलसी साहित्य समिति, मद्रास 1976 पृ. 1
2. डॉ. वी. उषा, एषुत्तच्चन्टे भक्तियुम दर्शनवुम, वल्लत्तोल विद्यापीठम, शुकपुरम, एडप्पाल 2003 पृ. 52
3. कल्पटा बालकृष्णन, मलयालम साहित्य का इतिहास, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास 2018 पृ. 17
4. सं. प्रो. एस. गुप्तन नायर, तुंचन प्रबंधङ्ङल, केरल साहित्य अकादमी, तृशूर पृ. 276
5. वही, पृ. 281
6. कल्पटा बालकृष्णन, मलयालम साहित्य का इतिहास, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास 2018 पृ. 73-74
7. सं. प्रो. एस. गुप्तन नायर, तुंचन प्रबंधङ्ङल, केरल साहित्य अकादमी, तृशूर, पृ. 285-286
8. सं. एस. महलिंगम, र. शौरी राजन, भारतीय भाषाओं में रामकाव्य (प्रथम भाग), तुलसी साहित्य समिति, मद्रास 1976 पृ. 29
9. सी.के.मूस्सत, रामकथा मलयालत्तिल, केरल साहित्य अकादमी, तृशूर 1989 पृ.12

❑❑❑

अल्पसंख्यक समुदायों की व्यावहारिक स्थिति : एक अध्ययन

❍ सबीना अख़्तर[1]
❍ डॉ. एम.एम.एस. नेगी[2]

संक्षिप्ति :

भारत देश में विभिन्न जाति, धर्म, संप्रदायों के लोग निवास करते हैं, जिनकी बोली, भाषा, संस्कृति एक दूसरे से पृथक है। भारत देश में हिंदू धर्म को मानने वाले लोग सबसे अधिक संख्या में है, वे बहुसंख्यक वर्ग में आते हैं। मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी की संख्या बहुसंख्यक वर्ग से काफी कम है। वह अल्पसंख्यक वर्ग में आते हैं। भाषा व धर्म के आधार पर जिनकी जनसंख्या बहुसंख्यक वर्ग से कम हो, उन्हें अल्पसंख्यक वर्ग में रखा जाता है। अल्पसंख्यक वर्ग को संविधान में कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया है। अनुच्छेद 29 व 30 में अल्पसंख्यक शब्द का प्रयोग किया गया है। वह अन्य संवैधानिक प्रावधान 350(ए), 350(बी) के तहत प्रावधान दिए गए हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में अल्पसंख्यक समुदायों के लोगों के जीवन से जुड़े विभिन्न गतिविधियां क्रियाकलाप जो उनके सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, स्वास्थ्य संबंधित, आवासीय, व्यावसायिक, अल्पसंख्यक समुदायों का निर्भरता अनुपात आदि स्थितियों का वर्णन किया गया है तथा उनके जीवन से जुड़ी विभिन्न समस्याओं को दूर करने हेतु सुझाव का वर्णन किया गया है।

बीज शब्द : प्रावधान, समुदाय, समस्या, निर्भर

हमारे देश में अनेक जाति, धर्म, वेशभूषा, संप्रदाय आदि के लोग निवास करते हैं जो कि संस्कृति, भाषा, समुदाय आदि के रूप में एक दूसरे से पृथक हैं। हिंदू धर्म को मानने वालों की संख्या अधिक है। वे बहुसंख्यक वर्ग में आते हैं। इसके विपरीत अन्य धर्म को मानने वाले लोग अल्पसंख्यक समूहों में आते हैं। जैसे- मुस्लिम, ईसाई पारसी, बौद्ध एवं जैन धर्म इन सभी धर्मों को मानने वाले लोगों की संख्या बहुसंख्यक से कमतर है। इसलिए इन्हें अल्पसंख्यक समुदाय कहा जाता है। हमारे देश में भारत सरकार ने कल्याण मंत्रालय 23 अक्टूबर 1993 को अधिसूचना जारी कर धर्म को अल्पसंख्यक श्रेणी में रखा हमारे देश की केंद्र सरकार द्वारा 27 जनवरी

---

1. *शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, हेमंती नंदन बहुगुणा गढ़वाल केंद्रीय विश्वविद्यालय, (स्वामी रामतीर्थ परिसर), टिहरी*
2. *आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, हेमंती नंदन बहुगुणा गढ़वाल केंद्रीय विश्वविद्यालय, (स्वामी रामतीर्थ परिसर), टिहरी*

2014 को राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग कानून 1982 की धारा 2 के अनुच्छेद के अंतर्गत प्राप्त अधिकारों के विषय में बताते हुए। जैन समुदाय को भी अल्पसंख्यक समुदायों में सम्मिलित कर दिया गया है। भारत के संविधान के अंतर्गत अल्पसंख्यक शब्द को कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया है। अल्पसंख्यक समुदाय में भाषा व धर्म के आधार पर जिन धर्म व भाषाओं को बोलने वाले संप्रदायों, धर्मों की जनसंख्या बहुसंख्यक वर्ग से कम होती है। उन्हें अल्पसंख्यक वर्ग कहा जाता है हमारे देश के संविधान के अंतर्गत अनुच्छेद 29, 30, 350(ए), 350(बी) में अल्पसंख्यक शब्द का उल्लेख किया गया है।

अर्थ :

किसी भी देश या समाज में एक से अधिक वर्ग के लोग निवास करते हैं जिस वर्ग की संख्या आधी से कम होती है, उस वर्ग को अल्पसंख्यक वर्ग कहा जाता है।

किसी भी समाज में निवास करने वाले व्यक्तियों में जो भाषा व धर्म के आधार पर कम संख्या में होते हैं उन्हें अल्पसंख्यक वर्ग कहा जाता है। भारत देश में बहुसंख्यक के रूप में हिन्दु धर्म को माना जाता है एवं इसके अलावा सभी धर्मों को अल्पसंख्यक वर्ग के रूप में कहा जाता है। इस प्रकार जिस वर्ग समुदाय का प्रतिशत बहुसंख्यक वर्ग की तुलना में 50: से कम देखी जाती है, वे सब अल्पसंख्यक वर्ग कहलाते हैं।[1]

परिभाषाएं :

संयुक्त राष्ट्र के एक विशेष प्रतिवेदक फ्रांसिस्को कॉपरटोटी के अनुसार, "किसी राष्ट्र राज्य में रहने वाले ऐसे समुदाय जो संख्या में कम हो और सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक रूप से कमजोर हो एवं जिनकी प्रजाति, धर्म, भाषा आदि बहुसंख्यको से अलग होते हुए भी राष्ट्र के निर्माण, विकास, एकता, संस्कृति, परंपरा और राष्ट्रीय भाषा को बनाए रखने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हो, तो ऐसे समुदायों को उस राष्ट्र राज्य में अल्पसंख्यक माना जाना चाहिए।"[2]

ऑक्सफोर्ड शब्दकोश में, 'अल्पसंख्यक' को एक छोटी संख्या या भाग के रूप में परिभाषित किया गया है। एक संख्या भाग जो संपूर्ण संख्या के आधे से भी कम को व्यवस्थित करता हो। लोगों का अपेक्षाकृत छोटा समूह जो जाति, धर्म, भाषा या राजनीतिक संदर्भ की दृष्टि से भिन्न हो।

"1946 में संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार आयोग द्वारा अल्पसंख्यक वर्गों के अधिकारों के संरक्षण पर एक विशेष उपसमिति के संरक्षण पर एक विशेष उपसमिति नियुक्त की गई थी। जिसने 'अल्पसंख्यक' को जनसंख्या के उनके प्रभावी समूहों के रूप में परिभाषित किया था। जो अपनी उन स्थिर जातीय, धार्मिक तथा भाषाई परंपराओं या विशिष्टताओं को बनाए रखना चाहते हैं जो शेष जनसंख्या की जातीय, धार्मिक और भाषाई परंपराओं से पूर्णता भिन्न है।"[3]

संयुक्त राष्ट्र की परिभाषा के अनुसार, "ऐसा समुदाय जिसका सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक रूप से कोई प्रभाव न हो और जिसकी आबादी नगणय हो, उसे अल्पसंख्यक कहा जाएगा।"

अंतरराष्ट्रीय कानून के तहत अल्पसंख्याक ऐसे समूह है। जिसके पास विशिष्ट और स्थित जातीय, धार्मिक और भाषाई विशेषताएं हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29, 30, 350(ए) तथा 350(बी) में 'अल्पसंख्यक' शब्द का प्रयोग किया गया है। लेकिन इसकी परिभाषा कहीं नहीं दी गई है।

अनुच्छेद 29 में 'अल्पसंख्यक' शब्द का प्रयोग किया गया है जिसमें कहा गया है। कि भारत के राज्य क्षेत्र या उसके किए उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी अनुभव को जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है। उसे बनाए रखने का अधिकार होगा ।

अनुच्छेद 30 में बताया गया है कि धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षा, संस्थानों की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा।

अनुच्छेद 350 (ए) और 350 (बी) केवल भाषाई अल्पसंख्यकों से संबंधित है।

1992 के राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम की धारा 2(ब) के तहत 23 अक्टूबर, 1933 को सरकार द्वारा जारी अधिसूचना में 5 समुदाय मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी तथा बौद्ध को अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में मान्यता दी गई है 2014 में जैन समुदाय को भी अल्पसंख्यक की श्रेणी में शामिल किया गया।[4]

अल्पसंख्यकों की व्यावहारिक स्थिति :

अल्पसंख्यक समुदायों जनसंख्या, उनकी व्यावहारिक स्थिति इस समुदाय का शिक्षा का अनुपात, वैवाहिक स्थिति, रोजगार आदि बातों से इस समुदाय की जीवन शैली को दर्शाते हैं। कृषि व्यवस्था, कमाई के साधन उनके स्वास्थ्य से संबंधित स्थिति से उनके जीवन के बारे में जानने में सरलता होती है। जिस प्रकार देश में परिवर्तन देखने को मिलते हैं जैसे सामाजिक, आर्थिक रूप से आय अर्जित करने के विभिन्न स्रोत, बढ़ता हुआ शहरीकरण, शिक्षा के पश्चिमीकरण आदि से हमारा समाज प्रभावित होता है। इन बदलाव का असर अल्पसंख्यक वर्ग व बहुसंख्यक वर्ग दोनों में देखने को मिलता है।

2001 की जनगणना में 10286.07 लाख आबादी पाई गई। इस आबादी में से धर्म के आधार पर 18% जनसंख्या अल्पसंख्यक समुदायों की है। जिनमें मुस्लिम धर्म के लोगों की जनसंख्या 13.4 प्रतिशत है। जो कि अल्पसंख्यक वर्गों में सबसे ज्यादा है। मुस्लिम के बाद 2.3% ईसाई धर्म को मानने वालों की संख्या है। सिख धर्म की 1.9%, बौद्ध की 0.8%, व पारसी समुदाय की जनसंख्या 0.0069% है।

हमारे देश में आज भी कम आयु में विवाह से संबंधित मुद्दे अधिकांशतः प्रत्येक समाज में ही देखने को मिल जाते हैं। चाहे वह मुस्लिम, हिंदू, ईसाई या कोई सा भी धर्म हो। हिंदू धर्म में 21 साल से कम उम्र में विवाहित पुरुषों की 51.3% थी मुस्लिम समुदाय में 39%, बौद्ध धर्म में 26%, तथा 20% ईसाई व 13% सिख थे। व महिला वर्ग में 17 वर्ष से कम आयु में विवाह के बंधन में बंधने वाली महिलाओं का अनुपात हिंदू धर्म में 37% मुस्लिम समाज में 43.2%, बौद्ध धर्म में 25%, जैन 25% ईसाई धर्म में 16.4%, व सिख धर्म में 17% है तथा अन्य में 18% महिलाओं का अनुपात है इन अनुपातों में से अल्पसंख्यक समुदायों से संबंधित (जिनकी 10 वर्ष से कम आयु में विवाह) का अनुपात मुख्यतः बौद्ध धर्म में 2.8% ,हिंदू धर्म में 2.6%, मुस्लिम समाज 2.2%, कुल व्याप्त बाल विवाह का प्रतिशत 3% था।

अल्पसंख्यक समुदायों में यदि साक्षरता की बात करें तो जैन समुदाय में साक्षरता दर 94.1% था, इसके अतिरिक्त ईसाई 80.3%, बौद्ध 72.7% है हिंदू 65.1% सिख समुदाय 69.4% आता है, जिनकी 64.8%, राष्ट्रीय औसत की तुलना में आंशिक तौर पर उच्चतर साक्षरता दर देखी गई है। साक्षरता के संबंध में अन्य सभी धर्म तथा मतावलंबियों के संबंध में धर्मावलंबियों के संबंध में जो अनुपात रिकॉर्ड किया गया वह 47% है मुसलमानों में यह साक्षरता दर 59.1% राष्ट्रीय औसत साक्षरता दर की तुलना में काफी कम देखी गई है एवं इसके अलावा अनुसूचित जातियों व जनजातियों में साक्षरता दर का अनुपात बहुत निम्न तर पाया गया है।

अल्पसंख्यक समुदाय के वर्गों की साक्षरता दर से पता चलता है कि मुस्लिम समुदायों की साक्षरता दर अन्य धर्मों की तुलना में अनुसूचित जातियों और जनजातियों की तुलना में काफी बेहतर स्थिति में है। अल्पसंख्यक समुदाय पारसी वर्ग की साक्षरता दर उच्च होने की वजह 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से भी पहले से पारसी समुदाय के बच्चों की शिक्षा व्यवस्था पर ध्यान दिया जाने लगा था। व इसके साथ अल्पसंख्यक समुदायों में जैन समुदायों की साक्षरता दर भी बहुत अच्छी स्थिति में है। 94.1% जैन समुदाय सबसे अधिक साक्षरता वाला

धार्मिक वर्ग है।

अल्पसंख्यक समुदाय से संबंधित बच्चों की बीच में ही पढ़ाई छोड़ने ने की समस्या देखी जाती है। बीच में ही शिक्षा छोड़ने की प्रक्रिया को देखते हुए विद्यालय में सबसे ज्यादा बच्चों द्वारा दाखिला ग्रहण करने में होने वाले फायदों में कमी देखी जाती रही है।

धार्मिक शैक्षिक संस्थानों की स्थिति :

अल्पसंख्यक समुदायों की शैक्षिक स्थिति से संबंधित स्थिति यह है कि ज्यादातर शैक्षणिक संस्थाएं शिक्षा की स्थिति को बेहतर बनाने के लिए प्रयासरत रहती हैं। शैक्षणिक संस्थाओं का उद्देश्य प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च स्तर तक की शिक्षा की ओर आकर्षित करता है। लेकिन सभी धार्मिक शिक्षा की तरफ भी ज्यादा प्रयासरत होती है। इस प्रकार धार्मिक शिक्षा संस्थाओं का ज्यादा ध्यान धार्मिक शिक्षा की ओर रहता है। एवं वे अपने शिक्षार्थियों को केवल धार्मिक शिक्षा के बल पर इतना योग्य नहीं बना पाते कि वे आधुनिक शिक्षा की मुख्यधारा से जुड़ सकें व प्रतियोगी परीक्षाओं में हिस्सा लेने में समर्थ हो सकें।

एन.एफ.एच.एस. (II) रिपोर्ट के आधार पर विभिन्न समुदायों के शिशुओं तथा बाल मृत्यु दर की गई है।

	मदरसे	गुरूकुल	धर्म शिक्षाणाल
लागू पाठ्यक्रम (पढ़ाये गये विशय)	मिश्रित पाठ्यक्रम सामान्यातः धार्मिक शिक्षा पर केन्द्रित	धार्मिक व आधुनिक दोनो विशय पढ़ाये जाते हैं।	अनुशासिक विशयों जिनमे धार्मिक विशयों को अधिक महत्व दिया जाता हैं,
शिक्षा का स्तर	मैट्रिक स्तर से स्तानकोत्तर स्तर तक अलग-अलग होता हैं।	वरिश्ट उच्चतर माध्यमिक स्तर से स्नातकोत्तर स्तर तक अलग-अलग होता हैं,	स्नातकोत्तर स्तर
शैक्षणिक संस्थानो के संबंधता	अधिकत्तर असंबंध	अधिकत्तर संबंध	अधिकत्तर संबंध
स्कूल का पैटर्न	लड़को और लड़कियों के लिए अलग-अलग	लड़को और लड़कियों के लिए अलग-अलग	सह शैक्षणिक
	मठ		
अंग्रेजी, गणित और हिन्दी उनमे अतिरिक्त विशयों के साथ मठ-व्यवस्था की शिक्षा (बौद्ध दर्शनशास्त्र) दी जाती हैं।	---------	असंबंध	लड़को और लड़कियों के लिए अलग-अलग

हिमालय क्षेत्र अध्ययन और अनुसंधान संस्थान द्वारा समुदाय के सामाजिक-आर्थिक विकास में धार्मिक-शैक्षणिक संस्थानों की भूमिका पर अध्ययन रिपोर्ट 2007

समुदाय /जाति	शिशु मृत्यु दर	बाल मृत्यु दर
हिंदू	77.1	32.4
मुस्लिम	58.8	25.4
सिख	53.3	12.3
ईसाई	49.2	19.7
जैन	46.7	11.3
बौद्ध /गैर बौद्ध	53.6	14.1
कोई भी धर्म न मानने वाले	77.6	77.2
अनुसूचित जातियाँ	83.0	39.5
अनुसूचित जनजातियाँ	84.2	46.3
अन्य पिछड़ा वर्ग	76.0	29.3

राष्ट्रीय एन.एफ.एच.एस. (II) राष्ट्रीय रिपोर्ट, 98-99

एन.एफ.एच.एस.(II) रिपोर्ट के आधार पर विभिन्न समुदायों की महिलाओं के पोषण संम्बधि तालिका

समुदाय /जाति	ऊंचाई		ऊंचाई के अनुसार वजन	
	औसत ऊंचाई (से० मी०)	प्रतिशतता 145 से० मी० से कम	शरीर का औसतन द्रव्यमान शून्यकांक (बी एम आई)	18.5 kg प्रति मी से कम बीएमआई साहित प्रतिशतता
हिन्दू	151.1	13.5	20.1	36.9
मुस्लिम	151.5	12.3	20.5	34.1
ईसाई	152.1	10.3	21.4	24.6
सिख	155.0	3.9	23.0	16.4
जैन	153.6	7.6	23.4	15.8
बौद्ध / नये बौद्ध	149.9	17.3	20.4	33.3
किसी भी धर्म को न मानने वाले	149.9	24.1	20.6	34.5
अनुसूचित जातियाँ	150.3	17.0	19.5	42.1
अनुसूचित जनजातियाँ	150.8	13.5	19.1	46.3
अन्य पिछड़ा वर्ग	151.0	13.5	20.2	35.8

राष्ट्रीय एन.एफ.एच.एस. (II) राष्ट्रीय रिपोर्ट, 98-99

जनसंख्या दर के द्वारा जनसंख्या में बदलाव देखने को मिलता रहता है ऊंचाई के लिए औसत, बिंदु जनसंख्या दर से यदि किसी भी महिला में औसत जनसंख्या दर में औसत बिंदु तक कमी देखी जाती है, तो यह कमी महिला के स्वस्थ होने में रुकावट समझी जाती है।

अल्पसंख्यक समुदाय की महिलाओं की लंबाई को लेकर सामान्यत: तो इसे 140-150 सेंटीमीटर के अनुपात को मानकर किसी दूसरे ग्रुप की महिलाओं की तुलना में ईसाई, सिख, और जैन महिलाओं की लंबाई अधिक देखी गई है जिन महिलाओं की ऊंचाई 145 सेंटीमीटर से कम देखी गई है सिख समुदाय की महिलाओं में 3.9% जैन समुदाय में 7.6% व किसी भी धर्म पर विश्वास न करने वाली महिलाओं के लिए 24% भिन्न-भिन्न है अनुसूचित जाति की महिलाओं में यह प्रतिशत 17 है। व जनजाति की महिलाओं में यह प्रतिशत

13.5% है।

अल्पसंख्यक समुदाय के लिए आवास से संबंधित मुद्दे भी महत्वपूर्ण है। दसवीं पंचवर्षीय योजना प्रलेख के अनुसार 90% कमजोर वर्गों के पास आवासीय संबंधित समस्याएं देखने को मिलती हैं। अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों की आवास का आवास व इससे संबंधित सुविधाओं का वर्तमान विवरण निम्नानुसार है।

'सेंटर फॉर रिसर्च प्लैनिंग एंड एक्शन नई दिल्ली, द्वारा वर्ष 2006 में महाराष्ट्र, पंजाब, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, और पश्चिम बंगाल, राज्यों के संबंध में किया गया सर्वेक्षण–

"अल्पसंख्यकों की सामाजिक आर्थिक स्थिति"

राज्य	कच्चा	अर्ध पक्का	पक्का
महाराष्ट्र	7.68	34.88	56.93
पंजाब	6.79	50.8	44.22
उत्तर- प्रदेश	21.54	29.22	48.89
तमिलनाडु	13.75	66.71	19.25
प. बंगाल	58.96	37.34	3.3
सभी	22.31	42.71	34.63

'सेंटर फॉर रिसर्च प्लैनिंग एंड एक्शन नई दिल्ली, द्वारा वर्ष 2006 में महाराष्ट्र, पंजाब, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, और पश्चिम बंगाल, राज्यों के संबंध में किया गया सर्वेक्षण–

"अल्पसंख्यकों की सामाजिक आर्थिक स्थिति"

समुदाय	कच्चा	अर्ध - पक्का	पक्का
मुस्लिम	34.63	41.2	23.76
ईसाई	22.58	49.67	27.26
सिख	6.68	53.34	39.97
बौद्ध	3.94	43.01	53.05
पारसी	2.38	7.04	90.58
सभी	22.31	42.71	34.63

विभिन्न प्रकार के आवासों का विभिन्न समुदायों में वितरण

विभिन्न समुदायों अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों में पेयजल के स्त्रोत

समुदाय /जाति	बिजली	मिट्टी का तेल (प्रतिशत में)
मुस्लिम	78.78	23.29
ईसाई	82.51	16.75
सिख	88.81	15.83
बौद्ध	88.89	11.83
पारसी	99.21	0.79
सभी	83.72	17.75
अनुसूचित जातियाँ	44.3	54.75
अनुसूचित जनजातियाँ	36.5	54.7
		61.9

सेंटर फॉर रिसर्च प्लैनिंग एंड एक्शन नई दिल्ली, द्वारा वर्ष 2006 में महाराष्ट्र, पंजाब, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, और पश्चिम बंगाल, राज्यों पर राज्यवार तथा समुदाय जाति–वार मकानों में प्रकाश व्यवस्था का स्त्रोत

सेंटर फॉर रिसर्च प्लैनिंग एंड एक्शन नई दिल्ली, द्वारा वर्ष 2006 में महाराष्ट्र, पंजाब, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, और पश्चिम बंगाल, राज्यों के संबंध में तथा 2001 की जनगणना के अनुसार किया गया सर्वेक्षण– "अल्पसंख्यकों की सामाजिक आर्थिक स्थिति"

समुदाय /जाति	घर के भीतर या आस –पास	100–200 मी की परिधि (परिसर में)	200 मी० के बाहर (परिसर के बाहर)
मुस्लिम	81.06	10.35	7.09
ईसाई	82.84	8.05	6.90
सिख	76.13	7.78	14.87
बौद्ध	67.38	22.22	8.60
पारसी	87.04	0.79	5.82
जोड़	80.40	9.25	8.18
अनुसूचित जातियाँ	27.00	53.5	19.5
अनुसूचित जनजातियाँ	15.2	56.6	28.2

सेंटर फॉर रिसर्च प्लैनिंग एंड एक्शन नई दिल्ली, द्वारा वर्ष 2006 में महाराष्ट्र, पंजाब, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, और पश्चिम बंगाल, राज्यों पर किया गया सर्वेक्षण– "अल्पसंख्यकों की सामाजिक आर्थिक स्थिति जनगणना 2001"

राष्ट्रीय धार्मिक और भाषायी अल्पसंख्यक आयोग की रिपोर्ट–

समुदाय / जाति	प्रतिशत में
मुस्लिम	80.33
ईसाई	67.49
सिख	83.77
बौद्ध	64.52
पारसी	98.41
सभी	77.97
अनुसूचित जातियाँ	23.7
अनुसूचित जनजातियाँ	17.1

सेंटर फॉर रिसर्च प्लैनिंग एंड एक्शन नई दिल्ली, द्वारा वर्ष 2006 में महाराष्ट्र, पंजाब, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, और पश्चिम बंगाल, राज्यों के सम्बंध में और 2001 जनगणना के अनुसार किया गया सर्वेक्षण–

गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले धार्मिक समुदायों की जनसंख्या

समुदाय	गरीबी रेखा के नीचे वालो का % (ग्रामीण)	गरीबी रेखा के नीचे वालो का % (शहरी)
हिन्दू	27.80	21.66
मुस्लिम	27.12	36.92
ईसाई	19.82	11.84
सिख	2.95	10.86
अन्य	33.05	18.51

जुलाई 99 जून 2000 के बीच एन एन एस ओ का 55वां दौरा

सेंटर फॉर रिसर्च प्लैनिंग एंड एक्शन नई दिल्ली, द्वारा वर्ष 2006 में महाराष्ट्र, पंजाब, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, और पश्चिम बंगाल, राज्यों के सम्बंध में किया गया सर्वेक्षण– "अल्पसंख्यकों की सामाजिक आर्थिक स्थिति"

अल्पसंख्यक समुदायों के आवासीय स्थितियों में पारसी समुदाय की स्थिति सबसे बेहतर है व दूसरे स्थान पर ईसाई धर्म व अनुसूचित जातियों और जनजातियों के पास स्वयं का घर था वह उनमें बिजली, पानी, शौचालय की उचित सुविधाएं नहीं थी।

1999, 2000 में भारत सरकार द्वारा विभिन्न धार्मिक समुदायों में गरीबी का स्तर को जांचने के लिए किए गए सर्वेक्षण में मुस्लिम व सिख समुदाय के अलावा अन्य समुदायों में ग्रामीण क्षेत्रों की स्थिति निम्न पाई गई। ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरी क्षेत्रों की स्थिति सही थी।

धार्मिक अल्पसंख्यक समुदायों में कार्य सहभागिता दर

	सभी	हिंदु	मुस्लिम	ईसाई	बौद्ध	सिख	जैन	अन्य
पुरुष	51.7	52.4	47.5	50.7	49.2	53.3	55.2	52.5
महिला	25.6	27.5	14.1	28.7	31.7	20.2	9.2	44.2
औसत	39.1	40.4	31.3	39.7	40.6	33.7	32.9	48.4

भारत की जनगणना 2001

कार्यकर्ताओं की श्रेणी का समुदाय–वार विभाजन

व्यवसायिक कोटि के आधार पर प्रतिशत में

	खेतिहर	कृषि मजदूर	घरेलू , औद्योगिक	अन्य मजदूर %
सभी धर्म	31.7	26.5	4.2	37.6
हिंदु	33.1	27.6	3.8	35.5
मुस्लिम	20.7	22.0	8.1	49.1
ईसाई	29.2	15.3	2.7	52.8
सिख	32.4	16.8	3.4	47.3
बौद्ध	20.4	37.6	2.9	39.2
जैन	11.7	3.3	3.3	81.7
अन्य	49.9	32.6	3.2	14.3

भारत की जनगणना 2001

2001 की जनगणना के अनुसार सभी अल्पसंख्यक समुदाय के अंतर्गत कुल जनसंख्या के द्वारा कार्य सहभागिता का प्रतिशत 39.1 प्रतिशत है, व इसके अलावा अन्य धर्मों और संप्रदायों के कार्य सहभागिता दर का प्रतिशत 31.3% से भी निम्न है जैन समुदायों 32.9% व सिख समुदाय की समुदाय 37.7% है महिलाओं की सहभागिता दर 9.2% है। मुस्लिम महिलाओं में 14.1% से निम्न में पाई गई है।

राज्यवार तथा समुदाय-वार परिवार की औसत आय रुपये में

राज्य	आय	धर्म	आय
महाराष्ट्र	3173.34	मुस्लिम	1832.20
पंजाब	2155.39	ईसाई	1906.50
उत्तर प्रदेश	2274.60	सिख	2285.60
तमिलनाडु	1449.10	बौद्ध	2477.90
पं० बंगाल	1324.15	पारसी	3483.80
सभी	2103.24	सभी	2103.24

सेंटर फॉर रिसर्च प्लैनिंग एंड एक्शन नई दिल्ली, द्वारा वर्ष 2006 में महाराष्ट्र, पंजाब, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, और पश्चिम बंगाल, राज्यों पर किया गया सर्वेक्षण "अल्पसंख्यकों की सामाजिक आर्थिक स्थिति"

विभिन्न समुदायों का निर्भरता अनुपात

समुदाय	निर्भरता अनुपात	
	युवा	वृद्ध
सभी धर्म	621	131
हिंदु	604	133
मुस्लिम	778	109
ईसाई	499	137
सिख	526	166
बौद्ध	577	146
जैन	390	154
अन्य	706	118

आई.आई.पी.एस. मुम्बई द्वारा वर्ष 2006 में किया गया स्थिति विश्लेषण

तालिका के अनुसार हिंदू धर्म में 33.1% खेतिहर है सिक्स समुदाय में 32.4 प्रतिशत, ईसाई 29.2 प्रतिशत मुस्लिम 1/5 (20%), जैनियों में 11.7% जो कि राष्ट्रीय औसत में 31.7 प्रतिशत कम है, खेतिहर ओह का अनुपात अन्य धर्मों में 49.9 प्रतिशत सर्वाधिक देखा गया है।

'सेंटर फॉर रिसर्च प्लैनिंग एंड एक्शन नई दिल्ली द्वारा जनवरी, 2006 में महाराष्ट्र, पंजाब, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल पर किए गए अध्ययन में इन संबंधित राज्यों के परिवार की आंकलित औसत आय प्रतिमाह रु. 2,103% महाराष्ट्र राज्य में सबसे अधिक 3173%, उत्तर प्रदेश में 2274% रू, व तमिलनाडु में 1449%, व पंजाब में 2155%, व बंगाल में 1324% रु. है पारसियों में 3484, बौद्धों की 2478 रु. सिखो में 2285, ईसाईयों में 1906 व मुस्लिम समुदाय में 1832 रुपए थी।

अल्पसंख्यक समुदाय के वर्गों में निर्भरता का अनुपात भिन्न है। जिसमें मुस्लिम वर्ग में युवा वर्गों की निर्भरता का अधिकतम अनुपात 778% व निम्न में 109 है, जैन वर्ग में 390, ईसाईयों 499 पाया गया है।

संक्षेप में यह कह सकते हैं कि मुस्लिम वर्ग कारगर घरेलू उद्योग-धंधों में कार्यरत है। जैन वर्ग के लोग कृषि कार्य को करने में सबसे कम संख्या में पाए गए हैं । इसके अलावा मुस्लिम, सिख, ईसाई को कम संख्या में इस कार्य से संबंधित देखा गया है।

आयोग द्वारा अल्पसंख्यक वर्गों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति व संबंधित वर्गों से जुड़े उनके विभिन्न क्रियाकलापों को समझने के लिए 28 राज्यों का दौरा किया।

अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों की परिस्थितियों को समझने के लिए अनेक कार्यशालओं का आयोजन किया व निरीक्षण से प्राप्त तथ्यों, उनके लिए सुझावों, कार्यशालाओं से प्राप्त की गई है प्रस्तुति महत्वपूर्ण बिंदु निम्नांकित हैं ।

पारसी

1. अल्पसंख्यक समुदाय के अंतर्गत आने वाले सभी वर्गों में पारसी समुदाय की जनसंख्या सबसे कम पाई गई । पारसी दंपतियों में बच्चे पैदा करने के अनिच्छा के परिणामस्वरूप इनकी संख्या में गिरावट आई है।
2. पारसी समुदाय में ऐसी महिलाओं की संख्या देखने को अधिक मिली जो विभिन्न प्रकार की समस्याओं को झेल रही होती हैं । सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक स्वास्थ्य से संबंधित आदि, इस समुदाय में ऐसी अकेली महिलाएं अधिकतर पाई गई।
3. पारसी समुदाय के लोगों की सामाजिक जीवन से संबंधित त्रिस्तरीय पद्धति द्वारा अपनाई जाती है। जिसके अंतर्गत उनके आवासीय रोजगार से संबंधित, शैक्षिक व्यवस्था आदि से संबंधित आवश्यकताओं को पूर्ण करती है।

सिख :

1. इस अल्पसंख्यक समुदाय में भ्रूण हत्या व लड़कियों के लिंग अनुपात में कमी होना इस समाज के समक्ष समस्या है।
2. इस समुदाय के विभिन्न जाति, बंजारा, लबाना व रामगढ़िया समुदाय में सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ापन देखा गया है।
3. इस समुदाय में लड़कियों में शैक्षिक रूप से पिछड़े ओपन देखने को मिला।

बौद्ध :

1. इस समुदाय के लोगों के पास भूमि, संपदा अधिक है व बौद्ध धर्म में उन व्यक्तियों को पाया गया है जिनके जिनके द्वारा आजादी के पश्चात इस धर्म को अपनाया गया।
2. बौद्ध धर्म के समाज में व्यवसायिक, शैक्षणिक व्यवसाय, उद्यमों व स्वास्थ्य से संबंधित सुविधाएं चिकित्सा आदि की स्थापना करने में असमर्थ है।

ईसाई :

ईसाई समुदाय में कृषि कार्य के प्रति दिलचस्पी केवल मेघालय व नागालैंड में है । इसके अतिरिक्त ईसाई समुदाय का शैक्षिक स्तर अन्य समुदाय की तुलना में 65% ज्यादा है। इस समुदाय के लोगों की प्रति व्यक्ति आय भी अन्य लोगों की तुलना में अधिक है, व इस समुदाय में के लोगों में बेरोजगारी जैसी समस्या भी अन्य की तुलना में कम देखने को मिलती है, इस समुदाय के लोग स्वास्थ्य के प्रति भी सचेत रहते हैं, इसलिए इस समुदाय में शिशु मृत्यु दर भी कम पाई गई व इनका बच्चों के स्वास्थ्य पर भी सचेत स्वास्थ्य पर भी यह सचेत रहते हैं।

मुस्लिम :

अल्पसंख्यक समुदायों के अंतर्गत मुस्लिम समुदाय की अधिक समस्या ग्रसित स्थिति है। इस समुदाय के लोग पारंपरिक कार्य को जानते हुए भी अन्य विदेशी मुल्कों की तुलना में पीछे हैं। मुस्लिम समुदाय के अधिकांश फकीर, सीगवाला आदि लोगों की सामाजिक व आर्थिक जीवन में कठिनाई मौजूद है। इस समुदाय की महिलाओं की तुलना में कार्य सहभागिता दर में भी पिछड़ापन है व मुस्लिम वक्फ संसाधन का भी यह समुदाय पूर्ण लाभ लेने में वंचित रहता है व रोजगार के क्षेत्र में भी यह उत्पादकता में भी उचित प्रकार का लाभ उन्हें नहीं पहुंच

पाता है।

इस वर्ग के लोगों में सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक व औद्योगिक प्रोन्नति के संबंध में भी यह वर्ग अन्य अल्पसंख्यक समुदायों की अपेक्षा काफी पीछे है। यह वर्ग तकनीकी व व्यवसायिक शिक्षा में भी कमतर देखे गए हैं।

2001 की जनगणना और राज्यों के दौरे

पारसी व यहूदी धर्म 1931 व 1941 की जनगणना के अनुसार मुख्य दो शहरों के निवासी थे एवं इस दौर में सिख, व मुस्लिम को छोड़कर समुदायों का शैक्षिक स्तर सही था। केरल को छोड़कर मुस्लिम समुदाय के शैक्षिक स्तर में गिरावट देखी गई यह वर्ग व्यवसाई ढांचे के संबंध में अन्य वर्गों से आगे पाया गया। केरल राज्य में ईसाई समुदाय व मुस्लिम समुदाय में मोपल काफी आगे देखा गया।

उपरोक्त लिखित पैराग्राफों में विश्लेषि एवं एकत्र डाटा के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं।

- अल्पसंख्यक समुदाय में देश की जनसंख्या का 1/5 भाग है।
- अल्पसंख्यक समुदाय के अंतर्गत एक वर्ग के अलावा अन्य समुदाय के लोग शहरी निवासित है।
- अल्पसंख्यक समुदाय के अंतर्गत 1000 पुरुषों में 933 महिला-पुरुष अनुपात के बारे में ईसाइयों में 1009 बौद्ध समुदाय में 953 मुस्लिम में 936, सिख समुदाय में 893%, पारसियों में महिलाओं की संख्या 35652 व पुरुष की 33,949 है।
- सिख समुदाय के अंतर्गत भ्रूण हत्या व लड़कियों से संबंधित अनुपात में गिरावट देखी गई है।
- इन समुदायों में साक्षरता दर के संबंध में मुस्लिम वर्ग में 59.1 प्रतिशत है, व इसके अतिरिक्त जैनियों, ईसाईयों, बौद्धों वह सिख समुदाय में 64.8% है व सबसे कम साक्षरता स्तर अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति में है।
- मुस्लिम समुदाय के अंतर्गत शैक्षिक व्यवस्था का स्तर निम्न दिखाई देता है। जिनके इस वर्ग के बच्चों में प्राथमिक स्तर से माध्यमिक स्तर पर पढ़ाई छोड़ने वालों की संख्या ज्यादा पाई गई। धर्म व जाति के आधार पर शिक्षा को न देखते हुए इस वर्ग की शैक्षिक स्थिति को बेहतर बनाने के लिए एक प्रभावशाली कार्य योजना की आवश्यकता है।
- अल्पसंख्यक समुदायों के अंतर्गत आने वाले वर्गों के अपने धार्मिक शिक्षण संस्थान मौजूद है, जिसमें इन समुदायों से संबंधित बच्चों को धार्मिक शिक्षा के साथ सामान्य शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था भी देखी गई है। इन सभी वर्गों की तुलना में मुस्लिम समुदाय के मदरसे अधिक संख्या में मौजूद हैं। अतः अल्पसंख्यक समुदाय के शिक्षा स्थिति पर धार्मिक सिद्धांतों पर शिक्षा के साथ-साथ राज्य में उपस्थित अन्य सामान्य शिक्षा की स्थिति का और अधिक बेहतर बनाने के लिए प्रयासरत होती है।
- अल्पसंख्यक समुदाय में बाल-विवाह का अनुपात मुस्लिम वर्ग व बौद्ध वर्ग में अधिक हैं।
- सकल प्रजनन दर के संख्या में मुस्लिम वर्ग अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजातियों में अधिकता है व इन जातियों में प्रजनन दर की रोकथाम के लिए गर्भनिरोधक का प्रयोग भी अन्य वर्गों के मुकाबले कम देखा जाता है।
- पारसी समुदाय में घटती जनसंख्या देखी जाती है। पारसी दंपतियों में बच्चे पैदा न करने की इच्छा से व पारसियों की लंबी उम्र की वजह देखी गई है।
- मुस्लिम समुदाय में पारसियों की तुलना में औसतन परिवार के सदस्य अधिक पाए जाते हैं।
- अल्पसंख्यक समुदाय के आवासीय स्थितियों का पता लगाने में पाया गया कि पारसी समुदाय, ईसाई समुदाय काफी अच्छी स्थिति में है व अनुसूचित जाति व जनजाति की आवासीय व्यवस्था उचित प्रकार की नहीं है। उन्हें काफी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।
- कार्य सहभागिता दर के संबंध में राष्ट्रीय औसत 39.1% है, बौद्ध वर्ग में यह दर 40.6%, ईसाई वर्ग

में 39.7%, मुस्लिम 31.3% व सिख 37.7% है। वह महिलाओं की स्थिति इसमें राष्ट्रीय औसत 25. 6% है । जिसमें मुस्लिम वर्ग की 14.14%, व सिख समुदाय में 25.6% है।

- अल्पसंख्यक समुदायों के व्यवसायिक जीवन के स्तर में मुस्लिम समुदाय को ज्यादातर घरेलू उद्योग धंधों में कार्यरत देखा गया बौद्ध धर्म को किसी कार्य में, सिख वर्ग खेतिहर व ईसाई समुदाय के लोग कृषितर कार्य व गैर औद्योगिक व्यवसाय में देखा गया है। ईसाई समुदाय के लोगों में नागालैंड व मेघालय में अधिकांशत: कृषि कार्य में सक्रिय देखे जाते हैं।
- अल्पसंख्यक समुदाय में निर्धनता के संबंध में मुस्लिम व सिख धर्म के लोग अधिक पाए गए हैं। इस वर्ग में गांव में निवासित लोग हैं।
- पारसी वर्ग की घटती हुई जनसंख्या इस अल्पसंख्यक समुदायों की समस्याओं में एक है, वर्ष 1991 में इस समुदाय की जनसंख्या 876,382 व 2001 की जनगणना में 69,601 है। इस वर्ग के लोगों की प्रजनन दर बढ़ाने की आवश्यकता पर कार्य किया जाना चाहिए।

अल्पसंख्यक समुदाय के संबंध में वर्ष 2001 की जनगणना में धार्मिक डाटा पर पहली रिपोर्ट शीर्षक के संबंध में 6 धार्मिक समुदायों के आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे धर्मो व संप्रदायों के संबंध में 'अन्य कोटि' के रूप में वर्णन किया गया है। कुल जनसंख्या (0.6), (66,39,629) लोग सम्मिलित है। इनको राज्यवार प्रकाशित किया जाना चाहिए जिससे कि समाज के विकास से संबंधित परियोजनाओं की शुरुआत की जा सके।

निष्कर्ष

भारतीय संविधान के अंतर्गत अल्पसंख्यक शब्द का वर्णन कई जगह पर किया गया है, लेकिन संपूर्ण संविधान में इसे कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया है। अल्पसंख्यक वर्ग के समुदायों के संबंध में इनकी व्यावहारिक स्थिति में इस समुदाय के सभी वर्गो की सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक, आवासीय, खानपान, (पोषण) से संबंधित जलापूर्ति धार्मिक अल्पसंख्यक समुदायों के कार्य सहभागिता दर इसके अतिरिक्त समुदायों की औसत आय व इनके निर्भरता अनुपात को वर्णित करते हैं। अल्पसंख्यक समुदायों के संबंध में देश में आर्थिक, सामाजिक कार्यकलापों की विभिन्नता, बढ़ता हुआ शहरीकरण, शिक्षा का पश्चिमीकरण आदि। यह सब परिवर्तन भी अल्पसंख्यक समुदायों को प्रभावित करते हैं। इन परिवर्तनों का असर बहुसंख्यक वर्गों के साथ अल्पसंख्यक वर्ग में भी खासा देखने को मिलता है। भारतीय संविधान में प्रदत अनुच्छेद 29, 30 उपबंधों पर अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकारों को संरक्षित करने के लिए व्यापक विधि की आवश्यकता को महसूस किया जाता है व इस समुदाय से संबंधित अत्याचार निवारण (अनुसूचित जाति ध्अनुसूचित जनजाति अधिनियम 1989 के उपबंधों के विस्तार की आवश्यकता को महसूस किया जाता है। जिससे इस समुदाय का विकास हो, समस्त परेशानियों का समाधान किया जा सके व अल्पसंख्यक समुदाय भी विकास की मुख्यधारा से जुड़ सकें।

संदर्भ :

1. https://www.hindivyakran.com/2022/04/alpsankhyak.html?=1
2. https://www.gyanodayaindia.com
   gyanodyaindia.com/lndian minorities/
3. https://www.kailasheducation.com /2022 /03
   Alpsankhyak-arth-samasya.html
4. https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/country longitude-who-is-the-minority
5. राष्ट्रीय धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यक आयोग की रिपोर्ट, अल्पसंख्यक कार्य मंत्रालय, नई दिल्ली 10 मई 2007
6. https://hi.m.wikipedia.org>wiki>

❑❑❑

हिंदी भाषा में वर्तनी संबंधी त्रुटियों का भौगोलिक वातावरण के संदर्भ में विश्लेषणात्मक अध्ययन

❍ विनय कुमार सिंह[1]
❍ डॉ. अनोज राज[2]

संक्षिप्ति :

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य हिन्दी भाषा में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों का भौगोलिक वातावरण के संदर्भ में विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। शोध में वाराणसी जिले के सरकारी, अनुदानित तथा स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों में कुल 600 विद्यार्थियों को यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा चयनित किया गया हैं। अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग करते हुए प्रदत्तों का संकलन शोधकर्ता द्वारा स्वनिर्मित मानकीकृत हिन्दी भाषा वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियाँः निदानात्मक परीक्षण मापनी के माध्यम से किया गया। इस शोध में पाया गया कि माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित ग्रामीण विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है जबकि माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित शहरी विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया। दूसरी ओर माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित ग्रामीण विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है जबकि माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित शहरी विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों में सार्थक अंतर पाया गया।

बीज शब्द : हिन्दी भाषा, वर्तनी त्रुटियाँ, भौगोलिक वातावरण।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था में माध्यमिक शिक्षा वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की महत्वपूर्ण कड़ी है। माध्यमिक शिक्षा शैक्षिक संरचना का सेतु है। माध्यमिक शिक्षा ही एक ऐसी कड़ी है जो प्राथमिक तथा विश्वविद्यालयी शिक्षा को दृढ़ता के साथ एक कड़ी में बाँधती है (कपूर, 2008, पृ.87)। माध्यमिक शिक्षा ही जीवन के लिये, व्यवसाय के लिये मार्ग प्रशस्त करती है, जिसमे भाषिक ज्ञान की भूमिका अहम है। भाषा अभिव्यक्ति एवं विचार-विनिमय का सर्वोत्तम साधन है। भाषा ज्ञान प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन है। भाषा के द्वारा ही किसी जाति एवं समाज का ज्ञान सुरक्षित रहता है (शर्मा, 2008, पृ. 1)। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर वह अपने विचारों, भावों दूसरों तक पहुँचाना चाहता है तथा दूसरे के विचार स्वयं समझना चाहता है। लोगों के

1. शोधार्थी, शिक्षा विभाग, शिक्षा संकाय, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ।

2. प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग, शिक्षा संकाय, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ।

बीच होने वाले विचारों का यह आदान-प्रदान सम्प्रेषण कहलाती है। किन्तु मनुष्य सम्प्रेषण के लिए सबसे अधिक जिस माध्यम का सहारा लेता है वह है भाषा। 'भाषा' मनुष्य के पास एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से वह समाज के अन्य लोगों से भावों एवं विचारों का आदान-प्रदान करता है विचारों के उपयोग के लिए व्यक्त ध्वनियों के उपयोग को भाषा कहते हैं (गार्डगिल)। उत्तर प्रदेश में गाँव के बालक प्रारम्भ से ही अपनी भावाभिव्यक्ति प्राय: अवधी, भोजपुरी, ब्रज आदि बोलियों के माध्यम से करते हैं। तब पर भी उत्तर प्रदेश के शिष्ट समाज के विचार-विनिमय का माध्यम खड़ी बोली हिन्दी है (शरतेन्दु, पृ.13)। हिन्दी भाषा अपनी प्रकृति के कारण, संस्कृत के बाद सम्भवत: विश्व की एकमात्र ऐसी भाषा है, जिसमें बोलने, पढ़ने एवं लिखने में पूरा तालमेल है। अर्थात जो कुछ बोला एवं लिखा जाता है वही सुना और पढ़ा जाता है। बोलने, सुनने तथा लिखने व पढ़ने में पूरा तालमेल होता है। अत: भाषा की ध्वनि से लेकर अर्थ तक पूरा तालमेल है जो तालमेल ध्वनि एवं रूपों में है। वही तालमेल रूप और अर्थों में है। इसी कारण हम कह सकते हैं कि हिन्दी विचार-विनिमय के साधन के रूप में सबसे अधिक उपयुक्त भाषा है (शर्मा, 2008, पृ. 11)। शिक्षण-क्रम की दृष्टि से वर्तनी की नियमित एवं विधिवत शिक्षा का स्थान प्राथमिक स्तर पर ही है। माध्यमिक स्तर पर आते-आते विद्यार्थी को हिन्दी ध्वनियों के समस्त लिखित रूपों से भली-भाँति परिचित हो जाता है। उसके मस्तिष्क में शब्दों के उच्चारित एवं लिखित रूप का सम्बन्ध सुदृढ़ रूप से स्थापित हो जाना चाहिए ताकि उसके लिखने में कोई वर्तनी गत त्रुटि न हो। भाषा शिक्षण में वर्तनी का अपना विशेष महत्व हैं। भाषा शिक्षण का एक आवश्यक अंग है शुद्ध वर्तनी सिखाना। शुद्ध भाषा के लिए शुद्ध वर्तनी का होना आवश्यक पाया जाता है। अक्षरों के स्पष्ट ज्ञान के बिना शुद्ध भाषा नहीं लिखी व पढ़ी जा सकती है तथा शुद्ध वर्तनी की अधिक गलतियों के कारण एक सुन्दर लेख के गुण का भी लोप हो जाता है। हिन्दी भाषा में उच्चारण व वर्तनी का घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योकि विद्यार्थी लिखने व पढ़ने में वर्तनी त्रुटियाँ करते है। अशुद्ध वर्तनी के कारण भाषा का रूप विकृत हो जाता है। उच्चारण पर भौगोलिक प्रभाव भी पड़ता है। भिन्न-भिन्न भौगोलिक पारिस्थितियों में रहने वाले व्यक्तियों के स्वर तन्तु भिन्न-भिन्न होते हैं। अरब के निवासियों को अपने सिर पर सदैव एक कपड़ा लू और धूप से बचाव के लिए बाँधना पड़ता हैं। दिन-रात गले में कसावट रखने से उनकी क, ख, ग की ध्वनि क़ ख़ ज़ हो गई। इसके अलावा भाषा के उच्चारण पर क्षेत्रीय बोलियों का प्रभाव अवश्य पड़ता है। बालक खड़ी बोली के प्रभाव के कारण 'क' का उच्चारण 'के' करने लगते हैं। इन बोलियों के प्रभाव से हिन्दी भाषा के उच्चारण में दोष आ ही जाता है। भारत में तो हर पग पर बोली बदल जाती है तथा भाषा एवं वेश बदल जाता है (शर्मा, 2008, पृ. 25)। राज (2012) के अध्ययन में शैक्षिक उपलब्धि पर पारिवारिक वातावरण का प्रभाव पाया। पारिक (2013) के अध्ययन में संस्कृत विषय में निजी विद्यालयों के विद्यार्थियों की त्रुटियाँ राजकीय विद्यालयों के अपेक्षा कम पायी गयी। जाट (2014) के अध्ययन में माध्यमिक स्तर संबंधित विद्यालयों में हिन्दी माध्यम के सरकारी तथा स्ववित्तपोषित विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के बीच हिन्दी भाषा में प्रयुक्त होने वाले वाक्य रचना, प्रत्यय, वर्ण विचार, उपसर्ग, समास तथा वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों में अन्तर पाया। चन्द्राकार (2015) के अध्ययन में ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों से सम्बन्धित हिन्दी माध्यम के स्कूलों में विद्यार्थियों द्वारा वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियाँ दिखायी दी और इसके अलावा अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में विद्यार्थियों में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियाँ अधिक पायी गयीं। यादव (2019) के अध्ययन से स्पष्ट है कि पठन कौशल से सम्बन्धित केवल विराम चिह्नों के प्रयोग करने में 10 विद्यालयों में से 9 विद्यालयों के अधिकांश छात्रों की स्थिति दयनीय पायी गयी। कुशवाहा (2020) के अध्ययन में उच्च प्राथमिक स्तर की कक्षाओं में बहुभाषी विद्यार्थियों की तुलना में द्विभाषी विद्यार्थियों की भाषा सम्बन्धी समस्या (लिखने, पढ़ने के सन्दर्भ में) अधिक पायी गयी। कदम (2020) के अध्ययन में विद्यार्थियों के द्वारा भाषण, पठन एवं लेखन में होने वाले अधिकतम त्रुटियों का कारण मातृभाषा

का व्याघात तथा भाषण एवं पठन की तुलना में लेखन स्तर पर विद्यार्थियों में अधिक त्रुटि पायी गयी। कुमार (2021) के शोध निष्कर्षों से स्पष्ट है कि प्राथमिक विद्यालयों के मात्र 36 प्रतिशत बच्चे ही भाषा के शैक्षिक उपलब्धि में उच्च स्तरीय स्थान प्राप्त किया जबकि शेष 64 प्रतिशत बच्चे औसत या निम्न स्तरीय स्थान प्राप्त किया। तिवारी (2021) के शोध निष्कर्षों से स्पष्ट है कि सरकारी एवं निजी माध्यमिक शालाओं में अध्ययनरत विद्यार्थियों में बाल पत्रिकाओं के पठन-पाठन से भाषायी दक्षता पर पड़ने वाले प्रभावों में अन्तर है। सम्बन्धित पूर्व शोध अध्ययन के उपरांत यह निष्कर्ष निकलता है कि विद्यार्थियों की भाषा में वर्तनी सम्बन्धी शोध कार्य हुए हैं लेकिन वर्तमान समय में वाराणसी जिला जो भौगोलिक रुप में हिन्दी भाषी क्षेत्र तथा ज्ञान की नगरी रही है। प्राचीनकाल में लेकर अब तक ज्ञान की समृद्ध परंपरा यहाँ देखने को मिलती है। इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि अभी तक वर्तनी सम्बन्धी जो समस्याएँ पूर्व में हुए शोध में बतायी गया है कि वे किस तरह इस क्षेत्र विशेष पर लागू होती हैं या नहीं । अतः इस क्षेत्र विशेष पर गंभीरता पूर्वक अध्ययन की आवश्यकता है। जो अभी तक नहीं हुआ है। अतः इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए शोधकर्ता ने अपने शोध में माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की हिन्दी भाषा में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों का भौगोलिक वातावरण के संदर्भ में विश्लेषणात्मक अध्ययन करने की आवश्यकता प्रतीत हुयी। वर्तमान शोध में भौगोलिक वातावरण से अभिप्राय ग्रामीण क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थी तथा शहरी क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थी से लिया गया है।

उद्देश्य :

वर्तमान शोध हेतु निम्न उद्देश्य निर्धारित किए गये -

1. माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित ग्रामीण विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों का अध्ययन करना।
2. माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित शहरी विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों का अध्ययन करना।
3. माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित ग्रामीण विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों का अध्ययन करना।
4. माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित शहरी विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों का अध्ययन करना।

परिकल्पना :

1. माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित ग्रामीण विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
2. माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित शहरी विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
3. माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित ग्रामीण विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
4. माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित शहरी विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

शोध विधि और न्यादर्श

वर्तमान शोध अध्ययन हेतु उत्तर प्रदेश राज्य के वाराणसी जनपद में माध्यमिक शिक्षा परिषद् उत्तर प्रदेश द्वारा मान्यता प्राप्त कक्षा 9 के 30 माध्यमिक विद्यालयों के 600 विद्यार्थियों को न्यादर्श के रुप में चयनित किया

गया। जिसमें 10 सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के 200 विद्यार्थियों, 10 अनुदानित माध्यमिक विद्यालयों के 200 विद्यार्थियों तथा 10 स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के 200 विद्यार्थियों का चयन किया गया। विद्यालयों के न्यादर्श का चुनाव असमानुपाती स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन विधि से किया गया तथा विद्यार्थियों के न्यादर्श का चुनाव साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन विधि से किया गया।

आँकड़ों का संग्रहीकरण

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की हिन्दी भाषा में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों का अध्ययन करने के लिए सर्वेक्षण विधि का चयन किया गया। हिन्दी भाषा में वर्तनी त्रुटि निदानात्मक परीक्षण हेतु शोधकर्ता द्वारा माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की हिन्दी भाषा में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियाँ निदानात्मक परीक्षण स्वनिर्मित माननीकृत उपकरण का प्रयोग किया गया। प्रयुक्त उपकरण में 200 शब्द हैं। उपकरण के प्रथम भाग में आडियो हैं जिसमें शब्द, वाक्य तथा लेखांश से सम्बन्धित कुल 100 शब्द हैं तथा जिसको सुनाकर विद्यार्थियों को लिखने को कहा गया, जिसकी कुल अवधि 6 मिनट की थी। उपकरण के द्वितीय भाग में शब्द, वाक्य तथा लेखांश से सम्बन्धित कुल 100 शब्द लिखे थे तथा जिसे प्रत्येक द्वारा वाचन कराया गया और जिसके लिये 2 मिनट का समय निर्धारित किया गया तथा वाचन का वीडियो बनाया गया, जिसके आधार पर त्रुटियों का आकलन किया गया।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या–शोध से संबंधित संग्रहित आँकड़ें जो वर्तनी में हुयी त्रुटियों से संबंधित थे उनका विश्लेषण एफ–परीक्षण के द्वारा किया गया है।

उद्देश्य : 1 माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित ग्रामीण विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों का अध्ययन करना।

परिकल्पना : 1 माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित ग्रामीण विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका – 1.0

माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित ग्रामीण विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों का अध्ययन

समूह	संख्या	योग	औसत	प्रसरण
सरकारी ग्रामीण विद्यालयों के छात्रों के वर्तनी में त्रुटियों का प्राप्तांक	60	3045	50.75	1952.73
अनुदानित ग्रामीण विद्यालयों के छात्रों के वर्तनी में त्रुटियों का प्राप्तांक	40	1973	49.33	1860.12
स्ववित्तपोशित ग्रामीण विद्यालयों के छात्रों के वर्तनी में त्रुटियों का प्राप्तांक	40	1608	40.20	931.65

सरकार, अनुदानित, स्ववित्तपोशित ग्रामीण विद्यालयों के छात्र	SS	df	MS	F	P – मान	F. Crit
समूहों के मध्य	2894.46	2	1447.23	0.884	0.415	3.062
समूहों के अन्दर	224090.4	137	1635.70			
कुल	226984.9	139				

0.05 सार्थकता स्तर पर असार्थक

तालिका-1.0 से स्पष्ट है कि सरकारी ग्रामीण विद्यालयों के छात्रों की वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियाँ सबसे अधिक (M=k50.75) पायी गयी तथा उससे कम अनुदानित ग्रामीण विद्यालयों के छात्रों (M=k49.33) तथा सबसे कम स्ववित्तपोषित ग्रामीण विद्यालयों के छात्रों द्वारा (M=k40.20) की गयी। एफ-परीक्षण से ज्ञात है कि मुक्तांश (df=k2]137) और एफ-परीक्षण का मान 0.884 है जो कि तालिका मूल्य 3.062 से कम है। अतः सम्बन्धित परिकल्पना सं. 1 स्वीकृत की गयी जिसका तात्पर्य है कि माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित ग्रामीण विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों में सार्थक अन्तर नहीं है।

उद्देश्य : 2 माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित शहरी विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों का अध्ययन करना।

परिकल्पना : 2 माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित शहरी विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका - 2.0

माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित शहरी विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों का अध्ययन

समूह	संख्या	योग	औसत	प्रसरण
सरकारी भाहरी विद्यालयों के छात्रों के वर्तनी में त्रुटियों का प्राप्तांक	40	1467	36.68	855.91
अनुदानित भाहरी विद्यालयों के छात्रों के वर्तनी में त्रुटियों का प्राप्तांक	60	3040	50.67	1850.57
स्ववित्तपोशित भाहरी विद्यालयों के छात्रों के वर्तनी में त्रुटियों का प्राप्तांक	60	2482	41.37	1037.86

सरकारी, अनुदानित, स्ववित्तपोशित भाहरी विद्यालयों के छात्र	SS	df	MS	F	P – मान	F. Crit
समूहों के मध्य	5212.702	2	2606.351	2.007	0.137	3.053
समूहों के अन्दर	203798	157	1298.077			
कुल	209010.7	159				

0.05 सार्थकता स्तर पर असार्थक

तालिका-2.0 से स्पष्ट है कि अनुदानित शहरी विद्यालयों के छात्रों की वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियाँ सबसे अधिक (M=k50.67) पायी गयी तथा उससे कम स्ववित्तपोषित शहरी विद्यालयों के छात्रों (M=k41.37) तथा सबसे कम सरकारी शहरी विद्यालयों के छात्रों द्वारा (M=k36.68) की गयी। एफ-परीक्षण से ज्ञात है कि मुक्तांश (df=k2,157) और एफ-परीक्षण का मान 2.007 है जो कि तालिका मूल्य 3.053 से कम हैं। अतः सम्बन्धित परिकल्पना सं.2 स्वीकृत की गयी है। जिसका तात्पर्य है कि माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित शहरी विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों में सार्थक अन्तर नहीं है।

उद्देश्य : 3 माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित ग्रामीण विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों का अध्ययन करना।

परिकल्पना : 3 माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित ग्रामीण विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका - 3.0

माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित ग्रामीण विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों का अध्ययन

समूह	संख्या	योग	औसत	प्रसरण
सरकारी ग्रामीण विद्यालयों के छात्राओं के वर्तनी में त्रुटियों का प्राप्तांक	40	2037	50.93	1612.02
अनुदानित ग्रामीण विद्यालयों के छात्राओं के वर्तनी में त्रुटियों का प्राप्तांक	60	2744	45.73	1693.11
स्ववित्तपोशित ग्रामीण विद्यालयों के छात्राओं के वर्तनी में त्रुटियों का प्राप्तांक	60	2321	38.68	1350.90

सरकारी, अनुदानित, स्ववित्तपोशित ग्रामीण विद्यालयों के छात्राओं	SS	df	MS	F	P – मान	F. Crit
समूहों के मध्य	3770.48	2	1885.242	1.220	0.297	3.053
समूहों के अन्दर	242465.5	157	1544.366			
कुल	246236	159				

0.05 सार्थकता स्तर पर असार्थक

तालिका-3.0 से स्पष्ट है कि सरकारी ग्रामीण विद्यालयों छात्राओं की वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियाँ सबसे अधिक (M=k50.93) पायी गयी तथा उससे कम अनुदानित ग्रामीण विद्यालयों के छात्राओं (M=k45.73) तथा सबसे कम स्ववित्तपोषित ग्रामीण विद्यालयों के छात्राओं द्वारा (M=k38.68) की गयी। एफ-परीक्षण से ज्ञात है कि मुक्तांश (df=k2,157) और एफ-परीक्षण का मान 1.220 है जो कि तालिका मूल्य 3.053 से कम हैं। अतः सम्बन्धित परिकल्पना सं. 3 स्वीकृत की गयी है। जिसका तात्पर्य है कि माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित ग्रामीण विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों में सार्थक अन्तर नहीं है।

उद्देश्य : 4 माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित शहरी विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों का अध्ययन करना।

परिकल्पना : 4 माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित शहरी विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका - 4.0

माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित शहरी विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों का अध्ययन

समूह	संख्या	योग	औसत	प्रसरण
सरकारी भाहरी विद्यालयों के छात्राओं के वर्तनी में त्रुटियों का प्राप्तांक	60	1787	29.78	128.57
अनुदानित भाहरी विद्यालयों के छात्राओं के वर्तनी में त्रुटियों का प्राप्तांक	40	3312	82.80	4269.40
स्ववित्तपोशित भाहरी विद्यालयों के छात्राओं के वर्तनी में त्रुटियों का प्राप्तांक	40	1185	29.63	190.39

सरकारी, अनुदानित, स्ववित्तपोशित भाहरी विद्यालयों के छात्राओं	SS	df	MS	F	P – मान	F. Crit
समूहों के मध्य	80500.21	2	40250.11	30.378	1.2E	3.062
समूहों के अन्दर	1815.18	137	1324.94			
कुल	262018.2	139				

0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक

तालिका-4.0 से स्पष्ट है कि अनुदानित शहरी विद्यालयों छात्राओं की वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियाँ सबसे अधिक (M=k82.80) पायी गयी तथा उससे कम सरकारी शहरी विद्यालयों के छात्राओं (M=k29.78) तथा सबसे कम स्ववित्तपोषित शहरी विद्यालयों के छात्राओं द्वारा (M=k29.63) की गयी। एफ-परीक्षण से ज्ञात है कि मुक्तांश (df=k2,137) और एफ-परीक्षण का मान 30.378 है जो कि तालिका मूल्य 3.062 से अधिक हैं। अतः सम्बन्धित परिकल्पना सं. 4 अस्वीकृत की गयी है। जिसका तात्पर्य है कि माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित शहरी विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों में सार्थक अन्तर है।

निष्कर्ष

माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित ग्रामीण एवं शहरी विद्यालयों के छात्रों में हिन्दी विषय में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। लेकिन हिन्दी वर्तनी में सरकारी ग्रामीण विद्यालयों के छात्रों द्वारा अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित ग्रामीण विद्यालयों के छात्रों की अपेक्षा सबसे अधिक त्रुटियाँ पाई गयीं, साथ ही निष्कर्षों से स्पष्ट है कि सबसे कम त्रुटियाँ ग्रामीण स्ववित्तपोषित छात्रों द्वारा की गयी और हिन्दी विषय वर्तनी में अनुदानित शहरी विद्यालयों के छात्रों द्वारा सरकारी एवं स्ववित्तपोषित शहरी विद्यालयों के छात्रों की अपेक्षा सबसे अधिक त्रुटियाँ पाई गयीं। निष्कर्षों से स्पष्ट है कि सबसे कम त्रुटियाँ शहरी सरकारी छात्रों द्वारा की गयी। इसी प्रकार हिन्दी वर्तनी में सरकारी ग्रामीण विद्यालयों के छात्राओं द्वारा अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित ग्रामीण विद्यालयों के छात्राओं की अपेक्षा सबसे अधिक त्रुटियाँ पाई गयी, साथ ही निष्कर्षों से स्पष्ट है कि सबसे कम त्रुटियाँ ग्रामीण स्ववित्तपोषित छात्राओं द्वारा की गयी और हिन्दी विषय वर्तनी में अनुदानितं शहरी विद्यालयों के छात्राओं द्वारा सरकारी एवं स्ववित्तपोषितं शहरी विद्यालयों के छात्राओं की अपेक्षा सबसे

अधिक त्रुटियाँ पाई गयी, साथ ही निष्कर्षों से स्पष्ट है कि सबसे कम त्रुटियाँ शहरी स्ववित्तपोषित छात्राओं द्वारा की गयी, जिनमें तीनों प्रकारों के शहरी विद्यालयों के द्वारा की गयी हिन्दी भाषा में वर्तनी त्रुटियों का अन्तर सार्थक पाया गया है। अत: स्पष्ट है कि छात्र एवं छात्राओं पर हिन्दी भाषा के वर्तनी पर ध्यान देने की आवश्यकता है तथा नई शिक्षा नीति 2020 में भी मातृभाषा के विकास एवं संवर्धन हेतु विद्यालयों का प्रयास कर योगदान देने की संस्तुति की गयी जिसका प्रथम प्रयास विद्यालयों में हिन्दी भाषा के शुद्ध लेखन एवं शुद्ध वाचन पर कार्य करने होंगे। वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों के कारण शिक्षक का अशुद्ध उच्चारण, क्षेत्रीय बोलियों का प्रभाव, भौगोलिक कारण, अक्षरों व मात्राओं का स्पष्ट ज्ञान, शारीरिक दोष, मात्राओं का ठीक से ज्ञान न होना, लिखने में असावधानी, व्याकरणिक नियमों के ज्ञान का अभाव, त्रुटियों का उचित संशोधन न होना है। निष्कर्षो के विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि जिसमें सरकारी विद्यालयों में छात्रों द्वारा तथा अनुदानित विद्यालयों में छात्राओं पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है जिसके लिये हिन्दी भाषा लेखन और वाचन हेतु योग्य शिक्षकों द्वारा निरन्तर प्रतियोगिताओं और अभ्यास पर बल देने की आवश्यकता है, विराम तथा सस्वर पाठ का अभ्यास, ग्रामोफोन, लिंग्वाफोन, टेपरिकार्डर, रेडियों तथा टेलिविजन का प्रयोग, जिसकी पुष्टि कुशवाहा (2020), कदम (2020), कुमार (2021) एवं तिवारी (2021) के शोध से भी होती है, जिससे आगे चलकर विद्यार्थियों में भाषा से सम्बन्धित वर्तनी त्रुटियाँ कम देखने को मिलेंगी। नई शिक्षा नीति 2020 में विभिन्न भाषाओं को सीखने के लिए और भाषा शिक्षण को लोकप्रिय बनाने के लिए तकनीक के बृहद उपयोग की बात की है।

सन्दर्भ:

- शरतेन्दु, हिन्दी शिक्षण, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
- पाण्डेय, बी. एवं पाण्डेय, बी. (2003). भारतीय शिक्षा का इतिहास और सामाजिक समस्याएँ, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।
- सिंह, के. (2007). हिन्दी शिक्षण, यूनिवर्सिटी बुक हाउस (प्रा.) लि. जयपुर।
- कपूर, यू. (2008). भारतीय शिक्षा का इतिहास और समस्याएँ, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
- मिश्रा, एम. एवं शर्मा, पी. (2008). भाषा शिक्षण, यूनिवर्सिटी बुक हाउस (प्रा.) लि. जयपुर।
- शर्मा, बी. (2008), हिन्दी शिक्षण, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
- गुप्ता, ए. एवं गुप्ता, पी.एस. (2010). आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
- पारिक, डी. (2013). 'माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की संस्कृत विषय में उच्चारण एवं वर्तनी संबंधी त्रुटियों की पहचान निदान एवं उपचारात्मक शिक्षण की प्रभावशीलता का अध्ययन'।
  http://hdl.handle.net/10603/142806
- जाट, एस.(2014). 'माध्यमिक स्तर के हिन्दी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के मध्य हिन्दी भाषा में होने वाले त्रुटियों का तुलनात्मक अध्ययन'।
  http://hdl.handle.net/ 10603/31634
- चन्द्राकार, एस. (2015). हिन्दी भाषा में वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियाँ एवं उनका निराकरण।
  http://hdl.handle.net/10603/323759
- सिंह, के. ए. (2017). मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।
- यादव, ओ. (2019). 'प्रारम्भिक स्तर पर हिन्दी भाषा के पठन एवं लेखन सम्बन्धी अशुद्धियों के निवारण हेतु उपचारात्मक माँड्यूल की प्रभावशीलता का अध्ययन'।

http://hdl.handle.net/10603/303797

- कुशवाहा, एस. (2020). 'वाराणसी शहर के उच्च प्राथमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों की भाषायी विविधता विषयों के अध्ययन में भाषा सम्बन्धी समस्या एवं उनके प्रति अध्यापको की अभिवृत्ति का अध्ययन', शोध प्रबन्ध, शिक्षा संकाय, पुस्कालय का.हि.वि., वाराणसी।

  http://hdl.handle.net/10603/343271
- कदम, एस.पी. (2020). 'माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों का हिन्दी भाषा अधिगम और तत्संबंधी त्रुटि विश्लेषण http://hdl.handle.net/10603/448294
- एन.ई.पी. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति, मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार।
- कुमार, पी. (2021) बिहार के सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में अध्यनरत कार्यरत एवं घरेलू महिलओं के बच्चों के भाषा की शैक्षिक उपलब्धि का विश्लेषणात्मक अध्ययन बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर।

  http://hdl.handle.net/10603/432697
- तिवारी, एन. (2021). माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में बाल पत्रिकाओं के पठन-पाठन से भाषायी द्क्षता एवं अध्ययन आदतों पर पड़ने वाले प्रभाव का मुजफ्फरपुर के विद्यालयों का अध्ययन बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर।

  http://hdl.handle.net/10603/422725
- Raj,A.(2012). Academic Achievement in Theory and Practical in Relation to Family Background : A Study of College Students, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies(SRJIS)1(3), Retrived from https://www.srjis.com/pages/pdfFiles/146685236439%20Dr.%20Anoj.pdf

❑❑❑

नई उच्च शिक्षा नीति की चुनौतियाँ : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

❍ संजय भारती[1]

संक्षिप्ति :

नई शिक्षा नीति 2020 के माध्यम से सरकार शिक्षा को अधिक बेहतर बनाने के लिए लगातार प्रयास कर रही है, जिसके लिए एक समान नवीन पाठ्यक्रम, सेमेस्टर प्रणाली को स्वीकार कर लिया गया है, लेकिन इसके बाद भी अनेक नवीन चुनौतियाँ उभरकर सामने आ रही हैं जिसमें रोजगार की समस्या, कमजोर छात्र छात्राओं के द्वारा स्कूल को छोड़ना, शिक्षा पर संपन्न वर्गो का प्रभुत्व होना, बुनियादी ढांचे की कमी, शिक्षा में सरकार के द्वारा संचालित कार्यक्रमों का असफल होना, शिक्षा में गुणवत्ता में कमी, एक भाषा की समस्या, शिक्षकों की जवाबदेही का अभाव, साधन की सुविधा का अभाव, ई-कन्टेंट की समस्या, इंटरनेट की समस्या, ग्रामीण छात्र छात्राओं तथा शिक्षकों की समस्या, शुद्ध वातावरण की समस्या, लाइब्रेरी की समस्या, सरकार द्वारा संचालित विभिन्न कार्यक्रमों में प्रशिक्षण के बाद रोजगार की समस्या आदि। यद्यपि इन समस्याओं के निराकरण के लिए सरकार ने अनेक प्रयास किये हैं लेकिन अभी शिक्षा के क्षेत्र में अनेक सुधार की आवश्यकता है। जिसमें नवीन पुस्तकों, नियमित परीक्षा प्रणाली, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, छात्र शिक्षकों का सही अनुपात, छात्र तथा शिक्षकों की समस्या कम से कम करना, गरीब और कमजोर छात्र छात्राओं और विशेष ध्यान या बल दिया जाए, जिसके लिए प्राथमिक स्तर से उच्च स्तर तक सुधार करना अत्यंत आवश्यक होगा।

शिक्षा एक ऐसी संस्था है जिसने सामाजिक संरचना को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। शिक्षा का अभिप्राय मात्र लिखित पुस्तकों के ज्ञान से ही नहीं है बल्कि इसके अंतर्गत पुरानी पीढ़ियों के द्वारा परंपरा के रूप में प्रदान किए गए अनुभविक ज्ञान से भी लिया जाता है। प्राचीन समाजों में शिक्षा लोगों को परंपराओं, प्रथाओं, लोक कथाओं के आधार पर प्रदान किया जाता था। जबकि वर्तमान शिक्षा अनौपचारिक संस्था के द्वारा समाज में प्रदान की जाती है। शिक्षा वह माध्यम है जिसके द्वारा नवीन पीढ़ी में समरूपता उत्पन्न की जाती है। तथा समाज के मूल्यों, इच्छाओं, लक्ष्यों से परिचित होकर लोग अपने व्यक्तित्व का विकास करते है। टी .वी वोटोमोर ने अपनी पुस्तक- 'सोशियोलॉजी' में बताया है कि "शिक्षा आवश्यक रूप से नई पीढ़ियों के समाजीकरण का कार्य करती है लेकिन सामाजिक समूहों और संस्थाओं के अनुसार यह स्वयं को बदलती भी

1. असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, राजकीय महाविद्यालय जक्खिनी, वाराणसी।

रहती है।"[1]

शिक्षा के संबंध में दुर्खीम ने बताया है कि शिक्षा अधिक उम्र के लोगों के द्वारा सामाजिक जीवन में प्रवेश करने वाले लोगों को प्रदान की जाती है, जिससे उनका भौतिक, बौद्धिक और नैतिक विकास होता है और संपूर्ण समाज सामाजिक पर्यावरण के अनुकूल बन जाते हैं। महात्मा गांधी ने भी बताया है कि शिक्षा के द्वारा बच्चे के शरीर, मन, आत्मा में उपस्थित सर्वोत्तम गुणों का अधिकतम विकास करना होता है।

उपरोक्त शिक्षा के विचारों से स्पष्ट है कि शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसमें सैद्धांतिक, व्यावहारिक, तार्किक तथा अनुभविक विचारों को सम्मिलित करते हैं जिसके द्वारा व्यक्ति सामाजिक भौतिक वातावरण से अनुकूलन स्थापित कर व्यक्तित्व का विकास करता है।

समाजशास्त्र की मान्यता है कि शिक्षा शासन का अभिकरण है, शासक समूह और शासक वर्ग अपने हितों की शिक्षा प्रदान करते हैं इस संबंध में यह भी कहा जाता है कि जब भी शासन बदलेगा शिक्षा का चरित्र भी बदलेगा।

दुर्खीम जिनको शिक्षा के समाजशास्त्र का जनक कहा जाता है ने अपना प्रकार्यवादी दृष्टिकोण रखते हुए कहा कि "शिक्षा अधिक आयु के लोगों के द्वारा ऐसे लोगों के प्रति की जाने क्रिया है जो अभी सामाजिक जीवन में प्रवेश करने के योग्य नहीं है, इसका उद्देश्य शिक्षा में बौद्धिक, भौतिक और नैतिक विशेषताओं का विकास करना है जो उसके लिए संपूर्ण समाज और पर्यावरण से अनुकूलन करने के लिए आवश्यक है।"[2]

मार्क्सवादी और संघर्षवादी विद्वानों में मुख्य रूप से पियारे बोरदिए ने सांस्कृतिक पूंजी का सिद्धांत दिया है जिसमें उन्होंने कहा की "उच्च वर्गों की संस्कृति किसी भी अर्थ में निम्न वर्गों की संस्कृति से ऊंची होती है"[3]

भारत में लोगों की पहचान जाति के आधार पर होती है जिसमें सवर्ण जातियों के पास सर्वाधिक संसाधन शिक्षा उच्च संस्कृति विद्यमान रहा है। किरण वडेहारा एवं जॉर्ज कोरेथ की पुस्तक" ग्रामीण महिला सशक्तीकरण" में राजस्थान के भरतपुर जिला के अट्ठारह अलग-अलग गांव के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जाति, जनजाति अन्य पिछड़ा वर्ग बाहुल होने के बाद भी किस प्रकार उच्च जाति सबसे अधिक आय एवं शिक्षा को प्राप्त कर सकी है।

जाति एवं शैक्षणिक योग्यता
"महिला शैक्षणिक योग्यता"[4]

जाति	अशिक्षित	शिक्षित	कुल योग प्रतिशत
ब्राम्हण	46.7	53.3	100
छत्रिय	72.7	27.3	100
वैश्य ;		100	100%
अनुसूचित जाति	90.0	10.0	100%
अनुसूचित जनजाति	90.0	10.0	100%
अन्य पिछड़ा वर्ग	76.8	23.3	100%

"पुरुष पतियों की आय एवं जातियाँ"[5]

आय रुपयों में	निम्न	मध्यम	उच्च	कुल
	1500 तक	1600 से 2400 तक	2500 से अधिक	कुल योग
ब्राम्हण	50.0	50.0	100	
छत्रिय	16.7	16.7	66.7	100
वैश्य	100	----	----	100
अनुसूचित जाति	76.9	7.7	15.4	100
अनुसूचित जनजाति	40.0	40.0	20.0	100
अन्य पिछड़ा वर्ग	26.0	40.0	34.0	100

भारत में शिक्षा पर कुछ लोगों का धीरे धीरेअधिकार अधिक बढ़ता जा रहा है। अल्लथूजर ने भी स्वीकार किया है कि किया है कि "समाज में जो अधिपति आता है उसका कारण केवल आर्थिक नहीं है यहां कार्ल मार्क्स गलत है इस आधिपत्य का कारण अर्थव्यवस्था, राजनीति और विचारधारा का गैर बराबर विकास है।"[6]

रोमानिया के विद्वान इवान इलिच ने अपनी पुस्तक 'द स्कूल लेस सोसाइटी' में कहा है कि समाज के समर्थवान समूह अपनी विचारधारा का प्रशिक्षण शिक्षा के द्वारा देते हैं वे शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से एक अदृश्य पाठ्यक्रम प्रदान करते हैं, जिसमें अनुशासन और वफादारी सिखलाई जाती है, शिक्षा व्यवस्था पूर्व निर्धारित पाठ्यक्रमों को थोपती है, विद्यार्थियों को अपनी रुचि के अनुसार बढ़ने नहीं देती है इसलिए उनके व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता है। इवान इलिच ने कहा कि "शिक्षा स्कूलों द्वारा नहीं बल्कि कार्यालयों, कारखानों और व्यावसायिक प्रतिष्ठानों द्वारा प्रदान की जाए"[7] भारत सरकार भी शिक्षा के निजीकरण की ओर बढ़ रही है देश में सरकारी शिक्षण संस्थाओं से ज्यादा गैर सरकारी शिक्षण संस्थाएं बढ़ती जा रही है अब सरकार भी शिक्षा के पी. पी. पी मॉडल की ओर बढ़ रही है।

शिक्षा कोसंस्कृति का वाहक माना जाता है लेकिन यह विवादास्पद विचार है अनेक विद्वान शिक्षा को शासक की संस्कृति एवं मुख्यधारा की संस्कृति का वाहक मानते हैं अधिकतर विद्वान यह भी मानते हैं कि शिक्षा समाजीकरण की प्रक्रिया से संस्कृति का शिक्षण प्रदान करती हैद्य शिक्षा संस्कृति की वाहक है लेकिन भारत जैसे देश में स्पष्ट करना मुश्किल है कि भारतीय आदर्श संस्कृति किसे माने,भारत में विविधता होने के कारण प्रत्येक धर्म, जाति, संप्रदाय, शिक्षा, भाषा ,बोली ,साहित्य, संगीत की आदर्श व्याख्या करना मुश्किल है।

शिक्षा ही वह माध्यम है जिससे लोगों का समाजीकरण किया जाता है। अर्थात शिक्षा ही समाजीकरण का शाश्वत माध्यम है यह व्यक्तियों को और विद्यार्थियों को भविष्य की भूमिकाएं निभाना सिखाती है शिक्षा से ही समाज के आदर्श और प्रतिमान सीखे जाते हैं। बोटोमोर ने लिखा है कि" शिक्षा निश्चय ही नई पीढ़ियों का समाजीकरण करती है लेकिन सामाजिक आवश्यकताओं और संगठन के अनुसार इस के रूप में सदैव परिवर्तन होता रहता है।"[8]

वैलेंटाइन ने कहा था कि" शिक्षा सामाजिक नियंत्रण का ऐसा अभिकरण है जो एक संगठित कार्यक्रम प्रस्तुत करके समाज को संगठित बनाता है।"[9] शिक्षा ही वह माध्यम है जो विभिन्न तरह की असमानता को खत्म करके

एकीकरण उत्पन्न करती है

शिक्षा से समाज में सबलीकरण होता है शिक्षा प्राप्त करने वाले लोग शक्तिशाली होते हैं ऐसा माना जाता है। मिशेल फूको ने कहा है, 'ज्ञान शक्ति और व्यक्ति'[10] सामान्य शिक्षा से सशक्तीकरण नहीं हो पाता है। अनेक ऐसे भी विद्वान हैं जिनमें दीपांकर गुप्ता का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है।

भारत में स्वतंत्रता से पहले अनेक पार्टियों ने यह घोषणा की कि सत्ता में आने पर हम सबके लिए शिक्षा का प्रावधान करेंगे। संविधान में भी इसका उल्लेख किया गया है कि शिक्षा का दायित्व राज्य का होगा। इसके बाद शिक्षा को समवर्ती सूची में सम्मिलित कर लिया गया तथा राज्य का यह दायित्व होगा कि वह अपने सुविधाओं के आधार पर कमजोर श्रेणियों को शिक्षा प्रदान कर जन शिक्षा के उद्देश्य को पूरा करे। इसलिए 1952 में प्राथमिक शिक्षा के लिए मुदालियर आयोग, 1964 में कोठारी आयोग बनाया गया, 1986 की शिक्षा नीति में यह घोषणा की कि भारत में पूरे विश्व से ज्यादा निरक्षर लोग हैं जिन्हें सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा प्रदान की जाए।

भारत में दुनिया की सबसे बड़ी शिक्षा प्रणाली है जिसमें "1.53 मिलियन स्कूल, 864 से अधिक विश्वविद्यालय, 45 केंद्रीय विश्वविद्यालय, 51 राष्ट्रीय महत्त्व की संस्थाएं, 23 आईआईटी, 30 एनआईटी तथा 300 मिलियन छात्र हैं।"[11] 31 मई कस्तूरीरंगन समिति ने नई शिक्षा नीति का मसौदा तैयार कर मानव संसाधन विकास मंत्रालय को सौंप दिया जिसमें द्विभाषा और त्रिभाषा का फार्मूला भी दिया गया। नई शिक्षा नीति 2019 के मसौदा में सरकार ने जहाँ स्नातक पाठ्यक्रमों को संशोधित कर लिबरल साइंस आर्ट्स को 4 वर्षीय करने का विचार किया है। वही एमफिल जैसे कार्यक्रमों को समाप्त करने का निर्णय लिया है। अब सरकार 3 से 18 साल तक के बच्चों के लिए 5+3+3+4 का डिजाइन तैयार किया गया है एवं निजी स्कूलों में 25% आरक्षण 12(1) की धारा के अंतर्गत आर्थिक रूप से कमजोर छात्रों की उपस्थिति की भी समीक्षा करने की बात कही गई है, स्कूलों में शिक्षा के लिए एक स्वतंत्र नियामक राज्य विद्यालय नियामक प्राधिकरण (यस यस आर ए) और उच्च शिक्षा के लिए राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा नियामक प्राधिकरण की स्थापना की जाएगी तथा स्कूलों में मनमानी फीस वृद्धि पर रोक के लिए सरकार ने कदम उठाए हैं तथा उच्च शिक्षा के अंतरराष्ट्रीयकरण पर भी बल दिया जाएगा, 6 वर्ष तक के बच्चों में उच्च गुणवत्ता ईसीसीई की जाएगी। जो बच्चे स्कूल छोड़ चुके है उन्हें जोड़ने का प्रयास किया जाएगा। 2030 तक 3-18 साल तक के सभी बच्चों को निशुल्क और अनिवार्य गुणवत्तापूर्ण शिक्षा भागीदारी सुनिश्चित करने का प्रावधान है। विद्यालय से पूर्व विद्यालय के बाद के समय में कमजोर छात्रों के लिए रेमेडियल कक्षाएं संचालित करने की भी बात कही गई है, भाषा, गणित, लेखन कौशल पर बल देने के कारण समिति का विचार है कि भाषा मेला वह गणित मेला का भी आयोजन किया जाए तथा 2030 तक कक्षा 12 तक मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा की बात भी की गई है, 2022 तक शिक्षा में आमूलचूल बदलाव कर बच्चों के अंदर रटने के स्थान पर तार्किक, चिंतन, सृजनात्मक, वैज्ञानिक सोच, संवाद, सहयोग की क्षमता, बहुभाषी भाषा सामाजिक जिम्मेदारी और सरोकार के साथ ही डिजिटल विकास साक्षरता को बढ़ावा देने की बात कही गई है।

समाज में शिक्षा अनेक कार्यों को करती है तथा अनेक उद्देश निर्धारित किया गया है। जिसमें कुछ प्रमुख निम्न प्रकार से है -

1. शिक्षा के द्वारा व्यक्ति को सामाजिक मूल्य प्रदान कर एक सामाजिक प्राणी बनाना।
2. नैतिक गुणों के साथ व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास करना।
3. वैज्ञानिक शिक्षा के साथ आर्थिक और भौतिक विकास करना।
4. व्यक्ति की मनोवृतियों तथा विचारों को तार्किक बनाना।

भारत सरकार ने भी नई शिक्षा नीति 2020 के उद्देश्य को निर्धारित किया है। जिसमें 2030 तक सभी को शिक्षित करना है। माध्यमिक शिक्षा को सार्वभौमिकता प्रदान करना, माध्यमिक शिक्षा से दूर समस्त छात्र छात्राओं को फिर से मुख्यधारा में जोड़ना है। कक्षा 6 से व्यावसायिक शिक्षा को प्रारंभ करना। कक्षा 5 तक मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा में पढ़ाई करना छात्रों की प्रगति पर पूरी नजर रखना है उच्च शिक्षा में जीईआर मे वर्ष 2035 तक 50% बढ़ाना। पाठ्यक्रमों में विषयों की विविधता को बढ़ाना, नवीन प्रौद्योगिकी को बढ़ाना है। लेकिन उपरोक्त लक्ष्य के बाद भी नई शिक्षा नीति की अनेक नवीन चुनौतियाँ उभरकर सामने आ रही हैं जो निम्नलिखित है

1. मानवीय संसाधन के रूप में शिक्षा :

शिक्षा ऐसा मानवीय संसाधन है जिसके द्वारा बौद्धिक, मानसिक विकास किया जाता है लेकिन शिक्षा के द्वारा रोजगार नहीं मिलने से अनेक समस्याओं जैसे मानसिक रोग, अल्प आय आदि का सामना करना पड़ता है। तथा रोजगार न मिलने से अपराधी बनने की संभावना बढ़ जाती है।

2. छात्र छात्राओं के द्वारा स्कूल छोड़ना :

भारत में शिक्षा के स्वरूप अलग-अलग होने के कारण कई क्षेत्रों में शिक्षा अत्यधिक महंगी होने से गरीब छात्र अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ देते हैं। छात्राओं की उम्र बढ़ने के कारण विवाह की अनिवार्यता भी स्वीकार करने से गृहस्थ जीवन में प्रवेश के कारण भी शिक्षा प्रभावित होती है। अनेक परिवार की आय बहुत कम होने के कारण छात्र छात्रा मजबूरी में भी अपनी पढ़ाई को छोड़ देते हैं।

3. शिक्षा पर संपन्न वर्गों का प्रभुत्व :

नई शिक्षा नीति में नवीन पाठ्यक्रम तथा सेमेस्टर परीक्षा प्रणाली के कारण भी गरीब विद्यार्थियों के लिए जिनके परिवार की मासिक आय बहुत कम होने से उनके द्वारा परीक्षा खर्च वहन करना भी एक समस्या है। शिक्षा प्रणाली में निजी विद्यालयों की संख्या अधिक होने से, उनको महंगी शिक्षा को दे पाना एक निम्न आय वर्ग वाले परिवार के द्वारा संभव नहीं हो पाता है। जिसके कारण बाध्य होकर ऐसे छात्र बीच में ही अपनी पढ़ाई छोड़ने के लिए बाध्य हो जाते हैं। कुछ परिवार ऐसे भी होते हैं जो ऐसे विद्यालय या पाठ्यक्रम के बारे में जानते ही नहीं या सोच भी नहीं सकते जिनकी शिक्षा की फीस बहुत अधिक होती है।

4. बुनियादी ढांचे का अभाव :

यद्यपि नई शिक्षा में बुनियादी ढांचे के विकास का प्रयास किया गया है। लेकिन सरकार तथा प्राइवेट विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में बिजली, पानी, शौचालय, कंप्यूटर की कमी या रखरखाव की समस्या विद्यमान है। जिसके कारण नवीन ज्ञान का प्रयोग छात्र और छात्राएं नहीं कर पाते है बुनियादी सुविधा सही नहीं होने के कारण भी अधिकांश छात्र अपना अध्ययन बीच में ही छोड़ देते हैं।

5. सरकारी कार्यक्रम का विफल होना :

सरकार द्वारा संचालित अनेक शिक्षा से संबंधित कार्यक्रम हैं जिसमें कौशल विकास, व्यावसायिक पाठ्यक्रम, मध्याह्न भोजन योजना, सर्व शिक्षा अभियान जैसे अनेक सरकार के द्वारा संचालित कार्यक्रम है। नई शिक्षा नीति में भी अनेक पाठ्यक्रमों को सम्मिलित किया गया है जो रोजगार तथा व्यवसाय से जुड़ा है लेकिन उस विषय के प्राध्यापक तथा साधन ना होने से छात्र तथा छात्राओं को व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त नहीं हो पा रही है। जहाँ पर छात्र छात्राओं को प्रशिक्षण प्रदान किया जा रहा है। वहां पर अनेक छात्र-छात्रा मात्र डिग्री के लिए आवेदन कर रहे हैं। समाज में शिक्षा की डिग्री की मांग होने के कारण लोग मात्र डिग्री के लिए प्रवेश ले रहे हैं।

6. उच्च शिक्षा में गुणवत्ता की कमी :

शिक्षा एक ऐसा संसाधन है जिनमें नवीन क्षेत्रों के विकास की असीम संभावनाएं होती हैं शिक्षक विभिन्न

प्रतियोगी परीक्षाओं को पास करके नौकरी को प्राप्त करता है। लेकिन प्राथमिक विद्यालयों एवं माध्यमिक विद्यालयों की गुणवत्ता कम होने के कारण शिक्षक भी अध्ययन अध्यापन से दूर हो जाता है। जिसके कारण उसका ज्ञान कम हो जाता है। विद्यार्थी की अधिक रूचि नहीं होने के कारण शिक्षक भी शिथिल हो जाता है। शिक्षा के संबंध में मूल पुस्तकों की भाषा अलग अलग होने के कारण अनुवाद पुस्तकों से अध्ययन अध्यापन करना पड़ता है। जिसके कारण विद्यार्थी तथा शिक्षक दोनों ही मूल पुस्तकों से अवगत नहीं हो पाते हैं भारत की अधिकांश जनसंख्या गांव में निवास करने के कारण तथा कृषि कार्य से जुड़े होने के कारण नवीन पीढ़ी के सामने नवीन शिक्षा से संबंधित गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा ग्रहण करने की समस्या उत्पन्न हो गई है।

7. भाषा की समस्या :

भारत के विभिन्न प्रदेशों में अलग-अलग भाषा बोली जाती है। भारतीय संविधान में ही 18 भाषाओं को मान्यता प्रदान की गई है। नई शिक्षा नीति में स्थानीय भाषा में शिक्षा देने की स्वीकृति प्रदान की गई है। अधिकतर छात्र अन्य भाषाओं के ज्ञान से वंचित रह जाते हैं।

8. शिक्षकों की जवाबदेही की समस्या :

शिक्षकों की प्रत्येक विद्यार्थी पर जवाबदेही निश्चित करने की आवश्यकता है। शिक्षकों को ऐसे अवसर तथा साधन उपलब्ध कराने की आवश्यकता है कि वह सरल एवं सुगम तरीके से अपनी शिक्षण की गतिविधियों में निरंतर सुधार करते रहें जिसके लिए एक मानक वेतन उचित वातावरण की अत्यंत आवश्यकता है।

9. इंटरनेट एवं ई-कन्टेंट की समस्याएं :

विभिन्न क्षेत्रों की जानकारी की समस्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले छात्र छात्राओं को हमेशा बनी रहती है। कभी-कभी स्मार्ट फोन एवं रिचार्ज की समस्या गरीब छात्र-छात्राओं के पास बनी रहती है जिससे उनको उचित जानकारी नहीं मिल पाती है। शिक्षकों के पास भी अनेक समस्या होने के कारण कई शिक्षकों को मानसिक तनाव बना रहता है। जिससे उनका शिक्षण कार्य प्रभावित होता है। विद्यार्थियों को भी अनेक समस्याएं होती हैं जैसे पढ़ने लिखने का सही वातावरण का न होना।

शिक्षा में बदलाव के साथ ही साथ जब तक हम शिक्षा से रोजगार, स्वरोजगार को नहीं जोड़ेंगे तब तक सामान्य शिक्षा हमारे लिए मात्र सामाजिक मानव प्राणी उत्पन्न करता रहेगा, जबकि शिक्षा में सामाजिक प्राणी के साथ ही रोजगार भी आवश्यक है। शिक्षा में जब तक समाज की कमजोर श्रेणियों विशेष रुप से अन्य पिछड़े वर्ग, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, महिलाओं को समान रूप से भागीदार नहीं बना पाते हैं तब तक शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करना हमारे लिए मात्र सपना ही सिद्ध होगा। शिक्षा में समान शिक्षा, समान पाठ्यक्रम, समान गुणवत्ता को बनाए रखने की अति आवश्यकता है, जिससे कि कम से कम हम पूंजीवादी शैक्षणिक स्तरीकरण को कम कर सकें और सबको समान शिक्षा, समान अवसर उपलब्ध करा सकें तथा शिक्षा में शिक्षा के प्रति वर्तमान तथा भविष्य के राजनीतिज्ञों, समाज सेवकों, प्राध्यापकों एवं अन्य संस्थाओं को भी अपनी रुचि हमेशा सभी को समान शिक्षा के प्रति बनाए रखनी पड़ेगी। छात्र-छात्राओं को भी शिक्षा में अपनी रुचि बनाए रखनी होगी। सरकार को भी अपनी व्यवस्था का समय के अनुसार बार-बार निरीक्षण करके सुधार की ओर आगे बढ़ना होगा। हम तभी शिक्षा के नए उद्देश्यों को प्राप्त कर पाएंगे जब इसके लिए कटिबद्ध और समर्पित होंगे वरना नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी मात्र कागज का ही मसौदा बनकर रह जाएगी ।

संदर्भ :

1. अमन मदान, क्या शिक्षा वास्तव में समाज को बदलती है एक केस स्टडी पर सैद्धांतिक इंटरनेट, पृ. 6
2. अग्रवाल जी के, समाजशास्त्र, बी.ए. द्वितीय वर्ष, यस.वी.पी.डी. पब्लिकेशन हाउस, आगरा 2017, पृ. 230
3. दोषी, एम.एल, आधुनिक समाजशास्त्रीय विचारक रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2010, पृ. 237

4. वडेहरा, किरण एवं जार्ज कोरेथ, महिला सशक्तीकरण, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2017, पृ. 48
5. वडेहरा, किरण एवं जार्ज कोरेथ, महिला सशक्तीकरण सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2017, पृ. 55
6. दोषी, एम.एल, आधुनिक समाजशास्त्रीय विचारक रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2010, पृ. 139
7. अग्रवाल, जी.के, समाजशास्त्र, बी.ए. द्वितीय वर्ष, यस.वी.पी.डी. पब्लिकेशन हाउस, आगरा, 2017, पृ. 240
8. अग्रवाल, जी.के, समाजशास्त्र, बी.ए. प्रथम वर्ष, यस.वी.पी.डी. पब्लिकेशन हाउस, आगरा, 2017, पृ. 162
9. अग्रवाल, जी.के, समाजशास्त्र, बी.ए. द्वितीय वर्ष, यस.वी.पी.डी. पब्लिकेशन हाउस, आगरा, 2017, पृ. 240
10. दोषी, एम.एल, आधुनिक समाजशास्त्रीय विचारक, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2010, पृ. 330
11. डब्लू.डब्लू.डब्लू.इंटरनेट नई शिक्षा नीति 2019

❑❑❑

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 तथा महिला शिक्षा की दिशा

❍ डॉ. हुस्न आरा[1]

संक्षिप्ति :

भारत में महिलाओं के लिए पढ़ना-लिखना एवं उच्च शिक्षा प्राप्त करना काफी चुनौतीपूर्ण रहा है। पुरुषप्रधान समाज होने के कारण महिलाएं अक्सर दबाई जाती रहीं तथा शिक्षा से वंचित की जाती रहीं हैं। भारत की आधी आबादी जो सदियों से सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़ी रही हैं, समय के साथ-साथ उनमें जागरूकता आयी और धीरे-धीरे शिक्षा की ओर अग्रसर हुई। 19वीं शताब्दी आते-आते समाज सुधार आन्दोलन प्रारंभ हुए जिसमें स्त्री शिक्षा पर भी ध्यान दिया गया। परंतु महिला शिक्षा की दशा में सुधार की गति बहुत धीमी थी। स्वतंत्रता के पश्चात् सरकार ने स्त्री-पुरुष समानता पर बल देते हुए महिला शिक्षा को बढ़ावा देने का प्रयास करना प्रारंभ किया। इसी क्रम में वर्त्तमान में सरकार द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 लायी गयी है जिसका लक्ष्य समावेशी एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का विकास करना है। इस शोध पत्र में महिला शिक्षा की दशा एवं दिशा की चर्चा की गयी है तथा यह जानने का प्रयास किया गया है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 कहाँ तक महिलाओं को प्रारंभिक बाल्यवस्था से लेकर उच्च स्तर तक की शिक्षा सामान रूप से प्रदान करने में सहायक होगी? इस क्रम में किन-किन चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा और उन चुनौतियों का क्या समाधान हो सकता है, इन बातों को इस शोधपत्र में समझने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द : पुरुषप्रधान समाज, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, समावेशी, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 ने शिक्षा के क्षेत्र में रूपांतरकारी परिवर्तन के द्वार खोले हैं। इसके तहत प्रारंभिक बाल्यावस्था की शिक्षा के साथ-साथ उच्चतर शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, ऑनलाइन एवं डिजिटल शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के साथ-साथ तकनीकी एवं वैज्ञानिक शिक्षा आदि पर विशेष ध्यान दिया गया है ताकि सतत विकास के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शैक्षिक सुविधाओं को प्रदान करने में स्त्री-पुरुष समानता का ध्यान भी रखा गया है। सभी को उच्च गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करके ही भारत महाशक्ति के रूप में वैश्विक पटल पर स्थापित हो सकता है। महिला शिक्षा एक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक विषय

1. *सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, डॉ. एल. के. भी. डी. कालेज, ताजपुर, समस्तीपुर, एल. एन. एम. यू., दरभंगा।*

है; क्योंकि महिलाएँ सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में सदियों से पिछड़ी रही हैं। यह विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है और समाज के सामाजिक और आर्थिक सुधार को प्राप्त करने का साधन है। महिलाओं की शिक्षा को बढ़ावा देने से न केवल उनकी व्यक्तिगत सामर्थ्य में वृद्धि होती है बल्कि समाज और देश की प्रगति एवं विकास की दिशा में भी मदद मिल सकती है। महान यूनानी दार्शनिक प्लेटो स्त्री एवं पुरुषों के लिए सामान शिक्षा का समर्थक था। उसकी शिक्षा व्यवस्था का वर्णन करते हुए ज्योति प्रसाद सूद ने लिखा है कि "एथेन्स की तत्कालीन पद्धति में प्लेटो ने एक दूसरी नवीन उद्भावना यह की कि उसने स्त्री-पुरुषों के लिए एक ही प्रकार की शिक्षा का समर्थन किया। उसकी कल्पना के आदर्श राज्य में स्त्री-पुरुषों के राज्य सम्बन्धी कामों में कोई भेद नहीं; स्त्री-पुरुष समान रूप से प्रत्येक पद के अधिकारी हैं।"[1]

भारतीय समाज एवं महिला शिक्षा की दशा :

महिलाओं की शिक्षा किसी भी समाज के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। महिलाओं की शिक्षा का अर्थ है कि महिलाएं समाज के साथ-साथ स्वयं को भी उन्नत बनाएं तथा देश के विकास में भी अपना योगदान दें। वे अपनी शिक्षा के बल पर अपने विचारों को समझती एवं समझाती हैं, स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ उठाती हैं, आर्थिक क्षेत्र में सहभागी बनकर देश की जी.डी.पी. को उन्नत करने में अपना योगदान देती हैं, उद्यमिता को बढ़ावा देकर रोजगार के सृजन में सहयोग देती हैं, घरेलू कार्यों को कुशलता के साथ सम्पन्न करती हैं, पारिवारिक दायित्वों का उत्कृष्ठता से निर्वहन करती हैं, अपने अधिकारों को जानती हैं और अपनी स्वतंत्रता को समझती हैं। इसलिए महिलाओं की शिक्षा के महत्व के बारे में विस्तार से जानने की आवश्यकता है कि महिलाओं की शिक्षा समाज के विकास के लिए कैसे महत्वपूर्ण है। भारत में महिला शिक्षा का स्थान प्रारंभ से बहुत ही निम्न रहा है। यहाँ लड़कियों की शिक्षा को लंबे समय से महत्व नहीं दिया गया। इसलिए देश में अधिकतर महिलाएँ अशिक्षित ही रह गईं और उन्हें उनके हकों से वंचित किया जाता रहा। मोहनदास नैमिशराय ने भारतीय समाज में स्त्री शिक्षा की दशा का वर्णन करते हुए लिखा है कि "यह भी इतिहास का दुखद पहलू था जहाँ इंग्लैण्ड में स्त्री शिक्षा के लिए आन्दोलन हो रहे थे, वहीं भारत में महिलाओं के लिए शिक्षा लेना निषेध था। साथ ही महिलाओं का यौन शोषण करने के लिए मंदिरों में देवदासी प्रथा चलाई हुई थी। पूना में तो शनिवारबाड़ा इस मामले में बदनाम था। नई पीढ़ी के साथियों को हम बता दें कि अगर कोई हिन्दू महिला पढ़ने-लिखने की कोशिश करती थी तो उसे गालियों से नवाजा जाता था, तरह-तरह की बातें उसे सुननी पड़ती थीं.....जहाँ तक मुस्लिम धर्म और समाज की बात है, उनकी स्थिति भी ऐसी ही थी। कोई खास फर्क नहीं था। इधर हिन्दू समाज के दुश्मन पंडित, पुरोहित और पुजारी थे तो उधर मुस्लिम समाज के दुश्मन मुल्ला और मौलवी थे।"[2]

इसप्रकार, भारत में महिलाओं के शिक्षा की स्थिति अत्यंत ही जर्जर थी, चाहे वे हिन्दू धर्म की महिलाएँ हों या मुस्लिम धर्म की। उनके शिक्षा की समुचित व्यवस्था न तो परिवार या समाज द्वारा की जाती थी न ही शासन व्यवस्था द्वारा। ऐसी गिनी चुनी महिलाएँ ही होंगी जिन्हें पढ़ना नसीब होता था वह भी सीमित मात्रा में तथा अभिजात्य वर्ग में। आम महिलाओं की शिक्षा की तो बात ही छोड़ दीजिए उनके लिए शिक्षा की उचित व्यवस्था तो थी नहीं, उनका विवाह भी बहुत ही कम उम्र में कर दिया जाता था। अपने प्रसिद्ध भाषण 'जाति का विनाश' में डॉ. भीमराव आंबेडकर ने उल्लेख किया है कि "1892 में इलाहाबाद में आयोजित कांग्रेस के आठवें अधिवेशन के अध्यक्ष के रूप में श्री डब्ल्यू सी बनर्जी का व्याख्यान.....मैं उसका निम्नलिखित अंश उद्धृत करने की धृष्टता करता हूं। श्री बनर्जी कहते हैं :

'कम से कम मैं उन लोगों से सहमत नहीं हूं, जो कहते हैं कि जब तक हम अपनी सामाजिक व्यवस्था को सुधार नहीं लेते, तब तक हम राजनीतिक सुधार के योग्य नहीं हैं। मुझे इन दोनों के बीच कोई संबंध नहीं

दिखाई देता।...क्या हम (राजनीतिक सुधार के) योग्य इसलिए नहीं हैं, क्योंकि हमारी विधवाओं का पुनर्विवाह नहीं होता और हमारी लड़कियों की शादी दूसरे देशों की तुलना में कम उम्र में कर दी जाती है, क्योंकि हमारी पत्नियां और पुत्रियां हमारे साथ गाड़ी में बैठकर हमारे मित्रों से मिलने नहीं जातीं और क्योंकि हम अपनी बेटियों को ऑक्सफोर्ड और कैंब्रिज में पढ़ने के लिए नहीं भेजते?"[3] यह देखा जाता है कि डॉ. भीमराव आंबेडकर ने भी तत्कालीन समय में दलितों, महिलाओं की दयनीय स्थिति का विश्लेषण किया है और सामाजिक सुधार को प्राथमिकता देने की बात कही है। आपने आधुनिक शिक्षा को उन्नति की वह कुंजी माना है जो स्त्री-पुरुष दोनों के लिए विकास एवं प्रगति के रास्ते खोलता है।

19वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही भारत में कुछ समाज सेवियों एवं समाज सुधारकों ने स्त्री शिक्षा, स्त्री-पुरुष समानता, विधवा विवाह, बाल विवाह निषेध, छुआछूत आदि की समाप्ति के लिए आवाज उठानी प्रारंभ की। इनमें राजाराम मोहन राय, दयानंद सरस्वती, ईश्वरचंद्र विद्यासागर महात्मा जोतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले आदि का नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं अविस्मरणीय है। जोतिबा फुले का सम्पूर्ण जीवन मानव मात्र की शिक्षा हेतु समर्पित था। उन्होंने पुरुष की अपेक्षा स्त्री शिक्षा पर विशेष जोर दिया। "जोती की प्रथम पाठशाला की स्थापना बुधवार पेठ में भिडे नाम के व्यक्ति के मकान में 1 जनवरी, 1948 को हुई।"[4] इस समय तक लड़कियों की शिक्षा के लिए स्कूल की समुचित व्यवस्था नही थी। "जोतिबा ने अपने इस प्रयास का उनके अपने शब्दों में इस प्रकार वर्णन किया है। वे कहते हैं 'महार, मांग, चमार आदि मेरे देशवासियों की एक भारी संख्या आज अज्ञानता और दरिद्रता के दलदल में फंसी है। यह सब देखकर मुझे शिक्षा के माध्यम से उनका उत्थान करने की की बात मेरे मन में आई। सर्वप्रथम मेरा ध्यान लड़कियों की पाठशाला ने आकर्षित किया। अधिक परिपक्व चिंतन के बाद, मुझे लड़कियों की पाठशालाएं लड़कों से भी ज्यादा आवश्यक लगीं.....मैंने पूना लौटते ही बहुजन समाज की लड़कियों की पाठशाला शुरू की है...."[5]

यद्यपि स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भारत में शिक्षा के क्षेत्र में सुधार हेतु सरकार द्वारा लगातार प्रयास किए जाते रहे हैं। इसके लिए 1948 में राधाकृष्ण आयोग, 1952 में मुदलियार आयोग, 1964 में कोठारी आयोग, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 आदि लाए गए। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा को 1992 (एनपीई 1986/92) में संशोधित किया गया एवं अधूरे काम को इस नीति के द्वारा पूरा करने का भरपूर प्रयास किया गया। इसके बाद एक बड़ा कदम नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम,[6] 2009 रहा जिसने सार्वभौमिक प्रारंभिक शिक्षा सुलभ करने हेतु कानूनी आधार उपलब्ध कराया। इसे 1 अप्रैल 2010 से लागू किया गया। वर्त्तमान सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा 29 जुलाई, 2020 को की। इस नीति का सम्पूर्ण देश में स्वागत किया गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 शिक्षा प्रणाली का एक व्यापक सुधार है जिसका उद्देश्य विभिन्न चुनौतियों का समाधान करना और समग्र विकास को बढ़ावा देना है। यह छात्र-केन्द्रित और परिणाम-उन्मुख शिक्षा प्रणाली की बात करता है जो महत्वपूर्ण सोच, रचनात्मकता और व्यक्तित्व के समग्र विकास पर जोर देता है। "वर्त्तमान शिक्षा नीति में स्वीकृति है कि व्यक्ति के विकास एवं उसकी मेधा का विकास जीवनपर्यंत चलता रहता है। अत: हमारी शिक्षा-व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए, जिसमें व्यक्ति की मेधा का समुचित विकास हो सके। शिक्षा नीति की यह दृष्टि भारतीय परम्परा के लिए आश्चर्यजनक नहीं है। यह पहली शिक्षा नीति है, जो भारतीय भाषा, संस्कृति और कला पर पूरा एक अध्याय देती है। उच्च शिक्षा में भाषा, साहित्य, संगीत, दर्शन, भारतीय विद्याओं, कला और नाट्य को समाविष्ट करती है। इस तरह से यह नीति उच्च शिक्षा के स्तर पर भी, चाहे वह किसी भी ज्ञानानुशासन का विद्यार्थी हो, उसे भाषा, कला और संस्कृति को सीखने का अवसर देती है।"[7] इसप्रकार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 लड़के एवं लड़कियों, दोनों को बचपन से ही रचनात्मक शिक्षा की ओर ले जाती है और उच्च शिक्षा तक निर्धारित गुणवत्तापूर्ण लक्ष्यों को चरणबद्ध तरीके

से प्राप्त करने की ओर उन्मुख करती है। इससे जहाँ एक ओर महिला सशक्तीकरण का मार्ग प्रशस्त होगा तो दूसरी ओर इस पुरुष-प्रधान समाज में महिलाएँ स्वतंत्र अस्तित्व का निर्माण करने में सक्षम होंगी। भारत की आधी आबादी जिसकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी क्षेत्रों में भागीदारी भी आधी होनी चाहिए, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 इसे संभव बनाएगी। "प्रत्येक विद्यार्थी में जन्मजात प्रतिभाएँ होती हैं, जिन्हें खोजा जाना चाहिए, उनका पोषण करना चाहिए, उन्हें बढ़ावा देना चाहिए और उनका विकास करना चाहिए। ये प्रतिभाएँ अलग-अलग रुचियों, प्रस्तावों और क्षमताओं को रूप में खुद को व्यक्त कर सकती हैं।"[8]

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 एवं महिला शिक्षा की दिशा :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के वे मूलभूत तत्व जो महिला शिक्षा की दिशा का निर्धारण करेंगे निम्नलिखित हैं-

1. प्रत्येक बच्चे की विशिष्ट क्षमताओं की स्वीकृति, पहचान और उनके विकास हेतु प्रयास करना ताकि अकादमिक और अन्य क्षमताओं में उनके सर्वांगीण विकास पर पूरा ध्यान दिया जा सके।
2. बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान को अत्यधिक प्राथमिकता देना ताकि सभी बच्चे चाहे लड़का हो या लड़की इसे अच्छी तरह सीख सकें।
3. इसमें लचीलापन है ताकि छात्र-छात्रा दोनों में उनके तौर-तरीके और कार्यक्रमों को चुनने की क्षमता विकसित हो सके, और इस तरह से वे अपनी योग्यता के अनुसार अपने जीवन का रास्ता चुन सकें।
4. इसमें नैतिकता, मानवीय और संवैधानिक मूल्य, दूसरों के लिए सम्मान, स्वच्छता, शिष्टाचार, सेवा की भावना, बहुलतावाद, समानता और न्याय, वैज्ञानिक तरीके आदि को भी शामिल किया गया है। यह महिला शिक्षा को नई दिशा देगी और पुरुषों के साथ-साथ महिलायें भी सामान रूप से इससे लाभान्वित होंगी।
5. यह जीवन कौशल जैसे, आपसी संवाद, सहयोग और सामूहिक कार्य पर भी जोर देता है। इससे पुरुष-प्रधान समाज की मानसिकता बदलेगी और समाज महिलाओं के प्रति अधिक जागरूक एवं उदार होगा।
6. अध्ययन-अध्यापन कार्य में तकनीकी के यथासंभव उपयोग पर भी जोर दिया गया है। इससे भाषा संबंधी बाधाओं को दूर करने में एवं दिव्यांग बच्चों के लिए शिक्षा को सुलभ बनाने में मदद मिलेगी।
7. इसमें सभी शैक्षणिक निर्णयों की आधारशिला के रूप में पूर्ण समता, और समावेशन पर जोर दिया गया है।
8. इसमें शिक्षा को लोगों की पहुंच और सामर्थ्य के दायरे में रखने की बात की गई है ताकि शहरी एवं ग्रामीण दोनों परिवेश के बच्चे लाभान्वित हो सकें।
9. यह सभी भारतीयों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और विकास की बात करता है। स्त्री और पुरुष दोनों गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करने के अधिकारी हैं।
10. सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, कौशल और विकास के लिए उत्कृष्ट स्तर के शोध पर जोर देती है। इससे समाज को नई दिशा मिलेगी।

निस्संदेह, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 महिला शिक्षा को नई दिशा देनेवाली साबित होगी। आखिर आधी आबादी का पूर्ण शिक्षित होना आवश्यक भी है और समय की मांग भी। यह नीति एक योग्यता-आधारित मूल्यांकन प्रणाली की ओर बदलाव का सुझाव देती है जो समग्र विकास पर ध्यान केंद्रित करती है और छात्रों को वास्तविक दुनिया के संदर्भ में ज्ञान लागू करने के लिए प्रोत्साहित करती है। इससे समाज को एक नया नजरिया, तार्किक सोच और अवधारणात्मक समझ प्राप्त होगा जो स्त्री-पुरुष दोनों के विकास में सहायक बनेगा।

"इसमें व्यावसायिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा एवं जीवनपर्यंत सीखने, प्रौद्योगिकी का प्रयोग, डिजिटल शिक्षा, ऑनलाइन शिक्षा के साथ भारतीय भाषाओं, कला और संस्कृति के संवर्धन, लैंगिक समावेशी निधि, बालिकाओं की शिक्षा आदि के विशेष प्रावधान सम्मिलित हैं।"[9] राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में सरकार ने महिलाओं को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने हेतु विविध उपाय किए हैं जिसमें 'जेंडर-समावेशी निधि' के गठन की भी बात की गई है। "इसके अलावा, भारत सरकार सभी लड़कियों और साथ ही ट्रांसजेंडर छात्रों को गुणवत्तापूर्ण और न्यायसंगत शिक्षा प्रदान करने की दिशा में देश की क्षमता का विकास करने हेतु एक 'जेंडर-समावेशी निधि' का गठन करेगी। केंद्र सरकार द्वारा निर्धारित प्राथमिकताओं को लागू करने के लिए राज्यों को यह सुविधा उपलब्ध करने के लिए एक कोष उपलब्ध होगा।"[10]

चुनौतियाँ :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 महत्वपूर्ण अपेक्षाएं और संभावनाएं लेकर आई है। परन्तु महिला शिक्षा को नई दिशा देने तथा जगतजननी को मुख्यधारा में लाने हेतु धरातल पर आवश्यक कदम उठाने होंगे। नई शिक्षा नीति-2020 का मुख्य उद्देश्य है कि शिक्षा व्यवस्था को प्रारंभिक से लेकर उच्चतम स्तर पर सुधारा जाए, लेकिन यह उपयुक्त छात्र एवं छात्राओं तक पहुँच पाने में असमर्थ हो सकता है क्योंकि गाँवों और छोटे शहरों में शिक्षा प्राप्त करने हेतु पर्याप्त सुविधाओं की कमी के कारण, उन छात्र एवं छात्राओं को जिनके पास शिक्षा के लिए अधिक संसाधन नहीं हैं, इसके लाभ मिलने में कठिनाई आ सकती हैद्य हमारा पुरुष-प्रधान समाज बेटों को शिक्षित करने के लिए तो प्रयास करता है पर बेटियों के लिए उतना सहृदय नहीं है। कई बार तो यह भी देखने को मिलता है कि संसाधन कम होने पर लड़कियों की पढ़ाई छुड़वा दी जाती है पर लड़कों के लिए पढ़ाई जरूरी मानते हुए जारी रखी जाती है। घरेलू कार्यों के निष्पादन का जिम्मा भी लड़कियों के कंधे पर ही डाल दिया जाता है जिससे उसकी पढ़ाई प्रभावित होती है। उच्च शिक्षा तक तो उनकी पहुँच अभी भी काफी कम है। यह भी देखने को मिलता है कि कम उम्र में उनकी शादी कर दी जाती है और विवाहोपरांत बच्चे को जन्म देने से लेकर उनके पालन-पोषण की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी उन्ही की होती है। ऐसे में महिलाओं के लिए शिक्षा प्राप्त करना और विशेषकर उच्च शिक्षा प्राप्त करना काफी कठिन होता है।

नई शिक्षा नीति-2020 का अनुपालन करने के लिए वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता होगी। अपर्याप्त वित्तीय संसाधन होने के कारण शिक्षा के क्षेत्र में वित्तीय समर्पण में कमी आ सकती है जिससे नए शिक्षा प्रणालियों की स्थापना और परिप्रेक्ष्यों में सुधार करने में बाधा हो सकती हैद्य ऐसे में महिलाओं के लिए विशेष रूप में शिक्षा की व्यवस्था करने में कठिनाई आ सकती है। नई शिक्षा नीति-2020 प्रौद्योगिकी, सूचना एवं संचार तकनीक को महत्वपूर्ण मानती है और इसका उद्देश्य शिक्षा को इनोवेटिव, दूरस्थ और उपयोगी बनाना है। लेकिन इसके साथ ही प्रौद्योगिकी की चुनौतियों और तकनीकी असमर्थता की संभावना भी है, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहाँ इंफ्रास्ट्रक्चर कमजोर है और तकनीकी संसाधनों की कमी है। "शिक्षा नीति में मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा की बात तो की गई है, भारतीय भाषाओं के संवर्धन के लिए भी कई प्रावधानों को शामिल किया गया है, परंतु भारतीय भाषाओं में अनुसंधान हो इस दिशा में कोई पहल नहीं दिखती। दुनिया के शोध और अनुसंधान के क्षेत्र में शीर्ष देशों की सूचि में शामिल जापान, दक्षिण कोरिया, जर्मनी, फ्रांस और इजरायल जैसे देश इसके उदाहरण हैं कि अपनी भाषाओं में ही उत्तम शोध कार्य संभव हैं।"[11]

निष्कर्ष :

इसप्रकार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के समक्ष चुनौतियाँ तो कई हैं पर इसमें संदेह नहीं की राष्ट्रीय शिक्षा नीति एक व्यापक रूपरेखा है जिसका उद्देश्य 21वीं सदी की मांगों को पूरा करने के लिए शिक्षा प्रणाली में क्रन्तिकारी परिवर्तन लाना है। यह नीति प्रारंभिक बाल्यवस्था से ही प्रत्येक छात्र चाहे लड़का हो या लड़की,

उनकी जन्मजात प्रतिभाओं को खोजने, उनका पोषण करने, उन्हें बढ़ावा देने और उनका विकास करने में सहयोगी साबित होगी। इसके तहत सामाजिक एवं आर्थिक रूप से वंचित समूहों पर विशेष जोर देते हुए सभी छात्र-छात्राओं को सीखने में मदद करने के लिए स्कूली शिक्षा के दायरे को व्यापक बनाया जाएगा। यह नीति उच्च शिक्षा द्वारा स्वावलंबन के लक्ष्य को सबके सामने रखती है। शिक्षण और शोध के व्यापक फलक को सभी के लिए खोलती है एवं महिलाओं के लिए भी शिक्षण की राह सुगम बनाती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 एक ऐतिहासिक पहल है जिसका उद्देश्य समाज और अर्थव्यवस्था की उभरती जरूरतों को पूरा करने के लिए भारत की शिक्षा प्रणाली को पुनर्जीवित करने का एक प्रयास है। निस्संदेह, यह प्रयास महिलाओं की शिक्षा को एक नवीन दिशा प्रदान करेगा।

संदर्भ :

1. सूद, ज्योति प्रसाद (2008-09) "पाश्चात्य राजनीतिक विचारों का इतिहास" भाग-1, के. नाथ एण्ड कं., मेरठ पृ. 46
2. नैमिशराय, मोहनदास (2022) "भारत की पहली मुस्लिम महिला अध्यापिका : क्रांतिकारी फातिमा शेख" सम्यक प्रकाशन, पृ. 20-21
3. आंबेडकर, डॉ. भीमराव, अनुवाद : राजकिशोर, (2018) "जाति का विनाश" प्रकाशक : फारवर्ड प्रेस, पृ. 40-41
4. नैमिशराय, मोहनदास (2022) "भारत की पहली मुस्लिम महिला अध्यापिका : क्रांतिकारी फातिमा शेख" सम्यक प्रकाशन, पृ. 29
5. वही : पृ. 29-30
6. नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 - यह 06 से 14 साल की उम्र के प्रत्येक बच्चे को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार देता है।
7. कोठारी, अतुल (संपादक) (2022) "राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 : भारतीयता का पुनरुत्थान", प्रभात प्रकाशन, पृ. 28
8. राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, 4.43 पृ. 29
9. कोठारी, अतुल (संपादक) (2022) "राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 : भारतीयता का पुनरुत्थान", प्रभात प्रकाशन, पृ. 139
10. राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, 6.8 पृ. 40
11. कोठारी, अतुल (संपादक) (2022) "राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 : भारतीयता का पुनरुत्थान", प्रभात प्रकाशन, पृ. 168-169

❑❑❑

वेदों का राजधर्म : वर्तमान में भी प्रासंगिक

❍ डॉ. चारू मिश्रा[1]

वेद समस्त विद्याओं का मूल उत्स है। शिक्षा, काव्य, व्याकरण, दर्शन, ज्योतिष, संगीत आदि सभी विद्याओं का उद्‌गम वेद से ही माना जाता है, क्योंकि वेद का प्रत्येक वाक्य उस सर्वज्ञ ईश्वर का वचन है तथा बुद्धिपूर्वक उक्त है। वेद वर्णित सिद्धान्त व तात्त्विक ज्ञान भी सार्वकालिक व सार्वभौम है, इसी आधार पर मानव जीवन के सभी पक्षों के लिए वेदों का महत्त्व है। वेदों में न केवल कर्मकाण्ड व यज्ञ यागों का विधानमात्र है, अपितु ब्रह्मविद्या, सृष्टिविद्या, पृथिवी, चन्द्र लोकादि भ्रमणविद्या, प्रकाश्य-प्रकाशक विद्या, गणित विद्या, योग-विद्या, नौका विमानादि विद्या, वैद्यक विद्या आदि तथा पृथिवी सूर्य चन्द्रमा आदि लोकों का अन्तरिक्ष में अपनी परिधि में घूमना तथा चन्द्रमा का कभी पृथ्वी-सूर्य के मध्य में आ जाना वेदमन्त्रों में दर्शाया गया है। इन सभी विद्याओं की चर्चा महर्षि दयानन्द व उनकी परम्परा में किये गए वेदभाष्यों में ही उपलब्ध हो पाती है। दयानन्द के बिना वर्तमान समय में वेदों की चर्चा करना अप्रासंगिक सा लगता है, क्योंकि वे ही एक मात्र ऐसे भाष्यकार हैं जिनके वेदभाष्य को पढ़कर ही वेद की कुंजी हाथ लगती है और वेद की सर्वज्ञानमयता सिद्ध होती है महर्षि दयानन्द ने राजधर्म पर गहन चिन्तन पूर्वक प्रकाश डाला है। उनके वेदभाष्य में राजधर्म के सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्व उपलब्ध होते हैं।

वैदिक चिन्तन में प्रजापालन की व्यवस्था का संचालन करने वाली नीति व नियमों का पालन कराने की प्रक्रिया को राजधर्म कहा गया। वेद की व्यापक व सार्वभौमिक सत्ता का परिचय इस बात से मिलता है कि सब जगत् का राजा एक परमेश्वर ही है और सारा संसार उसकी प्रजा है। *वयं प्रजापते प्रजा अभूम*[1] अर्थात् सभी मनुष्यों को निश्चय करके जानना चाहिए कि हम लोग परमेश्वर की प्रजा हैं और वही एक हमारा राजा है। व्यावहारिक रूप से भी वेद का स्पष्ट आदेश है कि तीन प्रकार की सभा को ही राजा मानना चाहिए एक मनुष्य को कभी नहीं[2] ये तीनों ये हैं- प्रथम राज्य प्रबन्ध के लिए आर्य राजसभा जिससे विशेष करके सभी राज्य कार्य सिद्ध हों। दूसरी आर्य विद्यासभा जिससे सभी प्रकार की विद्याओं का प्रचार होता जाए। तीसरी आर्य धर्मसभा जिससे धर्म का प्रचार और अधर्म की हानि होती रहे।[3] इन तीनों सभाओं के माध्यम से राज्य की व्यवस्था सम्यक्तया संचालित हो, इसका दायित्व राजा और प्रजा दोनों पर होता है।

---

1. असिस्टेंट प्रोफेसर (संस्कृत), डॉ. बी.आर. अम्बेडकर राजकीय स्नातकोत्तर, महिला महाविद्यालय, फतेहपुर।

शासक वर्ग सेवक, स्वामी नहीं–महर्षि दयानन्द ने वेद प्रतिपादित राजधर्म में शासक वर्ग को सम्प्रभु न मानकर प्रजा का सेवक बताया है। शासक और शासित का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है, दोनों एक–दूसरे के पूरक तथा सहयोगी हैं। ऋषि वेदमन्त्र का अर्थ करते हुए कहते हैं कि उस ईश्वर की कृपा से राजा–प्रजा अन्योन्य प्रीति से परमवीर्य और पराक्रम से निष्कण्टक चक्रवर्ती राज्य भोगें[4]। अनेक स्थलों का भाष्य करते उन्होंने राजा–प्रजा के सम्बन्ध को पिता–पुत्र के सम्बन्ध से उपमित किया है।[5] महर्षि दयानन्द ने राजा पर प्रजा का और प्रजा पर राजा का नियन्त्रण भी स्वीकार किया है। उनका अभिमत है कि यदि दोनों में से कोई भी निरंकुश होकर अधर्मयुक्त आचरण करे तो प्रजा राजा को और राजा प्रजा को दण्डित करें।[6] वेद की मान्यता है कि राजा का अस्तित्व प्रजा की अपेक्षा से है राजा प्रजा के रञ्जन (प्रसन्नता) और रक्षण आदि के लिए ही होता है।

वंशानुगत एकतन्त्रीय एवं स्वेच्छाचारी राजा का खण्डन–प्राचीन भारतीय राजनैतिक चिन्तन के उपलब्ध ऐतिहासिक ग्रन्थों में सामान्यतः वंश परम्परा और ज्येष्ठता के आधार पर ही राजत्व प्राप्ति के सिद्धान्त का प्रतिपादन प्राप्त होता है। मनुस्मृति में भी वंशानुक्रम तथा ज्येष्ठता के आधार पर राजा बनाने का संकेत प्राप्त होता है।[7] परन्तु स्वामी दयानन्द ने वेदमन्त्रों के माध्यम से इस वंशानुगत राजत्व प्राप्ति के सिद्धान्त का प्रबल प्रतिवाद किया है। ऋषि ने वेद का प्रमाण देते हुए कहा है कि हे राजन्! अपना पुत्र भी यदि बुरे लक्षणों वाला हो तो अधिकार देने योग्य नहीं है।[8] ऋषि ने एकतन्त्रीय निरकुंश एवं स्वेच्छाचारी राजत्व का खण्डन करते हुए बताया कि जहाँ एक मनुष्य राजा होता है, वहाँ प्रजा ठगी जाती है–जैसे पशु पराए खेत में यवों को खाकर प्रसन्न होते हैं। वैसे ही स्वतन्त्र एक पुरुष राजा होने से प्रजा के उत्तम पदार्थों को ग्रहण कर लेता है।[9] ऋषि ने ऐतरेय ब्राह्मण का प्रमाण देते हुए कहा कि जो क्षेत्र अर्थात् राज्य परमेश्वर अधीन और विद्वानों के प्रबन्ध में होता है, वह सब सुख कारक पदार्थ और वीर पुरुषों से अत्यन्त प्रकाशित होता है।[10] वैदिक साहित्य में राज्य संचालन की नियमावली को राजधर्म नाम दिया जाना एवं सर्वोपरि राजा परमेश्वर को मानना भी किसी एक व्यक्ति के राजत्व को अस्वीकार करने का प्रमाण है। ऋषि कहते हैं कि प्रजा तथा सभी सभासद् सब राजाओं के राजा परमेश्वर को जान के सब सभाओं में सभाध्यक्ष का अभिषेक करें।[11]

राज्य का सावयव सिद्धान्त–ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों एवं वेदभाष्यों में राज्य के विभिन्न अङ्गों एवं उपाङ्गों के मध्य सहयोग, सामञ्जस्य एवं समरसता स्थापित करने के लिए सावयव सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। यजुर्वेद के बीसवें अध्याय के कतिपय मन्त्रों की व्याख्या में ऋषि ने लिखा है सभाध्यक्ष, सभासद् और प्रजा को ऐसा निश्चय करना चाहिए कि मेरी शोभा और धन मेरी शिरस्थानी सत्कीर्ति, मेरा मुखस्थानी न्याय के प्रकाश के समान, तथा सत्यगुणों का प्रकाश मेरे केश और दाढ़ी मूंछ के समान तथा जो ईश्वर सब का आधार और जीवन हेतु है, वही प्राणप्रिय मेरा राजा है। वही अच्छे प्रकार प्रकाशमान नेत्र, विविध शास्त्र – श्रवणयुक्त कान है, ऐसा तुम लोग जानो।[12] वेदवर्णित राजा प्रजा के कल्याण हेतु अपने अङ्गों का वर्णन करता है–मेरा बल और धन भुजारूप, मेरा कर्म और पराक्रम हाथ रूप मेरा स्वरूप (उर) हृदय अति दुःख से प्रजा की रक्षा करने हारा हो।[13] राजा यहाँ तक कहता है कि मेरा राज्य (पृष्ठ) पीठ (उदरम्) पेट (असौ) कन्धे (ग्रीवा) कण्ठ प्रदेश (उरू) जंघा (अरत्नी) भुजाओं का मध्य प्रदेश और (जानुनी) टाँगो का मध्य प्रदेश तथा सब ओर से राज्य ही है और मेरे प्रजाजन मेरे अङ्ग हैं।[14] राजा का अपने राज्य व प्रजा के साथ इतना आत्मीय सम्बन्ध वेद प्रतिपादित है। महर्षि दयानन्द ने वेदमन्त्रों के माध्यम से शरीर के विभिन्न अङ्गों उपाङ्गों से राज्य के अङ्गों, उद्देश्यों आदि को उपमित कर उनमें एकता, सहयोग, समन्वय तथा सन्तुलन स्थापित करने का स्तुत्य प्रयास किया है।

राजा की आवश्यकता–वेद में राज्य संचालन का दायित्व सभाओं के अधीन है। तीनों सभाओं के मध्य समन्वय व सन्तुलन हेतु एक सभाध्यक्ष की नितान्त आवश्यकता है। जिस प्रकार नक्षत्रों में राजा चन्द्रमा बनकर कमनीय शोभा को प्राप्त होता है, उसी प्रकार प्रजाएँ अपनी शक्ति से सभी को अनुकम्पित कर देने वाले पुरुष

को अपना राजा बना लेती हैं।

राजा के गुण– राजा के गुणों पर विचार करने से पहले यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि इन्द्र शब्द से राजा के गुणों को स्पष्ट किया गया है। महर्षि दयानन्द ने यजुर्वेदभाष्य में इन्द्र शब्द का अर्थ सभापति किया है।[15] सायणाचार्य ने भी इन्द्र को राजा के रूप में स्वीकार किया है। इन्द्र शब्द से राजा के उत्तम गुणों का वर्णन वेद में अनेक स्थलों पर उपलब्ध होता है।

राजा के सम्पूर्ण गुणों को यदि हम एक वाक्य में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि प्रजा को पूर्ण विश्वसनीय आश्रय दे सकना ही सबसे महान् गुण है।[16] इस गुण से युक्त सुयोग्य राजा में किस प्रकार के गुणों का समावेश हो, उसमें क्या–क्या योग्यताएँ हों, जिससे राज्य के संचालन तथा राज्य के विकास में वह सफल हो सके, इस विषय का प्रस्तुतीकरण वेद में स्पष्ट रूप से किया गया है।

विद्वान्– उसी को राजा चुना जाना चाहिए जो विद्वानों में परम विद्वान, सभी के प्रति मैत्रीभाव रखने वाला, उत्तम गुण कर्म स्वभावों से युक्त सबको बसाने वाला (वसु) और राष्ट्र यज्ञ को सुचारु रूप से चलाने वाला हो, ऐसे ही राजा के राज्य में प्रजाएँ सुखी रहती हैं।[17]

सम्पन्न एवं प्रजारक्षक– राजा बनने का अधिकारी व्यक्ति दीन–हीन नहीं हो, अपितु वह सम्पन्न हो, यह सम्पन्नता धन व विद्या की है, दुष्टों का संहार करने की क्षमता भी हो । राज्य के समस्त प्राणियों को अन्नादि प्रदान करने वाला मनुष्यों में ज्येष्ठ प्रजारक्षक, तेजस्वी, सूर्य के समान शत्रुओं को पराजित करने वाला व्यक्ति ही प्रजा द्वारा चुनने योग्य होता है।[18]

महान् एवं बलवान्– प्रजाओं में अत्यन्त महान् बलियों में सर्वाधिक बली, धन का दानी, शत्रुओं को पराजित करने वाला, एक छत्र राज्य कर सकने की क्षमता वाला व्यक्ति ही राजा बनाया जाना श्रेयस्कर होता है।19 यहाँ शत्रुओं को पराजित करने से अभिप्राय बाह्य एवं आन्तरिक शत्रुओं (दुष्टों) को नष्ट करने से है, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह बात अत्यन्त विचारणीय है कि हमारा राष्ट्र आतंकवाद से त्रस्त है, नित्य ही नये–नये आतंकवादी संगठन सिर उठा रहे हैं, भोली–भाली जनता को अपना निशाना बनाते हैं, ऐसी घटनाएँ करने वाले आतंकवादी पकड़े भी जाते हैं तो भारतीय कानून की लचीली धाराओं के कारण छूट जाते हैं। वेद कहता है कि जहाँ राज्य का दायित्व प्रजा की रक्षा करना है, वही दुष्टों का सर्वनाश अधिक आवश्यक है।

न्यायविद् व चरित्रवान्– राजा सुष्ठु प्रकार से न्याय की पालना करने वाला, अपनी रक्षण क्रियाओं से सामान्य प्रजा का रक्षक, अत्यन्त सम्पन्न लोगों की भी रक्षा करने वाला तथा शत्रुओं (दुष्टों) को दृढ़तापूर्वक नष्ट करने वाला व्यक्ति ही राजा बनने का अधिकारी होता है।[20]

इन गुणों के अतिरिक्त भी क्रान्तदर्शी राष्ट्रवर्धक व वज्रधारी एवं अपराजेय आदि गुणों का विशद वर्णन वेद में उपलब्ध होता हैं ।

राजा के कर्त्तव्य– उपर्युक्त गुणों से युक्त राजा का चयन जब प्रजा करती है तो निश्चित है कि राजा ऐसे कार्य करे जिससे प्रजा का भला हो, प्रजा की भलाई के लिए राजा को क्या–क्या कार्य करने चाहिए, प्रजा के प्रति वह अपने कर्त्तव्यों का कैसे पालन करे, इस विषय में वेद की स्पष्ट अवधारणा है – वह राजा चारों वर्णों को यथायोग्य कार्य में प्रवृत्त करे।[21] प्रजा के जन–धन की रक्षा करे,[22] दुष्टों को दण्ड दे,[23] प्रजाजनों की प्रार्थनाओं को सुने,[24] विद्या आदि के लिए योग्य व्यक्तियों को नियुक्त करे,[25] राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार करे,[26] शिक्षा की सभी के लिए समुचित व समान व्यवस्था करे, चिकित्सा व्यवस्था उत्तम हो अपंगों का भरण पोषण हो, आवश्यकता पड़ने पर प्रजा की आर्थिक सहायता भी करे।

राजा का निर्वाचन–राजधर्म में यह अहम् प्रश्न है कि जो राजा राज्य–व्यवस्था का स्तम्भ है, उसका चयन किस आधार पर हो? राजा का चुनाव वंश परम्परा के आधार पर करने के विषय में वेद मौन है। प्रजा में से

ही किसी सुयोग्य व्यक्ति को राजा चुनना चाहिए, इसका संकेत वेद में एकाधिक स्थानों पर उपलब्ध होता है। जो कोई व्यक्ति राजा सभाध्यक्ष होने के योग्य हो, उसका हम लोग अभिषेक करें।[27] अब ईश्वर सब मनुष्यों को राजव्यवस्था के विषय में आज्ञा देता है कि हे विद्वान् लोगो ! तुम इस राजधर्म को यथावत् जानकर अपने राज्य का ऐसा प्रबन्ध करो कि जिससे तुम्हारे देश पर कोई शत्रु आक्रमण न कर सके। राजपद के प्रत्याशी होने के लिए यह आवश्यक है कि वह उसी क्षेत्र या देश का रहने वाला हो, अथर्ववेद का 'अन्तर्भू' शब्द इसका पुष्ट प्रमाण है।[28] ऐसा भी प्रतीत होता है कि राजा पद के एकाधिक प्रत्याशी होते थे। वेद के अनुसार चयन की दो पद्धतियाँ दृष्टिगत होती हैं- प्रथम तो वह जिससे सम्पूर्ण प्रजाएँ प्रत्यक्ष रूप से राजा का चयन करती हैं।[29] दूसरी पद्धति वह है जिसमें कुछ निश्चित लोग ही राजा का चयन करते हैं। इनमें से कुछ लोग इसी कारणों से राजकृत कहे जाते है, कुछ मुखिया होते हैं, कुछ सूत शब्द से सम्बोधित किए जाते हैं।[30] ये सभी गुप्त रूप से मतपत्रों द्वारा राजा का चयन करते हैं। अन्यत्र भी अनेक स्थलों पर प्रजा के द्वारा राजा के वरण का वर्णन प्राप्त होता है31 राजा को वरण किये जाने के कारण वरुण भी कह दिया गया है। विशिष्ट विद्वद्गण एक सुयोग्य व्यक्ति को राज्य पद पर अभिषिक्त करते हैं। जिन्हें वसु रुद्र और आदित्य कहा गया है।

सबसे श्रेष्ठ स्थान पर चुने जाने पर अग्रगण्य होने पर भी यह जनता का प्रथम सेवक है, जनता की सेवा पर ही उसकी स्थिति निर्भर है, वह प्रजा की इच्छाओं के पीछे चलने वाला है।[32] एक स्पष्ट तथ्य और वेदों में आया कि राजा को कभी भी स्वतन्त्र नहीं रहने देना चाहिए। शतपथ ब्राह्मण का मत है कि यदि राजा प्रजा के नियन्त्रण में नहीं होगा तो वह प्रजा को नष्ट कर देगा। राजा ही नहीं उसकी सेना और सभा में जो पुरुष हों ये सब दुष्टों पर तेजधारी व श्रेष्ठों पर शान्तिरूप सुख-दु:ख को सहन करने वाले और धन के लिए अत्यन्त पुरुषार्थी हों।[33] ऋषि दयानन्द ने मनुस्मृति का प्रमाण देते हुए कहा है कि राजा और राजसभा के सभासद् तब हो सकते है कि जब वे चारों वेदों की कर्मोपासना, ज्ञान तथा विद्याओं के जानने वालों से तीनों विद्या- सनातन दण्डनीति, न्यायविद्या, आत्मविद्या अर्थात् परमात्मा के गुण-कर्म-स्वभाव रूप को यथावत् जानने के ब्रह्म विद्या और लोक से वार्ताओं का आरम्भ (कहना और पूछना) सीखकर सभासद् व सभापति हो सकें।[34]

वैदिक राजधर्म में अन्य सभी विषयों यथा- सभा समिति का गठन, मन्त्रिपरिषद् का गठन एवं उनके अधिकार, मन्त्रियों के गुण, योग्यता एवं कर्त्तव्य, शासन-प्रणाली, न्याय एवं दण्ड - विधान, राष्ट्र की सुरक्षा के आयाम-दूत व्यवस्था, गुप्तचरव्यवस्था, सैन्यव्यवस्था, दुर्गप्रकार, शस्त्रास्त्र, युद्ध और शान्ति के उपाय, सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव, समाश्रय आदि षड्गुण एवं राज्य की अर्थव्यवस्था के आयाम-कृषि वानिकी, पशुपालन, गोपालन, अश्वपालन अन्य पशुओं का पालन, उद्योग-धन्धे, व्यापार, करव्यवस्था आदि सभी विषयों पर पर्याप्त चर्चा उपलब्ध होती है।

राजधर्म का प्रधान स्तम्भ केवल राजा या राज्य संचालन में प्रवृत्त सत्तापक्ष ही नहीं, अपितु प्रजा भी राजधर्म का प्रमुख स्तम्भ है, इस पक्ष को भी वेद ने स्पष्ट किया है और प्रजा के कर्तव्य आदि पर विचार उपलब्ध होते हैं-प्रजा में पाँच प्रकार के व्यक्ति होते थे- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद या अतिशूद्र । इन्द्र इन पाँचों जनों का राजा होता था।35 स्वावलम्बन वाली प्रजा सुखी और प्रसन्न रहती है। प्रजा तपस्वी हो और राष्ट्र हितकारी नियमों को पालन करे।36 प्रजा का कर्त्तव्य है कि वह सभा, समिति, सेना और सुरा अर्थात् कोश को उन्नत करे। ये चारों तत्त्व प्रजा के सहयोगी कहे गये हैं । प्रजा यशस्वी होनी चाहिए उसमें कोई भी व्यक्ति अकीर्ति या अपयश वाला न हो।37 प्रजा और राजा का परस्पर सम्बन्ध भी राष्ट्र के यश को बढ़ाने वाला होता है, यजुर्वेद में कहा गया है कि प्रजा में ही राजा प्रतिष्ठित हैं और राजा की कीर्ति प्रजा के हित पर निर्भर है।38

शासन प्रणाली- वेद में तीन प्रकार के शासन का उल्लेख है-विराट्, स्वराट् और सम्राट।[39] विराट् में जनता सर्वसम्मति या बहुसम्मति से अपना निर्णय करती है, जो सामूहिक निर्णय होता है, यह सबको मान्य होता है।

वर्तमान में पंचायत राजव्यवस्था विराट् व्यवस्था के तुल्य दृष्टिगत होती है। स्वराट् में केन्द्रीय शासन होता है, जनता के प्रतिनिधि सभा और समितियों में जाते हैं, केन्द्रीय सभा और समितियों में वे राज्य सम्बन्धी नियमों को बनाते हैं। वे नियम सारे राज्य के लिए होते हैं। ऋग्वेद में ऐसे राज्य के लिए 'बहुपाटय' शब्द आया है।[40] सम्राट् प्रणाली में छोटे-छोटे माण्डलिक शासक होते हैं, उनके ऊपर सम्राट् होता है । इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण में नौ प्रकार की शासन प्रणालियाँ है।[41] राज्य शासन की अन्य विधियाँ भी वेद में उपलब्ध होती हैं-जनराज्य, विप्रराज्य, समर्यराज्य, अधिराज्य आदि। इस प्रकार वेद की मान्यता है कि किसी भी राष्ट्र की उन्नति के लिए वहाँ की राज्यव्यवस्था का सुचारु रूप से संचालन आवश्यक होता है। साथ ही राष्ट्र की इकाई के रूप में व्यक्ति के अन्तःकरण का शोधन आवश्यक है। वैदिक साहित्य में राष्ट्र से सम्बन्धित विशद वर्णन उपलब्ध होता है। अथर्ववेद के बारहवें काण्ड के प्रथम सूक्त भूमिसूक्त में बताया गया है कि यदि किसी देश या राष्ट्र के लोग चाहते हैं कि उनका राष्ट्र दिन-दूनी रात चौगुनी उन्नति करता चला जाये तो उस राष्ट्र के निवासियों को राज्याधिकारियों को अपनी मातृभूमि के प्रति समर्पण व श्रद्धा का भाव रखते हुए अपने कार्य करने चाहिए ।

वेद वर्णित राजधर्म वर्तमान में भी राष्ट्र को उन्नति के मार्ग पर ले जा सकता है, परन्तु उसके लिए सर्वप्रथम सामाजिक जागृति की अत्यन्त आवश्यकता है। प्रत्येक नागरिक अपने हृदय में राष्ट्र को प्रमुख स्थान पर प्रतिष्ठित करे। वेद प्रतिपादित राष्ट्र को धारण करने वाले सात तत्त्व बृहत्-सत्य, बृहत्-ऋत, क्षत्रशक्ति, दीक्षा, तप, ब्रह्मशक्ति और यज्ञ सदैव राष्ट्रवासियों को स्मरण रखने चाहिए[42] तथा अपने अन्दर इन सात गुणों का आधान कर राष्ट्रोन्नति हेतु राष्ट्रयज्ञ में अपनी आहुति देनी चाहिए। राज्यव्यवस्था का दायित्व निभाने वालों की योजना में दो बातें मुख्य रूप से समाहित होनी चाहिये, प्रथम दुष्टों का संहार द्वितीय श्रेष्ठों का उपकार। ब्रह्म व क्षत्र शक्ति, विचार व कर्म, राज व धर्म सदैव साथ-साथ चलने चाहिए, तभी राजधर्म का पालन संभव है।

सन्दर्भ :

1. यजु. 18.29
2. त्रीणि राजाना विदथे' पुरूणि परि विश्वानि, भूषथः सदांसि। अपश्यमत्र मनसा जगन्वान् व्रते गन्धर्वा अपि वायुकेशान्।। श्र. 3.38.6
3. ऋ. भाष्यभूमिका, राजप्रजाधर्म विषय।
4. यजुर्वेद 36-11
5. ऋ. भाष्य 1.31.11, 14, 1.36.10, 1.80.4 यजु. 7.45, 9.23, 10-30
6. यजु. भाष्य 8.23
7. मनुस्मृति 9.323
8. ऋ. भाष्य 4.19.9
9. ऋ. भाष्यभूमिका पृ. 362, 363, 368
10. ऋ. भा. भू. - राज प्रजाधर्म विषय ।
11. तं सभा च समितिश्च सेना च.-11 अथर्व का. 15. अनु. 2. ब. 9. मन्त्र 02
12. यजु. 20.5
13. बाहू मे बलमिन्द्रियं हस्तौ मे कर्मवीर्यम् । आत्मा क्षत्रमुरो मम । यजु. 20-7
14. यजु. 20.8
15. यजु. भाष्य 3.51
16.. यजु. 6.26
17. देवो देवानामसि मित्रो अद्‌भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे । शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।। ऋ. 1.94.13

18. ऋ. 3.21.11
19. महाँ असि महिष वृष्ण्येभिर्धनस्पृदुग्र सहमानो अन्यान् । एको विश्वस्य भुवनस्य राजा स योधया च क्षयया च जनान्। ऋ. 3.46.2
20. रक्षा णो अग्ने तव रक्षणेभी रारक्षाण: सुमख प्रीणान: । प्रतिष्फुर विरुज वीड्वहो जहि रक्षो महि चिद्वावृधानम्। ऋ. 4.3.14
21. ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रम् । यजु. 30.5
22. यजु. 16.16
23. यजु. 30.5, 11.77
24. यजु. 33-15
25. यजु. 9-27
26. विशं विशं युद्धाय सं शिशाधि । अथर्व. 4.31.4
27. ऋ. भाष्यभूमिका, राजप्रजाधर्म विषय।
28, अथर्व. 6.87.1
29. अथर्व. 3.4.2
30. ये राजानो राजकृत: सूता ग्रामण्यश्च ये । उपस्तीन्पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् । अथर्व. 3.5.7
31. विशो न राजानं वृणाना । ऋ. 10.124.8
32. सविशोऽनुव्यचलत् । अथर्व. 15.9.1
33. ऋ. भाष्यभूमिका पृ. 239
34. सत्यार्थप्रकाश षष्ठ समुल्लास।
35. अथर्व. 20-60-15
36. अथर्व. 13-1-10
37. अथर्व. 15-9-12, अथर्व 01 - 20-1
38. यजु. 20 - 9
39. अथर्व. 17-1-22
40. ऋ. 5-66-6
41. ऐतरेय ब्राह्मण 8-15
42. अथर्व. 12.1

❑❑❑

मिथिला पुनर्जागरण के एकांत साधक : पंडित रामनंदन मिश्र

❍ सत्यनारायण प्रसाद यादव[1]
❍ प्रो. अशोक कुमार मेहता[2]

संक्षिप्ति :

असहयोग आन्दोलन को स्थगित करने के बाद महात्मा गांधी पर्दा प्रथा से मुक्ति दिलाकर स्त्रियों का उत्थान, तथाकथित हरिजनों का उत्कर्ष, खादी वस्त्रों का प्रचार-प्रसार जैसे रचनात्मक अभियानों में लगे हुए थे। संयोग से सन् 1926 में गांधी जी का पर्दा विरोधी आन्दोलन के क्रम में दरभंगा आगमन हुआ। यहाँ सभा को संबोधित करते हुए उन्होंने देखा कि सभा में महिलाएं आयी तो हैं लेकिन उनकी बैठने की जगह को एक पर्दे से घेर दिया गया है। पर्दा प्रथा का यह वीभत्स रूप उनके आत्मा को झकझोर दिया। गांधी जी के सान्निध्य में रहे नौजवान पंडित रामनंदन मिश्र भी इस संबोधन को सुन रहे थे। दरभंगा से लौटने के बाद गांधीजी ने पर्दा प्रथा के विरोध में एक लम्बा आलेख छापा। इसे पढ़ने के बाद रामनंदन ने गांधी को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने जिक्र किया कि वे इस प्रथा के खिलाफ अपनी पत्नी राजकिशोरी के साथ ही प्रयोग करना चाहता है। गांधीजी की सहमति के बाद अपनी अशिक्षित पत्नी को शिक्षा दिलवाने तथा पर्दा के खिलाफ घर की चौखट लांघने के लिए उन्हें सब की नजरों से चुराकर साबरमती आश्रम ले जाता है। काम-चलाऊ अक्षरज्ञान की प्राप्ति के बाद जब वे दरभंगा लौटते हैं तो इस दम्पति को यहाँ अपार संघर्ष एवं प्रताड़नाओं का सामना करना पड़ा। मिथिला के बंदिश समाज के मध्य उन्होंने मगन-आश्रम की स्थापना की तथा स्त्रियों की शिक्षा के लिए कई विद्यापीठ भी बनवाए। गांधीजी के मार्गदर्शन एवं उन्हीं से प्रेरित होकर रामनंदन ने समाज तथा राष्ट्र के उत्थान के लिए सम्पूर्ण सुख-सुविधाओं का त्याग किया तथा परिवार से विद्रोह करके अत्यन्त त्रासदीपूर्ण जीवन बिताया। इस दौरान उन्होंने अनेक यातनाएं एवं दमन सहते हुए देश के स्वतंत्रता संग्राम में अपनी अहम भूमिका का निर्वहन किया। मगर स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ ही वर्षों के बाद सत्तालोलुप गांधीवादी, समाजवादी तथा यहाँ के समाज द्वारा इस दृढ़ निश्चयी साधक के साथ जो व्यवहार किया गया, उससे फिर दुबारा उन्होंने मृत्युपर्यंत राजनीति की तरफ मुँह उठाकर नहीं देखा। अपने शेष जीवन को वे पठन-पाठन-लेखन तथा आध्यात्मिक साधना में लगाते हुए यहाँ से सदा के लिए विदा हो गए।

---

1. वरीय शोध-प्रज्ञ, विश्वविद्यालय मैथिली विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा, संपर्क - 9599303002

2. शोध पर्यवेक्षक, प्राचार्य, वि. मैथिली विभाग, ल. ना. मि. वि., दरभंगा।

बीज शब्द : अखाड़ा, सामाजिक रूढ़िवाद, पर्दा-प्रथा, मगन-आश्रम, हथियार बंद दस्ता, पगडंडी।

"अपने रैयतों की शिक्षा, गरीबी और बीमारी का कुछ यत्न किये बिना उनके रूपये आडम्बरित धर्म के ईटों और पत्थरों में लगाना मुझे कतई उचित नहीं लगा। मुझे स्पष्ट मालूम पड़ रहा है कि ये समाज मुझ पर अनावश्यक बंधन लादना चाहता है। सबसे पहले मेरे इस सिद्धांत पर कि सभी मनुष्य समान हैं चाहे वो गरीब हो या अमीर। मैं चाहता था कि मैं सभी जाति और सभी तरह के लोगों से मिलूँ पर मुझे रोका गया। किसी से मिलूँ तो उसमें भी पाप लगता है, ये कोई धर्म नहीं कहता। ये सभी झूठी-मर्यादाएं तथा धन के अभिमान को ढोना मात्र है। मैं समाज के इस नियम को हरगिज नहीं मान सकता। मैंने देखा कि कितनी मजबूत बेड़ी मेरे पैरों में बांधी गई।"[1] अपने पिता को पत्र लिखते हुए एक बालक जब होश संभालता है तो उन्हें ये समझ आता है कि देश तो परतंत्रता की बेड़ी में जकड़ी हुयी है ही, मेरा समाज भी कई तरह की मकड़जालों में उलझी है। वैसे तो भारत का अधिकांश प्रांत पिछड़ा हुआ है मगर बिहार का उत्तरी भूभाग अर्थात् मिथिला तो खासकर रूढ़िवाद और कट्टरपंथियों का अखाड़ा बना हुआ है। जिसके केन्द्र में है जातीय-विभेद एवं स्त्री की पराधीनता। यहाँ प्रत्येक कदम पर एक अलग नैरेटिव सेट है। उन्हें महसूस हुआ कि यहाँ समाज की बाहरी मापदण्ड कुछ है एवं घर, समाज तथा गांव की मापदण्ड कुछ और। वो बालक अब क्रांति चाहता है, परिवर्त्तन चाहता है। परिवर्त्तन में भी सामाजिक परिवर्त्तन, व्यावहारिक परिवर्त्तन। वे सिद्धांत और व्यवहार में साम्यता चाहता है। और ये सब जब नहीं हुआ तो वह बालक विद्रोही बन जाता है। पिता से विद्रोह, घर-परिवार से विद्रोह, समाज से विद्रोह तथा अंत में निष्कासित।

"क्रांति और सामाजिक परिवर्त्तन कभी एकांगी नहीं होता है ठीक वैसे ही जैसे मस्तिष्क में कोई रैक नहीं होता जिसके एक तखे में हम राजनीतिक क्रांति की भावना संजोयें तथा दूसरे तखे में सामाजिक रूढ़िवाद। क्रांतिकारी विचार जब फैलता है तब वह सम्पूर्ण विचारधारा को प्रभावित करता है। और ऐसा अगर नहीं हुआ तब मानना चाहिए कि क्रांति की धारणा अभी पूर्ण नहीं हुई है।"[2] जैसी स्पष्ट भावनाओं से संपृक्त व्यक्तित्व थे, रामनंदन मिश्र।

रामनंदन मिश्र का जन्म बिहार के दरभंगा जिलान्तर्गत हायाघाट प्रखंड के पतोर नामक रघुनाथपुर ड्योढ़ी में 16 जनवरी 1906 ई. को हुआ था। पिता राजेन्द्र प्रसाद मिश्र अपने इलाका के एक बड़े जमींदार तथा नामचीन हस्तियों में थे। रामनंदन की आरम्भिक पढ़ाई गांव में ही शुरू हुई तथा बड़े होने पर अपने अग्रज जानकी रमण मिश्र के साथ पटना आ गये जहाँ इनके मामा वैद्यनाथ सिंह रहते थे। जो उस समय के प्रख्यात वकील एवं कांग्रेसी नेता थे। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद से वैद्यनाथ नारायण सिंह की गहरी मित्रता थी। इनके मामा के निवास पर तत्कालीन कांग्रेसी नेताओं का जमघट लगा रहता था। महात्मा गांधी भी यदा-कदा यहाँ आते रहते थे। वार्त्तालाप के मध्य मौका मिलते ही बालक रामनंदन गांधी जी के पास चला जाता था। माना जाता है कि महापुरुषों के सान्निध्यों में बैठने-बतियाने का उच्च संस्कार इन्हें यहीं से मिला था। रामनंदन की बहन का विवाह काशी नरेश के यहाँ हुई थी। सुविधाओं को देखते हुए रामनंदन को आगे की पढ़ाई के लिए बनारस भेजा गया। काशी विद्यापीठ से संस्कृत में श्शास्त्रीश की पढ़ाई पूर्ण किए इसीलिए अकादमी तौर पर इनके नाम में श्पंडितश जुड़ गया। इस समय बड़े घरों तथा जमींदार लोगों के बच्चों में विदेश जाकर पढ़ने की होड़ लगी हुई थी। बैरिस्टरी की पढ़ाई के प्रति समाज में एक अलग ही आकर्षण था। रामनंदन को भी इस पढ़ाई हेतु विदेश भेजने की तैयारी चल रही थी। ईधर छात्र रामनंदन का मन विदेश जाने की बातों से अशांत रहने लगा था। संयोगवश इसी मध्य बनारस में पुनः इन्हें गांधी जी से भेंट होने का अवसर लगा। माना जाता है कि गांधी जी के इस मुलाकात के बाद ही रामनंदन के विदेश जाने की योजना टल गई थी।

रामनंदन मिश्र के जीवन में सदभावना और सदविचार बाल्यावस्था से ही पनप रहा था। कई ऐसी घटनाएं हुई जहाँ रामनंदन खुद को रोक लिए मगर टर्निंग प्वाइंट आया राजकिशोरी से इनके विवाह के बाद। पत्नी

राजकिशोरी एक बड़े घर की तो थी मुदा थी अशिक्षित। जिस सहयोग की अपेक्षा युवा रामनंदन को था वो सब करने में राजकिशोरी असमर्थ थी। कारण था तत्कालीन समय में प्रचलित पर्दा प्रथा, जातीय-विभेद एवं स्त्री शिक्षा के प्रति उदासीनता। संयोग से गांधी जी 1926 ई. में एक सभा को संबोधित करने दरभंगा आए। सभा को संबोधित करते हुए उन्हें यहाँ पर्दा प्रथा का वीभत्स रूप नजर आया। दरभंगा से लौटने के बाद उन्होंने पर्दा प्रथा के विरोध में श्यंग-इंडियाश में एक बड़ा सा आर्टिकल लिखा। ईधर रामनंदन इन सभी व्यथाओं को झेल रहे थे। गांधी की इस लेख के बाद रामनंदन अपने गांव में कुछ मित्रों के संग इन्हीं बातों को लेकर चर्चा कर रहे थे कि इस पर्दा के खिलाफ हमें क्या करना चाहिए? इस संबंध में रामनंदन बापू को एक विस्तृत पत्र लिखा। ये खबर रामनंदन के पिता तक पहुँचा। घर का वातावरण बदल गया। परिवार में तनाव आरम्भ हो गया। रामनंदन अपन पत्नी राजकिशोरी को पढ़ाकर, पढ़ने के लिए घर की चौखट से बाहर निकालकर इस पर्दा को तोड़ने का आरम्भ करना चाहते थे। घर में तनाव इतना बढ़ गया कि गांधी जी को आकर मोर्चा संभालना पड़ा। निर्णय हुआ कि राजकिशोरी फिलहाल जहाँ हैं वहीं रहे। गांधी जी आश्रम से कोई योग्य महिला को इन्हें पढ़ाने हेतु भेजेंगे। सरदार वल्लभ भाई पटेल की पुत्री मणिबेन पटेल की नाम का निर्धारण हुआ मगर किसी कारणवश वे नहीं आ सकी। इसके बाद गांधी राधाबाई और दुर्गाबाई को भेजने का आश्वासन दिया। तब तक रामनंदन के पिता अपने पुतोहु राजकिशोरी को उनके नैहर गया जिला के मंझवा भेज दिये थे। राधाबाई तथा दुर्गाबाई वहीं पहुंची। राजकिशोरी की पढ़ाई आरम्भ हुई मगर कुछ ही दिनों के बाद एक अप्रत्याशित घटना घटी। अपनी पुत्री राधाबाई से भेंट करने मंझवा पहुँचे मगनलाल की तबीयत अचानक खराब हो गई तथा यहीं उनकी मृत्यु हो गई। रामनंदन का मन आशंका से भर गया। उन्हें अपना मिशन असफल होता हुआ प्रतीत हो रहा था। मगर वे ठान लिए कि अब पर्दा के खिलाफ आंदोलन को और तेज करना पड़ेगा। पिता की मृत्यु के बाद राधाबाई वापस आश्रम लौट गई। गांधी जी राजकिशोरी को भी आश्रम ही बुलाये मगर वहाँ जाना राजकिशोरी के लिए इतना आसान नहीं था। रामनंदन को कुछ सूझ नहीं रहा था। रात के अंधेरे में अपनी पत्नी को छुपकर नैहर से निकाले। उस समय तक राजकिशोरी एक बच्चे की मॉ बन गई थी। चौदह मास के पुत्र विजय को लेकर उस रात के अंधेरे में अपने मायके से निकलकर पटना पहॅुची। अनुग्रह नारायण सिंह की मदद से ये साबरमती आश्रम पहुँचे।

युवा रामनंदन अपनी प्रतिज्ञा पर अडिग थे। अपने संकल्प के प्रति प्रतिबद्धता को इनके ससुर त्रिवेणी सिंह की इस संवाद से समझा जा सकता है। षामनंदन बाबू! संसार में कोई विद्वान, कोई धनी तो कोई सुखी होना चाहता है। मगर आप, आप मात्र देश-समाज की सेवा करना चाहते हैं। इसमें भी अगर आप सफल नहीं हुए और मेरी बेटी अगर आपकी साथ नहीं दी तो आपका भी और इसका भी, दोनों का जीवन व्यर्थ हो जाएगा। आप हमारी बेटी के लिए जो उचित समझें, वही कीजिए।ष 3 ये सब बातें वर्ष 1926 की है। इस घटना का संबंध उस परिवार से है जो अपनी बहू को पढ़ाना ही नहीं चाहता, मगर उसका पति अपनी अशिक्षित पत्नी को पढ़ाई के माध्यम से पर्दा तोड़ने हेतु सभी की नजरों से बचाकर उनके नैहर से आश्रम लेकर जाता है। रामनंदन की जीवन में असली मोड़ यहीं से आया। फिर तो इस घटना के बाद इनके जीवन में संघर्ष की नव कथाएं आरम्भ हुई। रामनंदन के निजी जीवन में दुख अत्यन्त विस्तार पाया मगर अपने संकल्प और कर्त्तव्य से बंधा रामनंदन कभी पलटकर नहीं देखे। वे दुख और संघर्ष को सहते आगे बढते गए। राजकिशोरी अपने पुत्र को लेकर साबरमती पहॅुची, रामनंदन भी साथ थे। गांधी जी जीवन का पाठ एक पंक्ति में समझा दिए। ष्घर से विद्रोही हो गये हो इसीलिए स्मरण रहे विद्रोही पुत्र को पिता के धन का कोई आस नहीं रखना चाहिए।ष रामनंदन गांधी जी के इस बात को गांठ बांध कर मान लिए। कुछ वर्षों के बाद वे पत्नी तथा पुत्र के साथ दरभंगा लौटे। दरभंगा के एक गांव में वे झोपड़ी बनाकर रहने लगे। घर-परिवार से कोई मदद नहीं और रामनंदन को इसकी कोई आस भी नहीं थी। करीब छह मास नमक-भात आदि खाते निकल गया। रामनंदन लकड़ी काटते, राजकिशोरी किसी तरह खाना पकाती। रामनंदन दिन भर कंधो पर खादी लेकर गांव-गांव जाकर बेचते। वे इस प्रकार तिरस्कृत और

बहिष्कृत कर दिए गये थे कि कुछ दिनों तक गांव की कुँओं पर भी पानी नहीं भर सकते थे। दूर हरिजनों की बस्ती से रामनंदन पानी भरकर लाते थे। ध्यातव्य, स्वंय हरिजन लोग भी इन्हें अछूत मानते थे। वे लोग भी इनका छूआ खाना नहीं पसंद नहीं करते थे मगर रामनंदन ये सब सहते हुए अपने कर्म में लगे रहे। नौजवान रामनंदन का मन परिवर्त्तन के जिद में मग्न रहता था।

पर्दा की प्रासंगिकता पर भारतीय समाज उस समय भी पूर्ववत मान्यताओं के साथ ही जी रहा था। आधुनिक युग में ये एक अभिशाप के जैसा था। महिलाओं के पिछड़ापन का प्रमुख जिम्मेदार यही प्रथा था। रामनंदन और उनके पिता के मध्य हुए पत्राचार के माध्यम से उस समय की मान्यता तथा रामनंदन की मनोभाव को अच्छे से आंका जा सकता है। "पर्दा-प्रथा किसी धर्म का अंग नहीं है। मैं व्याभिचारिणी बनाने के लिए पर्दा को नहीं तोड़ रहा हूँ मगर इसका भय आप मुझे दिखाते है। सभी कार्यों में एक भय रहता ही है। घर में सोने के समय चोरों का भय रहता है मगर इससे क्या लोग घर में सोना छोड़ देते हैं? नाव पर डूबने का डर रहता है, तब भी लोग नाव पर चढ़ते ही हैं। ये कहना कि जो चढ़ते हैं वे सभी डूब ही जाएंगे, गलत है। वैसे ही ये कहना कि व्याभिचारिणी बनाने के लिए मैं पत्नी को ले जा रहा हूँ, गलत है। मेरा उद्देश्य अगर अच्छा है तो वह अवश्य धर्मसंगत भी है, चाहे इसमें कितना भी खतरा क्यों ना हो?"[4] पुनः अगले पत्र में, "पर्दा तोड़ना मेरा अटल निश्चय है। पर्दा रखना किसी धर्म का हिस्सा नहीं है और इसे तोड़ने से पाप होगा, यह कोई नहीं कह सकता। मात्र प्राचीन प्रथा एवं परिस्थितियों के कारण स्त्रियों के उत्कर्ष की पथ को रोकना कहीं से उचित नहीं है। पिताजी! इस विषय पर हमें समझाना व्यर्थ है। मैं तो यहाँ तक मानता हूँ कि स्त्री व्यभिचारिणी भी हो जाए, ये भी सह्य है मगर उनको पर्दा में रखना कतई उचित नहीं है। इस पर मेरा विश्वास अटल है, अडिग है।"[5]

महात्मा गांधी की विचारधारा का प्रभाव रामनंदन मिश्र पर दिनों-दिन बढ़ते चला गया। बाद में समाजवादी विचारधारा इनके अंतर्मन में ऐसा समाया कि फिर वे कभी इससे बाहर नहीं हो सके। जमींदारी और अन्य सभी भौतिक सुख-सुविधाओं से लैस परिवार का लाल रामनंदन सार्वजनिक जीवन में गांधीवाद और समाजवाद की सांचो में ढल गए। अब ये दृढ़ इच्छाशक्ति के लिए संकल्पित हो गये थे। इन्हीं स्वभावों के कारण इन्हें अपने घर-समाज से बहिष्कृत होना पड़ा। 07 दिसम्बर, 1927 ई. को अपने पिता को लिखे पत्र के अंश से इनकी उत्कटता का अनुमान लगाया जा सकता है। उसमें उन्होंने लिखा है- "होश संभालने के छठे वर्ष से ही मुझे लग गया था कि अपने जीवन को मुझे राष्ट्र की सेवा में समर्पित करना है। महात्मा गांधी की बताये गये मार्ग पर चलना है।" अपने मनोभाव को व्यक्त करते हुए वे आगे लिखते हैं- "गांधी जी जब नवयुवकों को देश पर आये संकट से लड़ने हेतु प्रेरित करते आह्वान किए तभी मेरा मन था कि ब्रिटिश सरकार के इस स्कूल से असहयोग कर अपने धर्म का निर्वहन हेतु आगे बढें परन्तु तब हम अधीर नहीं हुए। उस वक्त मेरी आयु पंद्रह वर्ष थी तथा गांधी जी सोलह वर्ष से कम उम्र के बच्चों को पितृ आज्ञा के बिना स्कूल छोड़ने का सुझाव नहीं दिये थे। मैं रूक गया, तब असहयोग नहीं किया। लगातार एक वर्ष तक सोचता रहा। अगले वर्ष माघ कृष्णाष्टमी को जब मेरा सोलह वर्ष पूर्ण हुआ, मैंने स्कूल छोड़ दिया। अगर आपकी अनुमति नहीं मिली तो मैंने घर-त्याग का भी निर्णय कर लिया था। परन्तु फिर लगा आपकी तरफ से कोई विरोध नहीं है, उस समय मैंने आबद्ध होकर घर का त्याग नहीं किया।"[6]

08 जुलाई, 1928 को मगनलाल के स्मरण में पटना में श्पर्दा विरोधी दिवसश मनायी गई। बाद में चंदा जमा की गई तथा निर्णय लिया गया कि सम्पूर्ण राज्य में पर्दा के खिलाफ आंदोलन चलाया जाएगा। रामनंदन इसके अगुआ बने। ये गांव-गांव जाते, गाली-गलौज सुनते, अपमान झेलते मगर अपने पथ से विचलित नहीं हुए। गांधी जी की सलाह पर स्व. मगनलाल गांधी की स्मृति में लहेरियासराय से पॉच मील की दूरी पर मझौलिया गांव में रामनंदन मिश्र श्मगन आश्रमश की स्थापना किए। आश्रम के लिए जगदीश चौधरी नाम का व्यक्ति अपना सब

जमीन दे दिए जिसे बेचकर गांव से बाहर दस कट्ठे की एक प्लॉट खरीदी गई। अंततः जनवरी, 1929 ई. में मगन आश्रम की स्थापना हुई। 09 दिसम्बर, 1929 को सरदार वल्लभ भाई पटेल दरभंगा आए तथा मगन आश्रम भी गए। दरभंगा में भाषण देते हुए सरदार पटेल युवा रामनंदन की तरफ लोगों का ध्यान आकृष्ट किए, साथ ही सहयोग करने की भावना से जुड़ने का आग्रह भी किए। मगन आश्रम उस समय स्वतंत्रता आंदोलन के लिए एक सक्रिय आश्रम बन गया था। पहले प्रशिक्षण और फिर आंदोलन के लिए लोगों को प्रेरित किया जाता था। आरम्भ में जगदीश चौधरी एवं उनकी पत्नी कमला देवी, पिपरा गांव के वृजबिहारी कुँवर, मझौलिया गांव के श्री नारायण चौधरी एवं उनकी पत्नी जगदम्बा देवी, श्री नीरस चौधरी एवं उनकी पत्नी सावित्री देवी, रामनंदन मिश्र एवं इनकी पत्नी राजकिशोरी समेत मात्र नौ लोग इस आश्रम में रहते थे। ये आश्रम जाति प्रथा तथा पर्दा प्रथा से मुक्त था मगर दुख इस बात की थी कि इस आश्रम को लोग हेय दृष्टि से देखते थे। कुछ लोग खुलकर इसका विरोध करते थे। आश्रम के सदस्यों के साथ मार-पीट एवं अभद्र व्यवहार किया जाता था। सबसे कठिन समस्या थी आश्रम की आर्थिक प्रबंधन। जाति-भेद विरोधी, पर्दा-विरोधी एवं सरकार विरोधी संस्थाओं को सहयोग मिलना अत्यन्त दुष्कर था। परन्तु कुछ मात्रा में ही सही परन्तु कुछ लोग आश्रम को मदद करने के लिए आगे आए। रामनंदन मिश्र अपने पत्र में उल्लेख किये हैं, -"लहेरियासराय में एक आर्य-समाजी श्नमस्ते-महाशयश के नाम से प्रसिद्ध थे। वे दरभंगा गुदड़ी से चावल, दाल, सब्जी तथा कुछ पैसे प्रत्येक महिना लाकर देते थे।"[7] वैसे आर्थिक प्रबन्धन के नाम पर खादी ग्रामोद्योग द्वारा बेचे गये कपड़ों की कमाई थी। संयोगवश बिहार के तत्कालीन प्रतिष्ठित नेता ब्रजकिशोर प्रसाद इस आश्रम को मदद करने हेतु आगे आए। देखा-देखी लोग थोड़े प्रभावित हुए। गांधी जी समय-समय पर पत्राचार के माध्यम से सभी जानकारियाँ लेते रहते थे। खादी की कितनी धारी बनी, कितना चरखा चला, किस-किस गांव की सफाई हुई, कहाँ गरीबों-लाचारों के बीच दवा बांटी गई, इत्यादि मगन आश्रम का प्रमुख कार्य हुआ करता था। श्री महावीर शर्मा श्वैद्यश नाम के एक व्यक्ति ने अपनी वृत्ति को छोड़ आश्रम का सदस्य बन गया था। 8 शाम को नजदीक के गांवों में जाकर वे असहाय-निर्धनों का इलाज करते थे। बांकी कुछ सदस्य इसमें उनकी मदद करते थे। धीरे-धीरे आश्रम के बहुत से लोग मरीजों की सेवा तथा सामान्य दवा देना सीख गए। उसके बाद ये कार्य बहुत सारे केन्द्रों में फैल गया।

धीरे-धीरे इन केन्द्रों का विस्तार बहेड़ा, बिरौल, सदर, जाले, वारिसनगर, समस्तीपुर, रोसड़ा आदि अनेकों जगह हो गई। एक ऐसा भी समय था जब 22 शाखाएं जिला भर में कार्य कर रहा था एवं सैकड़ों युवक इससे जुड़े हुए थे। नव आगंतुकों को प्रशिक्षण देने हेतु 01 मार्च, 1930 को 'हिन्दुस्तानी सेवा दल' का शिक्षण शिविर आश्रम में खोला गया। इसमें महिलाओं की भी एक दल थी। दरभंगा शहर के श्री रामबहादुर गुप्ता की पुत्री सुभद्रा एवं दूर-दराज के गांव की महिलाएं भी इसमे शामिल हुई। महिलाओं की समूह सुबह-शाम प्रशिक्षण करती तथा देर शाम को मार्च करती गांव की सड़कों पर निकलती तो गांव के लोक अवाक होकर देखते रह जाते थे। लोगों के मुँह से बस निकलता, "दुनियाँ कतय जा रहल छैक? आब कलियुग अएबामे कनेको संदेह नहि अछि।" शिविर समाप्त होने पर महिला एवं पुरुषों की एक मिश्रित टोली गांव में पैदल मार्च के लिए निकलती थी। माना जाता है यही टोली सदर सब-डिविजन में राष्ट्रीयता की भावना को जगाया। ये टोली जहाँ जाती वहाँ गांवों की सफाई करता, नव स्वंयसेवकों को भर्ती करता तथा रात में हरिजन एवं महिलाओं के मध्य जागरूकता के लिए प्रचार करता था। इस टोली के द्वारा मार्च महीने के अंत तक सात सौ स्वंयसेवक भर्ती हुए। इसी में से एक नव टोली बना जो अप्रैल, 1930 में नमक बनाने के लिए निकला। अंग्रेजी हुकुमत के विरोध में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ रामनंदन मिश्र सविनय अवज्ञा आंदोलन में बढ़-चढ़ कर भाग लिए। इस आंदोलन का प्रमुख उद्देश्य ब्रिटिश सरकार के समक्ष सामूहिक रूप से उसका प्रतिकार करना था, जो ब्रिटिश सरकार के लिए गैर-कानूनी था। ईधर युवाओं ने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि ब्रिटिश सरकार को उखाड़

फेकना है। बाद में इस क्रम में जगह-जगह पर अंग्रेजों के द्वारा बनायी कानूनों का उल्लंघन होने लगा। इसी वर्ष गांधी जी के नेतृत्व में नमक सत्याग्रह तथा नमक बनाने का कार्य सम्पूर्ण देश में प्रारम्भ हुआ। 17 अप्रैल, 1930 को रामनंदन मिश्र के नेतृत्व में इसका निर्वहन हुआ। नमक बनाने का कार्य पिपरा से आरम्भ हुआ तथा ये टोली दरभंगा शहर होते हुए निकली जिसमें रामनंदन को गिरफ्तार कर अठारह महीनों के लिए जेल भेज दिया गया।

रामनंदन नारी शिक्षा के लिए विभिन्न जगहों पर विद्यापीठ एवं आश्रमों का कार्य शुरू किए। बेतिया, लखीसराय, लहेरियासराय, दरभंगा एवं सम्पूर्ण बिहार में कई जगहों पर इसका निर्माण हुआ। गांधी जी की रचनात्मक कार्यों में भाग लेने के लिए महिलाओं को खूब प्रेरित किया गया। 1934 में आये भूकंप में दरभंगा-मधुबनी समेत सम्पूर्ण प्रान्त में भयंकर क्षति हुई थी। उस वक्त आचार्य कृपलानी, राजेन्द्र प्रसाद, महात्मा गांधी समेत कई नेता यहाँ आए थे। प्रभावित लोगों की मदद हेतु रामनंदन इन सबके साथ गांव-गांव, गली-गली गए। पिता राजेन्द्र प्रसाद मिश्र को रामनंदन की ये प्रवृत्ति कहीं से नहीं भा रही थी। वे कभी नहीं चाहते थे कि ड्योढ़ी का पुत्र हरिजनों-शुद्रों के संपर्क में रहे। मगर मानवता के सच्चे प्रहरी रामनंदन की सोच इससे बहुत भिन्न था। पिता को लिखे गये पत्र के इस अंश से इनकी अंतर्वेदना को समझा जा सकता है, "एक विदेशी जाति की गुलामी देश का सत्यानाश कर रहा है। इस गुलामी के भीतर आज कुलों की मर्यादा एवं प्रतिष्ठा का कोई स्थान नहीं है। जिस दिन हम गुलाम हुए, उसी दिन ये सब बह गया। जब तक ये रोग ठीक नहीं होगा तब तक मेरे लिए चौन से रहना संभव नहीं है। एकादशी आज है या कल, इस पर पंडित लोग अपना जीवन लगा देंगे मगर देश के करोड़ों दीन-दुखियों के लिये इन लोगों के पास एक मिनट का भी समय नहीं है। खादी तक पहनने के लिए ये लोग तैयार नहीं है। आपने जिसको शूद्र एवं नीच कहकर संबोधित किया है, उनलोगों का हृदय लाखों सनातनी धर्मी से बड़ा है। मैं उनका सबों का आदर करता हूँ। उनमें त्याग है, वीरता है। मुझे बहुत दुख है कि आपने उनलोगों को नीच कहकर संबोधित किया है एवं मुझमें विद्यमान विचारों का कारण आप इनलोगों की संगति को मानते है। मैं स्वंय को इतना अबोध नहीं मानता हूँ। मेरा सिद्धांत आज से आठ वर्ष पूर्व ही निश्चित हो चुका था। आपके साथ रहकर जब मैं लहेरियासराय में पढ़ता था तभी मेरा विचार बनने लगा था।"[9]

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की जब गठन हो रही थी तो उस समय रामनंदन मिश्र की अहम भूमिका रही थी। आचार्य नरेन्द्र देव उस वक्त पार्टी के अध्यक्ष पद पर थे। पार्टी संगठन की मजबूती के लिए डॉ. लोहिया, जयप्रकाश नारायण सहित कई राष्ट्रीय स्तर के नेताओं का सहयोग मिला। ये लोग देश की स्वतंत्रता के लिए श्हथियार बंद दस्ताश का गठन करने में लगे थे। ये सभी लोग गुप्त रूप से गांधी जी के संपर्क में थे। कांग्रेस के भीतर से ही समाजवादी विचारधारा के प्रचार हेतु इस पार्टी का गठन किया गया था। माना जाता है इस प्रकरण में पंडित जवाहरलाल नेहरू का आशीर्वाद एवं सहयोग रहा था। पंडित नेहरू रूसी क्रांति से प्रभावित थे तथा सोवियत रूस का यात्रा वे कर चुके थे। भारत छोड़ो आंदोलन में रामनंदन मिश्र गुप्त क्रांतिकारियों के साथ 'स्वदेशी अपनाओ, अंग्रेज भगाओ' का बिगुल फूककर देश में कई जगहों पर अप्रत्यक्ष क्रांतिकारी केन्द्रों को स्वाधीनता की लड़ाई में शामिल होने के लिए जागृत किए। देश की स्वाधीनता प्राप्ति हेतु श्सशस्त्र क्रांतिश में पार्टी की सभी नेताओं का विश्वास था। स्वतंत्रता प्राप्ति की अंतिम लड़ाई 1942 ई. की अगस्त क्रांति में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के नेताओं एवं कार्यकर्त्ता लोग अग्रिम पंक्ति में शामिल थे। 09 अगस्त, 1942 के 'करो या मरो', तथा 'भारत छोड़ो आंदोलन' में कांग्रेस के प्रायः सर्वोच्च नेता बम्बई तथा देश के अन्य ठिकानों से गिरफ्तार हो गए। बचे हुए नेताओं में समाजवादी की संख्या ज्यादा थी। ये लोग भूमिगत होकर क्रांति को आगे बढ़ाने का निर्णय लिए। पंडित रामनंदन मिश्र को इसमें अगुआ बनाया गया। इनलोगों का केन्द्र बम्बई में था। संचालिका का भार सोशलिस्ट नेत्री श्रीमती अरुणा आसफ अली थी। वहाँ निर्णय हुआ कि रामनंदन मिश्र मद्रास जायेंगे तथा वहाँ एक समूह बनाकर केन्द्र स्थापित करेंगे, फिर वे कार्यो को आगे बढ़ाएंगे। योजनानुसार रामनंदन मिश्र

मद्रास गए परन्तु दुर्भाग्यवश 23 अगस्त, 1942 को गिरफ्तार हो गए। इन्हें कटक (उड़ीसा) भेजा गया, फिर बहरामपुर जेल में रखा गया। यहाँ से जब भागने का प्रयास किये तो अक्टूबर के अंतिम सप्ताह में इन्हें बिहार के हजारीबाग केन्द्रीय जेल लाया गया। यहाँ पहले से ही जयप्रकाश, योगेन्द्र शुक्ल, सूरज नारायण सिंह, गुलाबचंद गुप्ता, शालिग्राम सिंह, रामवृक्ष बेनीपुरी आदि लोग स्वाधीनता संग्राम की तन्मयता लिये उपस्थित थे। रामनंदन का आगमन इन लोगों में एक नये उर्जा का संचार किया। यहाँ से भागने की योजना बनी। अंततः 09 नवम्बर, 1942 को दिवाली की अंधेरी रात में जयप्रकाश नारायण, योगेन्द्र शुक्ल, सूरज नारायण सिंह, रामनंदन मिश्र, गुलाबचंद गुप्ता तथा शालिग्राम सिंह सत्रह फीट ऊँचे दिवाल को फांदकर जेल से भाग गए। इतिहास में ये घटना बहुत प्रसिद्ध है।

रामनंदन मिश्र पंजाब क्रांतिकारी के प्रमुख भी थे। 22 फरवरी, 1943 को इन्हें पुनः गिरफ्तार कर लिया गया। यहाँ से वे 1946 में रिहा हुए। अंततः 15 अगस्त, 1947 का दिन आया जब सम्पूर्ण देश ने स्वाधीनता की सांस ली। भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी रामनंदन का जीवन संघर्ष में ही बीता। जमींदार तथा सरकार के साथ इनका संघर्ष जारी रहा। जेल से छूटने के बाद 1952 की पहली आमचुनाव तक वे बिहार सोशलिस्ट पार्टी की महामंत्री पद पर रहे। हिन्द किसान पंचायत के नेता एवं भारतीय समाजवादी आंदोलन के राष्ट्रीय स्तर के नेता के रूप में वे काफी प्रसिद्धि पा चुके थे। इस मध्य शायद ही कोई ऐसा दिन बीता होगा जब वे किसी सभा या बुद्धिजीवियों के बैठक में शामिल नहीं हुए होंगे। इनके वक्तव्य से जेपी भी अत्यन्त प्रभावित थे। इनकी लेखनी भी अत्यन्त उत्कृष्ट थी जिसकी अनुभूति इनके पत्रों को पढ़ने से भी हो जाती है। सोशलिस्ट पार्टी द्वारा प्रकाशित साप्ताहिक श्जनताश में इनका लेख निरंतर छपता था जिसमें समाजवादी सिद्धांत एवं कार्यक्रमों की व्याख्या अत्यन्त स्पष्ट रूप से होती थी। मिथिला सहित सम्पूर्ण देश के असंख्य छात्र एवं युवा समुदाय इनके चुम्बकीय व्यक्तित्व से प्रभावित थे। रामनंदन को किसानों का सच्चा हितैषी भी माना जाता था। किसानों की स्थिति का पता लगाने के लिए सोशलिस्ट लोग एक कमिटी का गठन किए जो ऐतिहासिक श्लोहिया कमिटीश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस कमिटी में दो लोग सदस्य बनाये गए। एक रामनंदन मिश्र और दूसरे खुर्शीद एडी नौरोजी। 1950 के दशक में हुए जॉच तथा अध्ययनों की रिपोर्ट से ये बातें सामने आयी कि चीनी मील का मालिक रैयत लोगों से ढाई लाख एकड़ जमीन खरीद लिया था। सरकारी ऋण चुकाने में रैयतों की जमीन चली गई। चीनी मील का मालिक चालीस हजार एकड़ जमीन पर कब्जा कर लिया था। इस तरह चीनी मील दस हजार से ज्यादा परिवारों को भूमिहीन बना दिया था। इस रिपोर्ट में कई बड़े नेताओं का नाम भी सामने आया। ये रामनंदन की निष्पक्षता एवं निडरता का ही परिणाम था। बाद में इस पर कार्रवाई हुई तथा किसानों का पक्ष मजबूत हुआ। पार्टी की आपसी कलह के कारण 1952 में हुए लोकसभा की चुनाव में इन्हें पराजय का सामना करना पड़ा। राज्यसभा चुनाव के समय इनका नामांकन रद्द कर दिया गया। 09 अप्रैल, 1952 को एक ऐसी घटना घटी जिससे रामनंदन मिश्र की धारा एवं काया दोनों पलट गई। इसके बाद वे दरभंगा लौट आए। पार्टी के लिए इनकी उज्ज्वल छवि इसके बाद शिथिल हो गई। जिस पार्टी को अपना सर्वस्व न्योछावर कर इन्होंने सीचा था, साजिश के तहत पाये परिणाम के बाद क्षण भर में उससे नाता तोड़ लिया। दरभंगा लौटने के बाद पंडित मिश्र अपना मार्ग बदल लिए। मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से ये बाहर निकल चुके थे। जीवन को इन्होंने एकाकीपन में बिताया। बाद में अधिकांश समय लेखन एवं प्रकाशन में दिया। श्क्रांति कैसी होश, श्मार्क्स का दर्शनश, श्जीवन का चार अध्यायश, श्गांधी जी के संस्मरणश, श्व्हाइदर मैनकाइंड एंड साधनाश, 10 आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं।

वस्तुतः पंडित रामनंदन मिश्र जैसे क्रांतिकारी, विद्रोही, निष्काम साधक आधुनिक भारत के इतिहास में दुर्लभ है। बाल्यावस्था से ही रामनंदन सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध इतना आंदोलन और संघर्ष कर चुका था तथा

महात्मा गांधी की विचारों का इतना असर इन पर पड़ा था कि सत्ता और शासन के मोह-माया में फंसा हुआ नेता मात्र नहीं रह गये थे। राजनीति में एक बड़ा औहदा बनाने के बाद भी अचानक सब कुछ त्याग कर एक नये संसार में प्रवेश किए तथा जीवन के आखिरी समय तक उसी में रचते-बसते-रमते रहे। वह नव संसार था अध्यात्म की संसार। वैज्ञानिक चेतना से अभिभूत अध्यात्म, वैश्विक चेतना से अभिभूत अध्यात्म। इस मूल मंत्र के साथ कि मानव जाति की जीवन रक्षा, संस्कृति तथा स्वस्थ जीवन के लिए एक नये दिशा में मोड़ लेने की जरूरत है। अध्यात्म की दुनिया में जब वे आगे बढे तो उन्हें इस बात का पूर्ण भान था कि धर्म की जड़ता को तोड़ना या ऐसी अध्यात्मिक चेतना का विस्तार करना जो वास्तव में मानवता के पक्ष में हो, इतना आसान नहीं है। मगर, रामनंदन रवीन्द्रनाथ टैगोर की कही 'एकला चलो रे' को जीवन का मूल-मंत्र मानकर आगे बढते गए।

अंतत: 27 अगस्त, 1989 को इस धरा से वे सदा के लिये विदा हो गए तथा अपने पीछे छोड़ गए एक विरासत, एक परंपरा और पगडंडी बनी एक मार्ग। उस पगडंडी पर चलने वालों की संख्या भले ही कम दिखता हो मगर जो हैं वे एकदम ठोस, दृढ़ संकल्पी तथा मनसा-वाचा-कर्मणा में विश्वास करने वाला। वे राजनीति से स्वंय को विलग क्यों कर लिया? सब कुछ त्याग वे अध्यात्म की दुनिया में क्यों चले गए? क्या मात्र किसी राजनीतिक घटना की वजह से उनका राजनीति से मोह भंग हो गया या अपने आत्मीय महात्मा गांधी जी की दुनिया में नहीं रहने के बाद उन्होंने ऐसा क्या ? ये प्रश्न आज भी अपने उचित उत्तर की तलाश में है। तलाश तो समाज को एक अभिनव रामनंदन मिश्र की भी है।

संदर्भ :

1. In the memory of late Ramnandan Mishra,
   Revolutionary Spritualism & Spiritual Revolution पर उपलब्ध 7-12-1927 के पत्रक अंश
2. संस्मरण: पिता से विद्रोह का प्रथम भाग
3. 7-12-1927 पत्र का अंश
4. 9-12-1927 पत्र का अंश
5 7-12-1927 पत्र का अंश
6. दृढ़ संकल्पी, आदर्शों और कथनी-करनी में एक रखनेवाले थे रामनंदन मिश्र : राजकुमार जैन, नई दिल्ली; अग्नि आलोक ब्लाग
7. संस्मरण: समाज से विद्रोह
8. 1-12-1929 पत्र का अंश
9. 14-12-1927 पत्र का अंश
10. झा, डा. शंकरदेव, तीरभुक्ति (जुलाइ-दिसम्बर 2022), क्रान्ति-पथसँ अध्यात्म पथ धरिक यात्री: प. रामनन्दन मिश्र, अखिल भारतीय मिथिला संघ, नई दिल्ली, पृ. 46

- क्रांति पुरुष पंडित रामनंदन मिश्र : उदय शंकर चौधरी नादान
- पर्दा प्रथा से नारी चेतना का शंखनाद : Prabhat Khabar Digital Desk 15 August 2022
- भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में रामनंदन मिश्र की भूमिका : अवलोकन, सुनील कुमार यादव, 2017, JETIR August, Volume-4
- कहानी महान स्वतंत्रता सेनानी पंडित रामनंदन मिश्र की : Dr. Vijoy Kumar

❑❑❑

आदिवासी विस्थापन : विकास से पैदा हुई चुनौती

❍ शुभम यादव[1]

संक्षिप्ति :

आजादी के बाद चहुंमुखी विकास के नाम पर व्यापक पैमाने पर परियोजनाएं तैयार की गयीं। बड़े-बड़े बाँधों और कारखानों की स्वीकृति प्रदान की गयी। तमाम बहुउद्देशीय परियोजनाओं को पारित किया गया। लेकिन यह परियोजनाएं अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में विफल रही हैं। सरकारें बिजली, सड़क और कारखानों के निर्माण को विकास का अनिवार्य हिस्सा मानती हैं। जबकि यह सारा दाव-पेंच नदियों, पहाड़ों और जंगलों से लगे क्षेत्रों और उन पर निर्भर आदिवासियों की जमीनों को औने-पौने दामों पर पूंजीपतियों को सौंपने का है। पूरी दुनिया में भूमंडलीकरण की बहस ने निजीकरण को बढ़ावा दिया है, जिसके पश्चात देश की सरकारों का सार्वजनिक सम्पत्ति पर नियंत्रण कमजोर हुआ है। विकास की इस प्रक्रिया में व्यापक पैमाने पर विस्थापन हुए हैं। इसमें बड़ी संख्या आदिवासी समाज की है। इस शोध आलेख में आजादी के बाद विकास के नाम पर निर्मित परियोजनाओं के चलते जो व्यापक पैमाने पर विस्थापन हुए हैं, उसे समझने का प्रयास किया गया है। साथ ही उदारीकरण के बाद किस तरह आदिवासी क्षेत्रों में विकास के नाम पर खनिज संसाधनों की लूट और नक्सलवाद के नाम पर आदिवासियों का दमन जारी है, उसका भी विश्लेषण किया गया है।

बीज शब्द : विकास, विस्थापन, आदिवासी, औद्योगीकरण, पर्यावरण, नक्सलवाद।

विस्थापन का मूल अर्थ अपने मूल निवास स्थान से कट जाना या पलायन कर जाना है। जब कोई व्यक्ति या परिवार अपने मूल स्थान से उजड़ कर किसी नए स्थान पर बसता है या उसे मूल निवास स्थान से दबाव बनाकर हटाया जाता है तो इस प्रक्रिया को विस्थापन कहते हैं। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो मनुष्य को सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन से अलग कर देती है। विस्थापन की प्रक्रिया के पीछे बहुत से कारण हो सकते हैं। मोटे तौर पर हम इसे दो भागों में बाँट सकते हैं- स्वैच्छिक विस्थापन और अनैच्छिक विस्थापन। स्वैच्छिक विस्थापन, वह विस्थापन है जिसमें मनुष्य अपनी स्वेच्छा से अपने मूल स्थान से दूसरे स्थान पर बसता है। इसमें मनुष्य बेहतर जीवन शैली, आय के स्रोत, शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य बेहतर सुविधाओं के लिए पलायन करता है। वह मूलतः अपनी जड़ों से कटा नहीं होता। उसके पास अपने परिवार और समाज में लौट आने के विकल्प खुले

1. संपर्क : ग्राम-गोल्हवा, पोस्ट-बसहिया गंगा सागर, जिला-अम्बेडकर नगर (यू.पी.), पिन-224181; मो.: 9473930135; ई-मेल: shubhamyadavbhu2@gmail.com

होते हैं। जिसके कारण यह कम कष्टप्रद होता है और इसमें भविष्य में जीवन स्तर को बेहतर बना लेने की असीम संभावनाएँ होती हैं। लेकिन अनैच्छिक विस्थापन में ऐसा नहीं होता है। इसमें व्यक्ति दबाव के चलते हमेशा के लिए विस्थापित होता है। ऐसे विस्थापन बेहद दुखद और पीड़ादायी होते हैं। इसमें व्यक्ति हमेशा के लिए अपने समाज और संस्कृति से तो कट ही जाता है और अन्य जगह पर अगर ठीक तरह से पुनर्वास नहीं हुआ तो वह हीनता बोध से ग्रसित हो जाता है। मूल निवास से उजड़ने पर उसकी अर्थव्यवस्था तबाह हो जाती है। रोजगार के संकट उसके सामने खड़े हो जाते हैं। ऐसे में उसके जीवन में उत्तरोत्तर आगे बढ़ने की संभावनाएं समाप्त हो जाती हैं और उसका जीवन नर्क हो जाता है।

अनैच्छिक विस्थापन के केन्द्र में राजनीति, साम्प्रदायिकता, विकास के सवाल जैसी बहुत सी घटनाएँ शामिल हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद आजाद हुए तमाम देशों में राजनीतिक अस्थिरता के कारण उनके बँटवारे हो गए। इन नए देशों के निर्माण के चलते लोगों का व्यापक पैमाने पर विस्थापन हुआ है। भारत-पाकिस्तान विभाजन के कारण विस्थापितों और शरणार्थियों की एक लम्बी कतार थी। भयानक स्तर पर हिंसा, लोगों से मार-पीट और कत्लेआम हुए, जिसके कारण लोगों का व्यापक पैमाने पर विस्थापन हुआ। इसी तरह फिलिस्तीन के बँटवारे के बाद इजराइल के उदय ने व्यापक पैमाने पर विस्थापन दिए हैं। यह विस्थापन आज भी जारी है। साम्राज्यवादी ताकतें अपने हितों के लिए बराबर संघर्ष कर रही हैं, जिसकी कीमत मेहनतकश और गरीब जनता को चुकानी पड़ रही है।

अक्सर राजनीति में क्षेत्रीय भावनाओं को भड़काकर बहुत से राजनेता समाज में तीव्र वैमनस्य फैलाते हैं। धर्म और जाति के आधार पर साम्प्रदायिक दंगों को हवा दी जाती है। जिसके कारण भी विस्थापन होते हैं। इंदिरा गांधी की हत्या के बाद आम सिक्खों का कत्लेआम और इसी तरह कार सेवकों की ट्रेन को जलाए जाने के बाद गोधरा में मुसलमानों के नरसंहार से व्यापक विस्थापन हुए हैं। इस तरह के विस्थापन अनैच्छिक विस्थापन हैं। जिसमें व्यक्ति के पास सिर्फ दुखदायी यादें होती हैं। हमारी चिंता का मुख्य विषय विकास के नाम पर होने वाला विस्थापन है क्योंकि विकास के क्षेत्र में आने वाले लोगों को मजबूरन विस्थापित होना पड़ता है। विकास के लिए कुछ पैमाने पर विस्थापन अनिवार्य हो सकता है, लेकिन अगर यह विस्थापन व्यापक पैमाने पर हो और विस्थापितों का ठीक तरह से पुनर्वास न हो तो यह 'विकास की प्रक्रिया' लोगों के लिए विनाश का कारण बन जाती है। औपनिवेशिक दौर में ही विकास के नाम पर विस्थापन की प्रक्रिया शुरू हो गयी थी। "उन्नीसवीं शताब्दी के छठे दशक में सड़क और रेलवे लाइन बनाने के लिए आदिवासी बहुल ठाणे, नासिक तथा धुले जिलों में जमीन से बेदखली की शुरुआत हुई।"[1]

सन् 1793 में कंपनी सरकार ने स्थायी बंदोबस्त लागू कर भूमि को निजी और सरकारी सम्पति घोषित कर दिया, जिसके कारण आदिवासी इलाकों में बाहरी घुसपैठ बढ़ी। भूमि के निजी संपत्ति घोषित हो जाने के कारण जहाँ एक तरफ जमीन का लेन-देन आसान हो गया, वहीं दूसरी ओर भू-अधिग्रहण आसान हो गया था। सन् 1894 में 'भूमि अधिग्रहण एक्ट 1894' लागू किया गया। जहाँ सार्वजनिक उद्देश्य के चलते सरकार उचित मुआवजा देकर भूमि अधिग्रहण कर सकती थी। इस एक्ट के लागू होने के बाद व्यापक पैमाने पर विस्थापन सामने आया है। देश की पहली स्टील कंपनी टिस्को के कारण होने वाले विस्थापन को रेखांकित करते हुए ग्लैडसन डुंगडुंग ने लिखा है "कंपनी ने 1907 में झारखंड के सिंहभूम जिले स्थित कालीमाटी में अपनी पहली स्टील फैक्ट्री खोली, जो आज टाटा स्टील लिमिटेड के रूप में स्थापित है। इसके लिए कंपनी ने कालीमाटी के आसपास के 24 आदिवासी गाँवों का अधिग्रहण किया, जहाँ स्टील प्लांट एवं पावर प्लांट स्थापित हैं। इस तरह से यह क्षेत्र अब जमशेदपुर के रूप में स्थापित है, जहाँ मात्र 5 प्रतिशत आदिवासी समुदाय शेष रह गए हैं और जंगल का कोई नामोनिशान नहीं है जबकि टाटा कंपनी की स्थापना से पहले यहाँ 95 प्रतिशत आदिवासी

हुआ करते थे और जंगल भी मौजूद था।"[2]

औपनिवेशिक दौर में विकास के नाम पर विस्थापन का शुरू हुआ यह सिलसिला आजादी के बाद बढ़ा है और आज भी जारी है। औद्योगिकीकरण को ज्यादा तरजीह दी गयी और छोटी विकास परियोजनाओं के स्थान पर बड़ी विकास परियोजनाओं को पारित किया गया। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में 'इंडस्ट्रीज डेवलपमेंट रेगुलेशन एक्ट 1951', 'कोल बेयरिंग एक्ट 1951' और 'माइन्स एंड मिनिरल डेवलपमेंट एंड रेग्यूलेशन एक्ट 1956' जैसे तमाम एक्ट पारित किए गए। औपनिवेशिक भू-अधिग्रहण कानून को लागू रखा गया और देशहित के नाम पर लोगों की जमीनें अधिग्रहित की जाती रहीं। बड़ी परियोजनाओं को स्वीकृति प्रदान की गई और बिजली की आपूर्ति के लिए बड़े बाँधों के निर्माण शुरू किए गए। सोवियत यूनियन की तर्ज पर पंचवर्षीय योजनाओं को शुरू किया गया और उनके लक्ष्यों को जल्द से जल्द प्राप्त करने की कोशिश की गयी। लेकिन पैसों के अभाव में बहुत सी बड़ी परियोजनाएँ समय से पूरा नहीं हो सकी। जिसके कारण अनुमानित लाभ नहीं मिल सके और पूरी व्यवस्था एक त्रासदी बन कर रह गयी। जिसमें गरीब पिसता ही गया। इस तरह की परियोजनाओं में व्यापक विस्थापन हुए, जिनमें भारी संख्या आदिवासी समाज की है। बकौल सुनील मिंज "आजादी के बाद भी आंतरिक उपनिवेश के कारण समूचे भारत में केवल बाँध से अमूमन 6 करोड़ आबादी विस्थापित हुई है। उस आबादी में 40 प्रतिशत आबादी यानी 15 से 18 लाख आदिवासी हैं। आंध्रप्रदेश में 1985 तक 32 लाख लोगों का विस्थापन हुआ है। उसमें 10 लाख आदिवासी हैं। उड़ीसा में 1995 तक 25 से 30 लाख आबादी विस्थापित हुई है। उसका 22 प्रतिशत आबादी आदिवासी है। पश्चिम बंगाल में 6 प्रतिशत आदिवासी रहते हैं लेकिन 2000 तक 70 लाख जनसंख्या उजड़ चुकी है, उजड़ी आबादी का 14 से 15 लाख आदिवासी जनसंख्या है। सरदार सरोवर परियोजना से 1.5 लाख विस्थापितों में 80 प्रतिशत आदिवासी ही हैं।"[3]

विकास के नाम पर घोषित परियोजनाओं में होने वाले विस्थापित लोगों की संख्या को देखें तो इसे गहरे अर्थों में आदिवासी विस्थापन कहा जा सकता है। ज्यादातर खनिज संसाधन आदिवासी इलाकों में है इसलिए विकास के हमले इन्हीं इलाकों में ज्यादा तीव्र गति से हो रहे हैं। स्वाधीनता के उपरांत जिस औद्योगीकरण को तरजीह दी गयी थी उसके पहिए को गतिमान रखने के लिए खनिज संसाधनों की जरूरत थी। इसीलिए आजादी के बाद ज्यादातर परियोजनाएँ उन्हीं क्षेत्रों में पारित की गयीं, जहाँ बहुतायत मात्रा में खनिज संसाधन उपलब्ध थे। दुर्भाग्य से यह ज्यादातर इलाके आदिवासियों के थे। खनिज संसाधनों से भरे हुए आदिवासी क्षेत्रों में विकास परियोजनाओं के नाम पर विस्थापनों की कतार लगा दी गयी है। इस तरह के विस्थापनों से पूर्व लोकलुभावन वादों की झड़ी लगा दी जाती है, जो कभी पूरे नहीं होते हैं।

सर्वप्रथम मुखर रूप से जवाहरलाल नेहरू ने आदिवासियों के विकास को लेकर चिंता जाहिर की थी और आदिवासियों की समस्याओं को लेकर विकास के पंचशील तय किए थे। नेहरू ने पंचशील के तीसरे सिद्धांत में कहा था। "प्रशासन एवं विकास में आदिवासियों के प्रतिनिधित्व को महत्व दिया जाना चाहिए। तकनीकी विशेषज्ञ शुरुआत में बाहर से लाये जा सकते हैं अन्यथा बाहरी व्यक्तियों के हस्तक्षेप को नहीं के बराबर रखना चाहिए।"[4] पर दुर्भाग्य की बात यह है कि नेहरू के समय में ही बोकारो प्रोजेक्ट पर काम करने वाली हिंदुस्तान स्टील लिमिटेड, जिसका नाम बदलकर बोकारो स्टील लिमिटेड कर दिया था, ने औने-पौने दामों पर आदिवसियों की जमीनें लेकर उन्हें वहाँ से विस्थापित होने को मजबूर कर दिया था। विनोद कुमार ने 'समर शेष है' में आदिवासी जमीनों की डकैती का जिक्र करते हुए लिखा है, "एक नं. जमीन की कीमत उन्होंने लगाई तीन हजार रुपये एकड़, दो नं. जमीन इक्कीस-सौ रुपये एकड़ और तीन नं. जमीन की कीमत पन्द्रह सौ रुपये एकड़। टांड़ जमीन की कीमत डेढ़ सौ रुपये एकड़ लगाई। यानी एक डिसमिल जमीन डेढ़ रुपये में

जबरन ले ली गई।"[5] इस प्रोजेक्ट के लिए कुल 1,018 एकड़ भूमि अर्जित की गई थी। जिसके चलते 12,847 परिवार उजड़ गये थे। जिनका समुचित पुनर्वास नहीं हुआ। अक्सर भूमि अधिग्रहण और पुनर्वास योजनाओं में सैंकड़ों कमियाँ रहती हैं, क्योंकि अधिकारी वर्ग सरकार की नजरों में अच्छे बने रहने और उच्चपदों पर जाने की लालच में कम से कम लागत में परियोजनाएं तैयार करने की कोशिश करते हैं। जिसका परिणाम जनता पर दिखाई देता है। भूमि अधिग्रहण कागजों में दर्ज जमीनों की माली स्थिति पर होता है, भले ही उस जमीन का मालिक उस टांड़ जमीन को उपजाऊ जमीन में बदल दिया हो। अक्सर पुराने सर्वे को आधार बनाया जाता है। ऐसे में किसान ठगा महसूस करता है।

राष्ट्र और देश के विकास के नाम पर सरकार अपने ही लोगों का दमन कर रही है और विकास की कीमत खनिज इलाकों में निवास करने वाले लोगों को विस्थापित होकर चुकानी पड़ रही है। कंपनियों और फैक्ट्रियों के द्वारा विकास के जो सब्जबाग दिखाए जाते हैं वे कभी पूरे नहीं होते हैं। आदिवासी इलाकों में आज सबसे ज्यादा कंपनियाँ काम कर रही हैं लेकिन किसी को आदिवासियों के विकास से मतलब नहीं है। हर किसी को कच्चे माल और खनिज संसाधनों की जरूरत है ताकि ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाया जा सके। औद्योगिक विकास के चलते आदिवासियों के गाँव उजड़ रहे हैं, कंक्रीट के जंगलों का विस्तार हो रहा है। गाँव शहर में तब्दील हो रहे हैं, जिसका अर्थ आदिवासी परंपरा और संस्कृति का खात्मा है। आदिवासी इलाकों में बाहरी लोगों की संख्या तेजी से बढ़ रही है और वहाँ के मूलवासी दर-दर भटकने के लिए मजबूर हो रहे हैं। आदिवासियों के समक्ष विकास की इस चुनौती ने उन्हें विस्थापित होने को मजबूर कर दिया है। विकास के नाम पर कारखाने तो लगाए जाते हैं लेकिन आदिवासियों के हाथ सिवाय मजदूरी के कुछ नहीं आता है। विनोद कुमार ने 'रेड जोन' में लिखा है "यहाँ लौह कारखाना लगा तो 45 हजार लोगों को रोजगार मिला। अब पाँच मिलियन टन का कारखाना लगता है तो तीन-चार हजार से ज्यादा लोगों को स्थायी रोजगार नहीं मिलने वाला। और उसमें भी होंगे टेक्नोक्रैट, ऑफिस में काम करने वाले बाबू। मजदूर तो खुले बाजार में टके सेर बिकते हैं। जब जरूरत हुयी जुटा लिया और काम हो जाने के बाद निकाल फेंका। पुराने औद्योगिक शहरों में भी अब आदिवासी कहाँ दिखते हैं? हमारे यहाँ उनकी एक बस्ती रह गई है लेवाटाँड़। एक बस्ती बियाडा औद्योगिक क्षेत्र के सामने रह गयी है। या फिर गरगा नदी के किनारे। यानी, शहर के हाशिए पर।"[6]

विस्थापित आदिवासी अपने ही देश में अजनबी बन गए हैं। उनकी अपनी और अपने गाँव मोहल्लों की कोई पहचान नहीं है। विकास के नाम पर होने वाले कार्यों के चलते इन इलाकों में बाहरी घुसपैठ बढ़ी है। बड़ी मात्रा में बाहर से वर्कर और हाकिम-हुक्काम लाए जाते हैं। ऐसे में तमाम बाहरी लोग अपने रसूख के चलते इन इलाकों में जमीनों पर कब्जा कर लेते हैं या फिर औने-पौने दामों में खरीद लेते हैं। छत्तीसगढ़ में टाटा कंपनी ने वहाँ के राजा से पहले औने-पौने दामों पर जमीनें लेकर प्लांट लगाया लेकिन, जब वह गयी तो अपने पीछे तबाही का एक विशाल साम्राज्य छोड़ दिया। जिस पर गैर आदिवासियों ने कब्जा कर लिया। वहाँ के आदिवासी रोजगार की खोज में विस्थापित होकर अन्य शहरों में पलायन कर गए। रमणिका गुप्ता ने लिखा है "बस्तर के ही इलाके में टाटा कंपनी ने वहाँ के राजा से बहुत ही सस्ती दर पर कौड़ियों के भाव हजारों एकड़ जमीन लेकर बड़ी-बड़ी खदानें खोली थीं। टाटा कंपनी ने मजदूरों के रहने के लिए तो घर बनाए पर गाँव के स्थानीय लोग, न तो रोजगार पा सके और न ही कंपनी ने जनता के हितार्थ वहाँ स्कूल व अस्पताल ही खोला। कुछ वर्षों बाद टाटा कंपनी बोरिया-बिस्तर समेट कर बिहार में जमशेदपुर चली गई, जहाँ उसने विशाल व्यापारिक साम्राज्य स्थापित कर लिया। वह अपने पीछे छोड़ गई, असंख्य गड्ढे, पोखरियाँ, टूटे मकान और खेती के अयोग्य ऊबड़-खाबड़ जमीनें, जिन पर बाहर के लोगों ने कब्जा करके अपने घर-बार बना लिए, दुकानें खोल लीं और व्यापार-धंधा शुरू कर दिया।"[7]

आजादी के बाद व्यापक पैमाने पर विस्थापन नदी बाँध परियोजनाओं के कारण हुए हैं। त्वरित विकास को प्राप्त करने के लिए दूसरी पंचवर्षीय योजना में 'महालनोबिस मॉडल' अपनाया गया। जिसमें औद्योगिक तरक्की के लिये भारी उद्योगों की वकालत की गयी थी। इन उद्योगों की गति बनाए रखने के लिए विशाल पैमाने पर ऊर्जा की आवश्यकता थी ताकि उपलब्ध संसाधनों को आधुनिकीकरण के जरिए उत्पादों में परिवर्तित कर तीव्र विकास दर हासिल की जा सके। इसके लिए विद्युत ऊर्जा को सबसे बेहतर विकल्प के रूप में अपनाया गया। जिसके चलते बड़ी बाँध परियोजनाओं को स्वीकृति दी गयी। नेहरू की नजर में बाँध इतने महत्वपूर्ण थे कि उन्होंने इसे 'विकास का मंदिर' कहा था। बड़ी बाँध परियोजनाओं के पीछे का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि दुनिया भर के विकसित देशों की बड़ी बाँध परियोजनाओं के उदाहरण हमारे सामने मौजूद थे। जिनके तर्ज पर भारत अपना विकास करना चाह रहा था। इन बाँध परियोजनाओं के कारण व्यापक पैमाने पर विस्थापन हुए। विनोद कुमार ने 'रेड जोन' में लिखा है "आजादी के बाद संथाल परगना में दर्जनों बृहद और छोटी सिंचाई परियोजनाएँ बनीं। उनमें पहली बड़ी परियोजना है मयूराक्षी बाँध योजना। कनाडा के सहयोग से बना मसानजोर डैम।...113 फीट ऊँचा और 2150 फीट लंबा बाँध। 16 करोड़ की लागत से बना। दावा था कि 8 लाख हेक्टेयर जमीन की सिंचाई होगी इस डैम से। सिंचाई तो धूर भर जमीन की नहीं हुई, 19000 एकड़ जमीन का वनक्षेत्र नष्ट हो गया। उस वनक्षेत्र में थे वर्षों पुराने महुआ, केंदु, पियार के फलदायक पेड़ और साल, मुर्गा, गम्हार जैसी कीमती लकड़ियों के हजारों पेड़। संथाल परगना के 25 हजार लोग उजड़ गये उस बाँध की वजह से।"[8]

बाँध परियोजनाएँ विकास के लिए जरूरी हैं लेकिन यह ध्यान देना होगा कि इन परियोजनाओं में विस्थापित लोगों का समुचित पुनर्वास हो, अन्यथा ऐसी विकास परियोजनाएँ विस्थापितों के लिए विनाश का कारण बन जाती है। ज्यादातर बड़ी बाँध परियोजनाएँ अपने घोषित लक्ष्यों बिजली उत्पादन, बाढ़ रोकने आदि को प्राप्त करने में असफल रही हैं। इन परियोजनाओं को बनने में अधिक लागत और समय की जरूरत होती है। इनके रख रखाव का खर्च बहुत ज्यादा होता है। अधिकतर परियोजनाएँ लूट खसोट का जरिया बन जाती हैं और वे जमीन पर कभी पूरा नहीं होती हैं। विनोद कुमार ने 'रेड जोन' में इसका जिक्र कुछ यूँ किया है, "1967 के अकाल के बाद 27 बृहद और मध्यम योजनाओं का प्रारूप बना जिनमें से छह को छठी पंचवर्षीय योजना में स्वीकृति मिली। इन पर कुल 47 करोड़ रुपये खर्च होने थे जो 1981 तक बढ़ कर 1 अरब 43 करोड़ हो गये। 27 में 15 कागज पर रह ही गयीं। छह परियोजनाओं पर काम शुरू हुआ। इन छह परियोजनाओं में शामिल थीं अजय, पुनासी, गुमानी, सकरोगली, तोराई और सुगाथान नदियाँ जिन पर बराज और बाँध बनने थे। सुगाथान तो लोगों के प्रबल विरोध की वजह से बंद हो गया। अन्य परियोजनाओं में से एक भी पूरी नहीं हुई। जब तक चली, तब तक उनमें जमकर लूट-खसोट हुई। बिहार के ठेकेदारों और नेताओं ने झारखंड को चारागाह के रूप में इस्तेमाल किया।"[9]

नदियों पर बाँध बनाने से पहले नदी को बाँधकर उसकी धारा को परिवर्तित करना पड़ता है। जिससे नदी किनारे बसे हुए गाँव प्रभावित होते हैं। क्योंकि यह धारा अल्पकालिक होती है इसलिए इन गाँवों को डूब क्षेत्र घोषित नहीं किया जाता है। जिससे आम जन जीवन तो प्रभावित होता ही है और उसे कोई सरकारी राहत भी नहीं पहुँचायी जाती है। नदियों को बाँधने के कारण होने वाली तबाही का मंजर वीरेन्द्र जैन ने 'पार' में इस तरह किया है, "मुइया जो कहती आई थी कि मूसर खेरे में बाढ़ आ गई थी बिन बरसात, जिसमें मूसर खेरा डूब गया था। जमूसर गाँव डूब गया था। मूसर के राउत कहीं अंत बिला गए थे। वह बाढ़ नहीं थी। लड़ैई के बरेदी ने बताया है कि बेतवा मैया के राजघाट पर शहर के लोग बेतवा माई को बाँधने आए हैं। वे नदी को आजादी से बिचरने नहीं देंगे। दोनों तरफ माटी के टीले उठाकर अपनी मनमाफिक दिशा में नदी को बहा ले जाएँगे। उन्होंने काम शुरू कर भी दिया है।"[10]

सिर्फ डूब क्षेत्र में आने वाले लोग ही नदी बाँध परियोजनाओं से प्रभावित नहीं होते हैं बल्कि उसका दायरा बहुत बड़ा होता है। वहाँ की संस्कृति, अर्थव्यवस्था और जन जीवन सब कुछ इससे प्रभावित होता है। नदियों के छेंके जाने के कारण असमय नदियों का जल आसपास के इलाकों में खड़ी फसल, गोरू-बछरू, पेड़-पौधों, मनुष्यों आदि को अपने में समाहित कर लेता है और नदियों पर आश्रित लोगों का जन जीवन तबाह हो जाता है। बाँध निर्माण के कारण बहुत बड़ा इलाका शहरों और बाजारों से कट जाता है। जिसके कारण अन्य स्थानीय लोग पलायन कर जाते हैं। वीरेन्द्र जैन ने 'पार' में होने वाली तबाही का वर्णन इस तरह किया है, "बाँध वालों ने जब दोनों तरफ से तटबंध बनाने शुरू किए तब तो कहर ही बरसने लगा। बरसात का जो पानी पहाड़ों से उतर कर नालों के रास्ते नदी तक जाता था, वह नदी में जाना बंद हो गया। वह पानी नालों में सड़ने लगा। इन नालों में दलदल जमा हो गई। नालों के रास्ते बैलगाड़ी क्या पैदल भी चंदेरी जाना कठिन होने लगा। सो साव लोग, ठाकुर लोग, बड़े किसान गाँव छोड़ भागे। जब फसल काटकर शहर में बेचने पहुँचाई ही नहीं जा सकती थी, तो वे यहाँ टिके रह कर क्या करते।"[11]

आज वैश्विक स्तर पर बड़ी बाँध परियोजनाओं से होने वाले गंभीर परिणामों पर चर्चा हो रही है। विकसित देश इन मामलों में काफी आगे हैं। कुछ वर्षों पूर्व अमेरिका ने 'हैरी पर्सल', 'बियर राक' जैसे अपने बड़े डैमों को ढहा दिया और नदी को पूर्ववत् बहने के लिए छोड़ दिया। भारत व उसके जैसे तमाम विकासशील और अल्पविकासशील देशों की आर्थिक स्थिति अमेरिका जैसी नहीं है। फिर भी यह जरूरी है कि बाँध परियोजनाओं को इस तरह विकसित किया जाये कि उससे विस्थापन और पर्यावरणीय क्षति बहुत कम हो और सतत् विकास को बनाए रखा जा सके। बड़ी बाँध परियोजनाओं को जहाँ तक संभव हो दरकिनार किया जाय और छोटे और कम ऊंचाई के बाँधों को वरीयता दी जाय।

उदारीकरण के दौर के बाद विस्थापन की प्रक्रिया और तेज हो गयी है। तमाम विदेशी कंपनियाँ भारत में अपना पैसा लगा रही हैं क्योंकि उन्हें विपुल मात्रा में खनिज संसाधनों की जरूरत है। इसके लिए कानूनों में संशोधन किए जा रहे हैं, इन्वेस्टमेंट के तरीकों को आसान किया जा रहा है। पूँजीपतियों को सस्ती जमीनें उपलब्ध कराई जा रही हैं और सस्ते ब्याज दर पर उन्हें लोन दिए जा रहे हैं। नई औद्योगिक नीति पर अमल करने के बाद भारत में निवेश तेजी से बढ़ा है। और यह सारा पैसा उन इलाकों की तरफ जा रहा है जहाँ खनिज संसाधनों के भंडार हैं। दुर्भाग्य से इन इलाकों में आदिवासियों की संख्या बहुतायत है। झारखंड और छत्तीसगढ़ के अलग बनने के बाद से सैकड़ों एम.ओ.यू. निजी कंपनियों से हो चुके हैं। टाटा, मेदांता, एस्सार जैसी कंपनियाँ आदिवासियों का विकास के नाम पर विनाश करने को लालायित हैं। हर कंपनी को कारखाना लगाने के लिए जमीन, लौह अयस्क और खदानों के पट्टे चाहिए। उनकी रुचि विकास के बजाय मुनाफा कमाने और खनिज संसाधनों के दोहन पर है। इस पूरे लूट में सरकारी मशीनरी से लेकर सरकार तक सब शामिल हैं। ग्लैडसन डुंगडुंग और संजय कृष्ण ने लिखा है "विकास के नाम पर झारखंड सरकार ने औद्योगिक घरानों के साथ 104 एम.ओ.यू. किया है, जिसके कार्यान्वयन से 2 लाख एकड़ जमीन रैयतों के हाथों से पूँजीपतियों के पास चली जाएगी एवं 10 लाख लोग विस्थापित होंगे। औद्योगिक विकास मॉडल के कारण संसाधन का केंद्रीयकरण हो रहा है एवं छोटे किसान पूरी तरह से भूमिहीनता की स्थिति में आ गए हैं।"[12]

इस तरह के कारखानों का आदिवासी इलाकों में भारी विरोध हो रहा है। जिसके चलते सरकारें शांति व्यवस्था स्थापित करने के नाम पर भयानक दमन कर रही हैं। पूँजीपतियों के खिलाफ उठी हर आवाज को नक्सलवादी कहकर दबा देना सरकार का धर्म बन गया है। इन इलाकों में नक्सलवादी अभियान बहुत तेजी से चलाए जा रहे हैं। जिसके चलते आदिवासी डरकर अपने जमीनों से विस्थापित हो रहे हैं। अकेले सलवा जुडूम आंदोलन के कारण लगभग पचास हजार लोगों को पुनर्वास कैम्पों में जाकर शर्णार्थी बनना पड़ा है। सलवा जुडूम

अभियान 4 जून सन् 2005 को टाटा द्वारा छत्तीसगढ़ में स्टील प्लांट लगाने के करार के बाद शुरू हुआ। इससे सत्ता और पूँजीपतियों के गठजोड़ को समझा जा सकता है। इसी तरह नक्सलवाद के खिलाफ ऑपरेशन ग्रीनहंट, ऑपरेशन एनाकोंड़ा, ऑपरेशन मानसून आदि चलाए गए और इन ऑपरेशनों के बाद इन इलाकों में एस्सार, जिंदल, टाटा, भूषण जैसी तमाम कंपनियों के एमओयू हस्ताक्षर हुए हैं। इस तरह के अभियानों के पीछे का स्पष्ट निहितार्थ पूँजीपतियों को लाभ पहुँचाना होता है, ताकि वे बिना किसी विरोध के माइनिंग कर सकें। इस संदर्भ में ग्लैडसन डुंगडुंग और संजय कृष्ण की टिप्पणी गौरतलब है "ऑपरेशन ग्रीनहंट का असली मकसद भी देश के सामने आ चुका है। झारखंड का सारंडा जंगल इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। सारंडा जंगल के पश्चिमी छोर में जून, जुलाई और अगस्त 2011 में ऑपरेशन मानसून, ऑपरेशन ब्रेभो बाय एवं ऑपरेशन एनाकोंडा चलाने के बाद वहाँ टाटा, जिंदल, मित्तल, एलेक्ट्रो स्टील जैसी 19 कंपनियों को लौह-अयस्क की लीज दी गई और उनमें से जिंदल, रूंगटा माइंस और एलेक्ट्रो स्टील कंपनी को पहले स्तर का क्लीयरेंस भी मिल चुका है और इन कंपनियों ने सर्वे का काम भी पूरा कर लिया है, जो यह साबित करता है कि भारत सरकार किसी भी कीमत पर प्राकृतिक संसाधनों को आदिवासियों से छीन लेना चाहती है, क्योंकि यह संसाधन बेचकर भारत सुपर पावर बनने का ख्वाब पूरा कर सकता है।"[13]

आदिवासियों का व्यापक पैमाने पर विस्थापन फील्ड फायरिंग रेंज परियोजनाओं के चलते भी होता रहा है। फील्ड फायरिंग रेंज में थल सेना अभ्यास करती है। जिसके कारण फील्ड फायरिंग रेंज के दायरे में आने वाली जनता को विस्थापित होना पड़ता है। देश भर में कुल 92 फील्ड फायरिंग रेंज हैं। जिनमें 12 अधिग्रहित फील्ड फायरिंग रेंज और 80 अधिसूचित फील्ड फायरिंग रेंज शामिल हैं। अधिग्रहित फील्ड फायरिंग रेंज के भीतर आने वाले सभी लोगों को पूर्णतः विस्थापित होना पड़ता है जबकि अधिसूचित फील्ड फायरिंग रेंज के भीतर आने वाले लोगों की स्थिति अर्ध विस्थापितों जैसी होती है। वे न तो ठीक तरह से अपनी खेती कर सकते हैं और न ही जंगल का सही तरह से अपने लिए प्रयोग कर सकते हैं। सेना द्वारा अभ्यास के समय उनकी फसलें नष्ट हो जाती हैं। मवेशी मारे जाते हैं और कभी-कभी तो खुद आदिवासी भी उस गोली का शिकार होता है। बाहरी लोगों के घुसपैठ के चलते उनकी बहू-बेटियाँ असुरक्षित महसूस करती हैं। इन वजहों से उनका जीवन एक अनिश्चितता से भरा हुआ होता है। भारत सरकार ने सन् 1993 में नेतरहाट में फील्ड फायरिंग रेंज बनाने की योजना बनायी थी। सुखनाथ लोहार ने लिखा है, "गुमला एवं पलामू जिला के 245 आदिवासी बहुल गाँवों के 25,000 परिवारों के लगभग 2,35,000 लोगों के विस्थापित होने का खतरा था। इस पायलट प्रोजेक्ट के खिलाफ गुमला एवं पलामू की आदिवासी व गरीब जनता ने 'नेतरहाट फील्ड फायरिंग रेंज जन संघर्ष समिति' बनाकर आन्दोलन शुरू किया और फील्ड फायरिंग क्षेत्र में 1 लाख लोगों ने एक सप्ताह तक सत्याग्रह किया और धरना दिया।" आंदोलन के चलते नेतरहाट फील्ड फायरिंग रेंज परियोजना को भले ही रद्द कर दिया गया लेकिन आज भी यह गाँव फील्ड फायरिंग रेंज की अधिसूचना से बरी नहीं हो पाए हैं। यहाँ के लोग आज भी हर साल 22-23 मार्च को सांकेतिक रूप से जमा होकर फील्ड फायरिंग रेंज का विरोध करते हैं।

विकास के नाम पर व्यापक पैमाने पर विस्थापन हुआ है और आज भी जारी है। ऐसे में जरूरी है कि विकास परियोजनाओं का निर्माण इस तरह किया जाये कि विस्थापन कम से कम हो। विस्थापितों का समुचित विकास न हो पाने के कारण वे खाना-बदोश जीवन जीने को अभिशप्त हैं। विकास परियोजनाओं के समय विस्थापितों से जो वादे किये जाते हैं उन पर गंभीरता से काम किया जाना चाहिए। आज विकास के नाम पर व्यापक पैमाने पर खनन हो रहे हैं। जिससे आस-पास के क्षेत्रों में प्रदूषण का स्तर बढ़ा है। कई नई तरह की बीमारियां देखने में आयी हैं इसलिए जरूरी है कि आस-पास के लोगों को खदानों से दूर दूसरे स्थानों पर बसाया जाना चाहिए। कोशिश की जानी चाहिए कि विस्थापितों को उसी तरह का पर्यावरण उपलब्ध कराया जाय जैसे परिवेश में

वे पहले से रहते आए हैं।

संदर्भ :

1. जोशी, रामशरण, अरुण प्रकाश (अनु.), आदिवासी समाज और शिक्षा, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, 1997, पृ. 6
2. मिंज, सुनील, उजड़ता झारखंड, पृथ्वी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ. 9
3. वही, पृ. 21
4. मीणा, हरिराम, आदिवासी दुनिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2013 पृ. 142
5. कुमार, विनोद, समर शेष है, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2005, पृ. 166
6. कुमार, विनोद, रेड जोन, अनुज्ञा बुक्स, नई दिल्ली, 2015, पृ. 323
7. गुप्ता, रमणिका (संपा.), आदिवासी: विकास से विस्थापन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ. 13
8. कुमार, विनोद, रेड जोन, अनुज्ञा बुक्स, नई दिल्ली, 2015, पृ. 369
9. वही, पृ. 370
10. जैन, वीरेन्द्र, पार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, पृ. 35-36
11. वही, पृ. 123
12. डुंगडुंग, ग्लैडसन एवं कृष्ण, संजय, क्रॉसफायर, आदिवानी, कोलकाता, 2014, पृ. 14
13. वही, पृ. 14
14. गुप्ता, रमणिका (संपा.), आदिवासी: विकास से विस्थापन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ.73

❑❑❑

भारत सरकार की सार्वजनिक नीति एवं नीतिगत फैसले : 2014 के बाद

❍ चन्द्रभान[1]
❍ डॉ. जितेन्द्र बहादुर सिंह[2]

संक्षिप्ति :

सार्वजनिक नीति या लोकनीति में लोक का मतलब सरकार से है। अतः लोकनीति से तात्पर्य है सरकार द्वारा बनाई गई नीति। दूसरे शब्दों में जनता की विविध मांगों एवं कठिनाइयों का सामना करने के लिए सरकार को जो नीतियां बनानी पड़ती हैं उन्हें ही लोक नीतियां कहते हैं। लोकनीति अथवा 'सार्वजनिक नीति' वह नीति है जिसके अनुसार राज्य के प्रशासनिक कार्यपालक अपना कार्य करते हैं। बहुत से विचारकों का मत है कि लोक प्रशासन, लोकनीति को लागू करने और उसकी पूर्ति के लिए लागू की गयी गतिविधियों का योग है। सावर्जनिक नीति का अध्ययन अमेरिका के कई विश्वविद्यालयों में प्रमुखता से किया जाता है। सार्वजनिक नीति सामान्यतया अर्थव्यवस्था, पर्यावरण, शिक्षा, तकनीकी एवं सामाजिक नीतियों जैसे सामान्य शीर्षकों में वर्गीकृत की जाती है। सार्वजनिक नीतियां सूक्ष्म स्तर से वृहत स्तर तक अनेक पक्षों के साथ व्यवहार करती है। इसका संबंध चाहे आन्तरिक घरेलू पक्षों से हो या बाह्य विदेशी मामले से। घरेलू क्षेत्र में, सार्वजनिक नीतियां सूक्ष्म स्तर के किसी विशिष्ट गाँव पर ध्यान केन्द्रित कर सकती है या किसी विशिष्ट खण्ड या समुदाय से संबंधित हो सकती है।

भारत सरकार जन कल्याणकारी अनगिनत योजनाओं का संचालन करती है। योजना आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद एवं वित्त आयोग प्रत्येक वर्ष सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक योजनाओं का लक्ष्य निर्धारित करता है। ये योजनाएं महिला एवं बाल विकास, स्वास्थ्य, शिक्षा, सड़क, पेयजल, स्वच्छता, रोजगार, सामाजिक सुरक्षा आदि से संबंधित होती हैं। इन योजनाओं की सफलता लाभार्थियों की संख्या के आधार पर आंका जाता है। राजनीतिक प्रतिद्वंदी सरकार की इन्हीं योजनाओं के आधार पर आलोचना करते हैं।

बीज शब्द : सर्वजन हिताय, सामाजिक कल्याण, आर्थिक विकास, संप्रदायिकता, दलिया विरोध, असफलता, जनहितकारी, नीतिगत, प्रबंधन, शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक चुनौतियां, आर्थिक विभेद, सामाजिक विभेद, राजनीतिक विद्वेष, सामाजिक विषमता।

---

1. *शोधार्थी, असिस्टेंट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान, रमाबाई राजकीय महिला महाविद्यालय, अकबरपुर, अम्बेडकरनगर*
2. *शोध निर्देशक, एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान, पं० राम लखन शुक्ल राजकीय पी०जी०, कालेज, आलापुर, अम्बेडकरनगर।*

सार्वजनिक नीतियाँ क्या हैं :

सार्वजनिक नीतियां वह दिशानिर्देश होती हैं जो सरकार या सामाजिक संगठन द्वारा तय की जाती हैं और जनसामान्य के लिए मानव संसाधन, सामाजिक सुरक्षा, आर्थिक विकास, और सामाजिक न्याय के क्षेत्र में दिशा निर्देश करती हैं। ये नीतियां एक समृद्धि, सामाजिक समानता, और सामाजिक उत्थान की प्राप्ति के लिए योजनाएँ और निर्णय होती हैं। सार्वजनिक नीतियां कई विभिन्न क्षेत्रों में हो सकती हैं; जैसे कि,

1. *आर्थिक नीतियां* : इसमें समाज के आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने के लिए नीतियां शामिल होती हैं; जैसे कि आर्थिक सुरक्षा, निवेश, और व्यापारिक नीतियाँ।
2. *शिक्षा नीतियां* : शिक्षा के क्षेत्र में नीतियां शिक्षा की गुणवत्ता को बेहतर बनाने, सभी के लिए पहुंचाने, और शिक्षा के स्तर में सुधार करने की दिशा में होती हैं।
3. *स्वास्थ्य नीतियां* : स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच को बढ़ावा देने, बीमारियों की प्रोत्साहन और निवारण के लिए नीतियां तय की जाती हैं।
4. *सामाजिक सुरक्षा और कल्याण नीतियां* : इनमें गरीबी के खिलाफ लड़ाई, वर्गों के बीच समानता, और विकलांग व्यक्तियों के लिए सुविधाएँ शामिल होती हैं।
5. सुरक्षा, निवेश, और व्यापारिक नीतियां।
6. *पर्यावरण नीतियां* : प्रदूषण नियंत्रण, जलवायु परिवर्तन, और प्राकृतिक संसाधनों की संरक्षण के लिए नीतिगत मार्गदर्शन।
7. *सुरक्षा नीतियां* : राष्ट्रीय सुरक्षा, आतंकवाद के खिलाफ उपाय, और अंतरराष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा देने वाले नीतिगत कदम।

ये सार्वजनिक नीतियां समृद्धि और समाजिक समृद्धि के माध्यम से समाज को सशक्त बनाने का प्रयास करती हैं।

नीतिगत निर्णयों की प्रक्रिया :

नीतिगत फैसले लेने की प्रक्रिया एक विशेष दृष्टिकोण और योजना के साथ की जाती है। यहां कुछ मुख्य चरण दिए गए हैं जो नीतिगत फैसलों की प्रक्रिया का हिस्सा होते हैं:

1. समस्या की पहचान और विश्लेषण : पहले, किसी भी नीतिगत फैसले की शुरुआत उस समस्या की पहचान और विश्लेषण से होती है जिसका समाधान चाहिए। समस्या की समझ और महत्वपूर्ण तत्वों की पहचान इस चरण का हिस्सा होती है।
2. आवश्यकताओं की पहचान : समस्या के पीछे की आवश्यकताएँ पहचानना महत्वपूर्ण होता है। यह शामिल करता है कि किस प्रकार के समाधान या नीतिगत फैसले की आवश्यकता हो सकती है।
3. समाधान के विकल्प : समस्या को हल करने के विभिन्न विकल्पों का विचार करें। इसमें समाधान के प्रत्येक विकल्प के पूरे और विस्तृत विवरण शामिल होने चाहिए।
4. संभावित परिणामों का मूल्यांकन : प्रत्येक विकल्प के संभावित परिणामों का मूल्यांकन करें, जैसे कि उनके प्रभाव, लाभ, हानि, और सामाजिक पहलू।
5. नीतिगत विकल्प की चयन : सभी विकल्पों का मूल्यांकन करने के बाद, सबसे अच्छा और सामाजिक परिणामों वाला विकल्प चुनें।
6. नीतिगत फैसले का अमल : चयनित नीतिगत विकल्प को अमल में लाने के लिए योजना तैयार करें। इसमें कार्ययोजना, संसाधन, और क्रियान्वयन की प्रक्रिया शामिल होती है।
7. प्रबंधन और मॉनिटरिंग: नीतिगत फैसले के बाद, उनके प्रभाव का प्रबंधन और मॉनिटरिंग करते रहें,

और जरूरतानुसार सुधारात्मक कदम उठाएं।

8. सूचना एकत्रित करना : उपयुक्त सूचना और आंकड़े एकत्रित की जाती हैं, ताकि नीतिगत फैसलों के लिए सही दिशा में प्राथमिकताएँ तय की जा सकें।
9. नीति का विकास : एक बार जब समस्या की समझ और आवश्यकताएँ स्पष्ट हो जाती हैं, तो विभिन्न नीति विकल्पों का विकास किया जाता है। इसमें विभिन्न संभावित उपायों की विचार किया जाता है, योजनाएँ बनाई जाती हैं और आवश्यक कदम उठाए जाते हैं।

नीतिगत निर्णयों के समक्ष चुनौतियां :

भारत में नीतिगत फैसलों को लागू करते समय कई चुनौतियाँ सामने आ सकती हैं। कुछ मुख्य चुनौतियाँ निम्नलिखित हो सकती हैं:

1. सामाजिक विवाद : भारत एक विविध समाज और धार्मिक विशेषताओं का देश है, और कई बार नीतिगत फैसले धार्मिक और सामाजिक विवादों को उत्पन्न कर सकते हैं।
2. राजनीतिक समर्थन : नीतिगत फैसलों का राजनीतिक समर्थन प्राप्त करना भी एक चुनौती हो सकती है, क्योंकि विभिन्न दल और समूह विभिन्न मतभेदों के कारण विरोध कर सकते हैं।
3. कानूनी जटिलताएँ : नीतिगत फैसलों को कानूनी दृष्टिकोण से लागू करना भी कई बार जटिल हो सकता है, क्योंकि कानूनी प्रक्रियाएँ विभिन्न मामलों में अलग हो सकती हैं।
4. प्रभाव का मूल्यांकन : नीतिगत फैसलों के प्रभाव का सही तरीके से मूल्यांकन करना भी महत्वपूर्ण है। फैसलों के प्रभाव को समाज, अर्थशास्त्र, और पर्यावरणीय पहलुओं से मापना जरूरी होता है।
5. विकास और विकल्पों का मामूल्यांकन : नीतिगत फैसलों का विकास और विकल्पों के साथ मामूल्यांकन करना भी महत्वपूर्ण है। समाज की आवश्यकताओं और लक्ष्यों के साथ मेल करने वाले नीतिगत फैसलों का चयन करना आवश्यक होता है।
6. आर्थिक उत्कृष्टता : अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में विकास और समृद्धि की चुनौतियाँ हैं। बेरोजगारी, उच्च और नियमित मासिक आय, गरीबी, और असमान आय विभाजन जैसी समस्याएं हैं।
7. शिक्षा के क्षेत्र में सुधार: शिक्षा क्षेत्र में गुणवत्ता, पहुंच, और समान शिक्षा के अवसरों में सुधार की आवश्यकता है।
8. सामाजिक विभेद : भारत एक विविध सामाजिक संरचना वाला देश है और यहां समाज में विभिन्न जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्रों के बीच विभेद है। नीतिगत फैसलों में इस विविधता को मद्देनजर रखना और सभी समुदायों के हित को ध्यान में रखना मुश्किल हो सकता है।
9. आर्थिक चुनौतियां : भारत में गरीबी, बेरोजगारी और आर्थिक असमानता की समस्याएं हैं। नीतिगत फैसलों को इन मुद्दों के साथ मिलकर देखना और समाधान निकालना मुश्किल हो सकता है
10. पर्यावरण सुरक्षा : जलवायु परिवर्तन, जलसंसाधनों की अपव्यवस्था और वनस्पति-प्राणियों के लिए संरक्षण में चुनौतियां हैं। नीतिगत फैसलों में इन मुद्दों को समाहित करना महत्वपूर्ण है ताकि हमारे पर्यावरण का संरक्षण हो सके।
11. विविधता : भारत एक विविध समाज है जिसमें भाषा, धर्म, जाति, और सांस्कृतिक भिन्नताएं हैं। नीतिगत फैसलों में इन विविधताओं को समझना और समाहित करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है।
12. सामाजिक समस्याएं : भारत में गरीबी, जातिवाद, लिंग भेद, शिक्षा की कमी आदि जैसी सामाजिक समस्याएं हैं। नीतिगत फैसलों में इन समस्याओं का समाधान निकालना चुनौतीपूर्ण हो सकता है।
13. राजनीतिक विभाजन : भारत में राजनीतिक विभाजन भी एक चुनौती है, क्योंकि अलग-अलग पार्टियों

और समूहों के बीच में अक्सर विभिन्न मतभेद होते हैं।

14. अर्थव्यवस्था : अर्थव्यवस्था में सुधार करना और उद्यमिता को बढ़ावा देना भी एक चुनौतीपूर्ण कार्य हो सकता है।
15. विवादित मुद्दे : भारत एक विविध समृद्धि और सांस्कृतिक विरासत के साथ एक बड़ा देश है, जिसका मतलब है कि नीतिगत फैसलों पर विवाद और असहमति का संभावना होता है।
16. अनुमानित परिणाम : किसी नीतिगत फैसले के परिणाम अनुमानित रूप से नहीं हो सकते हैं, जो अगर गलत होते हैं तो उनका दुर्भाग्यपूर्ण प्रभाव हो सकता है।
17. संचित जानकारी की कमी: कई बार नीतिगत फैसलों की संचित जानकारी की कमी के कारण उन्हें पूरी तरह से समझने में परेशानी हो सकती है।
18. विकास और विकल्पों का मूल्यांकन: नीतिगत फैसलों का विकास और विकल्पों के साथ मामूल्यांकन करना भी महत्वपूर्ण है। समाज की आवश्यकताओं और लक्ष्यों के साथ मेल करने वाले नीतिगत फैसलों का चयन करना आवश्यक होता है

नीतिगत फैसलों को लागू करते समय ये चुनौतियाँ उत्पन्न हो सकती हैं, और सरकार को इन चुनौतियों का सही तरीके से सामना करना होता है।

भारत सरकार के प्रमुख सार्वजनिक नीतियां

भाजपा के नेतृत्व में एनडीए सरकार की कुछ महत्वाकांक्षी सार्वजनिक नीतियां हैं जो जनकल्याण को दृष्टि में लेकर ली गई।

1. प्रधानमंत्री आवास योजना (PMAY): इस योजना के तहत सरकार ने गरीब और गरीबी के अधीनस्थ लोगों के लिए वस्त्र और आवास की व्यवस्था करने का लक्ष्य रखा है।
2. आत्मनिर्भर भारत (Self-Reliant India) अभियान : यह अभियान भारतीय अर्थव्यवस्था को स्थायित करने और समृद्धि को प्रोत्साहित करने के लिए शुरू किया गया था।
3. स्वच्छ भारत अभियान : यह अभियान भारत सरकार द्वारा स्वच्छता और स्वच्छता की संरचना बनाने के लिए शुरू किया गया था।
4. जन धन योजना : इस योजना के तहत सरकार ने वित्तीय समावेशीकरण की प्रोत्साहन देने का लक्ष्य रखा है ताकि ज्यादातर लोग वित्तीय सेवाओं और खाता प्राप्त कर सकें
5. डिजिटल इंडिया : इस योजना के तहत सरकार ने तकनीकी रूप से सशक्त भारत की दिशा में कदम उठाने का लक्ष्य रखा है, जिसमें डिजिटल सुविधाओं का प्रदान किया जाता है।
6. प्रधानमंत्री आवास योजना (PMAY): इस योजना के तहत गरीब और असहाय लोगों को सस्ते आवास की प्राप्ति करवाई गई थी।
7. आयुष्मान भारत योजना (Ayushman Bharat Scheme): इस योजना के अंतर्गत गरीब और पिछड़े हुए लोगों को मुफ्त स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान की जाती थी।
8. जल शक्ति अभियान (Jal Shakti Abhiyan): इस अभियान के तहत जल संसाधनों की प्रबंधन और उपयोग में सुधार करने का प्रयास किया गया था।
9. नेशनल डिजिटल हेल्थ मिशन (National Digital Health Mission): इस मिशन के तहत डिजिटल हेल्थ आइडेंटिटी और डिजिटल हेल्थ रिकॉर्ड को प्रोत्साहित किया जाता है।
10. बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ (Beti Bachao, Beti Padhao): इस योजना के माध्यम से बेटियों के प्रति जागरूकता बढ़ाई जाती है और उनकी शिक्षा को प्रोत्साहित किया गया है।

11. नमामि गंगे प्रोजेक्ट (Namami Gange Project): यह प्रोजेक्ट गंगा नदी को साफ और अविरल बनाने का प्रयास करता है ताकि नदी का प्रदूषण कम हो और लोगों को स्वच्छ पानी प्राप्त हो सके।

सफल सार्वजनिक नीतियां[7] :

- उज्ज्वला योजना की शुरुआत 1 में 2016 को की गई थी जिसमें मुफ्त एलपीजी कनेक्शन दिए जा रहे थे। अप्रैल 2022 तक इसके तहत 9 करोड़ से ज्यादा एलपीजी कनेक्शन बीपीएल और एपीएल कार्ड धारकों को बांटे गए।
- जन धन योजना जिसकी शुरुआत 15 अगस्त 2014 को हुई अभी तक इसमें 48.99 करोड़ बैंक खाते खोले गए।
- प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना की शुरुआत 26 मार्च 2020 को हुई। इसके तहत 80 करोड़ कार्ड धारकों को प्रति यूनिट 5 किलो अनाज मिल रहा है। अब तक सरकार इस पर 5.91 लाख करोड़ रुपए खर्च कर चुकी हैं।
- प्रधानमंत्री किसान सम्मन निधि योजना की शुरुआत 24 फरवरी 2019 को हुई। इसके तहत सरकार किसानों के खाते में दो -दो हजार की तीन किस्तों में, वर्ष में 6000 जमा करती हैं। अब तक 12 किस्ते दी जा चुकी हैं।
- आयुष्मान योजना जिसके तहत गरीब परिवारों को 500000 तक का कैशलेस स्वास्थ्य बीमा गारंटी देता है।
- जल जीवन मिशन के तहत हर गर्ल जल योजना की शुरुआत 2023 में की गई। जिसमें हर परिवार को प्रति यूनिट 55 लीटर की दर से 2024 तक स्वच्छ जल उपलब्ध कराना लक्ष्य रखा गया है।

विवादित नीतिगत निर्णय : विपक्ष सत्तारुढ़ दल को कभी सड़क पर, तो कभी संसद में, दोनों प्लेटफार्म पर उसकी नीतियों को लेकर घेरता है। भारतीय जनता पार्टी सरकार की कुछ प्रमुख असफल सार्वजनिक नीतियां जिस पर विपक्ष हमेशा हमलावर रहा है –

1. स्टार्टअप इण्डिया योजना : यह योजना उद्योग और वित्तीय क्षेत्रों में सुधार के लिए थी, लेकिन कुछ समय बाद इसकी प्रभावकारीता पर सवाल उठे और यह कामकाज में असफल दिखाई दी।
2. डेमोनेटाइजेशन : 2016 में नोटबंदी के माध्यम से 500 और 1000 रुपये के नोटों को मान्यता से बर्दाश्त किया गया। यह कदम अपने उद्देश्य की पूरी नहीं कर पाया और व्यापारिक और आर्थिक असंतुलन पैदा हुआ।
3. GST प्रक्रिया में देरी : वस्तु और सेवा कर (GST) को लागू करने की प्रक्रिया में देरी की गई, जिससे व्यापारिक समुद्री उपायोगकर्ताओं को समस्याएँ उत्पन्न हुई।
4. व्यापारिक निवेश में कमी : कुछ सालों से भारत में व्यापारिक निवेश में गिरावट आई है, जो कुछ मामूली आर्थिक सेक्टरों को प्रभावित किया है।
5. कोविड-19 प्रबंधन : कोविड-19 महामारी के प्रबंधन में कुछ क्षेत्रों में सरकार का प्रतिक्रियाशीलता मान्य नहीं की गई, जिससे रोग प्रसार और उसके प्रभावों का प्रबंधन कठिन हुआ।
6. रोहिंग्या मुद्दा : सीमा प्रदेशों में रोहिंग्या शरणार्थियों के साथ व्यवहार के प्रति सरकार का दृष्टिकोण विवादित था, जिसने अंतरराष्ट्रीय सम्मान में कमी पैदा की।
7. सामाजिक सुरक्षा में कमी : कुछ क्षेत्रों में, जैसे कि स्वास्थ्य और शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा में कमी दर्ज की गई है, जिसने गरीब और वंचित वर्गों को प्रभावित किया है।
8. कृषि से संबंधित मुद्दे : किसानों के मुद्दों पर सरकार के प्रतिक्रियात्मक उपाय में कई बार चुक्ता हो

गया, जैसे कि कृषक बिल, एमएसपी, कृषि ऋण पर किसान आंदोलन 2020-2021 में।

9. वित्तीय स्थिति : अर्थव्यवस्था में दिक्कतों के कारण, बजट के लक्ष्यों की पूर्ति में दिक्कतें उत्पन्न हुई और वित्तीय स्थिति में सुधार करने में समय लगा।
10. आर्थिक चुनौतियां, पर्यावरण संरक्षण, लालफीताशाही, बढ़ती बेरोजगारी, विदेश नीति, सामाजिक अलगाव एवं सांप्रदायिक समस्या, धार्मिक मुद्दे।
11. उज्ज्वला योजना, मुद्रा योजना, फसल बीमा योजना, स्मार्ट सिटी मिशन, अग्नि वीर योजना, आयुष्मान योजना और इसके अलावा जितनी भी बचत योजनाएं थी जैसे- सुकन्या समृद्धि योजना, अटल पेंशन योजना, उस सरकार आए दिन ब्याज दर घटा रही हैं।

विपक्ष आज सरकार से उपरोक्त नीतियों के आलोक में ज्वलंत मुद्दों पर सांसद एवं सड़क पर सवाल कर रहा है जो अनुत्तरित है, वह इस प्रकार है[8] -

- सरकार ने हर साल दो करोड़ नौकरियाँ देने का वादा किया था, इस वादे का क्या हुआ?
- सरकार की ऐसी कौन सी योजना है जो सफल रही है?
- जम्मू कश्मीर में कब शांति स्थापित होगी? इसके लिए सरकार की क्या योजना है?
- विपक्ष में रहते हुए मोदी जी ने तब की सरकार पर भ्रष्टाचार के कई आरोप लगाए थे, उनमें किसी को सजा क्यों नहीं हुई?
- कोविड-19 के बाद सरकार ने प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं को बेहतर बनाने के लिए क्या किया है?
- सरकार जिस तरह स्मार्ट सिटी की बात करती है, उस तरह स्मार्ट गाँवों की बात क्यों नहीं करती?
- सरकार विदेशों से काला धन वापस लाने की बात कर सत्ता में आई थी, और वर्तमान स्थिति है कि स्विस बैंक में काले धन में और वृद्धि हो गई, तो इस दिशा में सरकार ने क्या काम किया।
- गौरक्षा, जाति हिंसा के नाम पर होने वाले मॉबलिंचिंग पर सरकार खुलकर निंदा क्यों नहीं करती। जबकि पीएम ने खुद एक जनसभा में कहा था कि 80% गौ रक्षक अपराधी है।
- मेक इन इंडिया, डिजिटल इंडिया, स्किल इंडिया, स्टार्टअप इंडिया से देश के युवाओं को कितना फायदा हुआ।
- नोटबंदी से सरकार ने क्या लक्ष्य हासिल किया उसके बताएं ?
- सरकार ने विदेशी पूंजी निवेश की बात कही थी, मोदी जी ने कई देशों का दौरा किया था, उसका आखिर क्या परिणाम निकला, कितना विदेशी निवेश आया?
- सरकार ने बड़े औद्योगिक घरानों को बहुत छूट और सहूलियत दी हैं लेकिन देश के गरीबों, किसने, नौकरीपेशा मध्यमवर्ग के लिए क्या किया है?
- सैनिकों और सुरक्षा बलों की सीमा पर लगातार हो रही हत्याओं को रोकने के लिए एवं उरी, पठानकोट, पुलवामा जैसे हमले पर सरकार क्या कर रही है?
- जल, जंगल और जमीन के अधिकार की मांग से उपजा नक्सलवाद की समस्या से निबटने के लिए सरकार क्या ठोस कदम उठा रही हैं?
- चीन का सियाचिन, गलवान वैली, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, लद्दाख के कुछ हिस्सों में बढ़ते अतिक्रमण और सीमा उल्लंघन पर उससे निबटने के लिए सरकार की क्या रणनीति हैं।
- स्वच्छ भारत मिशन में सिर्फ प्रचार हुआ या कुछ ठोस उपलब्धि भी हासिल हुई है?
- रेलवे भाड़ा में जिस प्रकार सरकार ने वृद्धि की है, उसी तरह नागरिक सुविधाओं और रेलवे विकास

में कुछ कर रही है।

- पड़ोसियों के साथ संबंध बिगड़ रहे हैं, नेपाल का झुकाव अब चीन की ओर है, सरकार इस दिशा में क्या कर रही है?
- क्या सरकार ने भ्रष्टाचार पर कुछ अंकुश लगा पाई है?
- दलितों के साथ लगातार हो रही हिंसा की घटनाओं को रोकने के लिए सरकार ने अब तक क्या किया है?
- अल्पसंख्यकों के मन में बढ़ रहे अविश्वास को खत्म करने के लिए सरकार ने अब तक कोई कदम क्यों नहीं उठाया है?
- मणिपुर में जातीय हिंसा पर सरकार का क्या प्लान, और क्या नीतियां बनाई जा रही हैं शांति स्थापना के लिए है।
- आर्थिक अपराधियों जैसे नीरव मोदी, विजय माल्या, मेहुल चौकसी, ललित मोदी आदि के प्रत्यर्पण के लिए सरकार क्या कर रही हैं।[१]

निष्कर्ष :

भारत सरकार ने कई सफलता वाली नीतियां अपनाई हैं; जैसे कि स्वच्छ भारत अभियान, आयुष्मान भारत, जन धन योजना, उज्जवला योजना, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ, और डिजिटल इंडिया अभियान। ये नीतियां समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने में मददगार साबित हुई हैं। विपक्ष और सरकार के बीच योजनाओं के विरोध के पीछे कई कारण हो सकते हैं। यह राजनीतिक और विचारात्मक मुद्दों पर आधारित हो सकता है, जिसमें प्रक्रियाशीलता, योजनाओं की प्राथमिकताएँ और वित्तीय दिशा शामिल हो सकती हैं। विपक्ष आमतौर पर सरकार के प्रदर्शन, नीतियों, और योजनाओं पर अपने विचार प्रकट करता है और विवादास्पद मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करता है। ऐसे विवाद सामाजिक और आर्थिक न्याय, विकास दर, और सामाजिक विचारों पर आधारित हो सकते हैं। मोदी सरकार को उसकी सफलता के कई कारण मिल सकते हैं, जिनमें कुछ निम्नलिखित हो सकते हैं। सरकार ने प्रशासनिक क्षमता में सुधार किए, सरकारी प्रक्रियाओं को संवेदनशील और प्रभावी बनाया, जिससे कि नीतियों की अमलीकरण में मदद मिल सके। विकास योजनाओं से सरकार ने विभिन्न क्षेत्रों में विकास के लिए योजनाएं बनाई और लागू की, जैसे कि 'स्वच्छ भारत अभियान', 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ', और 'आयुष्मान भारत'। अर्थव्यवस्था में सुधार: सरकार ने अर्थव्यवस्था में सुधार करने के लिए कई कदम उठाए, जैसे कि 'जन धन योजना', 'गुड्स एंड सर्विसीज टैक्स (जीएसटी)' का प्रारंभ करना। सरकार ने विभिन्न देशों के साथ अच्छे संबंध बनाए और विश्व में भारत की प्रतिष्ठा को बढ़ावा दिया। विभिन्न प्रौद्योगिकी उपायों को अपनाकर सरकार ने विभिन्न क्षेत्रों में नवाचार किए, जैसे कि आधार, उड़ान योजना, और डिजिटल भारत।

विपक्ष और सरकार के बीच योजनाओं के विरोध के पीछे कई कारण हो सकते हैं। यह राजनीतिक और विचारात्मक मुद्दों पर आधारित हो सकता है, जिसमें प्रक्रियाशीलता, योजनाओं की प्राथमिकताएँ और वित्तीय दिशा शामिल हो सकती हैं। विपक्ष आमतौर पर सरकार के प्रदर्शन, नीतियों, और योजनाओं पर अपने विचार प्रकट करता है और विवादास्पद मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करता है। ऐसे विवाद सामाजिक और आर्थिक न्याय, विकास दर, और सामाजिक विचारों पर आधारित हो सकते हैं।

References:

1. Kuldeep Mathur 111 Public Policy And Politics In India (Oip) Reprint edition- 26 october, 2015,chap.12. The Financial Sector, Financial Sector Development and Reforms, Eswar Prasad pg.181 Juggernaut (1 January, 2019)

2. Public Policy Analysis: An Introduction, chap.10, Administrative Reform in India: Policy Prescriptions and Outcomes publisher, Reprint edition- 26 october, 2015),pg.236
3. MODI@20: Dreams Meet Delivery Hardcover - 1 May 2022, Hardcover 14 April 2022, by Sudha Murty, Arvind Panaganya, S Jaishankar (Author), Sadhguru (Author) Nandan Nilekani (Author) & 3 More, Kindle Edition
4. Nine years of Modi government: What India witnessed & how its economy has changed For small & medium businesses who want to revolutionize their business with technology. ET Online Last Updated May 27, 2023, 03:37 PM IST
5. India Year Book 2023, Chapter 15, Food and Civil Supplies Chapter 16, Health and Family Welfare, Publisher-Publication Division (1 January 2023)
6. https://www.aajtak.in/New Delhi/19May2023
7. https://INDIA.GOV.IN
8. https://www.bbc.com/hindi/india/17MAY2017
9. https://www.outlookindia.com/PTI/1AUG2023

❑❑❑

एकल परिवार में रहने वाली शिक्षित कार्यरत महिलाओं के आय-व्यय की स्वतंत्रता पर शिक्षा का प्रभाव : एक अध्ययन

❍ अंकिता चतुर्वेदी[1]
❍ प्रो. (डॉ.) रैनु गुप्ता[2]

संक्षिप्ति :

एकल परिवार को एक आदर्श परिवार मानने तथा घर से बाहर दूसरे शहरों या राज्यों में नौकरी व्यवसाय लगने के कारण एकल परिवार को तेजी से प्रोत्साहन मिला है। परिवार, समाज और देश के विकास में नारी का बहुत बड़ा योगदान होता है लेकिन फिर भी आज हमारे देश में सबसे ज्यादा पतन नारी जाति का हो रहा है। हम सभी जानते हैं कि भारत देश पुरुष प्रधान देश है और वहां महिलाओं को रोक-टोक का सामना करना पड़ता है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य एकल परिवार में रहने वाली शिक्षित कार्यरत महिलाओं की आय-व्यय की स्वतंत्रता का अध्ययन करना है। यह शोध वर्णनात्मक सर्वेक्षण शोध प्रविधि पर आधारित है इस शोध के लिए मथुरा वृंदावन क्षेत्र के 36 वार्ड से साधारण यादृच्छिक विधि के माध्यम से केवल 100 महिलाओं का चयन किया गया है। आंकड़ों का एकत्रीकरण हेतु प्राथमिक (प्रश्नावली) एवं द्वितीयक स्रोत का उपयोग किया गया है। निष्कर्षों के आधार पर यह ज्ञात हुआ है एकल परिवार में रहने वाली शिक्षित कार्यरत महिलाएं आय -व्यय में अधिक स्वतंत्र पायी गयी हैं। शिक्षा का प्रभाव महिलाओं की स्वतंत्रता को बढ़ावा देता है व उनकी निर्णय लेने की क्षमता में वृद्धि करता है। शिक्षा का स्तर जितना उच्च पाया गया, महिलाओं में निर्णय लेने आय व्यय की स्वतंत्रता में भी वृद्धि पाई गयी।

बीज शब्द : एकल परिवार, शिक्षित महिलाएँ, शिक्षा, स्वतंत्रता, आय और खर्च।

प्रस्तावना

एकल परिवार का मूल नाम पूर्ण रूपेण गोपनीयता होती है एकल परिवार के अन्य लाभों में स्वतंत्रता के

1. *Ankita chaturvedi, Research scholar, School of Education, Sanskriti University, Mathura.*
2. *Prof. (Dr.) Rainu Gupta, Dean, School of Education, Sanskriti University Mathura.*

विशिष्ट भावना शामिल है जो एक एकल परिवार को अपनी इच्छा के अनुसार जीवन जीने की क्षमता देती है। यह परिवार को पहले अन्य सयुक्त परिवारों से दूर रखता है जो असुविधा से तनाव मै बसते हैंद्य और वे आमतौर पर अच्छी तरह से आर्थिक रूप से संचालित परिवार होते हैं।

यह तो सत्य है कि किसी व्यवसाय में सक्रिय होने पर महिलाओं में दोहरी भूमिका का निर्वाह करना पड़ता है। परंपरागत रूप से जो अपेक्षाएं महिलाओं से की जाती हैं उन पर खरा उतरना तो वांछित है ही साथी ही आर्थिक रूप से परिवार को सहयता प्रदान करने हेतु अपने व्यवसाय में निपुणता प्राप्त कर ऊँचाईयों पर पहुंचना भी अनिवार्य हो जाता है ऐसे में पुरुष प्रधान समाज में अपना अस्तित्व बनाये रखने हेतु उसे पुरुषों से अधिक कार्य कर यह सिद्ध कर रहा होता है कि वह किसी भी क्षेत्र में पीछे नहीं है गत दो-तीन दशकों में शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु प्रयासों में तेजी आई है जिनका कुछ प्रभाव भी दिखाई देने लगा है, परंतु महिलाओं के प्रति अभी हमारी सोच वही पुरानी है महिलाएँ जहां एक ओर घर की चहारदीवारी से बाहर निकलकर धन कमा रही है वहीं दूसरी ओर उनकी कड़ी मेहनत व परिश्रम से अर्जित किये जाने वाले धन अर्थात उनके वेतन पर उनका अपना कोई अधिकार नहीं है।

साहित्य समीक्षा :

खरे, डॉ. शिखा (2022) **:** संयुक्त परिवार में रहने वाली और एकल परिवार में रहने वाली कामकाजी महिलाओं का अध्ययन किया गया है। आकड़ों के विश्लेषण के परिणामों से पता चलता है कि संयुक्त परिवार में रहने वाली कामकाजी महिलाओं की तुलना में एकल परिवार की कामकाजी महिलाओं को अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त है।

डॉ. अमिता श्रीवास्तव (2022) **:** इन्होंने अपने अध्ययन संयुक्त और एकल परिवार के संदर्भ में महिलाओं के विचारों पर अध्ययन किया अध्ययन में पाया गया कि समाज में होने वाली आर्थिक सामाजिक और शास्त्रीय सांस्कृतिक विघटन किसी न किसी रूप में परिवार और समाज के सदस्यों को प्रभावित करते हैं।

फहद साकिब लोधी, उनैब रब्बानी, आदिल अहमद खान (2021), संयुक्त और एकल परिवारों के बीच जीवन की गुणवत्ता से जुड़े कारक **:** जनसंख्या आधारित अध्ययन यह सूरत परिवारों की जीवन की गुणवत्ता की जांच करने के लिये किया गया है। इससे ज्ञात होता है कि संयुक्त एवं एकल परिवार में रहने वाली महिलाओं का जीवन प्रभावित होता है एकल परिवार में रहने वाली महिलाएँ संयुक्त परिवार में रहने वाली महिलाओं से अधिक स्वतंत्रता महसूस करती हैं।

*शिवानी (2020)***:** अपनी शोध पत्र में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा एवं महिला अधिकार का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन से यह निष्कर्ष ज्ञात हुआ है कि महिलाओं के प्रति होने वाली हिंसा को बढ़ाने में अशिक्षा सुरक्षा संबंधित अधिकारों की कमी मादक पदार्थो का दुरुपयोग आदि कारण है।

*एक मढ़ी हंसपाल (2019)***:** अपनी शोध महिला शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति एवं जागरूकता के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि अनेकों स्त्रियां स्वयं शिक्षा के प्रति उदासीन होती हैं। पढ़ाई के प्रति जैसे तैसे खान पूर्ति करती है। स्त्रियों पर घरेलू उत्तरदायित्व होने के कारण वे चाहकर भी पढ़ लिख जाने के बाद ही व्यवसाय व नौकरी नहीं कर पातीं। पूर्व शिक्षा मंत्री डॉ. वी.के. राव ने सुझाव दिया है कि स्त्रियों को नौकरी प्रारंभ करने की आयु 40 से 45 होनी चाहिए।

अध्ययन का उद्देश्य

"एकल परिवार में रहने वाली शिक्षित कार्यरत महिलाओं को आय खर्च करने की स्वतंत्रता पर शिक्षा के प्रभाव का अध्ययन करना है।"

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध वर्णनात्मक (सर्वेक्षण) शोध प्रविधि पर आधारित है। वर्णनात्मक शोध का मुख्य उद्देश्य वर्तमान दशाओ, क्रियाओं, अभिवृत्तियों तथा स्थिति के विषय में ज्ञान प्राप्त करना होता है।

अध्ययन का क्षेत्र एवं जनसंख्या

शोध अध्ययन का कार्य क्षेत्र उत्तर प्रदेश राज्य के मथुरा वृंदावन क्षेत्र से संबंधित है। यह नगर पालिका परिषद द्वारा संचालित नगर है।

न्यादर्श विधि

देव निर्देशन की सुविधात्मक विधि के आधार पर शोधार्थी ने वार्ड संख्या 36 से 500 परिवारों में से केवल 100 परिवारों का चयन कियाद्य साधारण यादृच्छिक विधि के द्वारा महिलाओं का चयन किया जिनमें से एकल परिवार में रहने वाली 100 शिक्षित कार्यरत महिलाओं को चुना गया।

शिक्षित एकल परिवार में रहने वाली महिलाओं की आयु का स्तर 25 से 55 वर्ष के मध्य था।

आंकड़ों का एकत्रीकरण एवं विश्लेषण :

तथ्यों को एकत्र करने के लिए प्राथमिक स्रोत में प्रश्नावली एवं दित्तीय स्रोत में पाठ्य पुस्तकें, समाचार पत्र, एवं पत्रिकाएं आदि के उपयोग द्वारा आंकड़ों का एकत्रीकरण किया गया है। शोधार्थी द्वारा चयनित 12 कथनों की प्रश्नावली के प्राप्त उत्तरों को निम्न तालिका द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

सांख्यिकीय विधि : इस शोध पत्र में डेटा का विश्लेषण करने के लिए सामान्य प्रतिशत विधि का प्रयोग किया गया है।

एकल परिवार में रहने वाली शिक्षित कार्येरत महिलाओं को आय-व्यय की स्वतंत्रता के मतों का विवरण

क्रम सं.	कथन	पूर्णतया सहमत	असहमत	पता नहीं	सहमत	पूर्णतया सहमत
1	आप अपनी पूरी आय पति को सोंप देती है।	60 (60%)	20 (20%)	0 (0%	10 (10%)	10 (10%)
2	आपको अपनी आय का ब्योरा पति द्वारा माँगना उचित प्रतीत होता है।	(70) (70%)	20 (20%)	5 (5%)	0 (0%)	5 (5%)
3	आप परिवार मै बच्चो के उज्जवल भविषय की योजना हेतु निवेश के लिए पति से पूर्वनुमति लेती है।	20 (20%)	15 (15%)	5 (5%)	40 (40%)	20 (20%)
4	सामाजिक संबंधों को मधुर बनाए रखने हेतु उपहार पुरस्कार व अनावश्यक वस्तुये आप द्वारा स्वयं की इच्छा से क्रय की जाती है।	20 (20%)	30 (30%)	10 (10%)	25 (25%)	15 (15%)
5	परिवार में जमीन जायदाद संबंधी बड़े निर्णय आप अपनी आय से स्वतंत्र रूप से लेते हैं।	27 (27%)	17 (17%)	6 (6%)	20 (20%)	30 (30%)
6	आप सुरक्षित भविष्य की योजना के लिए पूछ पूछ कर पैसा जोड़ती है।	40 (40%)	20 (20%)	2 (2%)	26 (26%)	12 (12%)
7	आप परिवार में छोटे छोटे खर्चे अपनी आय से करने के लिए बार-बार पति से पूर्व अनुमति लेती हैं।	34 (34%)	37 (37%)	5 (5%)	21 (21%)	3 (3%)

8	बदलते दौर के अनुसार वस्त्र परिधान की खरीदारी अपनी आय से करने के लिए आपको पूरी स्वतंत्रता है।	6 (6%)	24 (24%)	0 (0%)	40 (40%)	30 (30%)
9	कार्यालय सहकर्मियों के बीच होने वाले सामान्य खर्चे करने के लिए आप पूर्णतया स्वतंत्र है|	10 (10%)	15 (15%)	3 (3%)	34 (34%)	38 (38%)
10	आप अपने उच्च अध्ययन हेतु स्वेच्छा से अपनी आय खर्च कर सकती हैं।	9 (9%)	19 (19%)	8 (8%)	33 (33%)	26 (26%)
11	साधन सुविधाएं जो कार्यरत महिलाओं के कार्य को सुगम बनाये ऐसी वस्तुएं अपनी आय से खरीदने हेतु आप स्वतंत्र है।	17 (17%)	15 (15%)	0 (0%)	30 (30%)	38 (38%)
12	क्या आपको परिवार में मायके के संबंधों के निर्वाह के लिए अपनी आय मे से खर्च करने की स्वतंत्रता है?	14 (14%)	(27 (27%)	8 (8%)	23 (23%)	28 (28%)

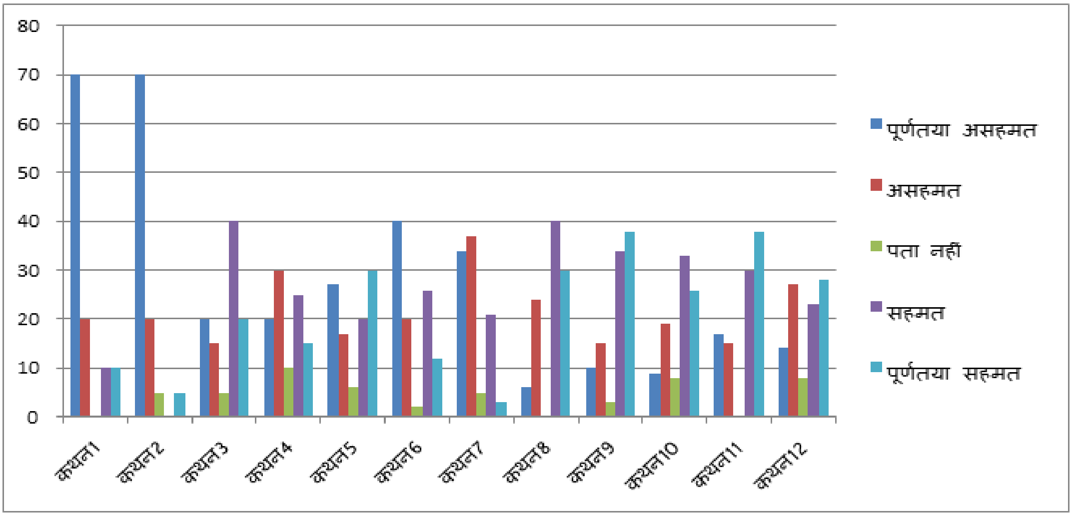

परिणाम एवं व्याख्या

शोधार्थी ने प्रश्नावली के द्वारा एकल परिवार में रहने वाली शिक्षित कार्यरत महिलाओं में आय खर्च करने से संबंधित विचारों का अध्ययन करने के लिए विभिन्न कथनों का प्रयोग किया है। प्रथम कथन के अनुसार 60 प्रतिशत महिलाओं का मत है कि वह अपनी आय की देखरेख खुद करती हैं जबकि 20% महिलाएँ यह मानती हैं की उनकी आय पर उनका कोई अधिकार नहीं है वही 70% महिलाओं का मानना है कि पति द्वारा उनकी आय का विवरण मांगना उन्हें उचित प्रतीत नहीं होता है वहीं दूसरी ओर 20% महिलाओं को इससे कोई आपत्ति नहीं है।

एकल परिवार में रहने वाली 35% महिलाएँ सुरक्षित बीमा योजना के लिए अपने पति से अनुमति लेना पसंद नहीं करती वही निम्न शिक्षित एकल परिवार की 65% महिलाएं अपने पति की सहमति से ही बच्चों उज्ज्वल भविष्य की योजना के लिए निर्णय लेती है। वहीं दूसरी ओर परिवार में जमीन जायजात से संबंधित 50% महिलाएँ

उच्च शिक्षित महिलाये निर्णय लेने में स्वतंत्र हैं। वहीं 50% वे महिलाएं जो निर्णय लेने से पहले पति से अनुमति की आवश्यकता होती है।

अपनी सुरक्षित भविष्य की योजना के लिये उच्च शिक्षित एकल परिवार में रहने वाली 60% महिलाएँ अपनी निर्णय लेने में स्वतंत्र हैं वहीं 40% महिलाएँ निर्णय स्वतंत्र रूप से लेने में असमर्थ हैं।

38% महिलाएँ जो अपने परिवार से संबंधित छोटे मोटे खर्चे करने में पूर्ण स्वतंत्र नहीं है जबकि 62% महिलाएं परिवार के छोटे मोटे खर्चे अपनी आय से करने में पूर्णता स्वतंत्र हैं।

बदलते दौर के अनुसार वस्त्र परिधान की खरीदारी के लिए 70% शिक्षित महिलाएँ अपनी आय को खर्च करने के लिए स्वतंत्र हैं वहीं 30% शिक्षित महिलाएँ खर्च करने से पूर्व अनुमति लेना जरूरी समझती हैं।

72% एकल परिवार में रहने वाली शिक्षित कार्यरत महिलाएँ अपने कार्यालय स्तर पर होने वाले खर्चों के लिये पूर्ण रूप से अपनी आय से खर्च करने में स्वतंत्र है। वही 28% महिलाएँ एकल परिवार में रहने वाली शिक्षित महिलाएँ अपनी आय से खर्च करने में स्वतंत्र नहीं हैं अपनी आगे की शिक्षा को प्राप्त करने हेतु एकल परिवार में रहने वाली 28% महिलाएँ पूर्णता स्वतंत्र नहीं हैद्य वहीं दूसरी ओर 69 प्रतिशत महिलाएँ अपने उच्च अध्ययन करने हेतु पूर्णता स्वतंत्र हैं।

अपने मायके के संबंधों को निभाने के लिये अपने पैसे खर्च करने के लिये एकल परिवार में रहने वाले कार्यरत महिलाये 51% स्वतंत्र हैं द्यवही 49 प्रतिशत वे महिलाये जो स्वतंत्रता का अभाव महसूस करती हैं।

निष्कर्ष:

प्रस्तुत शोध अध्ययन समग्र रूप से अंतिम निष्कर्ष पर पहुंचने पर यह ज्ञात होता है कि एकल परिवार में रहने वाली कार्यरत महिलाओं के आय-व्यय की स्वतंत्रता पर शिक्षा का प्रभाव पड़ता है। महिलाओं में अपनी नौकरी व व्यवसाय को पूरा महत्व देती हैं; जैसे-जैसे महिलाओं की शिक्षा का स्तर बढ़ता है, वैसे-वैसे महिलाएँ उच्च पद पर कार्यरत होने में समर्थ होती हैं। वह अपने निर्णय लेने और अपनी आय को स्वतंत्रता पूर्वक खर्च करने में पूर्णतया स्वतंत्र होती हैं शिक्षा का सार्थक प्रभाव महिलाओं की स्वतंत्रता पर देखा जा रहा है। जैसे जैसे महिलाएँ शिक्षित होती है वैसे वैसे वह अपने निर्णय लेने एवं अपनी आय को खर्च करने में भी पूर्णतया स्वतंत्र होती हैं। शिक्षा का स्तर जितना बढ़ता जाता है महिलाओं की स्वतंत्रता का स्तर भी बढ़ता जाता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता हैं कि एकल परिवार में रहने वाली निम्न शिक्षित कार्यरत महिलाओ की तुलना में उच्च शिक्षित महिलाएँ अपनी आय को खर्च करने के लिये आधिक स्वतंत्र है। अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि एकल परिवार की कार्यरत महिलाएँ अपने व अपने व बच्चों से संबंधित खर्चों पर अपनी आय से खर्च करने के लिए भी पूर्णतय स्वतंत्र है।

सन्दर्भ :

- Dr Amita Srivastava (2022) संयुक्त तथा एकल परिवार में महिलाओं के विचारों का अध्ययन
- International Journal of Advance and Applied Researcwww.ijaar.co.in ISSN –2347-7075 Impact Factor 7.328 www.ijaar.co.in
- Khare ,shikha 2022) **A Comparative Study of Working Women's Decision Making Related to Their Personal Activities in Joint and Nuclear © 2022 IJCRT | Volume 10, Issue 3 March 2022 | ISSN: 2320-2882**
- Khare, S (2021). Impact of women's education on decision making regarding http://doi.org/10.37398/JSR.2021.650424
- Mahendra Pal Singh*, Sarita Kushwah (2020) महिला कर्मचारियों की सामाजिक रूपरेखा के बारे में

समझने के लिए अध्ययन http://ignited.in/I/a/306380Year: Oct,2020Volume: 17/ Issue: Pages:018 - 1023 (6)Publisher: Ignited Minds JournalsSource:E-ISSN: 2230-7540

- सारथी कुमारी.(2020). महिला शक्तिकरण मै शिक्षा की भूमिका.https://www.allstudyjournal
- कटारा,डॉ अम्बालाल,(2019)। Role of Working Women in the Context of Empowerment Rights : A Study of Rajasthan. http://shisrrj.com/paper/SHISRRJ19225.pd
- डॉ अनीता जोशी (2017). वर्तमान भारत मै महिलाओ की समाजिक ओर आर्थिक स्थित. https://andjournalin.files.wordpress.com/2018/08/2017b
- DR. RASHMI GAUTAM.(2017). भारत की कामकाजी महिलाओं की समस्या का विशलेशण। **http://www.irjmsh.com/Artical_details?**

❑❑❑

उत्तराखंड के लोक संगीतज्ञ समाज की बदलती व्यावसायिक परंपराएँ

❍ रविन्द्र कुमार स्नेही[1]
❍ प्रो. गीताली पडियार[2]

संक्षिप्ति :

भारत के उत्तर में अवस्थित देव भूमि उत्तराखण्ड सदियों से कुछ विशिष्ट लोक सांस्कृतिक परम्पराओं का द्योतक रहा है। लोक संगीत एवं दैव परम्पराओं के सजग प्रहरियों के रूप में उत्तराखण्ड हिमालय के ग्रामीण अंचलों में विद्यमान अवाजी (औजी), बेड़ा, हुड़क्या, ढ़ाकी, मिरासी, नाथ जैसे अन्य कई समुदायों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इन समुदायों ने सदियों से उत्तराखण्ड के लोक संगीत को पोषित करने का कार्य किया है। उत्तराखण्ड का लोक मानस आज भी पर्व-उत्सवों एवं मेले-त्योहारों के आयोजन पर कुछ विशिष्ट लोक संगीतिक परम्पराओं का निर्वहन करता है। यहाँ तक कि दैनिक जीवन में भी लोक संगीत (विशेषकर लोक वाद्य यंत्रों) की विशिष्ट भूमिका देखने को मिलती है अर्थात यह कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि उत्तराखण्ड का लोक जीवन लोक संगीत के बिना अधूरा है। उत्तराखण्ड में अन्य समुदायों की भांति ही लोक संगीतज्ञ समुदायों में भी जनांकिकीय परिवर्तन देखने को मिलता है, जिसका प्रभाव उनके दैनिक जीवन और व्यावसाययिक परम्पराओं पर स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में उत्तराखण्ड के लोक संगीतज्ञ समाज की बदलती व्यावसायिक परम्पराओं का अध्ययन किया गया है।

बीज शब्द: जनांकिकी, जनसंख्या वृद्धि, लोक संगीत, संगीतज्ञ समाज, व्यावसायिक परम्परा।

प्रस्तावना:

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में छोटे-छोटे समूहों व समुदायों में विभक्त मानव जाति की मात्रात्मक संरचना ही जनसंख्या कहलाती है। इस मात्रात्मक संरचना में जन्म, मृत्यु एवं प्रवास के कारण भिन्न-भिन्न परिवर्तन परिलक्षित होते हैं। परिवर्तन के इस अध्ययन के लिए जिस सुव्यस्थित तकनीक को प्रयोग में लाया जाता है उसे जनसांख्यिकी या जनांकिकी कहते हैं'। पोस्टन एवं बॉवियर ने अपनी पुस्तक "Population and Society: An Introduction to Demography" में लिखा है कि जनांकिकी मानव जनसंख्या के आकार, वितरण और संरचना तथा प्रजनन, मृत्यु दर एवं प्रवास के कारण हुए परिवर्तन का व्यवस्थित अध्ययन है। (Poston & Bouvier, 2010)

1. *शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, हे०न०ब० गढ़वाल विश्वविद्यालय (केन्द्रीय विश्वविद्यालय), स्वामी राम तीर्थ परिसर बादशाहीथौल, टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड।*
2. *विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, हे०न०ब० गढ़वाल विश्वविद्यालय (केन्द्रीय विश्वविद्यालय), स्वामी राम तीर्थ परिसर बादशाहीथौल, टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड।*

भारत में जाति आधारित सामाजिक व्यवस्था देखने को मिलती है जिसमें जातियों का विभाजन कार्यों के आधार पर किया गया है। भारत में संगीत एक व्यवसाय के रूप देखने को मिलता है जिसमें गीत, नृत्य एवं वाद्य नाम की तीन विधाएँ सम्मिलित हैं। सम्पूर्ण भारत वर्ष में लोक संगीत की इन विधाओं को सदियों से कुछ विशेष जाति के लोगों द्वारा ही पोषित किया गया है। वहीं उत्तराखण्ड में लोक संगीत को सींचने का कार्य अवाजी (औजी), बेड़ा, हुडक्या, ढाकी एवं मिरासी आदि उपजातियों के द्वारा किया गया है(बहुगुणा एवं रावत, 2012)। बढ़ती जनसंख्या एवं भौतिकवादी जीवन शैली का लोक समाज के पारम्परिक व्यवसायों पर बहुत हद तक प्रभाव देखने को मिलता है। भारत में जनसंख्या वृद्धि सदियों से गतिमान रही है जिसके लिए निरक्षरता, दरिद्रता, बाल विवाह, असुरक्षित यौन सम्बन्ध एवं मादक पदार्थों का सेवन जैसे कुछ महत्वपूर्ण कारक विशेष रूप से उत्तरदायी रहे हैं। सामान्य वर्ग की अपेक्षा अनुसूचित वर्ग में इन कारकों के प्रतिशत में कुछ वृद्धि देखने को मिलती है। परिणामस्वरूप इन वर्गों में जनसंख्या अस्थिरता निरन्तर बनी रहती है। जिस कारण इनके पारम्परिक व्यवसायों में अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं।

साहित्य का पुनरावलोकनः

सहारिया आर० पी० (2014) ने भारत में जनांकिकीय प्रवृत्तियों एवं उनके प्रभाव का अध्ययन किया। जिसका मुख्य उद्देश्य जनसंख्या वृद्धि दर एवं साक्षरता के मध्य सम्बध का अध्ययन करना है। इन्होंने अपने अध्ययन में पाया है कि साक्षरता का जन्मदर से सीधा सम्बन्ध है। जिस समाज व क्षेत्र में शिक्षा का स्तर निम्न होता है, वहाँ जन्मदर अधिक एवं जिन समाज व क्षेत्र में शिक्षा का स्तर अधिक है, वहाँ जन्मदर कम होती है। अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों में शिक्षा का प्रतिशत कम होने के कारण ही परिवार का आकार बड़ा दिखाई देता है।

सेठी अर्चना (2019) ने अपने एक शोध अध्ययन में अनुसूचित जनजातियों की जनांकिकीय प्रवृत्तियों एवं आर्थिक विकास पर उनके प्रभावों का अध्ययन किया। जनगणना 2001 एवं 2011 के समांकों का प्रयोग कर आप इस परिणाम पर पहुँची हैं कि जनजातियों के आर्थिक पिछड़ेपन के लिए जनांकिकी प्रवृत्तियाँ भी एक कारण हैं। जिसमें साक्षरता की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है यही कारण है कि अभी भी सामान्य एवं अनुसूचित जनजातियों की साक्षरता में 14.03 प्रतिशत का अन्तर है।

बहादुर राज (2021) ने जौनपुर नगर की बढ़ती जनसंख्याः कारण, प्रभाव एवं निवारण विषय पर अपना अध्ययन प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत शोध अवलोकन प्रविधि एवं द्वितियक तथ्यों पर आधारित है। शोधकर्ता शोध निष्कर्ष में लिखते हैं कि अत्यधिक जनसंख्या वृद्धि सामाजिक, प्रशासनिक एवं पर्यावरणीय समस्याओं को जन्म देती है। नियोजित विकास के लिए गाँवों से नगरों की तरफ होने वाले पलायन को रोकने की अत्यन्त अवश्यकता है।

शर्मा, सुरेश (2021) का इस वर्ष 24 फरवरी को हिमाचल प्रदेश के प्रसिद्ध समाचार पत्र दिव्य हिमालय में प्रकाशित लेख 'कला-संस्कृति, सरकार एवं दरकार' में लिखा है कि लोक कलाओं को ढो रहे परम्परागत और पुश्तैनी कलाकारों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। विभिन्न कलाओं को आगे बढ़ाने में समाज के सभी धर्मों, वर्गों और जातियों का योगदान रहता है। प्रदेश के अनेक कलाकार आज भी विभिन्न कलाओं के माध्यम से परिवारिक जीवन-यापन तथा भरण पोषण के लिए संघर्षरत हैं, किन्तु कार्य की गौणता, उचित पारिश्रमिक तथा उचित सम्मान न मिलने के कारण कई पेशेवर तथा स्थानीय कलाकारों ने अपने परम्परागत व्यवसायों से मुँह मोड़ लिया है। इसलिए इन्हें आर्थिक संरक्षण दिए जाने की नितान्त आवश्यकता है साथ ही प्रदेश में विभिन्न कलाकारों एवं कलाओं के संरक्षण, संवर्धन तथा सांस्कृतिक विकास के उद्देश्य से प्रदेश में एक मजबूत सांस्कृतिक नीति की आवश्यकता है।

बहादुर राज (2021) ने जौनपुर नगर की बढ़ती जनसंख्या, कारण, प्रभाव एवं निवारण विषय पर अपना अध्ययन प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत शोध अवलोकन प्रविधि एवं द्वितीयक तथ्यों पर आधारित है। शोधकर्ता शोध निष्कर्ष में लिखते हैं कि अत्यधिक जनसंख्या वृद्धि सामाजिक, प्रशासनिक एवं पर्यावरणीय समस्याओं को जन्म देती है। नियोजित विकास के लिए गाँवों से नगरों की तरफ होने वाले पलायन को रोकने की अत्यन्त अवश्यकता है।

अध्ययन की आवश्यकता:

उपरोक्त साहित्य के पुनरावलोकन से स्पष्ट होता है कि जनांकिकी परिवर्तन से प्रशासन, अर्थव्यवस्था, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं पर्यावरण बहुत हद तक प्रभावित होता है। इसलिए शोधकर्ता ने अध्ययन हेतु 'उत्तराखण्ड के लोक संगीतज्ञ समाज की बदलती व्यावसायिक परम्पराएँ' विषय का चयन किया है क्योंकि जिन समुदायों के कौशल से समाज में हर्ष एवं विषाद दोनों समान रूप से जुड़े हुए हों उन समुदायों की जनांकिकी का अध्ययन अपने आप में ही एक महत्वपूर्ण विषय बन जाता है।

शोध के उद्देश्य :

1. उत्तरदाताओं की जनांकिकी का अध्ययन करना।
2. लोक संगीतज्ञ समाज की बढ़ती जनसंख्या का उनके पारम्परिक व्यवसायों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना।
3. उत्तरदाताओं की शिक्षा एवं व्यवसाय में पाये जाने वाले सम्बन्धों का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि :

प्रस्तुत शोध अध्ययन विवरणात्मक अनुसंधान प्रचना पर आधारित है। अध्ययन विषय के समग्र के रूप में उत्तराखण्ड राज्य के जनपद टिहरी गढ़वाल के चम्बा विकासखण्ड का चयन किया गया है जो कि 437. 27 वर्ग किमी० में फैला हुआ है (शाह, 2018)। चयनित विकासखण्ड में 223 गाँव हैं जिसकी कुल जनसंख्या 51409 है (Census of India 2011)। शोध क्षेत्र के गाँवों में लोक संगीतज्ञ समाज की बसागत पूर्व में ज्ञात न होने के कारण शनैः शनैः बढ़ने वाले प्रतिदर्श (Snowball Sampling) को प्रयोग में लाया गया है। प्राथमिक तथ्यों के संकलन हेतु अवलोकन एवं साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक तथ्यों के आधार पर उत्तराखण्ड हिमालय के लोक संगीतज्ञ समुदाय के लोग विकासखण्ड चम्बा के 62 गाँवों में निवास करते है और अपनी इस कला के माध्यम से समाज में विद्यमान अनेक प्रकार की सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं का निर्वहन कर रहे हैं। शोध विषय हेतु विकासखण्ड चम्बा के छः गाँवों क्रमशः नवागर, केमवाल गाँव, लामकोट, कुठ्ठा, मुड्या गाँव एवं चोपडियाल गाँव में निवास करने वाले 30 परिवारों के 127 उत्तरदाताओं से शोध से सम्बन्धित प्राथमिक तथ्यों का संकलन किया गया है।

विश्लेषण:

उत्तराखण्ड राज्य में 65 अनुसूचित जातियाँ है जो भारत सरकार में पंजीकृत हैं (Ministry of Social Justice and Empowerment Government of India, 2022) जिसमें से एक जाति शिल्पकार है। शिल्पकार उत्तराखण्ड के पहाड़ी क्षेत्र में निवास करने वाली लगभग 30 से 35 अनुसूचित जातियों का एक मिश्रण है। इन जातियों का एकीकरण वर्ष 1925 में श्री हरिप्रसाद टम्टा के नेतृत्व में संचालित 'शिल्पकार आन्दोलन' के परिणामस्वरूप 1930 में किया गया था (प्रद्योत, भट्ट, कुकसाल, 2012)। अन्य अनुसूचित जातियों की भान्ति ही शिल्पकार जाति में लोक संगीतज्ञ समाज के लोग भी सम्मिलित है। उत्तराखण्ड के पहाड़ी परिवेश में अवाजी (औजी), बेड़ा, हुड़क्या, ढाकी एवं मिरासी आदि समुदायों को लोक कला व संगीत वाहक के रूप में जाना

जाता है। इन सभी समुदायों में सबसे अधिक जनसंख्या अवाजी (औजी) समुदाय के लोगों की है जो अनुसंधान क्षेत्र के लगभग एक तिहाई गाँवों में निवास करते हैं। इसके बाद भी इस समुदाय के लोगों की संख्या 90 प्रतिशत गाँवों में नहीं के बराबर देखने को मिलती है।

तालिका: 1

जनसंख्यात्मक वितरण

क्र. सं.	इकाई	कुल जनसंख्या			अनुसूचित जाति की कुल जनसंख्या		
		1991	2001	2011	1991	2001	2011
1	भारत	84,64,21,039	1,02,87,37,436	1,21,01,93,422	13,82,23,277	16,66,35,700	20,13,78,372
2	उत्तराखण्ड	70,50,634	84,89,349	1,01,16,752	12,32,316	15,17,186	18,92,516
3	टिहरी गढ़वाल	5,20,256	6,04,747	6,18,931	82384	87325	1,02,130

स्त्रोत: जनगणना आंकड़े , 1991, 2001 एवं 2011

तालिका: 2

जनसंख्या वृद्धि दर

क्र. सं.	इकाई	कुल वृद्धि दर		अनुसूचित जाति में वृद्धि दर	
		1991-2001	2001-2011	1991-2001	2001-2011
1	भारत	21.54	17.64	20.55	20.85
2	उत्तराखण्ड	20.41	19.17	23.12	24.74
3	टिहरी गढ़वाल	16.24	2.35	5.99	16.95

स्त्रोत: जनगणना आंकड़े , 1991, 2001 एवं 2011

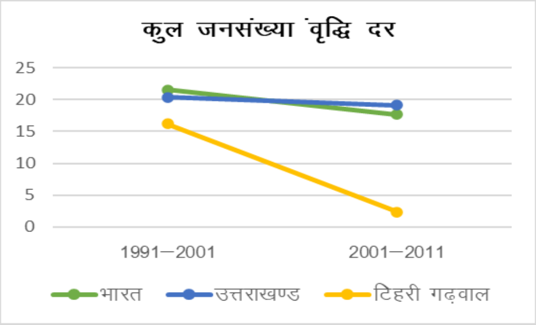

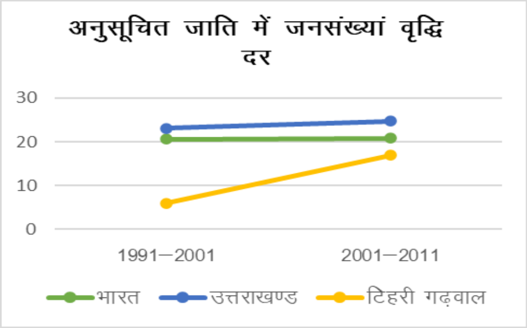

उपरोक्त तालिका के विश्लेषण से पता चलता है भारत की कुल जनसंख्या में 1991 से 2001 के दशक में 21.54 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। वृद्धि दर के इस प्रतिशत में 3.9 प्रतिशत की कमी हासिल करते हुए 2001 से 2011 के दशक में 17.64 प्रतिशत की वृद्धि की है। जबकि भारत की अनुसूचित जातियों में 1991 से 2001 के दशक में 20.55 प्रतिशत की वृद्धि हुई है और 0.30 प्रतिशत की वृद्धि के साथ 2001 से 2011 के दशक में 20.85 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। वहीं उत्तराखण्ड की कुल जनसंख्या में 1991 से 2001 के दशक में 20. 41 प्रतिशत की वृद्धि हुई है और वृद्धि दर के इस प्रतिशत में 1.24 प्रतिशत की कमी हासिल करते हुए 2001 से 2011 के दशक में 19.17 प्रतिशत की वृद्धि की है। जबकि उत्तराखण्ड की अनुसूचित जातियों में 1991 से 2001 के दशक में 23.12 प्रतिशत की वृद्धि हुई है और 1.62 प्रतिशत की वृद्धि के साथ 2001 से 2011

के दशक में 24.74 की वृद्धि हुई है। सामान्य तौर पर इस जनसंख्या वृद्धि के इन आँकड़ों से पता चलता है कि पिछले 2 दशकों से कुल जनसंख्या वृद्धि की दर में गिरावट आई है, जबकि अनुसूचित जाति की जनसंख्या वृद्धि की दरों में बढ़ोतरी हुई है, किन्तु टिहरी गढ़वाल के सन्दर्भ में इन आँकड़ों के मध्य बहुत अधिक अन्तर देखने को मिलता है। वर्ष 1991 से 2001 के दशक में टिहरी गढ़वाल की कुल जनसंख्या में 16.24 प्रतिशत की वृद्धि हुई है जबकि वर्ष 2001 से 2011 के दशक में जनपद टिहरी गढ़वाल ने जनसंख्या वृद्धि की दर में 13.89 प्रतिशत की कमी कर मात्र 2.32 प्रतिशत जनसंख्या वृद्धि की है, किन्तु टिहरी गढ़वाल की अनुसूचित जाति में 1991 से 2001 के दशक में जनसंख्या वृद्धि दर मात्र 5.99 प्रतिशत थी और यह प्रतिशत 2001 से 2011 के दशक में 10.96 प्रतिशत की बढ़ोतरी के साथ ही 16.95 प्रतिशत तक पहुँच गया है। उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है, कि जहाँ सम्पूर्ण भारत वर्ष, उत्तराखण्ड राज्य एवं टिहरी जनपद में कुल जनसंख्या वृद्धि दर में कमी आई है वहीं अनुसूचित जाति की जनसंख्या वृद्धि की दर में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

तालिकाः 3

लोक संगीतज्ञ समाज में जनसंख्या वितरण

क.स.	इकाई		कुल	सामान्य जाति	अनुसूचित जाति	लोक संगीतज्ञ समाज
1	गाँव	संख्या	223	220	121	62
		प्रतिशत	100	98.65	54.26	27.80
2	परिवार	संख्या	11881	10720	1152	287
		प्रतिशत	100	90.22	9.69	2.41
3	जनसंख्या	संख्या	51409	45565	5816	1998
		प्रतिशत	100	88.63	11.36	2.71

स्त्रोतः जनगणना आंकड़े 2011 एवं क्षेत्र कार्य 2022

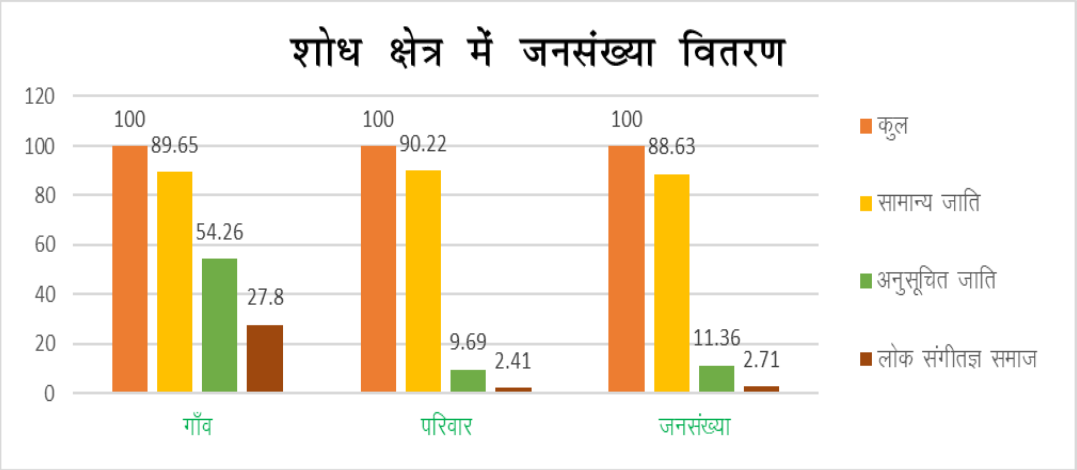

तालिका के विश्लेषण से पता चलता है, कि लोक संगीतज्ञ समाज के प्रतिनिधित्व एवं जनसंख्या में अत्यधिक अन्तर है। मूल रूप से सामान्य जाति के लोग शोध क्षेत्र के 89.65 प्रतिशत गाँवों में एवं अनुसूचित जाति के लोग 54.26 प्रतिशत गाँवों में निवास करते हैं। इस 54.26 प्रतिशत अनुसूचित जातियों मे लोक संगीतज्ञ समाज भी सम्मिलित है। जिसकी बसागत 27.80 प्रतिशत गाँवों में है। लोक संगीतज्ञ समाज की बसागत का

यह प्रतिशत अनुसूचित जाति की कुल बसागत का लगभग 50 से 51 प्रतिशत है। जिससे स्पष्ट होता है कि शोध क्षेत्र में लोक संगीतज्ञ समुदायों की बसागत अन्य अनुसूचित जातियों की तुलना में बहुत अधिक है, किन्तु परिवारों एवं जनसंख्या के आँकडों का विश्लेषण ठीक इसके विपरीत है। शोध क्षेत्र में लोक संगीतज्ञ समाज के परिवारों का प्रतिशत मात्र 2.41 है। जबकि सामान्य जाति के परिवारों का प्रतिशत 90.22 एवं अनुसूचित जाति के परिवारों का प्रतिशत 9.69 है। जनसंख्या के आधार पर सामान्य जाति की जनसंख्या 88.63 प्रतिशत एवं अनुसूचित जाति की जनसंख्या 11.36 प्रतिशत है जबकि लोक संगीतज्ञ समाज की जनसंख्या मात्र 2.71 प्रतिशत ही है। विश्लेषित तथ्यों के आंकलन से पता चलता है, कि शोध क्षेत्र में लोक संगीतज्ञ समाज की जनसंख्या आज भी अन्य वर्गों की अपेक्षा नगण्य है, जबकि इनकी बसागत औसतन हर तीसरे से पाँचवे गाँव में देखने को मिलती है। यह लोक कलावन्त सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में लगभग इसी अनुपात में निवास करते हैं। शोध क्षेत्र में लोक संगीतज्ञ समाज के 75.80 प्रतिशत गाँवों में लोक कलावन्त परिवारों की संख्या 5 से कम है जिसमें से 41.93 प्रतिशत गाँव ऐसे हैं जहाँ मात्र एक से दो परिवार ही निवास करते हैं। मात्र 9.67 प्रतिशत गाँव ही ऐसे हैं जिनमें लोक कलावन्त परिवारों की संख्या 10 से अधिक है।

तालिका: 4

उत्तरदाताओं में आयु एवं लिंग के आधार पर जनसंख्या वितरण

आयु	कुल जनसंख्या		पुरुष		महिला	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
0-6	6	4.72	4	5.40	2	3.77
7-18	19	14.96	11	14.86	8	15.09
19-40	66	51.96	40	54.05	26	49.05
41-60	26	20.47	14	18.91	12	22.64
60 से अधिक	10	7.87	5	6.75	5	9.43
योग	**127**	**100**	**74**	**100**	**53**	**100**

स्त्रोत: जनगणना आँकड़े 2011 एवं क्षेत्र कार्य 2022

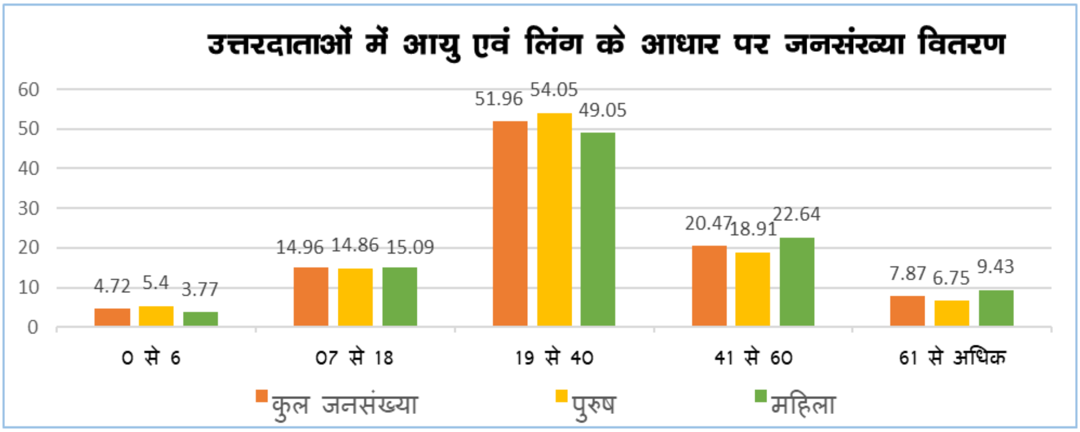

उत्तरदाताओं की जनांकिकी का आयु एवं लिंगवार विश्लेषण कर पता चला है कि 51.96 प्रतिशत जनसंख्या 19 से 40 आयु वर्ग के व्यक्तियों की है जिसमें 54.05 प्रतिशत पुरुष एवं 49.05 प्रतिशत महिलाएँ सम्मिलित हैं। इसके पश्चात् 20.47 प्रतिशत जनसंख्या 41 से 60 आयु वर्ग के व्यक्तियों की है जिसमें 18.91

प्रतिशत पुरूष एवं 22.64 प्रतिशत महिलाएँ सम्मिलित हैं। इसी क्रम में 14.96 प्रतिशत जनसंख्या 07 से 18 आयु वर्ग के व्यक्तियों की है जिसमें 14.86 प्रतिशत पुरुष एवं 15.09 प्रतिशत महिलाएँ सम्मिलित हैं। 7.87 प्रतिशत जनसंख्या 61 वर्ष से अधिक आयु वर्ग के व्यक्तियों की है जिसमें 6.75 प्रतिशत पुरुष एवं 9.43 प्रतिशत महिलाएँ सम्मिलित हैं। अन्ततः 4.74 प्रतिशत जनसंख्या 0 से 6 आयु वर्ग के बच्चों की है जिसमें 5.40 प्रतिशत पुरूष एवं 3.77 प्रतिशत महिलाएँ सम्मिलित हैं। उपरोक्त आँकड़ों से स्पष्ट है कि लोक संगीतज्ञ समाज में लिंगानुपात 716 महिलाएं प्रति 1000 पुरुष है, किन्तु अध्ययन के दौरान यह पाया गया कि अधिकतर परिवारों में पुत्रियों का विवाह कम आयु या विवाह की आयु पूर्ण करते ही किया जाता है जबकि पुत्रों के विवाह में यह देखने को नहीं मिलता है। जिस कारण इस समुदाय में लिंगानुपात में अधिक अन्तर दिखाई देता है।

तालिकाः 5

लोक संगीतज्ञ समाज में शिक्षा का स्तर

शैक्षिक स्तर	कुल उत्तरदाता	प्रतिशत	पुरुष	प्रतिशत	महिला	प्रतिशत
कभी स्कूल नहीं गए	20	15.74	2	2.70	18	33.96
प्राथमिक	17	13.38	7	9.45	10	18.86
उच्च प्राथमिक	25	19.68	21	28.37	4	7.54
माध्यमिक	27	21.25	20	27.02	7	13.20
उच्च माध्यमिक	20	15.74	11	14.86	9	16.98
स्नातक	12	9.44	7	9.45	5	9.43
स्नातकोत्तर	4	3.14	4	5.40	0	0
तकनीकी शिक्षा	2	1.57	2	2.70	0	0
योग	**127**	**100**	**74**	**100**	**53**	**100**

स्त्रोतः क्षेत्र कार्य 2022

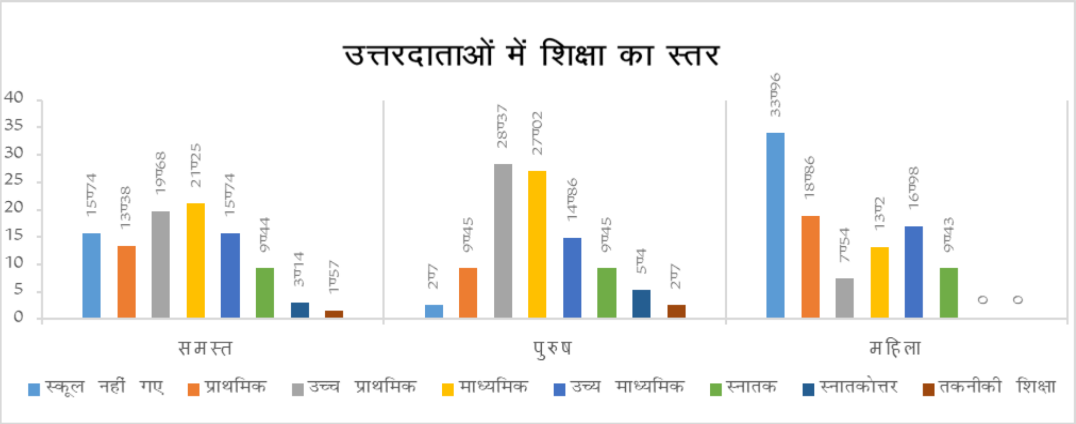

उपरोक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 21.25 प्रतिशत उत्तरदाता माध्यमिक शिक्षा, 19.68 प्रतिशत उत्तरदाता उच्च प्राथमिक शिक्षा, 17.74 प्रतिशत उत्तरदाता उच्च माध्यमिक शिक्षा, 13.38 प्रतिशत उत्तरदाता प्राथमिक शिक्षा, 9.44 प्रतिशत स्नातक, 3.14 प्रतिशत स्नातकोत्तर एवं 1.57 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने तकनीकी शिक्षा ग्रहण की है। जबकि 15.74 प्रतिशत उत्तरदाता कभी स्कूल ही नहीं गए हैं। जिनमें कुछ 0 से 6 आयु वर्ग के बच्चे भी सम्मिलित हैं। लिंग के आधार पर साक्षरता का प्रतिशत देखने पर यह पाया गया कि

महिलाओं में साक्षरता का प्रतिशत 66 है जबकि पुरुषों में साक्षरता का प्रतिशत 97 है। पुरुषों में 28.37 प्रतिशत पुरुष ने उच्च प्राथमिक शिक्षा, 27.02 प्रतिशत पुरुषों ने माध्यमिक शिक्षा, 14.86 प्रतिशत पुरुषों ने उच्च माध्यमिक शिक्षा, 9.45 प्रतिशत पुरुषों ने प्राथमिक शिक्षा, 9.45 प्रतिशत पुरुषों ने ही स्नातक, 5.40 प्रतिशत पुरुषों ने स्नातकोत्तर एवं 2.70 प्रतिशत पुरुषों ने तकनीकी शिक्षा ग्रहण की है जबकि 2.70 प्रतिशत पुरुषों कभी स्कूल ही नहीं गए हैं। वहीं 18.86 प्रतिशत महिलाओं ने प्राथमिक शिक्षा, 16.98 प्रतिशत महिलाओं ने उच्च माध्यमिक शिक्षा, 13.20 प्रतिशत महिलाओं ने माध्यमिक शिक्षा, 9.43 प्रतिशत महिलाओं ने स्नातक एवं 7. 54 प्रतिशत महिलाओं ने उच्च प्राथमिक शिक्षा ग्रहण की है जबकि 33.96 प्रतिशत महिलाएँ कभी स्कूल ही नहीं गई हैं। इसी के साथ महिलाओं में परास्नातक एवं तकनीकी शिक्षा का अभाव देखने को मिलता है। इस विश्लेषण से यह पता चलता है कि पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में शिक्षा का स्तर निम्न है। जिसके लिए सामाजिक एवं आर्थिक कारकों की भूमिका अग्रणीय है।

तालिका: 6

महिला उत्तरदाताओं के व्यवसाय का प्रकार

क्र.सं.	महिला	संख्या	प्रतिशत
1	शिक्षा	11	20.75
2	राजकीय सेवा	3	5.66
3	कृषि	12	22.64
4	पशुपालन	2	3.77
5	कृषि एवं पशुपालन	10	18.86
6	लोक संगीत	3	5.66
7	लघु उद्योग	1	1.88
8	गृहणी	11	20.75
		53	100

स्त्रोत: क्षेत्र कार्य 2022

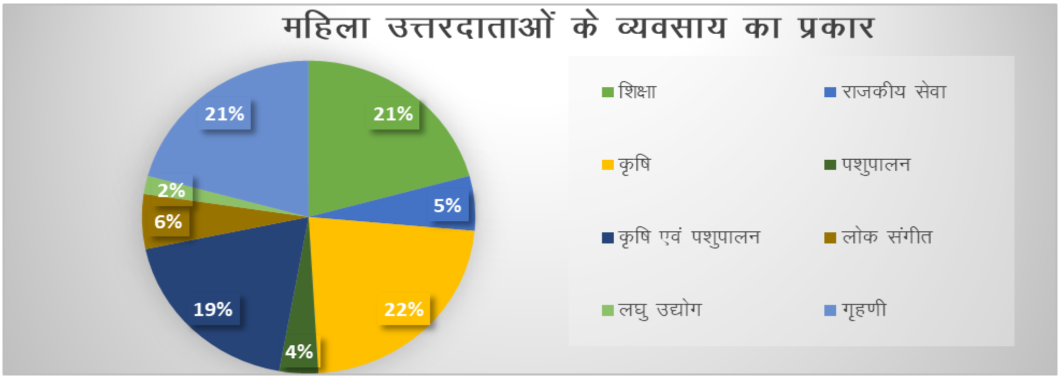

उपरोक्त तालिका में महिला उत्तरदाताओं के व्यावसायिक आँकडों का प्रस्तुतीकरण किया गया है। प्रस्तुत आँकड़ों के अनुसार 20.75 प्रतिशत महिलाएँ विभिन्न स्तरों पर शिक्षा ग्रहण कर रहीं हैं। 5.66 प्रतिशत महिलाएँ

राजकीय सेवाओं में सेवारत हैं। 22.64 प्रतिशत महिलाएँ कृषि कार्य कर रही हैं एवं 3.77 प्रतिशत महिलाएँ पशुपालन करती हैं। जबकि 18.86 प्रतिशत महिलाएँ कृषि एवं पशुपालन दोनों क्षेत्रों में संयुक्त रूप से कार्यरत हैं। जिससे परिवार के भरण–पोषण में महिलाएँ अपनी भूमिका निभा रही हैं। कृषि एवं पशुपालन इन समुदायों में कुछ दशक पूर्व से ही चलन में आया है। इससे पूर्व पुरुष एवं महिलाएँ संयुक्त रूप से लोग संगीत से जुड़े होते थे। आज पारम्परिक व्यवसायों में 5.66 प्रतिशत महिलाएँ लोक संगीत एवं 1.88 प्रतिशत महिलाएँ लघु उद्योग (सिलाई) के क्षेत्र में सम्मिलित हैं। जबकि 20.75 प्रतिशत महिलाएँ मात्र गृह कार्यों में गृहणी के रूप में अपनी भूमिका का निर्वहन कर रही हैं।

तालिकाः 7

पुरूष उत्तरदाताओं के व्यवसाय का प्रकार

क्र. सं.	पुरूष	संख्या	प्रतिशत
1	लोक वादन	7	9.58
2	लोक वादन एवं लघु उद्योग	4	5.47
3	लोक वादन एवं दैनिक मजदूरी	5	6.84
4	राजकीय सेवा	1	1.73
5	राजकीय सेवा एवं लोक वादन	1	1.73
6	लघु उद्योग	4	5.47
7	लघु उद्योग एवं लोक वादन	6	8.21
8	निजि क्षेत्र	12	16.43
9	निजि क्षेत्र एवं लोक वादन	9	12.32
10	दैनिक मजदूरी	1	1.73
11	दैनिक मजदूरी एवं लोक वादन	2	2.73
12	शिक्षा	18	24.65
13	शिक्षा एवं लोक वादन	3	4.10
	योग	73	100

स्त्रोतः क्षेत्र कार्य 2022

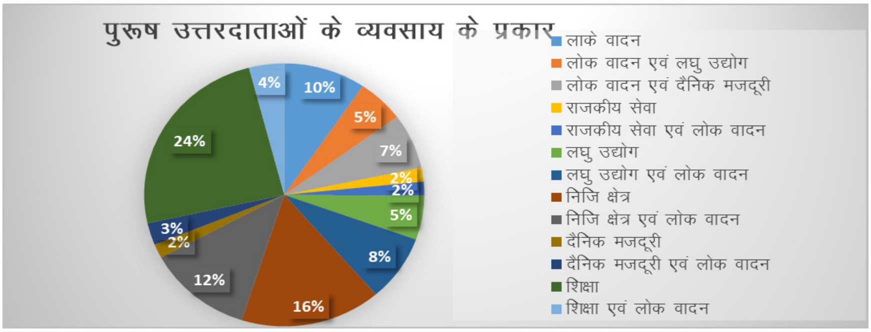

उपरोक्त तालिका में उत्तरदाताओं की विभिन्न व्यवसायों में भागीदारी के आँकड़े प्रस्तुत किए गए हैं। प्राप्त आँकड़ों के अनुसार पुरुष उत्तरदाता 13 अलग–अलग श्रेणी के व्यवसायों में कार्यरत हैं। जिनमें से 9.58 प्रतिशत उत्तरदाता पूर्णरूपेण लोक संगीत व लोक वादन के क्षेत्र में कार्यरत हैं। 5.47 प्रतिशत उत्तरदाता मुख्य रूप से लोक संगीत के क्षेत्र में तथा सहायक रूप से लघु उद्योग के क्षेत्र में कार्यरत हैं। 6.84 प्रतिशत उत्तरदाता मुख्य रूप से लोक वादन एवं सहायक रूप रूप से दैनिक मजदूरी करते हैं। 1.73 प्रतिशत उत्तरदाता राजकीय सेवा में कार्यरत हैं जबकि 1.73 प्रतिशत उत्तरदाता राजकीय सेवा एवं लोक वादन दोनों क्षेत्र में कार्यरत हैं। 5.47 प्रतिशत उत्तरदाता अपने लघु उद्योगों में कार्यरत हैं। 8.21 प्रतिशत उत्तरदाता अपने लघु उद्योगों के साथ–साथ लोक वादन का कार्य भी सहायक व्यवसाय के रूप में करते हैं। 16.43 प्रतिशत उत्तरदाता निजि क्षेत्र में कार्यरत हैं। 12.32 प्रतिशत उत्तरदाता निजि क्षेत्र में कार्य करने के साथ–साथ ही सहायक व्यवसाय के रूप में लोक वादन का कार्य भी करते हैं। 1.73 प्रतिशत उत्तरदाता दैनिक मजदूरी करते हैं जबकि 2.73 प्रतिशत उत्तरदाता दैनिक मजदूरी के साथ–साथ लोक वादन का कार्य भी करते हैं। उत्तरदाताओं में सबसे अधिक 24.65 प्रतिशत पुरुष उत्तरदाता शिक्षा के अनेक स्तरों पर शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं, किन्तु 4.10 प्रतिशत उत्तरदाता स्कूली शिक्षा प्राप्त करने के साथ–साथ लोक वादन का कार्य भी कर रहे हैं।

परिणामः

उत्तराखण्ड राज्य 53448 वर्ग किमी॰ में फैला हुआ भारत का एक सूक्ष्म प्रदेश है(नवानी और रावत, 2014)। जिसका परिवेश सदियों से ग्रामीण रहा है यही कारण है कि यहाँ की संस्कृति सदैव लोक आधारित रही है। संगीत को निरन्तर प्रवाह देने वाले कला कौशल व्यक्तियों को यहाँ कलावन्त कहा जाता है। विगत कुछ दशकों से लोक संगीतज्ञ समुदायों की जनसंख्या में वृद्धि होने लगी है जिसका प्रभाव इन समुदायों के व्यवसाय पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से देखने को मिलता है। विगत कुछ वर्षो से लोक संगीतज्ञ समाज में पारम्परिक व्यवसायों के साथ–साथ अन्य व्यवसायों को अपनाने की दर में कुछ वृद्धि हुई है। बढ़ती जनसंख्या का प्रभाव पुरुषों की तुलना में महिलाओं के व्यवसाय में अधिक देखा जा सकता है। लोक संगीतज्ञ समुदायों के लोग विशेष रूप से भूमिहीन समुदायों का प्रतिनिधित्व करते हैं, किन्तु बढ़ती जनसंख्या और बदलते परिवेश के कारण इस समुदाय की महिलाएँ अन्य समुदायों से भूमि लीज पर (अधेत्त) लेकर कृषि कार्य करने लगी हैं। यह खेत विशेष रूप से उन परिवारों के हैं जो गाँवों से शहरों की ओर पलायन कर चुके हैं या जिनके पास काम करने वाले लोगों की संख्या में कमी आई है। इसके साथ ही बच्चों के शैक्षिक स्तर में वृद्धि हुई है जिसके लिए मध्याह्न भोजन जैसे योजनाओं का विशेष योगदान है, किन्तु युवाओं द्वारा उच्च शिक्षा एवं तकनीकी शिक्षा का प्रतिशत बहुत कम देखा गया है जिसमें परिवार की कमजोर आर्थिक स्थिति एक महत्वपूर्ण कारक है। इस कारण युवा निजी क्षेत्र में कार्य कर व दैनिक मजदूरी कर अपना जीवन यापन कर रहे हैं। बहुत कम युवा लोक संगीत को व्यवसाय के रूप में अपना रहे हैं। वयस्क एवं वृद्धजनों में शिक्षा का स्तर विशेष रूप से प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर तक ही देखने को मिलता है, जिसका प्रभाव इनके व्यवसायों पर भी पड़ा है। लोक संगीत एवं लोक वादन कला को विशेष रूप से वृद्धजनों व अशिक्षित लोगों ने मुख्य व्यवसाय के रूप में अपनाया हुआ है जबकि वयस्क व कम शिक्षित लोगों ने लोक संगीत को सहायक व्यवसाय के रूप में अपनाया हुआ है।

निष्कर्षः

अन्य राज्यों की भांति ही उत्तराखण्ड में भी लोक संगीतज्ञ समुदायों की जनसंख्या का प्रतिशत सैदव न्यूनतम ही रहा है, किन्तु पूर्व की अपेक्षा वर्तमान समय में समाज की जनसंख्या में कुछ वृद्धि अवश्य देखने को मिलती है। जिसके शैक्षिक स्तर में भी परिवर्तमन दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार बदलते शैक्षिक स्तर और जनसंख्या के

बढ़ते स्तर ने लोक संगीतज्ञ समाज के व्यवसायिक परम्पराओं को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने का कार्य किया है। जिसके चलते लोक संगीतज्ञ समुदाय के लोग ने अपने पारम्परिक व्यवसायों को त्यागकर सर्वाधिक मात्रा में निजी क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले व्यवसायों में दैनिक मजदूरी और होटल रेस्टटोरेन्टों अपना श्रम प्रधान कर अपनी आजीवका का निर्वहन करने लगे हैं। भविष्य में इन समुदायों के व्यावसायिक परम्पराओं में हो रहे परिवर्तन की स्थिति में बदलाव की सम्भावना और अधिक है। जिससे धीरे-धीरे लोक संगीत की अनेक व्यावसायिक परम्पराओं का विलोपन होना सुनिश्चित है। जिसके लिए मूल रूप से समाज और सरकार को उचित कदम उठाने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ:

- नवानी लोकेश और रावत, कल्याण सिंह (2014), उत्तराखण्ड इयर बुक, विनसर पब्लिशिंग कम्पनी 8, प्रथम तल के०सी० सिटी सेन्टर 4, डिस्पेंसरी रोड़ देहरादून।
- प्रद्योत, चमन लाल, भट्ट प्रवीण कुमार, कुकसाल अरुण (2012), उत्तराखण्ड के शिल्पकार, देहरादून: विनसर पब्लिशिंग कम्पनी 8, प्रथम तल के०सी० सिटी सेन्टर 4, डिस्पेंसरी रोड़ देहरादून।
- बहादुर राज, जौनपुर नगर की बढ़ती जनसंख्या: कारण प्रभाव एव निवारण, International Journal of Creative Research Thought, Volume 9, Issue 6 June 2021, ISSN: 2320-2882 p. *792-804*
- बहुगुणा विजय, रावत चन्द्रमोहन (2012), उत्तराखण्ड के शिल्पकार, देहरादून: विनसर पब्लिशिंग कम्पनी 8, प्रथम तल के०सी० सिटी सेन्टर 4, डिस्पेंसरी रोड़ देहरादून।
- शर्मा सुरेश, 'कला-संस्कृति, सरकार एवं दरकार', दिव्य हिमालय, 24 फरवरी 2021, https://www.divyahimachal.com/2021/02/art-culture-government-and-needs/
- सहारिया आर० पी०, भारत में जनांकिकीय प्रवृत्तियाँ एवं उनका प्राभव: साक्षरता एवं जन्मदर के विशेष सन्दर्भ में. *Research Journal of Humanities and Social Sciences. 5(3): July-September, 2014,* ISSN : 0975-6795, p. *336-342*
- सेठी अर्चना, अनुसूचित जनजातियों की जनांकिकी प्रवृत्तियां एवं आर्थिक विकास पर प्रभाव, *International journal of Reviews and Research in Social Science.* Volume 7, Issue 2 June 2019, ISSN : 2454-2687, p. 419-425
- शाह, निर्मल कुमार (2020). सांख्यिकी पत्रिका जनपद टिहरी गढ़वाल, कार्यालय जिला एवं संख्याधिकारी टिहरी गढ़वाल।
- Census of India 2011. (2022, August 15). *Office of thr Registrar General & Commissioner, India Ministry of Home affairs, Government of India.* Retrieved from :https://censusindia.gov.in/nada/index.php/catalog/1323
- Ministry of Social Justice and Empowerment Government of India. (2022, March 10). *Department of Social Justice and Empowerment*. Retrieved from Socialjustice.nic.in: https://socialjustice.nic.in/UserView/index?mid=76750
- Poston, D L. & Bouvier, L F. (2010).*Population and Society: An Introduction to Demography*. Cambridge: Cambridge University Press.

❑❑❑

परिवार में जेंडर संबंध एवं उपभोग के पैटर्न : एक समाज वैज्ञानिक अध्ययन

❍ आशीष कुमार चौरसिया[1]

संक्षिप्ति :

परिवार संस्था सृजनात्मकता की पोषक है। लुईस हेनरी मॉर्गन ने (1877) में एशियंट सोसाइटी नामक एक पुस्तक लिखी थी जिसमें उन्होंने विवाह और परिवार की संस्थाओं का इतिहास लिखा था। कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स ने भी अपनी पुस्तक ओरिजीन ऑफ फैमिली प्राइवेट प्रॉपटी एंड द स्टेट (1884) में परिवार संस्था का उल्लेख किया है। मुख्य रूप से देखा जाय तो आज की दुनिया में स्त्री-पुरुष संबंधों सहित मानवीय संबंधों को विभिन्न राष्ट्रीय, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि सीमित परिप्रेक्ष्यों में देखने की बजाय एक भूमंडलीय तथा मानववादी परिप्रेक्ष्य में देखना आवश्यक हो गया है। इसके लिए यह मानकर चलना जरूरी है कि लिंग, वर्ण, जाति, नस्ल, धर्म, सभ्यता, संस्कृति, राष्ट्रीयता आदि के भेदों के बावजूद दुनिया के सभी मनुष्यों का मूल्य मनुष्य होने के नाते बराबर है। इस प्रकार परिवार में जेंडर संबंध एवं उपभोग के पैटर्न को एक मानववादी परिप्रेक्ष्य में देखना आवश्यक है।

प्रस्तावना

विवाह की संस्था का आधार पति-पत्नी के बीच विश्वास पर टिका होता है और स्त्री की शारीरिक पवित्रता से अधिक महत्त्वपूर्ण है स्वतंत्रता और समानता की भावना पर टिका वैवाहिक और पारिवारिक जीवन। परिवर्तन संसार का नियम है। इस संसार में पिछले कुछ दशकों में समाज में, हमारी जिंदगियों में, हमारे काम करने के तरीकों में परिवर्तन आए हैं। इसी कारण से हमारी पारंपरिक संस्कृतियों में भी परिवर्तन महसूस किए जा सकते हैं। इसी कारण समाज में भी स्त्री और पुरुषों के संबंधों के बदलते स्वरूपों को भी इसके एक उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। आज के समय में हमें विवाह जैसी संस्था में क्रांतिकारी रूप से बदलाव की जरूरत है। विवाह, वैवाहिक संबंधों और निजी रिश्तों में परिवर्तन की आवश्यकता है। समाज में ऐसा वातावरण बनाना चाहिए ताकि शादी के बाद लड़का और लड़की में भेदभाव न हो। परिवार में बच्चों को शुरू से ही बराबरी के सिद्धांत और लिंग समानता के बारे में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

विवाह जैसी संस्था का इस्तेमाल महिलाओं पर तानाशाही स्थापित करने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। यह अनुचित और अन्यायपूर्ण है। स्त्री के बचाव में आज तक कई नियम और कानून बन चुके हैं परंतु महिलाएँ

---

1. शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ०प्र०)

इसके उपयोग से और इसकी जानकारी से अनभिज्ञ हैं। रजनी पालरीवाला के अनुसार, "यह कानून एनेबलिंग (समर्थ बनाने वाले) तो हैं, ट्रांसफार्मिंग (परिवर्तनकारी) नहीं है। इसलिए अच्छे कानून भी समाज को बदल नहीं पा रहे हैं। उनको परिवर्तनकारी बनाने के लिए जो सामाजिक और राजनीतिक माहौल होना चाहिए, वह अभी तक बना नहीं है।" शिक्षा और शिक्षा संस्थान इस तरह के बदलाव लाने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, परंतु यह बदलाव अभी तक व्यक्तिगत स्तर पर ही देखे जा सकते हैं, जब यह परिवर्तन सामाजिक स्तर पर होने लगेंगे, तो विवाह की संस्था ही नहीं अपितु दूसरी चीजों में भी परिवर्तन स्वत: ही हो जाएगा।

महिलाएँ सदियों से शोषण और हिंसा का शिकार होती आई हैं। यहाँ तक कि आज के समय की महिलाएँ जो आर्थिक रूप से स्वाधीन हैं उनकी सुरक्षा और अस्तित्व की रक्षा पर भी प्रश्न चिह्न लगा हुआ है। समाज के सभी वर्गों और लोगों को मिलकर महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करनी होगी। इतिहास इस बात का साक्षी है कि स्त्री से संबंधित जब भी कोई नया कानून पारित हुआ है, उसके लिए महिलाओं को ही संघर्ष भूमि में उतरना पड़ा है और वह सफल भी हुई। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं। इसीलिए इस बात में कोई दो राय नहीं है कि महिलाएँ अपना भविष्य नहीं बदल सकतीं। महिलाओं के अंदर पुरुषों के मुकाबले सहनशीलता अधिक होती है। इसी कारण अभी तक के इतिहास में महिलाओं ने अपने लिए परिवर्तनकारी कानूनों को पारित कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और आगे भी निभाती रहेंगी। ऐसे में महिलाओं के लिए विवाह के बाद इन सभी मापदंडों के व्यवहार आचरण और अनुपालनों में विभिन्नता देखी जा सकती है। इनमें शिक्षित-अशिक्षित, ग्रामीण शहरी, विकसित-विकासशील भारतीय राज्यों की महिलाएँ इत्यादि के आंकड़ों में भी विभिन्नता देखी जा सकती है। बदलते समय के साथ इन सभी स्त्रियों के अनुपालन दिशा-निर्देशों में भी भारी अंतर को देखा जा सकता है।

परिवार में लिंग संबंध

समाज के सभी क्रिया-कलाप चाहे वे पारिवारिक हों, सामाजिक हों, सांस्कृतिक हों या उत्सव या त्यौहार हों स्त्री की उपस्थिति के बिना पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकते। हिंदू समाज में महिलाओं की पारिवारिक स्थिति को बहुत महत्त्वपूर्ण माना गया है। महिलाएं भारत में विशेष रूप से विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों और संस्कारों का निर्वाहन करती हैं। महिलाएं परिवार की सुख-समृद्धि के लिए यज्ञ पूजा-पाठ दान-अनुष्ठान इत्यादि सभी कुछ पूर्ण करती हैं। इसके अलावा आज के समय में महिलाओं की सामाजिक पहचान के लिए परिवार से अलग उसके अस्तित्व के लिए उसकी एक पहचान आवश्यक बन गई है। अच्छी शिक्षा, प्रशिक्षण, नवीन तकनीकी विकास के चलते महिलाओं ने भी साक्षर और प्रशिक्षित होकर समाज में अपने लिए एक स्थान बना लिया है।

सभी प्रकार की सामाजिक बुराइयों को दूर करने के उद्देश्य से महिलाओं ने विभिन्न स्तरों पर कानूनी राजनीतिक और आर्थिक सशक्तीकरण के विभिन्न अवसरों से संबंधित जानकारियां प्राप्त कर ली हैं। महिलाएँ संगठित होकर विभिन्न प्रकार की समस्याओं से जूझने के लिए विभिन्न महिला जागृति संगठन, सभाओं, संघों, रैलियों, प्रदर्शनों, हड़तालों के द्वारा एक जागृत और कार्यरत चेतना समूहों के रूप में समाज में उभरी हैं। जिन्हें दबा पाना परिस्थितियों और पुरुषों के आधार क्षेत्र से बाहर है।

बदलते युग में सामाजिक विचारधारा संस्कारों मूल्यों और व्यवस्था में भी बदलाव आया है। अब महिलाओं ने अपनी सोच को पूरी तरह से बदल लिया है। आज समाज के पुरुष वर्ग भी महिलाओं को आगे बढ़ाने के अवसरों में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। परिवार में महिलाओं के सहयोग के साथ रचनात्मकता और भागीदारी में स्त्री-पुरुष का अद्भुत समन्वय देखा जा सकता है। हालांकि अभी कई क्षेत्रों में मानसिकता के स्तर पर अंधविश्वास और रूढ़िवादिता मौजूद है। परंतु महिलाओं की उपजती नई सोच और बदलाव के कारण परिवर्तन आने लगा है। इस सभी बदलावों में साक्षरता, राजनीतिक क्रिया-कलापों, न्यायपालिकाओं के महत्त्वपूर्ण

निर्णयों, सूचना क्रांतियों, मीडिया की सक्रियताओं, समाचार पत्रों के लेखों और विभिन्न घटनाओं पर प्रदर्शन आदोलनों ने महिलाओं की जीवन शैली, उनकी सामाजिक स्थिति और उनके सामाजिक स्थान में उल्लेखनीय परिवर्तन किया है।

परिवार के संघर्षों में महिलाओं और पुरुषों के संदर्भ

सिमोन डी. बूवा के यह विचार "स्त्री पैदा नहीं होती, बनाई जाती है।" भारतीय परिवारों के परिप्रेक्ष्य में बिल्कुल सटीक बैठता है। जीवन के हर क्षण में महिलाओं को अपने परिवार के लिए और परिवार के सदस्यों के लिए अपना सहयोग, बलिदान, त्याग और तपस्या करनी पड़ती है। हम परिवार में स्त्री की भूमिका और महत्ता को नजरअंदाज नहीं कर सकते। जिसमें स्त्री अपनी एक खास और महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पुरुष के लिए स्त्री की दैहिक यौनिक शुचिता का बहुत महत्त्व है। पुरुष के लिए दैहिक शुचिता परिवार के मान-सम्मान का प्रतीक बन चुकी है। परिवार जैसी संस्था में पुरुष हमेशा से ही स्त्री को अपने मापदंडों में तौलता आया है। परंतु यहाँ यह भी प्रश्न महत्त्वपूर्ण है कि परिवार की व्यवस्था में विवाह के बाद स्त्री की मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और आर्थिक स्थितियों में जो परिवर्तन आते हैं उनसे स्त्रियां कितनी संतुष्ट होती हैं? जहां-जहां हमें स्त्रियों के निर्णायक संघर्षों के परिणाम देखने को मिलते हैं वहाँ-वहाँ अधिकतर मामले में विवाह टूट जाते हैं। इस सबका दोषारोपण स्त्री पर किया जाता है। मनोवैज्ञानिक रूप से आज भी परिवार संबंध का सिद्धांत स्त्री पर टिका है। विवाह के उपरांत पति के घर में आने के बाद स्त्री सामाजिक और आर्थिक रूप से भी स्वतंत्र महसूस नहीं करती। रिश्ता कोई नहीं तोड़ना चाहता परंतु आज आवश्यकता परिवार संस्था को सुदृढ़ करने की है। एक-दूसरे को समझने की है। और एक-दूसरे के पूरक बनने की है। अर्थात् आवश्यकता इस बात पर निर्धारित है कि अधिकांश पुरुष महिलाओं को घर से बाहर जाकर काम करने की आजादी नहीं देते और यदि देते हैं तो महिला के वेतन का अधिकांश हिस्सा पति की इच्छानुसार खर्च किया जाता है। विवाह के बाद चूंकि महिला अपना घर छोड़कर अपने पति के घर रहती है तो उसकी संपत्ति, दहेज, वेतन पर भारतीय परम्परा के अनुसार पति एवं सास-ससुर अपना अधिकार समझते हैं। ऐसे में महिला को पति के अनुसार ही उसके घर पर रहना होता है।

भारत जैसे विभिन्नता वाले देश में विभिन्न धर्मों और संप्रदायों के लोगों के लिए पारिवारिक मामलों में अलग-अलग वैयक्तिक कानून मौजूद है। जैसे-धर्मांतरण विवाह विच्छेद अधिनियम 1866, भारतीय तलाक अधिनियम 1872, काजी अधिनियम 1880, आनंद विवाह अधिनियम 1909, भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम 1925, बाल विवाह निरोधक अधिनियम 1929, पारसी विवाह एवं तलाक अधिनियम 1936, मुस्लिम विवाह भंग अधिनियम 1939, हिंदू विवाह अधिनियम 1955, विशेष विवाह अधिनियम 1954, विदेशी विवाह अधिनियम 1969, और मुस्लिम महिला (तलाक अधिकार संरक्षण) अधिनियम 1986 बच्चों से संबंधित हिंदू दत्तक ग्रहण और भरण-पोषण अधिनियम 1956 इत्यादि ।

महिलाओं को मिलने वाले अधिकार

हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) कानून 2005 के अनुसार, पिता के उत्तराधिकार और पैतृक संपत्ति को बेटे और बेटी में समान रूप से दिया जाएगा। यह व्यवस्था सितंबर 2005 के बाद से लागू की गई। इसके साथ यह भी व्यवस्था की गई कि पिता के उत्तराधिकारियों को पिता के कर्जदारी के लेनदेन को भी वह मिलकर चुकाएंगे। इस कानून के अनुसार बेटी चाहे विवाहित हो या अविवाहित दोनों ही परिस्थितियों में उनको संपत्ति के बंटवारे का अधिकार मिलेगा। यह महिलाओं के लिए एक सकारात्मक संकेत है इसके चलते अब महिलाओं या बेटियों को अपने परिवार में उनकी भूमिकाओं और निर्णयों को सम्मान दिया जाएगा। यदि लड़की के पिता ने खुद बनाई संपत्ति के मामलों में कोई वसीयत नहीं की है तो लड़की को अपने पिता की संपत्ति का हक

मिलेगा। जितना कि उसकी मां और भाई का होगा। विवाह के बाद पत्नी का पति की संपत्ति पर मालिकाना हक नहीं होता। लेकिन पति की हैसियत के हिसाब से महिला को मेंटिनेंस अधिकार या गुजारा भत्ता दिया जाता है। विवाह के दौरान यदि पति और पत्नी के संबंधों के बीच कोई विवाद उत्पन्न होता है तो उस दौरान पत्नी या महिलाओं के अधिकारों में वृद्धि हो जाती है। जैसे सीआरपीसी हिंदू मैरिज एक्ट हिंदू अडॉप्शन एंड मेंटिनेंस एक्ट और घरेलू हिंसा कानून के तहत गुजारे भत्ते की मांग की जा सकती है।

यह गुजारा भत्ता महिला को तभी मिल सकता है जब वह बेरोजगार हो या अपना पालन–पोषण करने की स्थिति में न हो। इसके अतिरिक्त पति की मृत्यु के उपरांत पति की स्वयं अर्जित की संपत्ति में और पति की वसीयत के अनुसार पत्नी को संपत्ति के अधिकार मिल सकते हैं परंतु पति की पैतृक संपत्ति पर पत्नी अपने अधिकार का दावा नहीं कर सकती। इसके अतिरिक्त पति से अनबन होने से सीआरपीसी की धारा–125 के अनुसार पत्नी अपने पति से अपने बच्चों के लिए गुजारा भत्ता प्राप्त कर सकती है। हिंदू मैरिज एक्ट की धारा–18 के अंतर्गत भी पत्नी गुजारा भत्ता प्राप्त कर सकती है। पति–पत्नी के तलाक के समय भी पत्नी को दी जाने वाली मुआवजे की राशि पति के वेतन और अर्जित संपत्ति के आधार पर ही तय की जाती है। इसके अतिरिक्त महिला के पास यह भी अधिकार होता है कि वह अपने हिस्से आई अपने पिता को पैतृक संपत्ति और खुद की अर्जित की संपत्ति को बेच सकती है। इसमें उसका पति या उसके घरवालों की मनमानी नहीं चलती। अगर महिला चाहे तो पैतृक या खुद अर्जित की संपत्ति की वसीयत अपने बच्चों के नाम कर सकती है या उन्हें बेदखल भी कर सकती है। महिला इसके लिए पूर्ण रूप से स्वतंत्र होती है।

भारतीय परिवार संस्था में बदलाव

परंपरागत भारतीय समाजों में स्त्री की भूमिका और महत्त्व को पुरुषों के मुकाबले दूसरी श्रेणी में रखा जाता है। महिलाओं को केवल घर की देख–रेख प्रजनन और पति की सेवा तक ही सीमित कर दिया जाता था। निर्णय लेने में पुरुषों की भूमिका ही महत्त्वपूर्ण होती थी। आधुनिक भारतीय समाज ने महिलाओं को एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। पुरुषों के साथ–साथ ही महिलाओं को भी काफी हद तक अधिकार प्रदान किए गए हैं। महिलाओं की भूमिका घर–परिवार तक सीमित न होकर आर्थिक रूप से धन कमाने, परिवार को चलाने, कई सारे निर्णय लेने में विस्तृत हो गई है। पारंपरिक समाज में महिलाएँ घर तक ही सीमित रहती थीं जबकि आधुनिक समाज में महिलाएँ अपनी पसंद के रोजगार करने, नागरिक समाज में अपनी भूमिकाएँ निभाने बैंकिंग, ड्राइविंग करने, स्वयं सहायता समूह का हिस्सा बनने, रोजगार ढूंढने सोशल नेटवर्किंग करके अपने परिवार को आर्थिक जरूरतों को पूरा करने में निपुण भूमिकाएँ निभा रही हैं। जहाँ पहले पुरुषों को घर चलाने के सारे अधिकार दिए गए थे। वहीं आधुनिक समाज में आर्थिक रूप से मजबूती से महिलाओं के अधिकारों और निर्णयों को मान्यता मिलने लगी है।

जहाँ पहले संयुक्त परिवार हुआ करते थे जिसमें घर के मुखिया या पुरुष ही समाज में महत्त्वपूर्ण निर्णय लिया करते थे। लेकिन अब आधुनिक परिवार संरचना की स्त्री–पुरुष बराबर आर्थिक जरूरतों की पूर्ति करते हैं। और घर के निर्णयों में भी बराबरी का अधिकार रखते हैं। अब भारतीय पारिवारिक संरचनाओं की भूमिका मान्यताएँ और मानसिकता में बदलाव देखने को मिल रहा है। जहाँ पहले भारतीय संरचना के परिवार ग्रामीण जीवन व्यतीत करते थे और अपनी जरूरतों के लिए गांवों पर ही निर्भर करते थे और उनका रोजगार भी कृषि हुआ करता था, परंतु आज के संदर्भ में जहाँ रोजगारों में परिवर्तन हुआ है। लोगों का गांवों से शहरों की तरफ पलायन हुआ है। लोग संयुक्त परिवारों से एकल परिवारों की तरफ बढ़े हैं। वहाँ स्त्री–पुरुषों के संबंध, मान्यताओं, मानसिकताओं, अनुभवों और व्यवहारों में एक बहुत बड़ा बदलाव देखने को मिला है। संयुक्त परिवारों में महिलाओं और परिवार के सदस्यों के ऊपर बच्चों की सारी जिम्मेदारी होती थी। परंतु एकल परिवार संरचना

में बच्चों की शिक्षा को जिम्मेदारी स्त्री के साथ-साथ पुरुषों के ऊपर भी आ गई है। जहाँ महिलाएँ शिक्षित आर्थिक रूप से स्वावलंबी हैं वहाँ महिलाओं को अशिक्षित महिलाओं की तुलना में अधिक स्वतंत्रता प्राप्त है। इसके अलावा, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् महिलाओं के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में महिलाओं संबंधी योजनाओं को सरकार ने बढ़ावा दिया है। उनके लिए शिक्षा, प्रजनन संबंधी नीतियों, स्वास्थ्य कल्याण योजनाएं, रोजगार, महिला एवं बाल कल्याण मंत्रालय इत्यादि से भी महिलाओं की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक भागीदारी में मदद मिली है। और परिवार जैसी संस्था में परिवर्तन महसूस किए गए हैं।

महिलाओं की निम्न स्थिति और पुरुष निर्भरता का कारण सामाजिक और आर्थिक अवसरों की असमानता और रूढ़िबद्धता रही है जिसमें पुरुष को समस्त आर्थिक क्रियाकलाप और स्त्रियों को गृहस्थी के कार्य सौंपे गए हैं।

मुखर्जी के अनुसार, महिलाओं की प्रस्थिति अवधारणा और निर्धारण में चार प्रकार के पहलू निहित हैं- "शिक्षा, रोजगार, संपत्ति, समाजमितीय प्रस्थिति, पुरुषों की तुलना में अवसरों की सीमा और भौतिक, सामाजिक एवं वातावरणीय स्रोतों पर नियंत्रण या अधिकार अधिकारों और सुविधाओं के उपयोग की सीमा, औपचारिक और अनौपचारिक या अपेक्षित उत्तरदायित्व।" भारतीय महिलाओं के संदर्भ में मुखर्जी का मानना है कि जब कोई स्त्री या गृहिणी अपने परिवार के लिए त्याग करती है तो इसका अर्थ उसकी स्थिति का कमजोर होना नहीं होता। महिला की स्थिति तब कमजोर कही जाएगी जब उससे उसके अधिकारों को छीन लिया जाए। इसीलिए महिलाओं की प्रस्थिति का अभिप्राय पुत्री, पत्नी, छात्र, माता कार्यकर्त्ता, गृहस्थी की मुखिया आदि के रूप में उनकी भूमिका में निहित महिलाओं के कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों के संबंध में अपेक्षाओं तथा इन प्रस्थितियों में उनके द्वारा दूसरे से अपेक्षित व्यवहारों, प्रतिफलों या अधिकारों के साथ ही इन प्रस्थितियों में महिलाओं को प्राप्त होने वाले प्रतिफलों के प्रति अन्य लोगों के दृष्टिकोणों की श्रृंखला है।

समकालीन भारत में परिवार संरचना

अधिकांश कामकाजी महिलाएँ एकाकी परिवार में रहना पंसद करती हैं। प्रोमिला कपूर (1975), मुरीकान (1975), ललिथा देवी (1982) इस बात की पुष्टि करती हैं कि एकाकी परिवार की महिलाएँ अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अवसरों को पाती हैं। इसके अतिरिक्त ए. एम. सिंह इस बात की पृष्टि करते हैं कि घरेलू महिलाएँ जो संयुक्त परिवार में रहती हैं उन्हें घर से बाहर जाने आर्थिक मामलों, गृहस्थी चलाने, साज श्रृंगार में स्वतंत्रता का अभाव देखा गया है। ललिथा देवी के अनुसार, नौकरीशुदा महिलाओं की अपेक्षा घरेलू महिलाएँ पारिवारिक जीवन संबंधी परंपरागत प्रथाओं को ज्यादा निभाती हैं। इसके अतिरिक्त, सामाजिक, सांस्कृतिक और मनोरंजन संगठनों में अधिक सक्रिय भी नौकरीशुदा महिलाएँ होती हैं। बदलते समय के साथ निरंतर बढ़ते हुए संघर्षों के साथ कामकाजी महिलाओं को आज दोहरी भूमिका निभानी पड़ रही है। विवाह के बाद एक स्त्री के जीवन में अकस्मात् ही विभिन्न बदलाव आ जाते हैं। ऐसे में उसकी भूमिकाएँ, पत्नी, माँ गृहिणी तथा दूसरी तरफ नौकरी के उत्तरदायित्व बढ़ जाते हैं। घरेलू जिम्मेदारियाँ और नौकरी की प्रोफेशनल जिम्मेदारियों के चलते दोहरे स्तर पर मांगे और तनाव के कारण परस्पर वैवाहिक समझौतों के संकटों का सामना करना पड़ता है। एक तरफ महिला होने के नाते जैविक क्रियाएँ जैसे (प्रजनन) इत्यादि जिम्मेदारियाँ तो दूसरी तरफ पारिवारिक सांस्कृतिक वैवाहिक कर्त्तव्य इन दोनों का सामना महिला को करना पड़ता है। ऐसे में अपने पति के सौहार्दपूर्ण व्यवहार से पत्नी अपने जीवन में तालमेल और संतुलन पैदा करती है। पति-पत्नी, के आपसी संबंधों पर पत्नी के नौकरी के प्रभाव के बारे में चर्चा करते हुए बोमैन कहते हैं कि पत्नी के नौकरी पर जाने से पति-पत्नी के बीच के संबंध घनिष्ठ बनते हैं और पुरुष पत्नी की समस्या को भली-भांति समझ पाता है। वहीं दूसरी तरफ, जैफकॉट, सीअर और स्मिथ का मानना है कि पति और पत्नी के बीच की साझेदारी घनिष्ठतर होती जाती है,

और कुछ लोगों का विश्वास है कि विवाहित नारी का कामकाजी होना अच्छे संबंध को बिगाड़ना तो दूर अपितु उन्हें सुधारने में सहायक होता है।

निष्कर्ष

समकालीन भारत में परिवार संरचना कोलेंडा के अनुसार, महिलाएँ आज के जटिल विस्तारित/संयुक्त परिवार में पहले के सरल प्रारंभिक एकल परिवारों की तुलना में अधिक तनाव और दमन महसूस करती हैं। लेकिन दूसरी तरफ संयुक्त परिवार व्यवस्था में पितृ वंशात्मकता और पितृसत्ता की जड़ें कहीं ज्यादा मजबूत होती हैं। संयुक्त परिवारों में परिवारिक संबंध भी घनिष्ठ होते हैं। भारतीय परिवारों में जाति-धर्म वर्ग की बहुलता के कारण परिवारों में भौतिक, सामाजिक और प्रतीकात्मक अंतर होते हैं जो स्त्री और पुरुषों की निजी जीवन को विभिन्न संदर्भों में प्रभावित करते हैं। विवाह के माध्यम से लड़कियों की यौनिकता को नियंत्रित किया जाता है। रजनी पालरीवाला के अनुसार, 'पति-पत्नी की व्यक्तिगत विशिष्टताएँ, जैसे तुलनात्मक आयु शैक्षणिक व आय का स्तर, परिवार में वरिष्ठता इत्यादि पारिवारिक संबंधों को आकार देती हैं। और अपनी ससुराल में स्त्री की हस्तक्षेप क्षमता के लिए महत्त्वपूर्ण होती हैं। वहाँ युवा दंपत्तियों को पुरानी पीढ़ी के साथ ज्यादा रहना पड़ता है। ऐसा लगता है कि किशोरावस्था में विवाह होना, संयुक्त परिवार व्यवस्था, बहुओं पर नियंत्रण और पारिवारिक बंधन एक-दूसरे से गहरे तौर पर जुड़े होते हैं। विवाह के पश्चात् पति अपनी पुत्री का कन्यादान करता है और बेटी को अपनी घर से विदा करता है। पति के घर में आने के बाद पत्नी के लिए परिवार की संकल्पना, आवासीय व्यवहार, नए रिश्ते-नातों में व्यवहार कुशलता और तारतम्यता स्थापित करना, महिलाओं के लिए एक चुनौती जैसा होता है। पितृसत्ता के चलते घर में नए सदस्य को परिवार के नियम संस्कारों, रीति-रिवाजों को अपनाना होता है। नए सदस्य से सभी को कुछ-न-कुछ अपेक्षाएँ रहती हैं। नए सदस्य के द्वारा लिए जाने वाले हर फैसले और व्यवहार में परिवार का हित शामिल होना जरूरी हो जाता है। अर्थात् उनके व्यवहार से परिवार के अन्य सदस्य भी प्रभावित होने लगते हैं।

Works Cited:

- उत्पल कुमार (2013), सेक्स एंड सोशल जस्टिस, रमेश उपाध्याय और संज्ञा उपाध्याय, विवाह की संस्था में बदलाव की जरूरत शब्द संधान नई दिल्ली, पृ. 31.
- रमेश और संज्ञा उपाध्याय (2013), विवाह की संस्था में बदलाव की जरूरत, शब्द संधान, नई दिल्ली, पृ. 64.
- मधु राठौड़ (2002), पंचायती राज और महिला विकास, पोइटर पब्लिशर्स, जयपुर, राजस्थान।
- आर.बी.पाल (2003), महिलाओं को प्रस्थिति परिवर्तन में महिला शिक्षित सेवायोजन की भूमिका, विकास पब्लिकेशन हाउस, लिमिटेड, नई दिल्ली।
- मुखर्जी विश्वनाथ (1975), सामाजिक परिवर्तन में महिलाओं की स्थिति की एक बहुआयामी संकल्पना, सामाजिक विकास परिषद, नई दिल्ली, खंड 5. संख्या 1 और 2 मार्च-जून. पृ. 28.
- सिंह, ए.एम (1975) भारत में महिलाओं का अध्ययन कार्यप्रणाली में कुछ समस्याएँ, समकालीन भारत में महिलाएँ, ए.देसूजा द्वारा संपादित, मनोहर बुक सर्विस, दिल्ली।
- ललिता देवी पॉल (2003) महिलाओं की प्रस्थिति परिवर्तन में महिला शिक्षित सेवायोजन की भूमिका, निर्मल पब्लिकेशंस, दिल्ली, पृ. 881.
- डॉ. आर. बी. पाल (2003), महिलाओं की प्रस्थिति परिवर्तन में महिला शिक्षित सेवायोजन की भूमिका, निर्मल पब्लिकेशंस दिल्ली।
- साधना आर्या (2001), नारीवादी राजनीति: संघर्ष एवं मुद्दे, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली

विश्वविद्यालय।

- Kapoor, Promila (1970) Marriage and the Working Women in India, Vikash Publication, Delhi.
- Sood, Rita (1991) Changing Status and Adjustment of Women, Manak Publications Pvt. Ltd. Delhi.
- U. Lalitha devi, (1982) Status and Employment of Women in India, B.R. Publishing Corporation, Delhi.
- Prakash Rao, V.V. & Nandini Rao (1991) Marriage, the Family and Women in India, Heritage Publishers New Delhi.
- Kolenda, P. (1967) Regional Difference in Indian Family Structure, Regions and Regionalism in South Asian Studies: An Exploratory Study. Duke University Monographs and Occasional Papers series, No. 51. 20.

❑❑❑

ज्ञानप्रकाश विवेक की गजलों में निहित महानगरीय परिवेश

❍ डॉ. महेश वसंतराव गांगुर्डे[1]

ज्ञानप्रकाश विवेक की गजलों का चिंतन पक्ष अत्यंत सशक्त है। वे व्यष्टि, समष्टि एवं राष्ट्र के जीवन में व्याप्त सामाजिक परिस्थितियों पर संवेदनशील होकर चिंतन करते हैं। उनकी चिंता समाज में ढहते हुए जीवनमूल्यों के प्रति है। महानगरीय जीवन के बनावटीपन से वे व्यथित होते हैं। नारी की विवशता उन्हें व्यथित करती हैं। समाज में व्याप्त सामाजिक कुप्रवृत्तियाँ उनके मन-मस्तिष्क को झकझोरती हैं, वे समाज की आर्थिक, दयनीय स्थिति, धार्मिक आडम्बर, राजनीति में व्याप्त विद्रुपता आदि समसामयिक स्थितियों से चिंतित होते हैं। डॉ. मधु खराटे लिखते है - "ज्ञानप्रकाश विवेक का हिंदी गजलकारों में महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अपनी गजलों के माध्यम से जीवन की वास्तविकता की अभिव्यक्ति की है। जीवन की यथार्थ अनुभूतियों को व्याप्त करने का एक प्रभावी माध्यम गजल को मानते है"।[1] यही अनुभूति उनकी गजलों में व्यक्त हुई है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के परवर्ती काल में औद्योगिक प्रगति, शिक्षा के सुअवसर, सुख-सुविधाओं की उपलब्धि रोजगार के अवसर, औद्योगिकरण के परिणामस्वरूप महानगर विकसित होते चले गए। इस सकारात्मक पक्ष आयाम के साथ एक नकारात्मक दृष्टि भी बढ़ती चली गयी। महानगरीय जीवन विसंगतियों, विडम्बनाओं एवं विद्रूपताओं का केंद्र बन गया है। महानगरीय जीवन में दिखावटीपन है, यहाँ लोग मुखौटे धारण किए आचरण करते हैं। यहाँ मध्यमवर्ग एवं निम्नवर्ग को कई समस्याओं से जुझना पड़ता है। अन्न, वस्त्र और उससे भी भयंकर आवास की समस्या है। संपूर्ण महानगर दो क्षेत्रों में विभाजित हो जाता है एक वह क्षेत्र है जहाँ धनसंपन्न लोग रहते है, जहाँ सभी सुख-सुविधाएँ है, साफ-सुथरी सड़के हैं, बड़े-बड़े मॉल हैं, दुकानों के अपने-अपने ढंग है, गगनचुंबी इमारते हैं। इस क्षेत्र को 'India' कहा जा सकता है तो दूसरी ओर झुग्गी झोपडियाँ है, गंदगी है, आर्थिक स्थिति की भयावहता, लोग कीड़े-मकोडों के समान जीवन जी रहे है, अभाव जहाँ का स्थायीभाव है, यह 'भारत' है। इन विपरीत स्थितियों के कारण महानगरीय जीवन बाहर से सुहावना-लुभावना लगता है, परंतु अंदर से विद्रुप है। अनेक साहित्यकारों ने महानगरीय जीवन की इस यथार्थ स्थिति को वर्णित किया है। ज्ञानप्रकाशविवेक भी महानगर के परिवेशगत यथार्थ को अभिव्यक्त करते है।

"आज के इस भौतिकवादी युग में व्यक्ति अपना जीवन भौतिक सुख-सुविधाओं और ऐशोआराम के साथ

---

1. प्राचार्य, हिंदी विभाग, कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, अक्कलकुआँ, जि. नंदुरबार

बिताना चाहता है। व्यक्ति की इस आधुनिक संवेदना ने महानगरीय जीवन और सभ्यता को पोषक तत्त्व प्रदान किए हैं। गाँव से लोग शहर की ओर दौड़ रहे हैं। बड़े गाँव कस्बों में, कस्बे नगरों में और नगर महानगरों के रूप में परिवर्तित होते जा रहे हैं। आज महानगरीय बोध मानव-समाज में तेजी से बढ़ रहा है। यह महानगरीय बोध आधुनिकता बोध की ही देन है। आज हो रहे मानव-मूल्यों के पतन में महानगरीय सभ्यता का पूरा-पूरा हाथ है। छल, प्रपंच, स्वार्थ, विश्वासघात तथा मानसिक तनाव के कीटाणु महानगरीय वातावरण में जन्मते और पलते हैं।"[2]

महानगरों का जीवन औपचारिक होने के कारण यहाँ पारस्पारिक स्नेह, आत्मीयता, अपनत्व की भावना समाप्त हो रही है। प्रतिदिन की आपाधापी में नौकरी और व्यवसाय के लिए भागते लोगों के पास समय नहीं है अतएव वे चाहकर भी नाते-रिश्तों से जुड़ नहीं पाते। संबंध को बनाए रखना संभव नहीं होता। स्वार्थ के घेरे में वे इतने व्यावहारिक हो चुके है कि अपनत्व उन्हें व्यर्थ की भावना अनुभव होती है -

सिगरेट के टुकड़े की मानिन्द अपनापन सब रौंद गये
महानगर में ऐसी बातें होती है बेकार-सी[3]

इस प्रकार 'महानगर के गठबंधन में, रिश्ते बीहड़ से लगते है।' महानगर में जीवन में स्थायित्व नहीं होता। आवास की समस्या भयानक होती है। अधिकांश लोग झुग्गी झोपडियों, प्लेटफार्मो, पुलिया के नीचे, सिमेंट के बड़े पाईपों में रहने के लिए विवश है। जहाँ से उन्ह्रें व्यवस्था के द्वारा कभी भी हटाया जा सकता है। लाखों आवास अवैध है अत: अनिश्चितता बनी रहती है। इसलिए वहाँ का आम आदमी यही अनुभव करता है कि-

महानगर में पड़ा हूँ मैं इस तरह यारो !
कि प्लेटफार्म पे रक्ख्खा हो बिस्तरा कोई[4]

इसलिए गजलकार इसे घटनाओं-दुघर्टनाओं का केंद्र मानते है। जहाँ मौत अपने बाहे पसारी हुए रहती है। कब ? कौन ? कहाँ ? हादसों का शिकार हो जाएगा कहा नहीं जा सकता। इसी वास्तविकता को व्यक्त करते हुए ज्ञानप्रकाश जी लिखते है -

यहाँ तो मौत करेगी हमेशा जासूसी
ये हादसों का शहर है, निवास मत रखना[5]

महानगरों में संपन्न वर्ग जितना धन कमाता है उतना ही अपने लिए मनोरंजन के विविध साधनों को वे जुटाता है। यही कारण है कि महानगरों में होटलों, क्लबों में पार्टियाँ आयोजित होती रहती हैं -

पपलू, फ्लैश, तम्बोला, रम्मी, पीना और पिलाना
लोग शहर के खुशियों का यूं करते हैं नाटक-सा[6]

भय और आतंक महानगरों की एक विशेषता है। यहाँ इतने खून-खराबें, चोरियाँ, मार-पीट, गैंगवार, साम्प्रदायिक संघर्ष होते रहते हैं कि व्यक्ति सदैव डरा-डरा-सा रहता है -

लगा है पीछे मेरे हादसों का गैंग कोई
महानगर में ये अक्सर गुमान होता है[7]

कभी अज्ञेय जी ने साँप को संबोधित करते हुए पूछा था कि वह शहर में कभी नहीं रहा फिर उसने यह डसना कहाँ से सीखा है। स्पष्ट है कि शहर में दंश करने की दुष्प्रवृत्ति होती है। दूसरों के अधिकार को छीन लेना यहाँ की खास विशेषता है। अर्थबल एवं शक्तिबल पर दूसरों की जमीन, मकान, दुकान, बहु-बेटियाँ छीन लेना प्रतिदिन के हादसे है। दूसरे को दंश कर अपना वर्चस्व स्थापित करना यहाँ आम बात है। गजलकार को लगता है मानो शहर में साँपों का डेरा है -

सपेरे दूर से तकरीर सुनने आए है
विषैले सांपों का जलसा मेरे शहर में है[8]

महानगर साम्प्रदायिक दंगों, आतंकियों, माफियों के अपराध केंद्र बन गए है। इसलिए यहाँ आगजनी, मारपीट, खून, कर्फ्यू, गोलियाँ चलना, कोई विशेष हादसा नहीं माना जाता। इस शहर का मौसम ही इतना आतंकित है कि विवेक जी लिखते हैं –

कोई बताये शहर के मौसम को क्या हुआ
लगता है हर मकान का चेहरा जला हुआ
कर्फ्यू ग्रस्त शहर की दहशत तो देखिए
लम्हा गुजर गया है कोई चीखता हुआ

॰ ॰ ॰

हमारे सहमे हुए बामो–दर न देखो तुम
तनाव ग्रस्त नगर के हैं हम मकां यारो[9]

शहर में व्यस्तता, दैनिक जीवन की भागदौड के कारण लोग तनावग्रस्त रहते हैं। आतंक एवं भय इतना व्याप्त है कि कोई हसता–मुस्कुराता दिखाई दे तो मानो यही एक आश्चर्यजनक घटना है। शहर नारों, जुलूसों और रैलियों के केंद्र बने हुए है। महानगरों के आस–पास के खेतों को अकृषि भूमि करार कर उद्योगधंदों, कारखानों एवं आवासगृहों के रूप में किया जा रहा है। इन सब स्थितियों को ज्ञानप्रकाश विवेक ने अपने एक गजल में अभिव्यक्त किया है –

तुम ही बताओ क्या वो कोई हादसा न था
मुद्दत से मेरे शहर में कोई हंसा न था
नारे वही, जुलूस वही, रैलियां वही –
उस शहरे–इंकलाब में कुछ भी नया न था
कालोनियां नगर की उसे मिल के खा गईं
वो खेत जो किसी का बुरा सोचता न था[10]

महानगर के व्यस्त जीवन में नाते–रिश्ते खोखले हो गए हैं। पारस्परिक संबंधों में टूटन आ चुकी है। ऐसी स्थिति में महानगर आकर बसनेवालों को आगाह करते हुए गजलकार लिखते हैं कि –

यही शहर है जहां सब सगा समझते थे
यहीं खड़ा हूं संबंधों की अस्थियां लेकर
सियासी शहर में आने से पेशतर सुन ले
तेरा वजूद यहां इश्तहार–सा होगा

॰ ॰ ॰

बिकेंगे शहर में ताबूत दोस्तानों के
मरेंगे इस तरह रिश्ते, हमें गुमान न था[11]

गजलकार स्वीकार करते हैं कि शहरों में बड़ी–बड़ी इमारते बनायी जाती हैं, जिसमें पत्थरों का उपयोग किया जाता है इसलिए शहरों को ईंटों का सिमेंट एवं पत्थरों का शहर कहते हैं। परंतु यह आवश्यक नही है कि पत्थरों के शहर में रहनेवाला व्यक्ति अपने स्वभाव एवं व्यवहार को भी पत्थरों के समान जड़ बना ले –

हमने माना कि ये पत्थर का शहर है लेकिन

ये जरूरी तो नहीं, खुद को बना लो पत्थर[12]

महानगरीय जीवन तो वौसे भी अत्यंत जटिल है और यदि वह राजधानी का केंद्र हो तो यह जटिलता और भी बढ़ जाती है। ऐसे राजधानी के महानगरों में आस्था, निष्ठा, विश्वास जैसे नैतिक मूल्य ढह जाते हैं-

मैं जब भी पूछता हूं हाल राजधानी का
वो आस्थाओं की कतरन मुझे दिखाता है[13]

ज्ञानप्रकाश को महानगर कभी 'चुप्पियों का पोस्टर' तो कभी 'लोह-लुहान चेहरा' दृष्टिगत होता है। मानव जीवन की यह विवशता है कि महानगरों में उसका स्वाभाविक जीवन नहीं होता है। जिन्दगी की सभी खुशियाँ महानगर छीन लेता है फलस्वरूप मनुष्य विवश होकर जीवन को किसी बोझ के समान उठाता रहता है। वह एक बनावटी जीवन स्वीकार कर लेता है। उसे दिखावेपन की आदत हो जाती है। इस विवश स्थिति को गजलकार इन शब्दों में व्यक्त करते हैं -

कोई समझता नहीं दोस्त, बेबसी मेरी
महानगर ने चुरा ली है जिन्दगी मेरी[14]

महानगर का जीवन वणिक वृत्ति पर चलता है इसलिए यहाँ स्थान-स्थान पर टोल-टैक्स चुकाना पड़ता है। सड़कों के निर्माण एवं मरम्मत के लिए लोगों से टैक्स वसूल किया जाता है। इसी प्रकार महानगर में चल रहा गणित मनुष्य को संवेदनशील बना देता है जैसा कि विवेक जी लिखते है-

हरेक मोड़ पे लगता है टोल-टैक्स यहाँ,
कि इस शहर को किसी सेठ ने बसाया है
संवेदनाओं का बादल था मेरी आँखों में,
महानगर के गणित ने उसे निचोड़ दिया[15]

महानगरीय जीवन का यथार्थांकन करते हुए ज्ञानप्रकाश विवेक के दृष्टिकोण को डॉ. मधु खराटे इन शब्दों में व्यक्त करते हैं - महानगर में जीवन की कोई गारंटी नहीं है। राम को व्यक्ति घर पहुँचेगा या नहीं कोई नहीं बता सकता। क्योंकि गैंगवार, खून, दुर्घटनाएँ, बम विस्फोट, राजनीतिक आंदोलन, दंगे-फसाद आदि घटनाएँ आये दिन महानगरों में होती रहती है। महानगर चौबीसों घंटे दौड़ता रहता है। इस तरह का जीवन जीने के लिए महानगर का व्यक्ति विवश है, अब धीरे-धीरे इस जीवन की उसे आदत-सी हो गयी है -

'हमारे शहर में जीना अब एक आदत है
हमारे शहर का ये भी है हादसा यारों।"[16]

अत: कहा जा सकता है कि महानगरीय जीवन में दृश्य रूप में चकाचौंध है। गगनचुंबी इमारतें, साफ-सुथरी सड़के, रेल्वे और मेट्रो का जाल, चमचमाती कारे, बड़े-बड़े मॉल, प्रकाश की सुव्यवस्था, पंचतारांकित होटले आदि सभी कुछ है, परंतु ज्ञानप्रकाश जैसे गजलकारों की चिंता यह है कि यहाँ जीवन में सहजता, स्वाभाविकता नहीं है। आदमी डरा-डरा-सा रहता है। जीवन की निश्चितता, प्रतिदिन घटित होनेवाले हादसे महानगरवासियों के सुख-चौन को छीन लेते हैं। फलस्वरूप वे विवशतापूर्ण जीवन जीने के लिए बाध्य है।

संदर्भ :

1. डॉ. मधु खराटे, साठोत्तरी हिंदी गजल, पृ. 151
2. डॉ. अनिलकुमार शर्मा, साठोत्तरी हिंदी गजल : डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल का योगदान, पृ. 94-95
3. ज्ञानप्रकाश विवेक, धूप के हस्ताक्षर, पृ. 26
4. वही, पृ. 82

5. ज्ञानप्रकाश विवेक, आँखों में आसमान, पृ. 19
6. वही, पृ. 25
7. वही, पृ. 35
8. वही, पृ. 40
9. वही, पृ. 54, 57
10. वही, पृ. 69
11. ज्ञानप्रकाश विवेक, इस मुश्किल वक्त में, पृ. 26-27
12. वही, पृ. 44
13. ज्ञानप्रकाश विवेक, इस मुश्किल वक्त में, पृ. 49
14. वही, पृ. 58
15. ज्ञानप्रकाश विवेक, गुफ्तगू अवाम से है, पृ. 14
16. ज्ञानप्रकाश विवेक, गुफ्तगू अवाम से है, पृ. 42, 50

❖❖❖

हिंदी उपन्यासों में चित्रित किन्नर विमर्श

❍ डॉ. अनंत भालचंद्र पाटील[1]

संक्षिप्ति :

संसार में समाज ने नर और नारी इन दो लिंगों को ही महत्व प्राप्त हुआ है। इन दो लिंग को ही कुदरत का करिष्मा मान लिया है। किंतु स्त्री और पुरुष इन दो लिंगों या वर्ग के अलावा एक और लिंग अथवा वर्ग को उपस्थित किया है। लैंगिक विकलांग, यह इसका नाम है। इस लैंगिक विकलांग को किन्नर, उभयलिंगी मौसी, हिजड़ा, खुजरा, तृतीय लिंगी, तृतीय पंथी आदि विभिन्न नामों से संबोधित किया जाता है। इस लैंगिक विकलांग वाले वर्ग अथवा लिंग को समाज हमेशा एक उपेक्षित दृष्टि से देखता है। उपेक्षित नजर से देखने वाले समाज के कारण यह लैंगिक विकलांग वाला समुदाय प्राचीन काल से आज तक अपने अस्तित्व के लिए निरंतर संघर्ष करता हुआ दिखाई दे रहा था। आखिरकार 21वीं शताब्दी में तृतीय प्रकृति समुदाय ने संविधानिक अधिकार प्राप्त किया है।

साहित्यिक दृष्टिकोण :

वर्तमान समय के रचनाकार अपनी लेखनी के माध्यम से आज विभिन्न विमर्श जैसे दलित विमर्श, किसान विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि पर काफी बड़ी मात्रा में चर्चा करता हुआ दिखाई दे रहा है। इन विभिन्न विमर्शों के कारण अलग-अलग समाज पर साहित्य सृजन किया जा रहा है। समाज में सभ्य समाज के अलावा एक और समाज जीवन यापण करता हुआ दिखाई देता है। वह तृतीय प्रकृति समुदाय है, जिसे सदियों से नजर अंदाज किया जा रहा है। समाज से कोसों दूर रहने वाला उपेक्षित लिंग, तृतीय पंथी, बहिष्कृत निरपेक्ष समाज किन्नर विमर्श के विषय पर जितनी मात्रा में चाहे उतनी मात्रा में आज तक चर्चा नही हुई है। भारत का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य महाभारत के पूर्व में भी इस समुदाय के ऊपर कुछ खास तौर पर लिखा नहीं गया है। इस महाकाव्य में पाँच पांडव और सौ कौरव के अलावा एक और पात्र था जिसका नाम शिखंडी था, जो किन्नर था। केवल इतना ही नही अर्जुन ने अपने अज्ञातवास के समय खुद किन्नर का रूप धारण करके जीवन यापन किया था। साथ ही साथ ख्याति प्राप्त अर्थशास्त्रज्ञ कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र नामक ग्रंथ में भी किन्नर समुदाय का जिक्र किया है। इस ऐतिहासिक विवरण के आधार पर हिंदू एवं मुस्लिम इन दो शास्त्रों के द्वारा किन्नर वर्ग

1. *प्राध्यापक, हिंदी विभाग, सिताराम गोविंद पाटील कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय साक्री, मो. 9960023933*

को मुख्य रूप से अंत:पुर और वहाँ रानियों की रखवाली के लिए किन्नरों को नियुक्त किया था।

किन्नर शब्द की उत्पत्ति :

किन्नर शब्द की उत्पत्ति हिंदी साहित्य में 'कि' और 'न' इन दो शब्दों के मेल से हुआ है। इसका तात्पर्य हिमाचल प्रदेश के किन्नर जनजाति से नहीं है। लेकिन इस समुदाय का ऐसे समुदाय से संबंध है जो वर्ग पूर्ण रूप से न नारी है और न ही पुरुष है। इस समुदाय के लोगों को साधारण भाषा में हिजड़ा कहते हैं। हिजड़ा शब्द जब हमारे मस्तिष्क में आता है तब हमारे आँखों के सामने एक विशेष रूप से इस तरह हमारे मन में आचार विचार, भाव भंगिमा, व्यवहार, रहन सहन, चाल, ढाल, वेश-भूषा, निखरा हुआ चेहरा, अलग तरह से किया हुआ साज शृंगार ऐसी मनुष्य की आकृति सामने आ जाती है। इस प्रकार के लोगों को जन सामान्य की भाषा में हिजड़ा कहा जाता है। बुचरा, नीलिमा, मनसा, एवं हंसा इस प्रकार से चार वर्गो में विभाजित किया जाता है।

किन्नर की परिभाषाएँ :

हिंदी साहित्य में किन्नर की विभिन्न प्रकार की परिभाषाएँ हैं जो निम्न प्रकार है -

1. पुराण साहित्य में एक उल्लेख आया है कि 'स्वर्ग अथवा देवलोक में जो गायक, उपदेवता जिसका चेहरा घोड़े के मुख के समान होता है उसे किन्नर कहते हैं।
2. 'किन्नर यह एक प्रकार की देवता है जिसका मुख घोड़े के मुख्य समान दिखाई देता है।'
3. 'समाज में जो गाने बजाने का व्यवसाय करते है, उस जाती के लोगों को किन्नर कहते है।'

किन्नर का समाज में स्थान :

समाज में पुरुष और स्री इन दो लिंगों के अलावा और भी एक लिंग हमें दिखाई देता है। समाज में इस लिंग वाले समुदाय को मामू, हिजड़ा, छक्का, किन्नर, थर्ड जेंडर, तृतीयपंथी, और उभय लिंगी आदि नामों से जाना जाता है। इस समाज पर आज कम अधिक मात्रा में तुलिका उठाई जाने लगी है। यह लेखन कोई ना कोई समाज जरूर पड़ता है और ऐसे किन्नर समुदाय के बारे में जानना और पहचान करता है। फिर भी किन्नर समुदाय के जीवन में होने वाला संघर्ष कम होता हुआ दिखाई नहीं देता है। यह किन्नर आज भी हमें सड़कों, बस स्टॉप, रेल आदि स्थानों पर भीख मांगते हुए दिखाई देते है केवल इतना ही नहीं तो यह किन्नर अपनी एक टोली बनाकर नाच गाकर आदि रूप में घर घर जा कर बाजार में मिलने वाले हर एक चीजों को मांग कर अपने पापी पेट भरते है। यह किन्नर जाती के लोग अपने अलग अलिंगी जिस्म को लेकर जीवन के अंतिम पढाव तक अपमानित, तिरस्कृत दरदर के ठोकरे खाकर संघर्षमय जीवन यापन करते है। यह सारा खेल प्रकृति का ही है। किन्नर समुदाय के जीवन की व्यथा में 'पायल' उपन्यास में लिखत गीतों के माध्यम से अभिव्यक्ति की है-

जैसे 'अधूरी देह क्यों मुझको बनाया।
बता ईश्वर तुझे ये क्या सुजाया
किसी का प्यार हूँ ना वास्ता हूँ।
न तो मंजिल हूँ मैं, ना रास्ता हूँ।
की अनुभव पूर्णता का हो न पाया।
अजब खेल रह रह धूप छाया।"[1]

प्रकृति के इस खेल के आगे किन्नर समुदाय को सभ्य समाज में पैसे कमाने के दो ही रास्ते होते है। एक भीख माँगना तो दूसरा देह का व्यापार करना इसके अलावा किसी के घर में बच्चे का जन्म हुआ तो वहाँ जाकर नाच गाना करके बधाई मांगना आदि। किन्नरों को देखते ही घर परिवार वाले इने अपने घरों में आने नही देते क्योकि इनके प्रती समाज का नजरिया ही नकारात्मक है। इतना ही नही तो पुलिस वाले इसे रातोरात उठाकर

ले जाते उसके साथ बत्तमीजी करते हैं। अनायास ही इन लोगों को गांव से बेदखल करते हैं। इससे ज्ञात होता है कि किन्नर समुदाय के प्रति समाज का देखने का रवैया अलग होता है। वे लोग अपने जीवन में होने वाले अंधेरे को मिटाकर प्रकाश में लाने के लिए काफी संघर्षो का सामना करना पड़ता है।

किन्नर विमर्श :

आज वर्तमान समय के समाज में जितने समुदाय है, उतने सभी समुदाय के जीवन में कभी ना कभी सुख दु:ख, दर्द पीड़ा, कठिनाईयाँ, उनकी जीवन की सत्यता, अच्छाई, बुराई आदि पर किसी न किसी की लेखनी चली है। उसी प्रकार समाज में जीवन यापन करने वाले उभयलिंगी जिसे हिंदी में किन्नर कहा जाता है। इनके जीवन का सुख, दु:ख, दर्द, पीड़ा उनके जीवन की कठिनाईयों आदि के बारे में लेखनी चलाई है। ऐसे किन्नर समुदाय पर कई महत्वपूर्ण लेखकों ने उपन्यास, कहानी, नाटक एवं कविता का सृजन किया है। जिसमें साहित्यकार महेंद्र भीष्म, प्रदीप सौरभ, नीरजा माधव, चित्रा मुदगल, अनुसया त्यागी, निर्मला भुराडीया आदि ने प्रकाश डाला है।

तीसरी ताली :

प्रदीप सौरभ द्वारा लिखित 'तीसरी ताली' यह उपन्यास 2014 में प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास में गौतम नामक व्यक्ति के परिवार का चित्रण किया है। गौतम को विनीत नामक एक बेटा था। प्रकृति के खेल के आगे गौतम हार जाता है और धीरे धीरे विनीत के शरीर में बदलाव आते हैं। कुछ सालों बाद विनीत भी किन्नर समुदाय का हो जाता है। गौतम अपने किन्नर रूप वाले विनीत नामक बेटे को समाज की नजरों से हमेशा दूर ही रखना चाहता है। लेकिन बहुत सारे दिन बीत जाने से समाज की अवहेलना के कारण गौतम अपने विनीत नामक किन्नर लडके को त्याग देता है। अर्थात एक किन्नर पैदा होने से पिता की इच्छा होने के बावजूद भी अपने पुत्र को त्यागना पड़ता है। बाद में विनीत को अपने जीवन में विभिन्न समस्याओं का सामना करना पडता है।

किन्नर कथा :

'किन्नर कथा' यह उपन्यास 2011 में लेखक महेंद्र भीष्म द्वारा सृजित किया हुआ है। इस उपन्यास के माध्यम से एक राज परिवार में सोना उर्फ चंदा को किन्नर राज नामक लडके का जन्म हुआ है। राज की माँ को पुत्र जन्म के कारण काफी अधिक मात्रा में आनंद होता है। माता को ज्ञात है की हमें जो लड़का हुआ है वह किन्नर है। लेकिन वह ममता के कारण अपने बेटे के बारे में यह बात किसी को नही बताई थी। जब यह बात राज के पिता राजा जगतराज सिंह को पता चलता है कि तब किन्नर बच्चे को मारने का आदेश देता है। अर्थात लेखक महेंद्र भीष्म ने इस उपन्यास के द्वारा यह स्पष्ट किया है की इतना बड़ा राज परिवार होकर उसमें किन्नर की तरह लड़का पैदा होने से उसे कैसे दूर किया जाता है यह वास्तविक चित्रन लेखक ने करने का प्रयास किया है।

पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा :

यह उपन्यास 2016 में चित्रा मुदगल द्वारा लिखा हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास में माँ अपने पुत्र को किन्नरों से दूर रखने का प्रयास करती है। माता के इस मत के कारण बेटा विनोद को एक छोटी सी बिन्नी बनाना पड़ता है। वह अपने माता के सपनों को सच करने का प्रयास करता है। बाद में वह बिंनी रुपी लड़का यह संकल्प करता है कि भविष्य में वह कुछ बडा बनेगा और अपने दीवार और समाज के लोगों को समाज में मान-सम्मान, शान दिलाने का प्रयत्न करेगा

जिंदगी फिफ्टी-फिफ्टी :

2017 में भगवंत अनमोल द्वारा लिखित यह उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में किन्नर विमर्श का अधिक

चित्रण किया गया है। अनमोल को हर्ष नामक एक भाई है। इस हर्ष को जबरदस्ती से किन्नर का कष्ट अपने जिंदगी में झेलना पड़ता है। उपन्यास के प्रमुख पात्र अनमोल को सूर्या नाम का एक लड़का है। लेकिन अनमोल अपने बेटे सूर्या को ऐसे किन्नर के दंश से काफी दूर रखने की सोचता है। कुल मिलाकर इस उपन्यास के माध्यम से लेखक यह बताना चाहता है कि कोई भी व्यक्ति जिंदगी में पूर्ण रूप से नहीं होता है। वह आधा आधा फिफ्टी-फिफ्टी होता है। फिर भी लोग किन्नरों के प्रति एक अलग नजर से देखते, समझते हैं। उसे समझा जाता है। अर्थात ऐसे किन्नरों को एक सामान्य व्यक्ति को समाज में जीने का अधिकार दिया तो निश्चित रूप से वह अपने जीवन में बदलाव लायेगा।

इन उपन्यासों के अलावा डॉ. अनुसया त्यागी द्वारा लिखित 'मैं भी औरत हूँ', नीरजा माधव द्वारा लिखित 'यमदीप' आदि के साथ साथ विभिन्न साहित्यकारों ने किन्नरों के जीवन पर कहानी, आत्मकथा एवं कविताएँ सृजनकर किन्नरों के जीवन में आने वाले उतार चढाव, सुख दुःख समाज में इन का मानसन्मान आदि विविध बिंदुओं पर लेखनी उठाकर किन्नरों के जीवन को उनकी दशा, दिशा, आलोक का मार्ग दिखाने का प्रयत्न किया है।

निष्कर्ष :

कुल मिलाकर कहा जा सकता है की समाज में नारी एवं पुरुष समुदाय के अलावा तिसरा जो समुदाय है वह तृतीयपंथी, उभयलिंगी, किन्नर, हिजड़ा तो अंग्रेजी भाषा में इसे थर्ड जेंडर कहा जाता है। किन्नर समुदाय को अन्य समुदाय की तरह इनके जीवन में भी बदलाव होना चाहिए। क्योकि अन्य समुदाय के लोगों के तरह यह भी लोग है। इस समुदाय को अन्य समुदाय की तरह बदलने का हक है। किन्नरों को छक्का और हिजडा कहना गलत है। इस समुदाय के लोगों को मनुष्य समझे इसे समाज की मुख्य धारा में लाना आवश्यक है। इन्हें हर क्षेत्र में अधिकार, इनके जीवन का दुःख, उनकी कराह जीवन का संघर्ष आदि बातों को जानना अनिवार्य है। जी स्थान पर किन्नर है वहाँ जाकर इनकी भावनाओं की कदर करनी चाहिए। इन्हें भी अन्य समुदाय, समाज, मनुष्य की तरह मान सन्मान देना चाहिए। इनके दुःख अपना दुःख समझे ताकि उन्हें अपने जीवन में होने वाला प्यार, सुख को बाँट दिया तो उनका जीवन सुखमय और समृद्ध हो जायेगा।

संदर्भ :

1. थर्ड जेंडर कथा अलोचना, डॉ. एम. फिरोज खान अनुसंधान पब्लिशर्स अँड डिस्ट्रीब्युटर्स, प्रथम संस्करण 2017
2. तीसरी ताली - प्रदीप सौरभ वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2011
3. यमदीप, नीरजा माधव सुनील साहित्य सदन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2009
4. पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासोपारा, चित्रा मुदगल, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2016
5. जिंदगी फिफ्टी-फिफ्टी, भगवंत अनमोल

❖❖❖

सत्राची फाउंडेशन, पटना

शोध, शिक्षा एवं प्रकाशन की समाजसेवी संस्था

यह संस्था -

- साहित्यिक सम्मान देती है।
- शोध पत्रिकाएँ प्रकाशित करती है।
- पुस्तकें प्रकाशित करती है।
- सेमिनार आयोजित करती है।
- राजभाषा/राष्ट्रभाषा सेवियों को प्रोत्साहित करती है।
- शोधकर्ताओं को स्तरीय शोध के लिए प्रोत्साहित करती है।
- नेट/जे.आर.एफ. के अभ्यर्थियों को निःशुल्क मार्गदर्शन देती है।
- हिन्दी साहित्य के शिक्षार्थियों को प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए तैयार करती है।